Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रामकुमार भ्रमर रचनावली

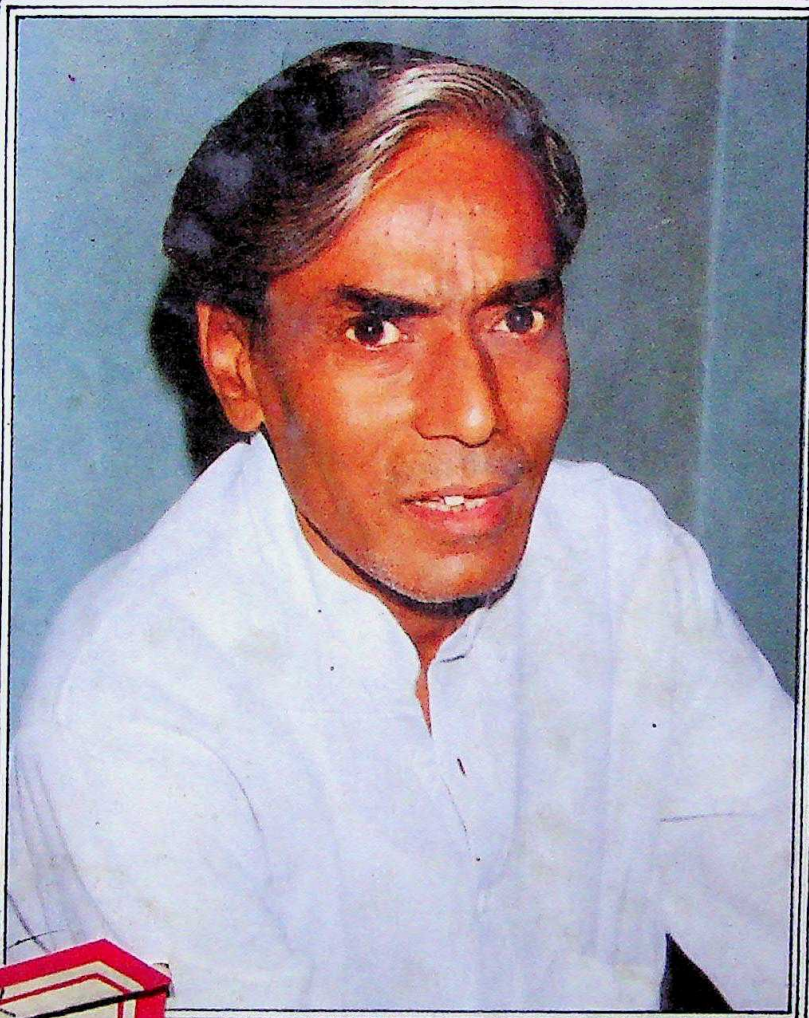

संपादक

कमलकिशोर गोयनका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

98531

कमलकिशोर गोयनका

'रामकुमार भ्रमर रचनावली' एक बहुखंडीय आयोजन है, जिसमें भ्रमरजी के बहुविधि विधा-लेखन की उपलब्ध सभी रचनाएं एकत्र की गयी हैं। यथासंभव यह प्रयत्न किया गया है कि गत तीस बरसों से अब तक के उनके साहित्य को इसमें काल-क्रमानुसार विभिन्न खंडों में जुटाया जा सके, ताकि रामकुमार भ्रमर और उनकी विभिन्न कृतियों अथवा समग्र पर शोध-कार्य करनेवाले छात्रों व साहित्य-प्रेमी पाठकों को कृतिकार के सम्पूर्ण को जानने-समझने का अवसर मिल सके।

उपरोक्त रचनावली का संपादन-संकलन प्रेमचन्द पर विलक्षण शोधकर्ता के नाते विख्यात हिन्दी के सुप्रसिद्ध समीक्षक-संपादक डॉ. कमलकिशोर गोयनका ने किया है। गोयनकाजी ने इसके पूर्व प्रेमचन्द और बाद में डॉ. रामकुमार वर्मा की रचनावलियों के बहुप्रशंसित आयोजन किये हैं तथा हिन्दी साहित्य और विश्वविद्यालय के शिक्षा क्षेत्र में उन्हें पर्याप्त स्नेह, सम्मान और श्रद्धा मिली है। अपने समकालीन रचनाकार श्री रामकुमार भ्रमर की इस रचनावली का आयोजन करके उन्होंने समीक्षकीय-व्यक्तित्व की निष्पक्षताऔर निर्विवाद मूल्यांकन-शक्ति का एक दस्तावेज़ प्रस्तुत कर दिया है।

मूलतः उपन्यासकार के नाते प्रसिद्ध श्री रामकुमार भ्रमर की कहानियां, उपन्यास, नाटक, व्यंग्य, रिपोर्ताज, यात्रा-विवरण, निबन्ध, सत्यकथाएं, संस्मरण, डायरी, जीवनी-अंश, इन्टरव्यूज़, फिल्म पटकथाएं, वार्ताएं, भाषण, बाल-साहित्य, महत्त्वपूर्ण पत्र-व्यवहार आदि विभिन्न सामग्री रचनावली में मिल सकेगी। कालखंड के अनुसार कुछ सामग्री या तो उपलब्ध नहीं हो सकी है, अथवा अभी बिखरी हुई है। प्रयत्न किया गया है कि उसे रचनावली के आगामी खंडों में संजोया जा सके।

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
आगत नं० 98531
रामकुमार भ्रमर
रचनावली
सदस्य संख्या | दिनाँक | सदस्य संख्या
विश्वविद्यालय
निशान आदि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

98531

पुस्तकालय

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

वर्ग संख्या ..... R०८१ ५.० आगत संख्या 98531

पुस्तक—वितरण की तिथि नीचे अंकित है। इस तिथि सहित २० वें दिन तक यह पुस्तक पुस्तकालय में वापिस आ जानी चाहिए। अन्यथा १० पैसे के हिसाब से विलम्ब-दण्ड लगेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रामकुमार भ्रमर रचनावली

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

89531

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पराग प्रकाशन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

98531

रामकुमार भ्रमर रचनावली

खण्ड १ : कहानियां

संपादक

कमलकिशोर गोयनका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

R
०८९
२०

मूल्य : दो सौ रुपये / प्रथम संस्करण, दीपावली १९९० / आवरण-शिल्पी : हरिपाल त्यागी / प्रकाशक : पराग प्रकाशन, ३/११४, कर्ण गली, विश्वासनगर, शाहदरा, दिल्ली-११००३२ / मुद्रक : कोणार्क प्रिंटर्स, दिल्ली-३२

RAMKUMAR BHRAMAR RACHNAVALI : I Rs. 200.00

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भूमिका

'रामकुमार भ्रमर रचनावली' के प्रकाशन से हिन्दी में रचनावलियों के प्रकाशन के इतिहास में एक नया अध्याय जुड़ रहा है, ऐसा मेरा विश्वास है। कुछ व्यक्ति इससे असहमत हो सकते हैं और उनके पास अपने तर्क भी हो सकते हैं, परन्तु हिन्दी-साहित्य के वर्तमान परिदृश्य में इसकी चर्चा अधिक होती है कि क्या होना चाहिए या क्या नहीं हुआ है। आलोचकों की दृष्टि इस पर कम ही जाती है कि क्या हुआ है और जो कुछ हुआ है, उसका स्तर एवं उसकी उपयोगिता या मौलिकता क्या है? अतः यदि इस रचनावली के प्रकाशन पर इसी प्रकार के आलोचक मुंह सिकोड़ें तो मुझे आश्चर्य नहीं होगा। मैंने जब अकविता के सशक्त कवि जगदीश चतुर्वेदी पर एक पुस्तक का सम्पादन किया था, तब भी ऐसे ही प्रश्नों से मुझे सामना करना पड़ा था, परन्तु ये प्रश्न चतुर्वेदी के उन मित्र-लेखकों ने उठाये थे, जिन्हें चतुर्वेदी ने ही स्थापित होने में सहयोग दिया था तथा जो 'भाषा' तथा कविता-संकलनों में कविताएं तथा लेख प्रकाशित करने के लिए उनकी विभिन्न प्रकार से खुशामद करते रहे थे। इन आलोचकों की एक आपत्ति यह भी थी कि प्रेमचंद के बाद जगदीश चतुर्वेदी को चुनने से मेरे कार्य की गरिमा कम होती है। आलोचनाओं का मूल यह था कि इनमें से अधिकांश रचनाकार मेरे घर आये और मुझे यह बताने लगे कि यदि मैंने उनका चुनाव किया होता तो वह साहित्य की सच्ची सेवा होती। हिन्दी लेखकों का यह दम्भ तथा संकुचित मनोवृत्ति न केवल उन्हें खा रही है, बल्कि हिन्दी साहित्य के वातावरण को भी स्वार्थपूर्ण तथा विषैला बना रही है। आज सहयोग एवं सद्भाव जैसे छोटे-छोटे अहं के कटघरों में बन्द दम घुटकर मर रहे हैं और सभी आंखें बन्द कर अपनी-अपनी दुनिया में सो रहे हैं। हिन्दी साहित्य की ऐसी स्वार्थी दुनिया कभी नहीं थी, जब लेखक केवल स्वयं को देखना चाहता हो, जब साहित्य का सम्पूर्ण श्रेष्ठत्व उसके साहित्य में आकर सिमट गया हो और जब वह केवल अकेला ही साहित्य को दिशा देने तथा मौलिक सृष्टि करने का दावा कर सकता हो।

हिन्दी के इसी संसार में लेखकों को कोटि में बांटने-देखने की प्रवृत्ति रही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। प्रेमचन्द को डॉ० नगेन्द्र द्वितीय कोटि का लेखक मानते रहे हैं और कुछ आलोचक डॉ० नगेन्द्र को ही इस कोटि में रखते हैं। हिन्दी-आलोचना में मूल्यांकन का यह विचित्र तरीका है। मालूम नहीं, कब कौन किसको द्वितीय या तृतीय कोटि का लेखक घोषित कर दे। हिन्दी में ऐसे न्यायाधीश-आलोचकों की कमी नहीं है। अतः रामकुमार भ्रमर को यदि कोई प्रथम कोटि का लेखक न माने तो मुझे इसमें कोई आश्चर्य नहीं होगा। सबसे बड़ी आश्चर्य की स्थिति यह है कि इन न्यायाधीश-आलोचकों से जब भी यह पूछा गया कि आपने इस या उस लेखक की कितनी कृतियां पढ़ी हैं तो वे मुंह छिपाने लगते हैं या डॉ० नगेन्द्र के समान कहते हैं कि मैं दस-बीस वर्ष पहले पढ़े 'गोदान' (केवल एक कृति को पढ़कर) के आधार पर यह फैसला दे रहा हूं कि प्रेमचन्द द्वितीय कोटि के लेखक थे। हिन्दी आलोचना में इसके विपरीत एक दूसरी स्थिति भी है। इन न्यायाधीश-आलोचकों ने नागार्जुन, शमशेर, त्रिलोचन आदि को जिस प्रकार शिखर-साहित्यकार के रूप में स्थापित किया तथा शिखर-सम्मान-पुरस्कार से सम्मानित कराया, वह शिखर-कोटि में स्थापित करने की प्रवृत्ति भी अब जग-जाहिर हो गयी है। ये आलोचक जयशंकर प्रसाद को पूंजीवाद, सामंतवाद के समर्थक लेखक सिद्ध करते रहे हैं, परन्तु प्रसाद-शताब्दी के दौरान इन आलोचकों ने ही उनमें समाजवाद तथा मानवीयता के चिह्न ढूंढ़ निकाले हैं और इस प्रकार अब वे प्रेमचन्द के बाद जयशंकर प्रसाद को भी अपनी बैसाखी के रूप में इस्तेमाल कर रहे हैं। रूस में हुए नये परिवर्तन ने इन लेखकों एवं आलोचकों को इतना दिग्भ्रमित कर दिया कि जनवादी लेखक राजेन्द्र यादव प्रेमचन्द को सामंती संस्कारों का लेखक कहते हैं (गोरखपुर में अप्रैल, १९९० में आयोजित 'भारतीय उपन्यास' पर हुई गोष्ठी में दिये गये भाषण में) और मार्क्सवादी आलोचक डॉ० नामवर सिंह यादव का खंडन करते हुए उनमें ही सामंती संस्कारों की तलाश करते हैं।

हिन्दी में इस न्यायाधीशी-समीक्षा ने कई दशकों तक इसी तरह का खेल खेला है और तरह-तरह के अभिनय किये हैं और अनेक लेखकों को धराशायी तथा अनेक को कब्र में से उठाकर जीवित रखने का प्रयत्न किया था। डॉ० नामवर सिंह ने एक बार साहित्य अकादमी के लिए लेख में लिखा कि हिन्दी में तीन ही कहानी-लेखक हैं— निर्मल वर्मा, काशीनाथ सिंह और ज्ञानरंजन। इस लेख पर उनकी बड़ी आलोचना हुई, लेकिन वे इस प्रकार के वक्तव्य देने के लिए प्रसिद्ध हैं। हैदराबाद में केन्द्रीय विश्वविद्यालय ने प्रेमचन्द पर गोष्ठी की तो उनके साथ मैं भी आमंत्रित था। वहां उन्होंने कहा कि 'गोदान' का होरी हजारों वर्षों से आने वाला हिन्दू किसान है और यह होरी ही प्रेमचन्द है। उनकी यह व्याख्या उनके पूर्व चिन्तन के विपरीत थी। मैंने उनके इन नये विचारों का समर्थन किया, परन्तु हैदराबाद के कम्युनिस्ट लेखक उनके पीछे पड़ गये और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मंच से बोले कि डॉ० नामवर सिंह बतायें कि डॉ० गोयनका उनके करीब आये हैं या डॉ० नामवर सिंह गोयनका के निकट आये हैं। इसी प्रकार इधर पंजाबी साहित्य को लेकर जो हंगामा हुआ और डॉ० नामवर सिंह के विचारों के विरुद्ध खुशवन्त सिंह, अजीत कौर आदि के जो विचार प्रकाशित हुए, उन्होंने नामवर सिंह को सार्वजनिक रूप से क्षमा-याचना करने को विवश किया। नयी दिल्ली से प्रकाशित 'संडे मेल' के २७ मई, १९९० के अंक में नामवर सिंह ने अपने पत्र में लिखा, "यदि मेरे किसी वाक्य से उनकी भावनाओं को ठेस पहुंची है तो इससे कहीं ज्यादा दुःख मुझे हुआ है और मैं हृदय से क्षमा मांगता हूं। जहां प्यार का रिश्ता हो, क्षमा मांगने में कैसा संकोच। यहां तो प्रतिष्ठा का प्रश्न बनाकर ऐंठने का अवकाश ही नहीं। एक बड़ी कौम के सम्मान के सामने एक छोटे से लेखक की प्रतिष्ठा का क्या अर्थ है?" वास्तव में, यह न्यायाधीशी-समीक्षा तथा धार्मिक गुरुओं की तरह साहित्यिक फतवे वाली समीक्षा का गांधीवादी अन्त है।

हिन्दी में इस प्रकार की समीक्षा ने बड़ी हानि की है। इस समीक्षा के जो आचार्य हैं, उनकी दृष्टि पर लाल रंग का चश्मा रखा हुआ है। इस चश्मे से वे उसी को देखते हैं, जिसे देखना चाहते हैं या जो इन्हें अपने चश्मे से लाल दिखायी देता है, अन्यथा दूसरे लेखकों को या तो ये न्यायाधीश-समीक्षक देखते नहीं हैं या उन पर प्रतिक्रियावादी होने का आरोप लगाकर उन्हें साहित्य की दुनिया में घृणास्पद बनाकर पेश करते हैं। इनका समीक्षा-दर्शन है—'अपनों को उठाओ और दूसरों को गिराओ'। यह वैसा ही है, जैसा राजनीति में ये लोग करते हैं कि अपने विरोधियों को नेस्तनाबूद कर दें। साहित्य भी इनके लिए राजनीतिक मंच ही है। साहित्य में राजनीति का प्रवेश भी इन्होंने ही किया और साहित्य से लेकर विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम तथा अकादमियों के पुरस्कारों तक इन्होंने अपना अधिकार जमा लिया। इस स्थिति से इन समीक्षकों, लेखकों का गुट प्रबल होता गया और शेष लोग उपेक्षित, अपमानित होते रहे और ऐसे लोग गांव, कस्बे से लेकर महानगर तक इस भेदभावपूर्ण गुटबन्दी के शिकार बने। इस साहित्यिक राजनीति ने अनेक प्रतिभाशाली लेखकों को आत्मकेन्द्रित बना दिया और अनेक अचर्चित रहकर ही एकान्त में साहित्य-साधना करते रहे और गुमनाम हो गये। इन समीक्षकों के आपस के विवादों का इतिहास भी दृष्टव्य है, जिसमें डॉ० रामविलास शर्मा, अमृतराय और डॉ० नामवर सिंह तीनों मार्क्सवादी होने पर भी तीन ध्रुवों पर खड़े हैं और एक-दूसरे के विचारों, व्यवहारों तथा साहित्य-समझ की आलोचना करते हैं। हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं में समय-समय पर ऐसी सामग्री छपती रही है। स्वयं अमृतराय ने अपनी पुस्तक 'आधुनिक भावबोध की संज्ञा' में संकलित लेख 'साम्प्रदायिकता का सवाल' में साम्प्रदायिकता को लेकर डॉ० नामवर सिंह की आलोचना का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तर दिया है, जो दो भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण प्रस्तुत करती हैं। हिन्दी में ऐसी समीक्षा-दृष्टि का विवेचन-विश्लेषण आवश्यक है जो सत्यता, तटस्थता और विवेक पर अपना एक साम्राज्य मानती है तथा अन्यों पर तरह-तरह के आरोप लगाती है।

'रामकुमार भ्रमर रचनावली' की योजना एक-दो वर्ष पुरानी है, जब भ्रमर अर्द्धशती पूरी कर रहे थे, परन्तु अपनी अन्यत्र व्यस्तताओं तथा स्वयं लेखन की दूसरी व्यस्तताओं के कारण कुछ समय के लिए यह योजना आगे खिसकती रही। पश्चिमी देशों में लेखक की रचनावली निकले तो यह गौरव की बात होती है, परन्तु हमारे यहां यह साहित्यिक गौरव का कम, व्यावसायिकता का आधार ज्यादा बन गया है। भ्रमर जैसे स्वतन्त्र-लेखक के लिए यह रचनावली कुछ आर्थिक मदद दे सकती थी, परन्तु उन्होंने कभी इसकी आवश्यकता अनुभव नहीं की, जब तक मैंने उन्हें यह नहीं बताया कि कुछ शोध-छात्र आपकी कृतियों के अनुपलब्ध होने के कारण परेशान हैं। रामकुमार भ्रमर १९६९ से विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम में पढ़ाये जाते रहे हैं तथा जीवाजी, इन्दौर, बंगलौर आदि विश्वविद्यालयों में कोई-न-कोई कृति पढ़ायी जाती रही है और साथ ही सातवें, आठवें तथा नवें दशक के उपन्यासों, कहानियों, व्यंग्यों पर शोधकर्त्ता उनकी पुस्तकों को देखते-पढ़ते तथा उद्धृत करते रहे हैं तथा कई बार उनकी कृतियों के अप्राप्य होने पर उन्हें प्राप्य कराने में मदद का आग्रह वाले पत्र मेरे पास भी आते रहे हैं। स्वयं रामकुमार भ्रमर के पास तो प्रायः ऐसे पत्र आते हैं, क्योंकि पाठक को यह विश्वास होता है कि लेखक से अवश्य ही उसकी पुस्तक उपलब्ध हो जाएगी, जबकि हम जानते हैं कि लेखक के पास कई बार अपनी ही किताब नहीं होती। अतः इस रचनावली से भ्रमर की पूर्ण रचनाओं तथा पुस्तकों को एक साथ उपलब्ध कराने के उद्देश्य से इस रचनावली का प्रकाशन किया जा रहा है। एक लेखक अपनी सम्पूर्ण रचनाओं के साथ यदि पाठक के सम्मुख रहता है तो वह सम्पूर्णता में जाना और पढ़ा जाता है तथा उसके सम्बन्ध में हमारे निष्कर्ष भी अधिक प्रामाणिक और वैज्ञानिक होते हैं।

रामकुमार भ्रमर, एक जमाने में, हिन्दी-कहानी-संसार में काफी चर्चित लेखक रहे हैं। उनकी पहली कहानी १९५८-५९ में छपी थी और छठे दशक में आते-आते कहानीकारों की त्रिमूर्ति—कमलेश्वर, मोहन राकेश और राजेन्द्र यादव की नयी कहानी का प्रताप कम हो रहा था और नये कहानीकारों में रामकुमार भ्रमर भी अपना स्थान बना रहे थे। इसके बाद सातवें दशक तक भ्रमर साहित्य में बराबर चर्चित रहे। उनकी कृतियों की बराबर चर्चा होती और उनकी कहानियां, व्यंग्य, रेखाचित्र पत्र-पत्रिकाओं में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बराबर प्रकाशित होते रहे। उन्होंने 'सारिका', 'कहानी', 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान', 'कादम्बिनी,' 'धर्मयुग', 'ज्ञानोदय', 'सुप्रभात' आदि पत्रिकाओं में नियमित लिखा और खूब लिखा और इसके साथ ही उपन्यासों की रचना में भी वे बराबर प्रवृत्त रहे, परन्तु आठवें दशक में जीवन-संघर्ष का एक ऐसा दौर आया कि भ्रमर बाहरी साहित्यिक गतिविधियों से स्वयं को अलग कर घर पर ही बैठकर साहित्य-साधना में लग गये। यह कुछ ऐसा समय था जब भ्रमर से पहली पीढ़ी के लेखक भी आत्मकेन्द्रित हो गये, क्योंकि नयी कहानी का आन्दोलन समाप्त हो गया था तथा साहित्य की अपेक्षा जीविका प्रधान हो गयी थी तथा साथ ही नये लेखकों ने कहानी और कविता के क्षेत्र में अपने-अपने नये आन्दोलन छेड़े हुए थे और त्रिमूर्ति चर्चा के केन्द्र से हट चुकी थी। रामकुमार भ्रमर की स्थिति अन्य लेखकों से काफी भिन्न थी। कमलेश्वर कई बार सत्ता से जुड़े और ऊंचे पदों पर रहे और जब हटे तो पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादक बने तथा फिल्मों में भी उन्होंने बराबर काम किया। राजेन्द्र यादव एक प्रकाशन संस्थान चलाते रहे और अब वे कुछ वर्षों से 'हंस' का संपादन-प्रकाशन कर रहे हैं। डॉ० महीपसिंह, डॉ० नरेन्द्र कोहली, डॉ० रामदरश मिश्र आदि लेखक, लेखन के साथ आजीविका के लिए नौकरी भी करते रहे, परन्तु भ्रमर को स्वतन्त्र लेखन से ही आजीविका चलानी थी, अतः जीवन का अधिकांश समय लिखने में, लिखने की तैयारी में तथा परिवार चलाने में बीता। भ्रमर १९६५ में नागपुर से दिल्ली आये और उनका काफी समय जीवन-संघर्ष में व्यतीत हुआ। पारिवारिक उत्तरदायित्व और व्यस्तताएं भी बहुत रहीं, परिवार बड़ा होने के कारण उत्तरदायित्व भी बड़ा रहा। इसके कारण भी भ्रमर ने स्वयं को बाहर की दुनिया से हटाकर अन्दर की दुनिया में एकाग्र कर लिया, परन्तु लेखन का संसार चलता रहा, बल्कि उसकी रफ्तार कुछ ज्यादा ही रही। पुस्तकें आती रहीं और बराबर प्रकाशित होती रहीं। पाठकों की सराहना भी खूब मिलती रही। बस, समीक्षा-संसार में उनकी पहले-जैसी चर्चा नहीं हुई।

इस स्थिति के पीछे एक प्रबल कारण यही रहा कि भ्रमर की तथाकथित प्रगतिशील गुट से कभी प्रतिबद्धता नहीं रही। इस प्रतिबद्धता के बिना प्रगतिशील गुट लेखक को लेखक नही मानता। दूसरे, भ्रमर आरम्भ से ही राष्ट्रीय एवं भारतीयता के दृष्टिकोण को लेकर चले। यह राष्ट्रीय चेतना किसी पार्टी के प्रेम में नहीं है, बल्कि देश-प्रेम के मूलभूत विचार से जन्मी। मुझे स्मरण है, उन्हें 'सूर्या' (हिन्दी) का सम्पादक बनाया गया तो उनकी खूब चर्चा हुई, परन्तु राजनीतिक कारणों से बाद में 'सूर्या' (हिन्दी) बन्द हो गयी। कुछ लोग कहते हैं, भ्रमर से मतभेद भी हुआ। कहते हैं कि उसी समय मतभेदों के कारण कमलेश्वर दूरदर्शन से हटे या हटवाए गए थे। तब भ्रमर ने कमलेश्वर का साथ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिया और 'सूर्या' के पहले अंक में उनकी बात प्रकाशित भी की। मेरा अभिप्राय यह है कि भ्रमर को कुछ लोग राजनीतिक रूप से प्रतिबद्ध व्यक्ति समझते हैं। परन्तु सच यह है कि वे उनके करीब हैं, जो देश को चाहते हैं तथा भारत की राष्ट्रीयता एवं देश की अखण्डता की रक्षा के लिए प्रतिबद्ध हैं। इस कारण वे किसी पार्टी के प्रवक्ता नहीं हैं, वे लेखक हैं और लेखक पहले देश और मानवीय समाज के लिए प्रतिबद्ध होता है, पार्टी के लिए नहीं।

रामकुमार भ्रमर हिन्दी के ऐसे रचनाकार हैं, जिन्होंने कई विधाओं में लिखा है—कहानी, उपन्यास, नाटक, व्यंग्य, संस्मरण, रेखाचित्र आदि। गद्य की प्रायः सभी विधाओं में वे लिखते रहे हैं। इनमें उनका कथाकार रूप प्रधान है, परन्तु इसमें भी कहानी की तुलना में उपन्यास उनकी प्रिय-विधा है, उनका मन उसमें रमता है और वे कई खंडों की उपन्यास-मालाएं भी लिखने के लिए तैयार रहते हैं। सम्भवतः इसी कारण कहानी-लेखन क्रमशः कम होता गया और उपन्यास-लेखन की मात्रा बढ़ती गयी। यह स्थिति इससे भी समझी जा सकती है कि उनकी कहानियों के अभी तक चार संग्रह प्रकाशित हुए हैं, जबकि सामाजिक, ऐतिहासिक तथा पौराणिक सभी उपन्यासों की संख्या ४८ है। इसके अतिरिक्त उनके ४ नाटक, ५ सत्य-कथाओं पर पुस्तकें तथा २ राजनीतिक घटनाओं तथा व्यक्तियों पर पुस्तकें, १ डाकू-समस्या पर, १२ बाल एवं प्रौढ़ों के लिए पुस्तकें तथा सैकड़ों पृष्ठों का ऐसा साहित्य भी, जो पुस्तकाकार रूप में अभी तक प्रकाशित नहीं हुआ है। इस प्रकार हजारों पृष्ठों के साहित्य की रचना की है भ्रमर जी ने और अभी उनकी आयु ही क्या है, पचास पार किया है और वे नियमित लेखन-कार्य करते हैं, क्योंकि लेखन से ही उनकी आजीविका चलती है। अतः भविष्य में हम उनसे अनेक श्रेष्ठ कृतियों की आशा कर सकते हैं।

'रामकुमार भ्रमर रचनावली' अनेक खंडों में विभक्त है। हमारा अनुमान है कि सम्पूर्ण साहित्य कई खंडों में आ पायेगा। प्रकाशन-क्रम इस प्रकार रहे, ऐसा प्रयत्न कर रहे हैं—

खंड-१ : कहानी
खंड-२ : उपन्यास—तीसरा पत्थर, कांचघर, गले-गले पानी
खंड-३ : उपन्यास—फांसी, कैद आवाजें, बिंदिया, मुरदे
खंड-४ : उपन्यास—फौलाद का आदमी, पुतलीबाई, अभिशप्त, सात रंग सपने
खंड-५ : उपन्यास—कच्ची-पक्की दीवारें, सिलसिला
खंड-६ : उपन्यास—सेतुकथा, अपने-अपने सवाल, ताशमहल
खंड-७ : उपन्यास—मोतिया, ताकि सनद रहे, जोग-संजोग, एक अकेला, दूसरा सूरज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खंड-८ : उपन्यास—आंगन, गलियां, चौबारे
खंड-९ : उपन्यास—आरम्भ, अंकुर, आवाहन, अधिकार
खंड-१० : उपन्यास—अग्रज, आहुति, असाध्य, असीम
खंड-११ : उपन्यास—अनुगत, अठारह दिन, अन्त, अनन्त
खंड-१२ : उपन्यास—कालचक्र, कारावास, कालिंदी के किनारे, कर्म-यज्ञ
खंड-१३ : उपन्यास—काल-यवन, जनाधार, जनपथ पर, जल-यात्रा
खंड-१४ : उपन्यास—जन जन हिताय, जय
खंड-१५ : उपन्यास—बीच के लोग, भुवाल संन्यासी, प्यार या पाप, गुफा-जाल, मृत्यु का टीका
खंड-१६ : नाटक—खून की आवाज, विकल्प, तमाशा, भस्मासुर
खंड-१७ : गद्य की अन्य विधाएं—भारतीय सैनिकों की वीर गाथाएं, दूसरी आजादी, चन्द्रशेखर और उनकी पद-यात्रा
खंड-१८ : गद्य की अन्य विधाएं
खंड-१९ : बाल एवं प्रौढ़ साहित्य

इस रचनावली के कुछ खंडों में कृतियों का क्रम बदलना पड़ा है, क्योंकि प्रत्येक खंड की पृष्ठ-संख्या को लगभग समान रखना ठीक समझा गया। इस कारण पाठकों को कुछ असुविधा हो सकती है, परन्तु प्रकाशन की विवशता समझकर वे इसे अन्यथा नहीं लेंगे।

रामकुमार भ्रमर का रचनात्मक व्यक्तित्व व्यापक है और प्रमुख रूप से सामाजिक है। एक कथाकार की नियति सामाजिकता से बंधी है और उसकी विवशता भी यही है कि वह अपने देश-काल से बंधी-जकड़ी तथा उससे मुक्त होने की चेष्टा में लगी सामाजिकता को उद्घाटित करता है। कथाकार की संवेदना में जितना भी समाज आता है, उसे वह सर्जनात्मक रूप में पाठकों के सम्मुख रख देता है, अर्थात् अपने समाज की धड़कनों, तनावों, द्वंद्वों, कुंठाओं, आकांक्षाओं, संघर्षों, स्वप्नों एवं कल्पनाओं आदि सभी का वह दृष्टा-सर्जक है। इसके लिए उसे अपनी एक सामाजिक दृष्टि की भी सृष्टि करनी होती है। उसे समाज को देखने एवं समझने की विचार-दृष्टि को ठोस रूप देना होता है, क्योंकि यही वह दृष्टि है जो उसकी रचना को विशिष्ट एवं कला-रूप प्रदान करती है। यह दृष्टि लेखक के संस्कार, शिक्षा, स्वाध्याय, संघर्ष, परिस्थिति आदि से निर्मित होती है और यह समय एवं परिस्थितियों के अनुरूप परिवर्तित होने की प्रवृत्ति रखती है। रचनाकार के लोकप्रिय एवं कालजयी होने में यह रचना-दृष्टि महत्त्वपूर्ण कार्य करती है। जिस लेखक की यह रचना-दृष्टि अपनी धरती से जुड़ी होगी, अपनी राष्ट्रीय अस्मिता एवं जातीय दृष्टि से सम्बद्ध होगी, वह लेखक लोक-मानस में स्थायी रूप से अपना स्थान बना लेता है। लेखक की यही साधना होनी चाहिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और यही उसकी सिद्धि भी।

रामकुमार भ्रमर प्रमुख रूप से सामाजिक कथाकार हैं। उनकी एक सामाजिक दृष्टि है और अपनी इस सामाजिक दृष्टि से वे अपने अतीत को, अपने इतिहास को तथा अपने वर्तमान और भविष्य को देखते हैं। उनका मत है कि सामाजिक दृष्टि के बिना कोई लेखक हो ही नहीं सकता, चाहे वह पौराणिक कथानक चुने अथवा इतिहास के पृष्ठों से किसी घटना या चरित्रनायक की कथा कहे, सभी में सामाजिक दृष्टि क्रियाशील रहती है। भ्रमर की सामाजिक दृष्टि पर उनके पारिवारिक संस्कारों, निजी व्यक्तित्व के संघर्ष एवं परिस्थितियों का गहरा प्रभाव है। पिता जमींदार थे और उनमें सामंतीय प्रवृत्तियां थीं, जिसके अनेक सुखद-दुःखद अनुभव उनके पास हैं। मनुष्य के जीवन के दुहरे प्रसंग तथा दुहरे मापदंडों की त्रासदी उन्होंने देखी है। अतः व्यक्ति के जीवन की कुंठाएं, असफलताओं के साथ दुहरे मापदंडों ने उन्हें जीवन को समझने की दृष्टि प्रदान की और यही दृष्टि उनकी कृतियों में उभरकर आयी।

रामकुमार भ्रमर के उपन्यासों में सामाजिक उपन्यासों की संख्या अधिक है। इन उपन्यासों में ऐसे जीवन-प्रसंगों को कथा के लिए चुना गया है, जिन पर हिन्दी में लिखा नहीं गया है। भ्रमर ने हिजड़ों के जीवन को लिया, डाकुओं के जीवन पर लिखा, महाराष्ट्र के तमाशों वालों के जीवन को चित्रित किया, धर्म-परिवर्तन करने वाली नन पर लिखा और इसी प्रकार समाज और राजनीति के ऐसे प्रसंगों को कथात्मक रूप में प्रस्तुत किया, जिन्हें बहुत कम लेखकों ने अपने उपन्यासों की विषयवस्तु के रूप में चुना। भ्रमर विषय की नवीनता के प्रति सजग रहे हैं और अपने समय की हलचलों और समस्याओं के प्रति संवेदनशील भी हैं। अतः उनके उपन्यासों में समय के सत्य की गहरी पकड़ है। भ्रमर कल्पनाजीवी नहीं हैं, समय-जीवी हैं। अपने देशकाल के सत्य के साथ जीते हैं और पाठकों को जीवन की सच्चाइयों से परिचित कराकर उन्हें एक सही सामाजिक दृष्टि देते हैं, जिससे वे अपने को तथा समाज को स्वस्थ जीवन दे सकें।

रामकुमार भ्रमर के ४८ उपन्यासों में २६ उपन्यास सामाजिक एवं ऐतिहासिक हैं। ऐतिहासिक उपन्यासों की संख्या तीन-चार से अधिक नहीं है। शेष सभी सामाजिक उपन्यास हैं। उनका पहला उपन्यास 'बेगम और गुलाम' तथा दूसरा 'फौलाद का आदमी' ऐतिहासिक उपन्यास हैं। तीसरा उपन्यास 'पुतलीबाई' चम्बल के डाकुओं के जीवन पर आधारित है। 'कच्ची-पक्की दीवारें' सामाजिक उपन्यास है। उनका यह उपन्यास बहुत लोकप्रिय हुआ और इससे भ्रमर को यश भी प्राप्त हुआ। 'कैद आवाजें' युवा-शक्ति के राजनीतिक दुरुपयोग पर है तथा 'कांचघर' महाराष्ट्र के तमाशे वालों के जीवन की यथार्थ कहानी है। 'तीसरा पत्थर' चम्बल के अपराधी जीवन पर आधृत है। चम्बल में कई बार लोग बदले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की भावना में हत्या कर बैठते हैं पर वे यह नहीं सोचते कि उनके परिवार वालों को कितने कष्ट उठाने पड़ते हैं। 'फांसी' उपन्यास फांसी के औचित्य पर प्रश्न लगाता है तथा हत्यारे को मृत्युदंड देने पर नये परिप्रेक्ष्य से विभिन्न समस्याओं को उठाता है। 'अभिशप्त' काल गर्ल के जीवन पर है तथा महानगर में होने वाली वेश्यावृत्ति के कुचक्र का पर्दाफाश करता है। 'सात रंग सपने' एक कल्पनाशील पात्र की कहानी है तथा 'गले-गले पानी' बुद्धिजीवियों के जीवन तथा जीवनदृष्टि को निरावृत्त करता है। इन बुद्धिजीवियों की आधुनिकता, स्वार्थपरता, सेक्स-प्रवृत्ति आदि को बड़ी यथार्थता से चित्रित किया गया है। 'सेतुकथा' स्वतंत्र भारत में बांध के निर्माण में फैले भ्रष्टाचार के जाल का उद्घाटन करता है। कहानी फ्लैश बैक में है तथा लेखक का कहना है कि बांध में आयी दरार वास्तव में हमारे राष्ट्रीय चरित्र में आयी दरार है। जब तक हमारे राष्ट्रीय चरित्र में यह दरार रहेगी, तब तक नये भारत के इन नये मन्दिरों में इसी प्रकार दरार पड़ती रहेगी।

भ्रमर का 'मुरदे' उपन्यास एक साहसी स्त्री की कहानी है। एक गुंडा पूरे समाज को वश में रखता है, बलात्कार करता है, लेकिन कोई मर्द नहीं बोलता, परन्तु एक स्त्री विद्रोह करती है और गुंडे की हत्या कर देती है। अब सभी मर्द गवाही देने को तैयार हो जाते हैं, पर वह स्त्री सभी को मुरदा कहती है। 'बिन्दिया' बंधुआ मजदूरों की त्रासद कहानी है। इस उपन्यास पर भ्रमर ने 'कालोख' नाम से एक मराठी धारावाहिक भी बनाया है जो बम्बई से जल्दी ही प्रसारित होगा। इस उपन्यास से यह स्पष्ट होता है कि जो मनुष्य सीधा और सरल है वही सबका शिकार बनता है। 'सिलसिला' एक मार्मिक उपन्यास है जो धर्म-परिवर्तन में लगी एक नन के दुःखद अनुभवों की कहानी कहता है। अन्त में उसे अपने कर्म पर पछतावा होता है। 'अपने-अपने सवाल' आत्मकथात्मक उपन्यास जैसा है, जिसमें नायक सवालों में जीता हुआ अनुभवों से गुजरता है। 'ताशमहल' एक नियोजित आदमी की असफलताओं की कहानी है और 'मोतिया' में डाकू जीवन का चित्र है। 'जोग-संजोग' नव धनाढ्य पात्रों के जीवन का उद्घाटन करता है तथा 'ताकि सनद रहे' में पुनः अपराध-मनोविज्ञान को उठाया गया है। एक अपराधी बचाव के लिए जंगलों में भटकता है और डायरी लिखता है। उसके मरने के उपरान्त यह डायरी पुलिस के हाथ पड़ती है और वहां से लेखक को मिलती है। लेखक इस डायरी को पाठकों के सम्मुख रख देता है और अपराध एवं अपराधी के सम्बन्ध में अनेक महत्त्वपूर्ण प्रश्नों को खड़ा करता है। 'एक अकेला' गांव की चुनाव राजनीति पर है। 'दूसरा सूरज' महाराष्ट्र के क्रान्तिकारी वासुदेव बलवन्त फड़के की जीवन-गाथा है। 'आंगन', 'गलियां' तथा 'चौबारे' एक ही उपन्यास के तीन खंड हैं। स्वतंत्रता के बाद एक छोटे शहर की गली की यह कहानी है, जहां घोर भौतिकता पनप रही है, मूल्य टूट रहे हैं,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परस्पर मानवीय सम्बन्ध बिखर रहे हैं, संवेदनशीलता समाप्त हो रही है। यह उपन्यास इस तथ्य का द्योतक है कि हम आजादी के बाद की पीढ़ी को मानसिक रूप से तैयार नहीं कर पाये, तभी वह आजादी का अर्थ तथा उसका समुचित उपयोग नहीं कर पाती है।

रामकुमार भ्रमर का मत है कि इन सामाजिक उपन्यासों को लिखने के पीछे उनकी यह दृष्टि रही है कि हमें अपनी सामाजिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि विकसित करनी होगी। हमारे जीवन में जो विरोधाभास है, जो दुहरे मापदंड हैं, जो जड़ वस्तुओं की रक्षा की प्रवृत्ति है, उसे समाप्त करना होगा। हमें प्राचीन मूल्यों की, शाश्वत मूल्यों की पहचान होनी चाहिए, जिससे उन्हें बचाकर रखा जा सके। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि हम जड़ता की उपासना करें। हमारे शाश्वत मूल्य मानवीय हैं और प्रत्येक समाज एवं देशकाल में उनकी उपयोगिता है, अतः उनकी रक्षा आवश्यक है। लेखक अपनी कृतियों से एक सांस्कृतिक चेतना देता है, पाठकों को संस्कारित करता है और वे अपने उपन्यासों से इसी दायित्व को निभाते आ रहे हैं।

रामकुमार भ्रमर की अत्याधिक चर्चा पुराकथाओं तथा पौराणिक कथाओं पर आधारित उनके उपन्यासों के कारण भी हुई है। देश में 'रामायण' तथा 'महाभारत' दूरदर्शन धारावाहिकों ने एक नये सिरे से इनकी कथाओं, चरित्रों, प्रतिपाद्यों तथा आज के युग में उनकी सार्थकता पर विचार करने का अकल्पनीय वातावरण उत्पन्न किया। इन धारावाहिकों से पहले, हिन्दी साहित्य में यह कार्य रामकुमार भ्रमर तथा नरेन्द्र कोहली ने किया था। कविता के क्षेत्र में 'प्रियप्रवास', 'कामायनी', 'उर्वशी', 'महाश्वेता' (विनय का शीघ्र प्रकाश्य महाकाव्य) तथा अन्य अनेक महाकाव्यों, खण्डकाव्यों तथा लम्बी कविताओं के रूप में पुराकथाओं के सार्थक प्रयोग की सशक्त परम्परा रही है। उपन्यास के क्षेत्र में, स्वतन्त्रता से पूर्व कुछ उपन्यास लिखे अवश्य गये लेकिन जिस प्रकार नाटक एवं काव्य के क्षेत्र में पौराणिक कथाओं एवं पात्रों ने अपनी विशिष्ट पहचान बनायी, वैसी कोई पहचान हिन्दी उपन्यास में नहीं बन सकी। यहां तक कि ऐतिहासिक उपन्यासों की भी एक परम्परा मिलती है तथा वृन्दावनलाल वर्मा जैसे रचनाकार उसे शिखर तक ले जाने का प्रयत्न करते हैं, लेकिन पौराणिक उपन्यासों के क्षेत्र में रामकुमार भ्रमर एवं नरेन्द्र कोहली से पहले ऐसा कोई कथाकार नहीं हुआ, जिन्होंने अपना एक पाठक-वर्ग बना लिया हो तथा जो विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम तक पहुंच सके हों। अतः यह मानना पड़ेगा कि इन दो कथाकारों ने पुराकथाओं एवं पुराणों को आधार बनाकर उपन्यासों की सृष्टि करके पौराणिक उपन्यासों को मौलिक रूप प्रदान किया तथा उसे इतना लोकप्रिय बनाया कि सामाजिक एवं राजनीतिक उपन्यास पीछे छूट गये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रामकुमार भ्रमर ने अभी तक पुराकथाओं एवं पुराणों पर आधारित २२ उपन्यासों की रचना की है। प्रमुख रूप से ये सभी महाभारत एवं उसके पात्रों के जीवन पर आधारित हैं। इन उपन्यासों में पहले बारह उपन्यास प्रकाशित हुए जो महाभारत की कथा एवं पात्रों पर आधारित हैं। ये उपन्यास हैं—'आरम्भ' (१९८४), 'अंकुर' (१९८४), 'आवाहन' (१९८५), 'अधिकार' (१९८५), 'अग्रज' (१९८५), 'आहुति', (१९८५), 'असाध्य' (१९८५), 'असीम' (१९८५), 'अनुगत' (१९८६), 'अठारह दिन' (१९८६), 'अन्त' (१९८६) एवं 'अनन्त' (१९८६)। ये बारह उपन्यास लगभग आठ वर्ष के घोर अध्ययन एवं चिन्तन के बाद लगभग दो वर्ष (१९८२-८४) के अन्दर लिखे गये थे, परन्तु इनके लिखने के पीछे जो परिस्थितियां रहीं, जो तनाव रहा, जो जीवन-संघर्ष एवं दृष्टिकोण रहा, उसकी एक झलक यहां देना आवश्यक प्रतीत होता है। भ्रमर जिस परिवार में जन्मे, वह आस्तिक हिन्दू परिवार है और पारम्परिक विश्वासों के प्रति श्रद्धावनत् रहने की परम्परा रही है। भारत में कुछ अर्द्धशिक्षित ब्राह्मणों ने यह प्रचारित किया कि जो हिन्दू 'महाभारत' पढ़ेगा, उसके घर में महाभारत मच जायेगा। भ्रमर की माता जी इस विश्वास को मानती थीं और नहीं चाहती थीं कि भ्रमर 'महाभारत' पढ़ें। पिता जिद्दी थे, वे 'महाभारत' ले आये और भ्रमर ने छिपकर पढ़ा। इसने भ्रमर के मन में एक संस्कार डाला जो भविष्य में काम आया। आगे चलकर जब उन्होंने १९७४-७५ में 'तीसरा पत्थर' उपन्यास पर फिल्म बनायी तो तीन-चार लाख का घाटा हो गया और जीवन कर्ज, तनाव और मानसिक क्लेश में व्यतीत होने लगा। यहां तक कि भ्रमर कई बार भूखे रहे, परन्तु बच्चों की शिक्षा पत्नी के जेवरों को बेचकर चलाते रहे। पीड़ा एवं आर्थिक हानि की इन परिस्थितियों में एक दिन मन में विचार आया कि क्यों न 'महाभारत' पढ़ा जाय। अम्मा कहती थी कि 'महाभारत' पढ़ने से नाश हो जाएगा। नाश तो हो गया, अब नाश होने के लिए क्या बचा है? अतः इस भावबोध ने 'महाभारत' पढ़ने को उन्मुख किया। 'महाभारत' को पढ़ने में दो वर्ष लगे। भ्रमर इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि 'महाभारत' आज भी अर्थवान् है। उसके चरित्र आज के समाज और राजनीति से सम्बद्ध लगे और रूपकों के वैज्ञानिक अर्थ आज के लिए सार्थक प्रतीत हुए। अध्ययन का क्रम आगे बढ़ता गया और महाभारत तथा प्राचीन संस्कृत ग्रंथों तथा भारतीय संस्कृति पर जितने ग्रन्थ हाथ लगे, उन सबका अध्ययन-विश्लेषण चलता रहा। इन ग्रन्थों में कुछ ग्रन्थों एवं लेखकों का उल्लेख आवश्यक प्रतीत होता है, जैसे राबिन्सन का 'हिस्टरी ऑफ फोनेशिया', मेक्डोनल तथा कीथ का 'वैदिक इन्डेक्स', ए० एल० बाशम का 'दि वण्डर दैट वाज इण्डिया', 'रीडर्स डायजेस्ट' द्वारा प्रकाशित 'क्वेस्ट फॉर द पॉस्ट', कैप्टेन विलफोर्ड का 'रेशियाटिक रिसर्चेज', आर्थर मी का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐन्साइक्लोपीडिया, विल्सन के अंग्रेज़ी में अनूदित पुराण, मैक्समूलर की कई पुस्तकें एवं लेख, हेरोडोटस का इतिहास-वृत्त एवं यात्रा-विवरण, इलियड का 'होमर', भांडारकर का 'अवेस्ता', रूथ बेनेडिक्ट का 'टेल्स ऑफ द कोचिती इंडियंस', कार्लटन का वरीड ऐम्पायर्स', पारेख का 'कृष्णा—मिथ एण्ड रियलिटी'। ये पुस्तकें अंग्रेज़ी की हैं। संस्कृत ग्रन्थों की हिन्दी टीकाएं पढ़ीं तथा हिन्दी में के. एम. मुंशी, राधाकृष्णन्, जवाहरलाल नेहरू, आचार्य नन्दलाल डे, डॉ० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या, रवीन्द्रनाथ टैगोर, बंकिम, विद्यानिवास मिश्र, भगवतशरण उपाध्याय, डॉ० एस० आर० राव (पुरावेत्ता, जिन्होंने द्वारिका खोजी), डॉ० शैली अग्निहोत्री जे० कृष्णमूर्ति, स्वामी प्रभुपाद, डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल आदि न जाने कितने विद्वानों की पुस्तकें पढ़ीं और १९८२ तक इस अध्ययन को पूरा। अब महाभारत की अपनी कल्पना को शब्दों में साकार करना था। सन् १९८३ से इन बारह उपन्यासों की कड़ी का लिखना प्रारम्भ हुआ और इन सभी उपन्यासों की पाण्डुलिपि १९८४ के मध्य तक तैयार हो गयीं।

रामकुमार भ्रमर ने लिखने से पहले जिस रूप में बारह उपन्यासों की कल्पना की थी, ठीक वैसे ही उनकी रचना हुई। अब समस्या इनके प्रकाशन की थी। हिन्दी में पौराणिक उपन्यासों का प्रकाशन यदा-कदा ही होता रहा है, अतः प्रकाशक का इतनी बड़ी योजना को हाथ में लेने में संकोच स्वाभाविक था। भ्रमर ने बताया कि उन्होंने प्रकाशक को विश्वास दिलाया कि ये उपन्यास लोकप्रिय होंगे, और वास्तव में ऐसा हुआ भी। जब इसका पहला खण्ड 'आरम्भ' छपा तो तीन महीने में ही इसका दूसरा संस्करण करना पड़ा। इसके बाद तो खण्ड आते रहे और शीघ्र-शीघ्र उनके संस्करण होते रहे। माना जाता है कि 'महाभारत' पर आधारित ये १२ उपन्यास स्वाधीनता के बाद अधिक पढ़े जाने वाले उपन्यास हैं। हिन्दी में ऐसे लेखक की कल्पना कठिन ही है, जो किताबों की रायल्टी से आजीविका चला सके। यहां यह भी उल्लेखनीय है कि भ्रमर ने महाभारत पर आधारित इन १२ उपन्यासों के उपरान्त भगवान श्रीकृष्ण पर आधारित १० अन्य उपन्यासों की भी रचना की है। 'कालचक्र' (१९८६), 'कारावास' (१९८६), 'कालिन्दी के किनारे' (१९८६), 'कर्मयज्ञ' (१९८६), 'कालयवन' (१९८७), 'जनाधार' (१९८७), 'जनपथ पर' (१९८८) तथा 'जलयात्रा' (१९८८) नाम से आठ उपन्यास अभी तक प्रकाशित हो चुके हैं। यह उपन्यास-माला भी, मुझे विश्वास है, भगवान श्रीकृष्ण को आधुनिक परिवेश में नये सिरे से समझने का अवसर प्रदान करेगी तथा उनका महत् योगदान स्पष्ट हो सकेगा।

भ्रमर के 'महाभारत' पर आधारित उपन्यासों को पढ़ते समय और आज भी जब इन पंक्तियों को लिख रहा हूं, बार-बार यह प्रश्न उठता रहा है कि हमने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काव्य के समान उपन्यास में पुराकथाओं तथा पुराणों पर आधारित रचनाओं को महत्त्व क्यों नहीं दिया ? वैसे काव्य में भी पुराकथाओं के विरोधी हैं और कवि की मौलिकता एवं प्रतिभा पर प्रश्नचिह्न लगाते रहे हैं, परन्तु उपन्यास के सन्दर्भ में हिन्दी में पौराणिक उपन्यासों की व्यवस्थित एवं व्यापक चर्चा व मान्यता अभी होनी है। अपनी पुराकथाओं एवं पौराणिक कथाओं के प्रति हमारा जो दृष्टिकोण है तथा उनका नाम लेते ही हमारे कुछ लेखकों के मन में जो हीनता ग्रन्थि पैदा हो जाती है, उस पर पुनर्विचार आवश्यक है। आज हिन्दी में ऐसे लेखकों की बड़ी संख्या है जो अपने अतीत को जानना ही नहीं चाहते, उसे समझने का प्रयत्न ही नहीं करना चाहते। ये लोग अतीत के बहिष्कार को आधुनिकता मान बैठे हैं, जबकि किसी समाज की आधुनिकता उसके अतीत एवं उसकी परम्पराओं से ही बनती है। अपनी अस्मिता, अपनी पहचान को खोकर कोई समाज न तो जीवित रह सकता है और न आधुनिक बनने की प्रक्रियाओं को ही समझ सकता है। हमारे प्राचीन ग्रन्थों में मानवीय संस्कृति का विकसित रूप विद्यमान है, एक पूर्ण मानवीय संस्कृति, एक जातीय संस्कृति का पूर्ण बिम्ब है। उसे समझने तथा आधुनिक दृष्टि से उनकी व्याख्या करने की आवश्यकता है। रामकुमार भ्रमर का मानना है कि हमारे प्राचीन एवं पौराणिक साहित्य की तुलना में हमारा हिन्दी साहित्य कहीं नहीं टिकता। उससे आगे बढ़ने का तो प्रश्न ही नहीं है, उस तक पहुंचने में ही शताब्दियां व्यतीत हो जायेंगी। आज जो उपन्यास, नाटक, काव्य आदि लिखे जा रहे हैं, वे प्रकाशित होने के एक-दो वर्षों तक ही मर जाते हैं, जबकि पौराणिक साहित्य सदियों से जीवित है तथा इसी प्रकार भविष्य में भी जीवित रहेगा। आज नये लेखक को अपने पूर्वजों के इस साहित्य के अध्ययन से शुरूआत करनी चाहिए, अपनी इस बुनियाद की आत्मा को जानने से लेखन-कर्म शुरू करना चाहिए और इसका प्रयत्न करना चाहिए कि उनकी जीवन-दृष्टि की हम अपने अनुकूल क्या व्याख्या कर सकते हैं। हमें उनका गहन अध्ययन करना होगा तभी उनके रूपकों तथा अन्योक्तियों की आधुनिक व्याख्या कर सकेंगे। इस प्रकार पुराकथाएं तथा पुराण आदि हमारा प्राचीन साहित्य एक चुनौती देता है कि हम उसे आज के सन्दर्भ में विश्लेषित करके, आज की समस्याओं का समाधान करें। रामकुमार भ्रमर के ये सभी उपन्यास यदि इस दृष्टि से पढ़े जायेंगे तो पाठकों को इस साहित्य के महत्त्व का परिज्ञान हो जायेगा।

रामकुमार भ्रमर के कृतित्व का एक पक्ष फिल्म से भी जुड़ा है जिसकी जानकारी बहुत कम व्यक्तियों को है। इस फिल्मी एवं पर्दे के जीवन के उनके अनुभव काफी खट्टे-मीठे हैं, कई उतार-चढ़ाव और ठहराव हैं। बात सन् १९७० के आस-पास की है। राजेश खन्ना डाकुओं के जीवन पर फिल्म बनाना चाहते थे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और इसके लिए कोई साहित्यिक कृति चाहते थे। उनके किसी मित्र ने उन्हें भ्रमर का उपन्यास 'तीसरा पत्थर' पढ़ने को दिया तो उन्हें बहुत पसन्द आया। वे कुछ निर्णय लें, इससे पहले डाकुओं के जीवन पर ही बनी एक हिन्दी फिल्म पिट गयी और इससे राजेश खन्ना भी पीछे हट गये। इसके उपरान्त दिनेश ठाकुर ने वासु भट्टाचार्य को यह उपन्यास पढ़कर सुनाया और जब उन्हें पसन्द आया तो भ्रमर को उनके मित्रों ने बम्बई आमन्त्रित किया। भ्रमर बम्बई पहुंचे और कुछ मित्रों के साथ मिलकर तय हुआ कि संयुक्त रूप से इस पर फिल्म बनायी जाये। फिल्म बनी, भ्रमर और उनके मित्रों का धन लगा, परन्तु अभी तक कोई वितरक उपलब्ध न हो पाने के कारण लेब की अलमारियों में ही वह बन्द पड़ी है। इस स्थिति ने भ्रमर को तीन-चार लाख के कर्ज में दबा दिया, जिसका कष्ट और तनाव कई वर्षों तक उठाना पड़ा। इस अनुभव ने उन्हें तोड़ दिया, किन्तु एक लाभ भी हुआ कि उन्हें फिल्म की कथा, पटकथा, सम्वाद लिखने के साथ उसके निर्देशन का काम भी सीखने का अवसर मिला। कई बार जीवन में कुछ मोड़ मनुष्य को कई बड़े अनुभव दे जाते हैं।

इसके उपरान्त 'मुरदे' उपन्यास पर 'वास्ता' फिल्म बनी और इसकी भी पटकथा, सम्वाद उन्होंने ही लिखे। कुछ समय बाद परिवार-नियोजन पर एक-दो वृत्तचित्र बनाये और फिर मराठी धारावाहिक 'कालोख' पर कार्य शुरू हुआ। यह बंधुआ मजदूरों की त्रासद कहानी है जो मराठी में पहली बार इस विषय पर बनायी गयी है।

फिल्म की दुनिया ग्लैमर की दुनिया है, अस्थायी यश की दुनिया है। यहां अमीरी है तो फकीरी भी है। यह एक ऐसी दुनिया है, जिसने अपनी छोटी-सी दुनिया बना रखी है और इसके लोग उसे ही संसार मानते हैं, परन्तु यह दुनिया ऐसी है जिसमें रहने वाला शेष मानवीय संसार के सामाजिक जीवन और उसके मूल्यों से कट जाता है, अतः एक लेखक का स्थायी रूप से इसमें रह पाना कठिन है। यह लेखक चाहे प्रेमचन्द हो या रामकुमार भ्रमर, ये सभी लेखक अपने लेखकीय-संसार को—उसके वृहद् संसार को छोड़कर फिल्मी जीवन के छोटे संसार में सीमित नहीं हो सकते। इसी कारण फिल्मों में जाने पर भी भ्रमर प्रमुख रूप से साहित्य-संसार से ही सम्बद्ध हैं और भविष्य में भी रहेंगे लेकिन अपने पूर्वज लेखकों की तुलना में भ्रमर ने फिल्मों में जाकर केवल लेखक बने रहना ही उचित नहीं समझा, बल्कि वे मीडिया की शक्ति एवं प्रभाव को देखते हुए उसकी तकनीक को भी निरन्तर सीखते रहे और उसका समय-समय पर फिल्म एवं दूरदर्शन के धारावाहिकों के लिए निर्देशक के रूप में भी उपयोग करते रहे हैं। सम्भवतः साहित्यिक लेखक के साथ फिल्म-निर्देशक एवं दूरदर्शन-निर्देशक का मिलन पहली बार हुआ है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्त में, इस भूमिका में रामकुमार भ्रमर के व्यक्तित्व एवं कृतित्व के सम्बन्ध में विस्तार से लिखना सम्भव नहीं है। अत. मुझे विश्वास है कि पाठकों को इससे एक रूपरेखा मिल जायेगी और वे इससे सन्तुष्ट होंगे। हमें विश्वास है कि पाठक इस रचनावली का स्वागत करेंगे, क्योंकि हिन्दी में पहली बार अर्द्ध शती पूरा करने वाले किसी लेखक की रचनावली प्रकाशित हो रही है।

ए-९८, अशोक विहार
फेज प्रथम
दिल्ली-११००५२

कमलकिशोर गोयनका
हिन्दी विभाग
जाकिर हुसैन पोस्ट ग्रेजुएट
ईवनिंग कॉलेज,
(दिल्ली विश्वविद्यालय)
दिल्ली-११०००६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कथा-क्रम

गजानन्दी शराब	१
दो अंगारे	४
अपनी रक्षा आप	११
एक खानदानी आदमी	१८
ग्रहण लगा चांद	२५
शहर का काजी	३२
एक जवान भूख	४१
एक कामचोर औरत	४८
आदत	५३
सफर	६१
बरतन खटकते हैं	७०
ड्यूटी मुसकराने की	७७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जवान	८४
खाली कोना	९०
मजहब से ऊपर	९८
भगतजी	१०५
एक प्लेट प्यार	११०
बिछिया	११८
एक हल : सवाल से पहले	१२४
धर्म की धरती	१३३
एक कांटा	१४१
टूटे हुए रेशमी धागे	१४७
सब्र और सब्र	१५६
चीड़ का आदमी	१६२
लछिमा	१६९
भोली	१७९
चम्पा : एक प्रदर्शनी	१८८
बकुची	१९३
कानून की बात	२०३
क्लियोपैट्रा और बदसूरत औरत	२०९
पच्चीस मिनट	२१५
बेटियां	२२४
सबसे सच्चा तमाशा	२३६
अपने-पराये का फर्क	२४८
कुंवारी बेटी	२६०
बोझ	२६७
नया कर्ज	२७४
अ-लगाव	२८६
वह सांवला बादल	२९३
बिरादरी	३०७
प्रश्नों के घेरे	३१२
एक डाकिन : एक मां	३२९
लाख रुपये की तकदीर	३३६
मौन	३४२
खिड़कियों में झांकते चेहरे	३४७
किनारों के बीच	३५४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बूंद-बूंद सागर	३६१
झूठ के कमरे में एक सच	३६८
अस्तित्व-बोध	३८०
मोम की सुरक्षा-दीवार	३८७
वैसाखी	४०२
अपने घर का पराया फासला	४२३
उलझाव-सुलझाव	४२८
संच	४३९
चतुरिका	४६२
पांच हजार लेखनीवाले हाथ	४७१
अपने-अपने दर्द	४७५
कुछ	४८१
कांचघर	४९०
झुग्गियों वाली बस्ती में	४९८
परिशिष्ट	५०७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कथा-खण्ड

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गजानन्दी शराब

बूढ़े गजानन्द को शराब के सिवाय और कोई बुरी लत नहीं थी। वह बीड़ी नहीं पीता था। पान खाने का उसे शौक नहीं था। तम्बाकू की उसे बदबू आती थी और चिलम धौंकनेवालों से उसे नफरत थी। जुए में पैसा बरबाद होता है, उसका विचार था। इन सब आदतों को वह बुरा बतलाता था। जब शराब न पिए होता, तब कहता—तम्बाकू पीनेवालों को जात से बाहर कर देना चाहिए।

शराब पीने के बाद नशे में बहककर कह देता—तम्बाकू पीनेवालों को देश-निकाला क्यों नहीं दे देती सरकार? अगर मैं नेहरू की पोस्ट में होता, तो सात समुन्दर पार के किसी टापू में छुड़वा देता इन तम्बाकू पीनेवाले दलिद्दरों को! जुआरियों के घर रात को सूरज निकलता है—उसने बहककर यही रिमार्क दिया था एक बार।

शराब के प्रति उसके और विचार थे। अकसर वह कहा करता था—'शराब सुख देती है, शराब में शायरी का मजा है, शराब दुखों की दवा है, और शराब आदमी के लिए नहीं, आदमी शराब के लिए बना है।' शराब के प्रति उसके इसी दर्शन में उसकी जवानी, प्रौढ़ावस्था और बुढ़ापा—सब गुजर गए, कट गए। बूढ़े गजानन्द ने शराब के लिए अपनी युवावस्था की सोने-सी रातें नशे में बेसुध होकर गुजार दीं। अकसर ऐसा होता था कि गजानन्द कलारी के पास की किसी नाली के पास या मोटर स्टैंड के फुटपाथ पर लापरवाही से हाथ-पैर फैलाए, मिरगी के मरीज-सा बेसुध पड़ा रहता था और उसके घर पर उसकी पत्नी प्रतीक्षा करती रहती और रात, सोने-सी, चांदी के पंख लगाए उसकी छत से तैरती हुई गुजर जाती। जवानी ऐसे कट गई। कुछ इसी तरह प्रौढ़ावस्था गुजरी और अब बुढ़ापा झांकने लगा था। झांकने क्या लगा था, झांक चुका था। पर गजानन्द बराबर शराब पिए जा रहा था।

गजानन्द ने एक दिन खूब शराब पी। खूब नशा चढ़ा और फिर वह खूब बहका। कहने लगा—'मैं शराबी हूं—छोटा-मोटा शराबी नहीं, बहुत बड़ा शराबी। कोई मेरा कुछ नहीं कर सकता। मैं दुनिया की सारी शराब पी जाऊंगा।' फिर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह खूब हंसा।

और सचमुच गजानन्द शराब कुछ इसी तरह पी रहा था जैसे वह दुनिया की तमाम शराब पी जाएगा। पर हुआ उलटा, शराब उसे पीती गई। गजानन्द धोखे में रहा कि वह शराब पी रहा है।

शराबी गजानन्द का कोई कुछ न कर सका। उसकी मां, पत्नी, बहू, बेटा, दोस्त, रिश्तेदार—कोई कुछ नहीं कर पाए। गजानन्द ने शराब पी और फिर पी, जैसे कोई पानी पिये। इसी सिलसिले में उसने खेत बेचा, खेती के हथियार बेचे, औरत के गहने बेचे, लड़के की घड़ी बेची, घर के बर्तन बेचे, और फिर एक दिन यहां तक बात पहुंची कि वह पड़ोसी की गाय खोलकर बेच आया। जितने पैसे मिले, उनसे उसने चन्ना पहलवान की कलारी पर जाकर आधी बोतल ठर्रा पिया और जब नशे में लहकता, बहकता, झूमता-सा वह घर आया, उसने देखा कि घर के दरवाजे पर दारोगा दो सिपाहियों सहित खड़ा था। पास में गाय लिये हुए उसका पड़ोसी उसे घूर रहा था। और दूसरी ओर वह आदमी था जिसे गजानन्द ने गाय बेची थी। गजानन्द नशे में डरता नहीं है, या नशा उसे बेशर्म कर देता है। वह पुलिस के पास पहुंचा, मुस्कराते हुए उसने जुर्म स्वीकार किया और हंसता हुआ हवालात पहुंच गया। एक महीने तक केस चला, फैसले में गजानन्द बरी हो गया। अदालत के विचार से उसने यह हरकत नशे में की थी। गजानन्द अदालत से बाहर आया। कलारी गया। दुकानदार के पास कुछ रुपये जमा थे। उसने शराब पी और तब घर आया।

एक दिन कलारी के दरवाजे पर खूब पीकर गजानन्द ने हमेशा की तरह बात दोहराई— वह दुनिया की तमाम शराब पी जाएगा।

दूसरे शराबी ने कहा—तू शराबी है?

—मैं शराबी हूं?—आश्चर्य से गजानन्द बोला—अबे! शराब गजानन्दी है।

कलारी पर इकट्ठे दूसरे शराबियों ने सोचा— सचमुच, गजानन्द ठीक ही कहता है। शराब गजानन्द ने नहीं पी, शराब ने गजानन्द को इतना पिया है कि गजानन्द शराबी नहीं, शराब गजानन्दी हो गई है।

और गजानन्द लौट आया। रास्ते में वह सोचता आया कि वह अपनी प्रतीज्ञा पूरी कर रहा है। उसने इतनी शराब पी है कि गजानन्द शराबी न होकर शराब गजानन्दी हो गई है।

गजानन्द का जीवन-क्रम चलता गया और गजानन्द पीता रहा।

इसी बीच गजानन्द का इकलौता बेटा रामभरोसे निमोनिया से बीमार हो गया। दवा के लिए पैसे जरूरी थे। गजानन्द सारे गांव में उधार में पैसों की तलाश करता रहा। हर जगह उसे कोरा जवाब मिला। वह उस कलार के पास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी पैसों के लिए पहुंचा, जिससे उसने सैकड़ों रुपये की शराब खरीदकर पी थी। वह उन दोस्तों के पास गया जो उसके हमप्याला थे। पर हर जगह गजानन्द को निराशा ही हाथ लगी। रामभरोसे की बीमारी बढ़ती जा रही थी। घर में कोई ऐसी चीज़ नहीं थी जिससे पैसे मिल सकते। गजानन्द चुपचाप घर के बाहर देहली पर आ बैठा। थकान बहुत आ गई थी। मानसिक स्थिति भी कुछ ठीक नहीं थी और शराब न मिल सकने के कारण उसके हाथ-पैरों में दर्द हो रहा था। गजानन्द चिन्तित-सा देहली पर बैठा रहा। भीतर के कमरे से रामभरोसे के कराहने का स्वर आ रहा था। गजानन्द से अधिक देर बैठा नहीं गया, उठने को हुआ तो रामभरोसे की पत्नी ने आकर उसके हाथ पर अपना मंगलसूत्र रख दिया। गजानंद पलक मारते समझ गया—मंतव्य क्या था? हिन्दी फिल्मों की तरह व्यर्थ की भावुकता में भरे डायलॉग वह यहां नहीं बोलना चाहता था। गजानन्द ने मंगलसूत्र मुट्ठी में दबा लिया और चुपके से चला आया। सर्राफे में उसने मंगलसूत्र बेचा। दुकान से उठा तो उसने महसूस किया जैसे उसके बूढ़े और अशक्त पांव उसे जवाब दे रहे हैं। रास्ते में आया तो उसे लगा जैसे भीतर से कोई हूक उठ रही है जो उसे बाध्य कर रही है कि वह शराब की दुकान पर जाए, शराब पिये और फिर रामभरोसे की दवा खरीदे। गजानन्द ने वही किया। वह शराब की दुकान पर गया वहां उसने शराब पी और हमेशा की तरह बहकता-लहकता जब घर पहुंचा, तब न तो उसके पास मंगलसूत्र था, न रामभरोसे की दवा और न पैसे।

घर पहुंचकर गजानन्द ने पाया रामभरोसे के कराहने का स्वर नहीं सुनाई पड़ रहा था। रामभरोसे की पत्नी सिसकियां भर रही थी। गजानन्द सिर थामकर घर की देहली पर धम से बैठ गया। रामभरोसे मर गया, उसकी पत्नी की सिसकियां उसे बता रही थीं। गजानन्द को लगा जैसे भीतर से कोई चीज़ उस पर हंस रही हो और कह रही हो— गजानन्द! शराब कभी गजानन्दी नहीं हो सकती। गजानन्द शराबी है।

वह जोर से चिल्लाया—मैं दुनिया की तमाम शराब कभी नहीं पी सकता। मैं शराबी गजानन्द हूं।

और फिर गजानन्द फूट-फूटकर रो उठा।

१९६१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दो अंगारे

बालाराम अपनी औरत को मार रहा था।

घर में से कभी बर्तन गिरने-उलटने की आवाजें आती थीं, कभी बालाराम की खालिस देसी गालियां वातावरण में उछल-गिर रही थीं।

मैंने कमरे में बैठे-बैठे साफ-साफ सुना, पड़ोस की कई औरतें बालाराम और उसकी निर्दयता को कोस रही थीं।

मिस्त्री बालाराम के कमरे में से, जो उसकी रसोई, सोने का कमरा, मेहमानों का कमरा और बरामदा—सभी कुछ था, लगातार बर्तन गिर पड़ रहे थे और वह अविरल रूप से ताजी-ताजी गालियां उगल रहा था।

पड़ोस में रहने वाले शराबी मजहर ड्राइवर की घरवाली सफिया बालाराम के घर तक गई और दरवाजे से हल्की-सी झांक देकर कुछ इस तरह नाक सिकोड़ती हुई वापस लौटी, जैसे भीतर उसने निहायत गंदी चीज़ देख ली हो। तमाशबीन औरतों का एक छोटा-सा समूह मेरे कमरे के नजदीक ही इकट्ठा था। वहां बालाराम और उसकी पत्नी के झगड़े पर टीका-टिप्पणी चल रही थी। सफिया इसी समूह तक आयी, आवाज में कुछ कड़ुवाहट घोलकर उसने कहा, 'ये मरा बूढ़ा हो गया! सरम नहीं आती। कहीं औरत को इस तरह मारा जाता है?' जब अन्य स्त्रियों ने कोई उत्तर नहीं दिया तो मजहर की घरवाली कहती गयी, 'ऐसी कोई बात भी तो नहीं हुई जो औरत को इस बेदरदी से पीटे जा रहा है भड़ुवा।'

एक ने उत्तर दिया, 'रहने दे, सफिया! बालाराम अपनी लुगाई को किसी बात पर तो मार रहा है, तेरे डिलेवर की तरह सराप पी के बिना बात तो नहीं मार रहा।'

उत्तर नये ढले सिक्के की तरह कुछ ऐसा सुडौल और खरा था कि सफिया कटकर रह गयी। उसने होंठ चबा लिये। कुछ कह न सकी। कुछ देर बाद जब क्रोध शक्ति से अधिक हो गया तो अपने गोद के बच्चे को दो तमाचे जड़ दिये जो भेड़ के बच्चे की तरह बार-बार में-में-में कर रो रहा था।

बालाराम घर से बाहर निकला। भीतर से उसकी पत्नी के सिसकने की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आवाज़ आ रही थी। मोहल्ले भर के बच्चे और स्त्रियां बाहर एकत्र थे। वे सब दो पल टकटकी बांधे बालाराम को इस तरह देख गये जैसे वह नुमाइश की कोई अजीब चीज़ हो।

बालाराम भीतर से आकर बाहरवाले एक चबूतरे पर बैठ गया। क्रोध से उसके गाल फूले हुए थे। चेहरे पर विषाद की रेखाएं गहरी होकर उसके बुढ़ापे को और अधिक बढ़ा रही थीं।

कुछ देर तक मोहल्लेवाले उसे देखते रहे, फिर एक-एक कर छोटे बच्चे खेलने लगे और भीतर के कमरे से लगातार आ रही बालाराम की घरवाली की सिसकियां धीरे-धीरे कम होकर शांत हो गयीं।

चबूतरे पर बैठा बालाराम मिस्त्री बेहद उदास और परेशान नजर आ रहा था। उसकी उम्र साठ-पैंसठ के आस-पास रही होगी। आंखों से कम दीखता था, शरीर के हर भाग पर झुर्रियां उभर आयीं और चाल में फुर्ती नहीं रह गयी थी। मैं लगभग एक वर्ष से इस मोहल्ले में रह रहा हूं, आज के सिवाय मैंने कभी बालाराम को इस तरह बूढ़ी पत्नी को मारते नहीं देखा। इस एक साल में बालाराम से मेरी कई बार बातचीत हुई। मुझे लगा था जैसे बालाराम काफी समझदार और अनुभवी आदमी है। एक दिन जब मजहर ड्राइवर ने सफिया की पिटाई की तो स्वयं बालाराम ने कहा था, 'औरत पर हाथ उठाना बुरी बात है, मास्टर जी!' वह मुझे मास्टर जी ही कहा करता था। 'घर का सारा सुख-चैन हराम हो जाता है। औरत चाहे जैसी हो, एक बार बुरा करम भी करे तो भी उसकी पिटाई नहीं करनी चाहिए। ऐसा करने से एक तो वह बेसरम हो जाती है, दूसरे मर्द का कोई रोब उस पर नहीं रहता! अब आप ही देख लो, मजहर उसे पीटता जाता है, पीटता जाता है, मगर वह बाज नहीं आती।' और सचमुच बालाराम का कहना ठीक ही था। मजहर हर दूसरे रोज नहीं तो हफ्ते में दो बार जरूर सफिया को पीटता था। मगर सफिया भी खूब कड़ी थी, मजहर एक तमाचा मारता तो सफिया दो मौलिक गालियां देती, मजहर एक गाली देता तो सफिया उसे दस बार कोसती।

बालाराम ने औरत के सम्बन्ध में काफी अनुभवपूर्ण वक्तव्य दिया। उसने कहा, 'मास्टर जी! औरत तो गिरहलछमी है। मरद उसकी तौहीन करेगा तो लछमी रूठ जायेगी! घर में दलिद्दर समा जायेगा! और मैं तो कहता हूं, वह मरद ही क्या, जिसकी बदली त्योरी देखकर औरत को पसीना न छूट निकले! है न?'

मैंने उसकी बात का समर्थन किया। बालाराम की भाषा भले उथली हो, पर अर्थ बहुत गहरे थे। फिर कुछ देर तक इधर-उधर की बातें करने के बाद बालाराम चला गया था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर आज मुझे काफी आश्चर्य हुआ। ऐसे सिद्धांत छांटने वाले बालाराम ने अपनी बुढ़िया को इस तरह पीटा था कि लगभग एक घंटे तक सारा मोहल्ला रामलीला-स्थल बना रहा। शाम को जब मैं आफिस से लौटा तो रास्ते में मजहर मिला। वह अपनी घरवाली को सिनेमा में बिठाल कर आ रहा था। औरत के मामले में उसकी फिलॉसफी बालाराम से अलग थी। बात निकली तो बोला, 'आप औरत को जी भरके खाना खिलाओ, मरजी का फैशन कराओ, उसकी तबीयत का ख़याल रखो, पर हमेशा डंडे के रोब में रखो। इसकी जात बड़ी अजब है, सिर पर चढ़ गई तो आपके सारे कपड़े खराब कर देगी!' उसने मोहल्ले की ताजी घटना पर अपनी टिप्पणी की। 'मैं तो कहता हूं, बालाराम ने बहुत अच्छा किया, वह साली बुढ़िया भी हद दरजे की जाहिल है। ईमान की पूछो तो उसी ने बालाराम को बरबाद कर दिया! एक जमाना था कि सारे शहर में बालाराम के आरट की तूती बोलती थी। कमबख्त के पास वो जादू है कि जिस काठ में हाथ लगा दिया, साले को बोलनेवाला बुत बना दिया!' बगैर सांस लिये वह कहता गया, 'जिस कमरे में आप रहते हो, पहले वो सब उसी का मकान था। उसी कमरे में बैठकर मैंने बालाराम के साथ सैकड़ों की शराब पी है। दस-दस रुपये के कारीगर इसके हाथ के नीचे काम करते थे। मैं सुनी बात नहीं कहता, ये ही बुढ़िया आठ आने की सब्जी लेने दस आने का रिक्शा लेके जाती थी। फूल की तरह रखता था इसे बालाराम। पैसा इस कदर था कि कमर से ऊपर सोने से मढ़ी रहती थी ये बुढ़िया! इतना तो मैंने आंख से देखा है।' कहते-कहते मजहर रुक गया। पास से खूबसूरत लड़की गुजर रही थी। उसकी बात टूट गयी। कुछ खांसकर उसने बात पूरी की, 'मगर अब कुछ नहीं है। मिस्त्री बालाराम को उसकी औरत के दरियादिल सुभाव और शराब-कबाब ने बरबाद कर दिया! मकान, जर-जेवर, यहां तक कि बर्तन-भांडे भी बिक गये हैं।'

'आज बुढ़िया को क्यों पीट रहा था बालाराम?' मैंने यों ही पूछ लिया।

'मुझे तो पता नहीं, सा'ब!' मजहर बोला, 'बालाराम को अपनी घरवाली की पिटाई करते मैंने पहली बार ही देखा है। पर हां! एक बात पक्की है, बालाराम ने अपनी घरवाली को पीटा है, तो जरूर कोई बड़ी बात हुई होगी।'

कुछ आगे चलने के बाद वह रास्ते में ही रुक गया। उसे कहीं और जाना था। मैं घर चला आया। जिस जगह सुबह मैंने बालाराम को बैठे देखा था, वह अब भी वहीं बैठा हुआ था। कुछ समय पूर्व सोने से मढ़ी रहनेवाली बालाराम की पत्नी उसके ठीक सामने बैठी हुई थी। आज उसके शरीर पर एक बेहद गंदी, सस्ती और फटी हुई धोती थी। स्वयं बालाराम अपनी सूरत और वेशभूषा से इतना घिनौना लग रहा था, जैसे किसी गंदे बरसाती गटर से कोई मरा हुआ मेंढक उठाकर सूखी धरती पर रख दिया गया हो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं दरवाजा खोलकर भीतर आ गया। उस कमरे की खिड़की से मैं उन दोनों को स्पष्ट देख ही नहीं सकता, बल्कि सुन भी सकता हूं।

दोनों उदास थे। मैंने देखा, बालाराम की बुढ़िया के माथे पर दायीं ओर खरोंच थी। कुछ देर तक सिर झुकाये रहने के बाद बालाराम ने बुढ़िया का चेहरा आर्द्र भाव से देखा। लगा जैसे भीतर का सारा दुःख, सारी पीड़ा बुढ़िया के झुर्रीदार मटमैले चेहरे के बीच दो सफेद बटनों की तरह चमककर आंखों में उभर आयी है। मैंने देखा बालाराम की लटकी हुई खालवाला हाथ सामने बैठी उसकी पत्नी के माथे की खरोंच तक चला आया, जहां खून सूख गया था। 'तू मुझे क्यों सताती है ?' बालाराम ने भीगी-भरी आवाज़ में कहा।

उसकी इस सहज बात की प्रतिक्रिया बुढ़िया पर काफी गहरी हुई। उसने गंदी साड़ी का एक पल्लू उठाकर आंख पोंछ लीं और नाक का सुर जोर से खींच लिया, कुछ बोली नहीं।

बालाराम ने कहा, 'तू वहां क्यों गयी थी चावल मांगने ?'

बुढ़िया ने फिर भी कोई उत्तर न दिया।

बालाराम कह रहा था, 'भूखे मर जाना ठीक बात है, पर किसी से भीख मांगना मरे से बदतर है। दो पैसे के चावलों के लिए तूने दो लाख की आबरू बिगड़वा दी !' वह इस तरह गठी-गठाई भाषा में कहे जा रहा था, जैसे सिद्धांत-शास्त्र की कोई किताब पढ़ रहा हो ? उसने कहा, 'ये सारे मोहल्ले वाले मेरे धन पर मजा किया करते थे। शुरू से इन्होंने मुझे सलाम किया है। मरते तक सलाम करते जायेंगे। इनसे भीख मांगना भारी तौहीन है। तू जिस घर से चावल मांग के लायी है, जानती है, मैंने उसके बाप को सादी के लिए पैसा दिया था। हमेशा मेरा सिर उसके सामने ऊंचा रहा पर तूने जरा से में बनी बात बिगाड़ दी।' बालाराम की बात पूरी होते-न-होते बुढ़िया फफक पड़ी। मुझे लगा जैसे बालाराम की बातों ने उसके मन के कोई ऐसे पुराने घाव कुरेद दिये हैं, जिन पर पुरानेपन की पतली चमड़ी चढ़ रही थी।

रोते हुए बुढ़िया ने उत्तर दिया, 'तू भूखा रहता न, मिस्त्री ?'

'तू भी तो भूखी रहती।' बालाराम ने उसी तरह कह दिया।

'मेरी बात छोड़', वह बोली, 'जिनको हमने जनम भर खिलाया, उन्होंने थोड़े से चावल दे दिये तो क्या हुआ ?' यह बात उसने इतनी सादगी से कही कि एक क्षण बालाराम उत्तर के लिए सकपका गया। किन्तु थोड़ी देर में वह फिर कड़ा हुआ, 'तू तो पागल है ! मैंने कह दिया है कि बहस मत किया कर, फिर क्यों ज़बान लड़ाती है ? खबरदार, जो कभी किसी के यहां मांगने गई तो, बस !'

बुढ़िया चुप नहीं हुई। वह कुछ बुदबुदाई, जो मैं सुन नहीं सका। उत्तर में बालाराम का वह कठोर स्वर जरूर मैंने सुना जिसमें एकदम चुप हो जाने के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदेश उसने दिये थे ।

मैं अकसर देखता-सुनता, बालाराम अपनी पत्नी को समझाता रहता । वह मौजूदा समाज-व्यवस्था पर उसे भारी-भारी लेक्चर देता। उसकी बात में स्वाभिमान सामने वाले के सिर पर भारी बोझ की तरह छाता जा रहा है ।

एक बार कोई ठेकेदार उससे अपने मकान के फर्नीचर की देख-रेख के लिए कहने आया था । बालाराम ने उसे बेहतर किस्म का फर्नीचर तैयार करवा देने का आश्वासन दिया। ठेकेदार ने बताया वह इस देख-रेख के लिए दो रुपये रोज उसे देगा। ये दो रुपये रोज उसने बालाराम को इस तरह बतलाये जैसे कोई मेहरबानी की हो । बालाराम ने उसकी बात की टोन को पहचाना। कुछ घूरकर सिर से पांव तक देखा, फिर बोला, 'क्यों ठेकेदार, कब से इस 'लेन' में हो ?'

'कोई दस साल हो गये ।' ठेकेदार ने उसी गर्व के साथ उत्तर दिया, 'पहले इंजीनियर था, पर गुलामी में मन नहीं लगा सो स्वतन्त्र काम चला रहा हूं ।'

बालाराम ने उसे फिर सिर से पैर तक देखा । बोला, 'मेरा नाम किसने बताया था ?'

'भिखू ने, जिसका कारखाना है । मैं पहले उसी से बात करने गया था, तो उसने कहा कि वह आठ रुपये रोज़ से नीचे काम नहीं करेगा ।'

बालाराम ने देखा, ठेकेदार की आंखों में चालाकी के स्पष्ट भाव थे। उसने कुछ चिढ़कर कहा, 'और तुम मेरे पास चले आये, है न ? भीखू मेरा शागिर्द था । जानते हो मैंने उसे आठ आने रोज पर काम सिखाया है । तुम मुझसे दो रुपये रोज़ की बात करने आये हो ?'

ठेकेदार सिटपिटाया। 'नहीं-नहीं, मिस्त्री !' उसने कहा, 'भीखू ने तो तुम्हारा पता भर बताया है, रेट नहीं बताया ।'

इससे पहले कि बालाराम कोई उत्तर दे, ठेकेदार बोला, 'मैं तुम्हें तीन रुपये रोज दूंगा ।'

बालाराम ने कोई उत्तर न देकर स्वीकार कर लिया । सात-आठ दिन का काम पूरा करने के बाद एक दिन ठेकेदार बालाराम का हिसाब पूरा करने आया। उसने दो रुपये रोज से उसकी मजदूरी दी तो मुस्कराकर बालाराम ने नोट हाथ में लेकर उन्हें सिर से लगाकर चूमा और फिर वापस ठेकेदार की ओर बढ़ाते हुए बोला, 'ये भीखू को दे देना ठेकेदार और कहना बालाराम ने इन्हें भिजवाया है; जिसके यहां तू आठ आने रोज पर काम सीखता था ।'

ठेकेदार ने आश्चर्य से उसका चेहरा देखा । बालाराम की आंखों में घृणा और दुःख के मिले-जुले भाव थे । उसने कहा, 'क्या कहते हो, मिस्त्री ?'

'ठीक ही तो कहता हूं, ठेकेदार !' पीड़ा और दुःख से गदराई आवाज में बालाराम ने उत्तर दिया, 'भीखू को मैंने आठ आने रोज पर काम सिखाया है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन दिनों मेरे पैर दबाया करता था। बड़े कारखानेवाला हो गया तो सस्ती मजूरी के लिए उसने तुम्हें मेरे पास भेज दिया !'

बालाराम के हर शब्द में गहरी पीर समायी हुई थी। ठेकेदार कुछ कहना चाहता था, पर बालाराम ने उसे कहने का मौका नहीं दिया। बोला, 'भीखू से जाके कहना ठेकेदार, जिस आदमी को तूने जबान दे के भेजा था उसके सामने तेरे उस्ताद ने तेरी जबान गिरने नहीं दी। रही यह मजदूरी सो उसके हाथ में देना और कहना, भीखू ! तेरे उस्ताद ने कहा है इन पैसों का थोड़ा और गुरूर खरीद ले। कुछ दिन बाद मां की कोख की कीमत भी भूल जायेगा।'

ठेकेदार ने अधिक बातचीत करना उचित नहीं समझा। बालाराम उत्तेजित होता रहा था। वह रुपये लेकर वापस लौट गया।

शाम को भीखू बालाराम के पास आया। ठेकेदार ने बालाराम का संदेशा उसे सुना दिया था। आते ही उसने बालाराम के पांव पकड़ लिये। धाराप्रवाह माफी मांगने लगा। बोला, 'उस्ताद, माफ कर दे मुझे। मैंने गलती की, तू मेरे बाप के बराबर है।'

बालाराम यों तो दिन भर से गाल फुलाये हुए था, भूखा भी था, पर भीखू की इस क्षमायाचना ने उसका सारा क्रोध तत्क्षण धो डाला। उसने उसके दोनों कंधे थपथपाये। दर्द से भारी आवाज में कहा, 'मैंने तो यों ही मसखरी की थी। ला वह ठेकेदारवाली मजूरी।'

भीखू ने मजदूरी के पैसे दिए जो ठेकेदार के जरिए उसे मिले थे।

मिस्त्री बालाराम के साथ ऐसी घटनाएं आये दिन हुआ करतीं। वह दो-दो, तीन-तीन दिन भूखा ही पड़ा रहता। पर इस बारे में किसी से कुछ कहना-सुनना उसे पसन्द नहीं था। अपने ऐसे स्वभाव के लिए वह उन लोगों को खटकता जो उसे कुछ मदद करना चाहते थे। किन्तु बालाराम ने किसी से मदद मांगी हो, मैंने यह कभी नहीं देखा।

इधर कुछेक दिनों से उसकी आर्थिक स्थिति पहले से अधिक बिगड़ गयी। मैं रोज देखता बालाराम और उसकी बुढ़िया कभी भूखे रहते, कभी दो पैसे का सत्तू लाकर अधभूखे रहते। ऐसे समय पर जिन लोगों ने उसके साथ बैठकर सैकड़ों रुपयों की शराब पी थी, उन्होंने उसके घर की कीमती चीजें माटी-मोल खरीदीं। बालाराम की भूख और बुढ़ापा दोनों बढ़ते गये और घर में कुछ नहीं बचा।

एक दिन मैं आफिस से घर लौटा तो बालाराम उदास-सा सामने वाले चबूतरे पर बैठा हुआ था। यों तो वह सदा ही उदास रहता था, पर आज की उदासी पहले की अपेक्षा अधिक घनी और स्पष्ट थी। चाहते हुए भी मुझे साहस न हुआ कि मैं उससे उस उदासी का कारण पूछूं। मैंने कमरे का दरवाजा खोला और भीतर आ गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'राम-राम, मास्टर जी !'

मैं कपड़े भी न बदल पाया था। मैंने उलटकर देखा, बालाराम देहरी पर खड़ा हुआ था। एक क्षण मैं कुछ कह न सका। बालाराम उसी तरह खड़ा हुआ था।

कुछ संभलकर मैंने कहा, 'आओ, मिस्त्री जी !'

'मैं ठीक हूं।' वह उसी तरह देहरी पर खड़ा रहा। मैंने पहचाना, बालाराम की आवाज में पहले-जैसी जिन्दगी न थी। 'मैं एक जरूरी काम से आया हूं।' उसने कहा।

'कहो ?' मैंने पूछा।

बालाराम कुछ कहना चाहता था, पर कह नहीं पा रहा था। लगा, जैसे बालाराम जो कुछ कहना चाहता है, वह उसके गले में अटक गया है।

'बोलो, मिस्त्री ?' मैंने आवाज में और अधिक नर्माई पैदा की।

'हां-हां !' बालाराम ने कहना चाहा, 'कहता हूं।' वह कई बार गले का थूक निगल गया।

मैं उसकी ओर देखे गया। ऐसी कौन-सी बात थी जिसके लिए बालाराम इतना संकोच कर रहा था ? उसका चेहरा झुका हुआ था। मैंने फिर पूछा, 'बोलो ?'

'मास्टर जी !' उसने बगैर मेरी ओर देखे कहा, 'मिस्त्राइन बीमार है।'

'क्या हुआ ?' मैंने घबराकर पूछा।

'हां ?' मेरे प्रश्न पर बालाराम इस तरह चौंका जैसे वह यहां की बातों से अलग किन्हीं और बातों में उलझा हुआ था। 'कुछ नहीं।' रुक-रुककर उसने बात पूरी की। 'वह भूखी है। उसने पांच रोज से कुछ नहीं खाया। मैं आपके पास दो रुपये मांगने आया हूं।'

कहते-कहते बूढ़े बालाराम की सांस फूल आयी थी, जैसे रत्ती-सी बात कहने में उसे तीन मील पैदल चलना पड़ा हो। उसका सिर धरती की ओर झुका हुआ था।

मैंने बगैर कुछ कहे, जेब से दो रुपये निकालकर उसके हाथ में दिये तो मैंने देखा, उसकी हथेली नोट थामते-थामते कुछ इस तरह कांपने लगी थी जैसे मैंने दो रुपये नहीं, दो अंगारे उसके हाथ पर रख दिये हों।

१९६१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी रक्षा आप

ड्राइवर बिहारीलाल ने अपने घर की खिड़की से बाहर झांककर देखा। कर्फ्यू के कारण सड़क विधवा की मांग की तरह सूनी-सूनी और उदास पड़ी थी। हालांकि रात अधिक नहीं हुई थी, फिर भी लोग अपने-अपने जान-माल की रक्षा के लिए भीतर दुबक गए थे।

बात छोटी रही हो या बड़ी, दंगा जरूर बड़ा हो गया था। सुबह कॉलेज के छोकरों ने हड़ताल की। फिर स्कूल गेट पर भाषणबाजी हुई। संगठन की अपील की गई। धर्म-निरपेक्षता की नीति पर प्रवचन हुए। और फिर एक बड़ा जुलूस हाई कोर्ट, रेलवे ब्रिज, कॉर्पोरेशन और अस्पताल के सामने से होते हुए दोपहर के खाने के समय फव्वारे पर डिस्पर्स हो गया।

जुलूस जहां से प्रारम्भ हुआ था, वहां से समाप्त होने तक रास्ते में एक पानवाले की दूकान इस जनतंत्री जुलूस के स्वतंत्र नागरिकों ने लूटी। एक सब्जीवाले के ठेले में आग लगा दी। महिलाओं पर फब्तियां कसीं। दो-चार बड़ी दूकानों के बोर्ड उखाड़े और चिल्ला-चिल्लाकर नारा लगाया : 'स्वतन्त्रता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है!'

शाम की जन-सभा उपद्रव में बदल गई। इसमें 'महात्मा गांधी की जय' और 'नेहरू जिन्दाबाद' के नारों के साथ बाज़ार में तोड़-फोड़, लूटमार की गई। पुलिस ने लाठी-चार्ज किया, तब कहीं जाकर भीड़ छंट पायी। कर्फ्यू की घोषणा हुई और लोग अपने घरों में दुबक गए।

बिहारीलाल ने सिर कुछ और खिड़की से बाहर किया। पड़ोस के कमरे में रहने वाले मद्रासी रेल बाबू सुन्दरम् के कमरे से रेडियो झींगुर की-सी झनझनाहट में गला दबाए हुए चीख रहा था। बिहारीलाल को लगा कि शहर जिन्दा है। वह मरघट नहीं बना है। उसने इधर-उधर झांककर फिर देखा। दूर तक कोई पुलिस-वाला नहीं दीख रहा था। कुछ साहस करके बिहारीलाल सुन्दरम् के दरवाजे पर आकर फुसफुसाया—"सुन्दरम् बाबू!"

बिहारीलाल की आवाज के साथ ही भीतर से आ रही रेडियो की आवाज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी बन्द हो गई।

"सुन्दरम् बाबू !" बिहारीलाल ने चौकन्ने होकर फिर कहा—"जल्दी दरवाजा खोलो, यार।"

इस बार एक लुंज-सा स्वर बाहर फूटा—"कौन है ?"

"मैं हूं बिहारीलाल, तुम्हारा पड़ोसी। बात सुनो। मेरी आवाज नहीं पहचानते ?"

बिहारीलाल ने फिर इधर-उधर देखा। कहीं दूर से किसी मोटर के गुजरने का स्वर आया। वह कांप उठा।

धीरे-धीरे सुन्दरम् ने साहस करके भीतर से दरवाजा खोला। बिहारीलाल लपककर भीतर आ गया।

सुन्दरम् ने घबराकर पूछा—"क्या हुआ ?"

"हुआ क्या ?" बिहारीलाल ने आराम से कुर्सी खींचकर बैठते हुए कहा—"बड़ा गड़बड़ चल रहा है।"

"क्यों ?" सुन्दरम् ने सावधानी से दरवाजे की कुण्डी चढ़ाई और सामने बैठकर धीमी-सी आवाज में पूछा—"क्या हुआ ?" उसके पिचके कनस्तर जैसे ऊबड़-खाबड़ चेहरे पर आश्चर्य और घबराहट से आंखें निकली पड़ रही थीं—जैसे वे अभी बाहर निकलकर उसकी मोटी-मोटी मूछों में अटक जायेंगी।

"अरे यार !" बिहारीलाल अपने चेहरे का पसीना पोंछते हुए बोला—'दंगाइयों ने पुलिस को पीट दिया है, मुझे अभी-अभी खबर मिली है। सब मोहल्ले-वालों ने अपने-अपने मोहल्ले की रक्षा के लिए मोहल्ला रक्षा समितियां बना ली हैं और दो-दो, चार-चार इकट्ठे होकर मुकाबिले के लिए तैयार बैठे हैं। अपने यहां कोई बन्दोबस्त ही नहीं है।"

"बात तो ठीक है," सुन्दरम् ने गम्भीरतापूर्वक कहा—"आफिस से आते समय मुझे भी लोगों ने बताया था कि दंगा जोरों पर है। पुलिस का बूता नहीं कि उपद्रवियों की रोक-थाम कर सके। तुम्हें कुछ मालूम है कि शाम के लाठी चार्ज में कितने लोग घायल हुए ?"

"घायलों को छोड़ो। घायल तो बहुत लोग हुए हैं। मारे भी बहुत गए हैं। अपने मोहल्ले की सोचो। दंगाई अगर हमला बोल दें, तो क्या होगा ? पुलिस कहां तक मदद करेगी ? हम सब को अपनी रक्षा आप करने को तैयार रहना चाहिए।" कुछ साहस बटोरकर बिहारीलाल ने कहा।

"तो फिर ?" सुन्दरम् ने पूछा।

"फिर क्या," बिहारीलाल ने समझाया—"पास में ठाकुर बहादुरसिंह का मकान है। पुराना जागीरदार आदमी है। उसके घर में हथियार भी हैं। मोहल्ले के दस-पांच लोगों को इकट्ठा कर लो और रात भर जागते रहो। पुलिस के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भरोसे रहने से काम न चलेगा।"

सुन्दरम् कुर्सी छोड़कर उठ पड़ा। उसने कहा—"आप बहादुरसिंह जी के यहां पहुंचिएं। मैं अभी कपड़े बदलकर आता हूं।"

बिहारीलाल उठा। उसने फिर दरवाजे के दोनों पटों के बीच से सिर निकालकर देखा। चारों ओर खामोशी थी। "सुन्दरम् बाबू, आते समय सरदार जसवन्तसिंह को भी लेते आना।" फिर वह तेजी से बाहर निकल गया।

सरदार जसवन्तसिंह को साथ लेकर, जब सुन्दरम् बहादुरसिंह के घर पहुंचा, तो उसने देखा कि बहादुरसिंह और बिहारीलाल के अलावा वहां मोहल्ले के दो-चार लोग और जमा थे। बगैर नमस्कार किए सुन्दरम् और जसवन्तसिंह फर्श पर बैठ गये।

ठाकुर बहादुरसिंह के खानदान वाले कभी जागीरदार थे। सो उसके घर का सारा ठाट-बाट वैसा ही था। पुराने रईसों की तरह जमीन पर मसनदें लगी थीं। दीवारों पर शेर, हिरन आदि जंगली जानवरों की खालें लटकी हुई थीं। दो-चार तसवीरें भी थीं, जिनमें बहादुरसिंह मरे हुए शेर-चीतों के पास शिकारी वेश-भूषा में हाथ में बन्दूक लिये खड़े दिखलाए गए थे।

ठाकुर बहादुरसिंह की बहादुरी का सारे मोहल्ले पर रोब था। नाटा कद, भरे-भरे गाल, कद्दू-सा चेहरा, बड़ी-बड़ी आंखें, झब्बेदार मूंछें और चेहरे पर छलनी के छेदों की तरह चेचक के दाग—कुल मिलाकर बहादुरसिंह भयावने व्यक्तित्व वाले आदमी थे। पान बहुत खाते थे, शराब बहुत पीते थे। बीड़ी से नफरत थी, और तम्बाकू से प्यार था। जब बिहारीलाल ने सकुचाते-सकुचाते अपने और सब के आने का कारण बताया, तो वे हो-हो करके हंसे। फिर कहा—"बिहारीलाल, तुम्हारा कहना ठीक है। हर आदमी को अपने अन्दर अपनी रक्षा आप करने की भावना पैदा करनी चाहिए। पुलिस कहां तक किसी की देख-भाल करेगी? भई, हम तो अपने हाथों पर भरोसा करते हैं।" और उन्होंने पूरब-पच्छिम सिर हिलाकर, अपनी बांहें देखीं और मूंछों पर ताव दिया।

सरदार जसवन्तसिंह ने कहा—"ठाकुर साहब, यह सब तो कॉलेज के लौंडों का किया-धरा है। पब्लिक···"

'नहीं, नहीं," सुन्दरम् ने जसवन्तसिंह की बात काटकर कहा—"सरदार जी, लड़के कतई कसूरवार नहीं। उनकी आड़ में यह सब-कुछ गुंडों का किया-धरा है।"

"अजी, लड़कों में इतनी हिम्मत ही कहां है? इतनी दिलेरी का काम करने लायक अब खाने को भी तो कहां मिलता है? हमारे जमाने के लड़कों को देखते तो कहते। खैर, जो भी हो, भई, स्थिति बहुत खराब है। दंगाई कभी भी कहीं भी हमला कर सकते हैं।" बिहारीलाल ने कहा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"यह तो ठीक है," सरदार जसवन्तसिंह ने समर्थन किया—"गुडे गुडे ही हैं। कहां, कब, क्या करें, इसका कोई ठिकाना नहीं। अब आज ही के मामले को लो। मिनटों में मूलजीभाई टालवाला की दुकान में आग लगा दी और सारा सामान लूट लिया। बेचारे का काफी नुकसान हुआ। च्-च् !"

"आप तो बेकार की बातें करते हैं। कितना बेईमान आदमी लुट गया। इसमें काहे का अफसोस ?···आप तो इस तरह कह रहे हैं, जैसे आपकी ही दुकान लुट गई हो।" बिहारीलाल बोला।

"अजी, मुझे क्या खाकर लूटेंगे ?" कमर के पीछे लटकी कृपाण खींचकर, सरदार जसवन्तसिंह ने कहा—"गुरु की कसम, कम-से-कम पचास जान से जायेंगे। कोई दिल्लगी है क्या दुकान लूट लेना ?"

बिहारीलाल जसवन्तसिंह की पहली झड़प में ही चुप हो गया, तो सुन्दरम् ने अपनी बात प्रारम्भ की—"यहां हम लोग झगड़ने के लिए एकत्र नहीं हुए हैं, बल्कि अपने मोहल्ले की रक्षा के बारे में बात करने के लिए इकट्ठे हुए हैं। इस नाजुक मौके पर यह आपस की तू-तू, मैं-मैं ठीक नहीं।"

"ऐसी शान्ति से बात हो, तो फिर क्या झगड़ा, जी ?" और जसवन्तसिंह ने एक जलती दृष्टि बिहारीलाल पर फेंकी।

बिहारीलाल को यों जोश तो बहुत आता था, किन्तु इस नाजुक मौके पर वह चुप ही रहा। भले ही हाथ-पैर कमजोर हों, पर उसका स्वभाव बहुत गर्म था। किसी भी झगड़े के मौके पर वह अपने प्रतिद्वंद्वी को इस तरह लपककर गाली देता था, जैसे पेट्रोल में जलती हुई तीली डाल दी जाय, और वह भभककर लपटें फेंकने लगे। क्रोध में राल निगलकर बिहारीलाल चुप रह गया। गाली होंठों पर फड़फड़ाकर अटक गई।

क्षण-भर रुककर, ठाकुर बहादुरसिंह की ओर व्याकुल दृष्टि से देखते हुए, बिहारीलाल ने कहा—"ठाकुर साहब, अपना मोहल्ला दंगाई इलाके के पास ही है। हर तरफ से आग, लूट-मार और कत्ल की खबरें आ रही हैं। आप इस मोहल्ले के बुजुर्ग हैं। इस सारे मोहल्ले की स्त्रियों-बच्चों की रक्षा आपके हाथ है।"

ठाकुर बहादुरसिंह ने अपने सीने को हवा से भरकर गुब्बारे की तरह फुला लिया। वे गम्भीर हो गए। सारे मोहल्ले की रक्षा का भार किसी पतंग के बोझ की तरह आसानी से उठाकर, उन्होंने कहा—"तुम लोग मुझ पर जबरदस्ती यह जिम्मेदारी डाल रहे हो। खैर, जब जिम्मेदारी डाल ही दी है, तो ठीक ही है। तुम्हारे पास हथियार हैं ?"

"हैं," जसवन्तसिंह बोला।

ठाकुर बहादुरसिंह ने उठकर खूंटी पर टंगी हुई धूल-चढ़ी बन्दूक उतारी। पूछा—"तुम लोगों में से कोई बन्दूक चला लेता है ?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरदार जसवन्तसिंह को छोड़कर सभी ने इनकार किया।

अपनी बन्दूक जसवन्तसिंह के हाथ में थमा कर, ठाकुर बहादुरसिंह भीतर चले गए।

बिहारीलाल ने आग्नेय दृष्टि से जसवन्तसिंह को देखा, और फिर सोचा, 'काश कि ड्राइवरी के बजाय पुलिस में नौकरी की होती, तो बन्दूक चलाना तो सीख ही लेता!'

कुछ देर बाद ठाकुर बहादुरसिंह एक नंगी तलवार लेकर बाहर लौटे। कमरे की हवा चीरते हुए उन्होंने मुसकराकर कहा—"इसे देखते हैं?"

सभी ने उस ओर देखा। उन्हें ठाकुर साहब के संरक्षण पर भरोसा था। और वे मोहल्ले के धन-जन की रक्षा की जिम्मेदारी उन पर छोड़कर निश्चित हो गए थे।

ठाकुर बहादुरसिंह ने उसी तरह कहा—"यह करीब तीन सौ साल पुरानी तलवार है। हमारे बाबा के बाबा ठाकुर दिग्विजय प्रताप सिंह अठारह सौ सत्तावन में इसी तलवार को लेकर अंग्रेजों पर पिल पड़े थे।" फिर उसके किनारों पर हौले-हौले हाथ फिराकर उन्होंने कहा—"इसकी प्यारी धार ने सैकड़ों का खून पिया है। यह तलवार नहीं, साक्षात् काली है, काली। अब जरा देखिये।" उन्होंने गुलदस्ते में लगे गुलाब के फूलों पर तलवार का एक वार किया। पंखुड़ियां छिटक-कर जमीन पर आ गिरीं। "देखा? जब इसको लेकर बाहर निकल पड़ूंगा, तो दंगाइयों को छठी का दूध याद आ जायेगा।" कहते-कहते ठाकुर बहादुरसिंह का चेहरा तमतमाने लगा।

बिहारीलाल ने अपने आतंक से सूखे होंठों पर गीली जीभ फिराकर उन्हें तर किया।

सुन्दरम् ने फीकी-सी हंसी हंसकर कहा—"बैठिए, ठाकुर साहब!" उसे ठाकुर साहब के जोम की खूब जानकारी थी।

सरदार जसवन्तसिंह ने कलाई पर बंधी घड़ी की ओर देखा। बहुत रात बीत गई थी। उसने कहा—"अभी तक तो दंगाइयों की ओर से कोई हरकत हुई नहीं।"

"इस मोहल्ले के लिए शायद कोई डर नहीं।" बिहारीलाल ने जेब से अखबार में लिपटा हुआ एक चाकू बाहर निकाल लिया।

बन्दूक पोंछते हुए, सरदार जसवन्तसिंह बोला—"फिर भी तैयार तो रहना ही चाहिए।"

"सो तो है ही, सो तो है ही।" सुन्दरम् ने समर्थन किया।

जैसे-जैसे रात गुजर रही थी, डर मन से निर्वासित होता जा रहा था। कुछ देर चुप्पी का वातावरण रहा, तो सुन्दरम् को झपकी-सी आने लगी। पास बैठे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जसवन्तसिंह ने उसका हाथ पकड़कर झकझोरा। कहा—"होशियार रहो।"

समय गुजरता गया। बहादुरसिंह तलवार की मूठ पर अंगुलियां कसे हुए थे, जो क्रमशः अब आलस्य से ढीली होती जा रही थीं।

बिहारीलाल ने एकाएक चौकन्ने होकर कहा—"आप लोग सुन रहे हैं? कुछ शोर हो रहा है।"

सभी चौंककर उस आवाज को सुनने का प्रयत्न करने लगे। उन सब के चेहरे फक थे।

"हां-हां," जसवन्तसिंह बोला—"बिलकुल, बिलकुल। उधर शोर हो रहा है।" उसके हाथों में कम्पन हुआ। बन्दूक हिलने लगी।

धमाक्! एक जोरदार आवाज आयी।

ठाकुर बहादुरसिंह के सीने में जोरदार धड़कन होने लगी। हाथ से खानदानी तलवार छूटकर नीचे गिर गई। घबराहट-भरे स्वर में वह बोले—"दंगाई इधर आ रहे हैं। गोली की आवाज आयी है। उनके पास बन्दूकें भी हैं।"

एक-दो-तीन—लगातार तीन फायर हुए।

सुन्दरम् ने दांत पीस लिये। उसकी मुट्ठियां भिंच गईं।

बिहारीलाल फुसफुसाया—"शोर बढ़ रहा है।"

जसवन्तसिंह घबराहट के स्वर में बोला, "कुछ कीजिए न, ठाकुर साहब!"

ठाकुर बहादुरसिंह ने दबे-दबे स्वर में जवाब दिया—"वे काफी हैं। और लगता है कि उनके पास बन्दूकें भी बहुत हैं। मैं अभी आया। भीतर से कारतूस ले आऊं।" और बहादुरसिंह तुरन्त उठकर भीतर चले गये।

बिहारीलाल, सुन्दरम् और जसवन्तसिंह— सभी के शरीर से पसीना छूट निकला। सुन्दरम् ने खिड़की खोलकर एक दरार बाहर की स्थिति देखने के लिए बनानी चाही।

"खिड़की मत खोलो! बेवकूफ कहीं के!" जसवन्तसिंह गला दाब कर चिल्लाया।

शोर पास आता जा रहा था और इन तीनों के दिलों की धड़कनें उसी अनुपात में क्रमशः तेज होती जा रही थीं, जिस अनुपात में शोर बढ़ रहा था। सब के शरीर पसीने से सराबोर हो गए, हालांकि मौसम ठंड का था। भीतर गए ठाकुर बहादुरसिंह का अभी तक पता न था। बिहारीलाल एकाएक हिलने लगा। सुन्दरम् ने आंखें मूंद लीं।

कमरा चारों ओर से बन्द था। सब चुप थे। कोई दूसरे से बात नहीं करना चाहता था, या कि कर नहीं पा रहा था।

शोर पास आता गया, और पास आता गया। फिर आवाजें स्पष्ट हुईं। कोई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोकगीत था, जिसे महिलाएं सम्मिलित रूप से गा रही थीं।

बीच-बीच में बन्दूक के फायर की भी आवाज आती जाती थी।

साहस कर सुन्दरम् उठा। उसने खिड़की खोलकर दरार बनाई, और फिर बाहर देखा। एक छोटा-सा जुलूस था स्त्रियों और कुछ मर्दों का।

फर्श पर बैठा हुआ जसवन्त सिंह ऊंचे स्वर में चिल्लाया, "सवेरे के छः बज चुके हैं। कर्फ्यू समाप्त हो गया।"

विहारीलाल का कांपना बंद हुआ। उसने एक गहरी सांस खींची और फर्श पर पड़ा नंगा छुरा अखबार में लपेटा।

तीनों कमरे का दरवाजा खोलकर बाहर आए।

ठाकुर बहादुरसिंह अभी तक भीतर से नहीं लौटे थे। उनकी तीन सौ साल पुरानी नंगी तलवार फर्श पर पड़ी चमक रही थी।

शोर अब भी हो रहा था। बन्दूक चलने की आवाज भी रह-रहकर हो रही थी।

१९६१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक खानदानी आदमी

तीन दिन !

इन तीन दिनों में गारू उत्तेजित हो उठा था। उसके काले चेहरे पर सफेद बाल बढ़ रहे थे। वे इतने ज्यादा बढ़ चुके थे कि उसका डेढ़ साल का बच्चा अपने मुलायम गाल पर बाप की 'मिट्ठी' बरदाश्त नहीं कर पाता था। और जोर से चीखकर दाएं-बाएं कुछ इस तरह फड़फड़ाने लगता था, जैसे भूख से गारू, उसके आठ बच्चे और उसकी बीवी फड़फड़ा रही थी। गारू को लगा जैसे ये तीन दिन ज़िन्दगी के सबसे ज्यादा दुःख वाले दिन हैं, भीतर-ही-भीतर गारू को महसूस हुआ जैसे कोई तेज धार वाली तलवार उसे चीर रही है। वह बेचैनी से उठा, और सामने वाले फुटपाथ पर जाकर बैठ गया। पर न जाने क्यों गारू के मन की व्याकुलता बढ़ती ही गयी।

एक फुटपाथ से उठकर दूसरे फुटपाथ पर जा बैठना, भूख भुलाने का कोई तरीका नहीं है। गारू को इस दूसरे फुटपाथ से जिंदगी और भी घिनौनी, तंग और कड़वी लगने लगी। सामने वाले फुटपाथ पर, जिसके एक किनारे-किनारे गंदी नाली बह रही थी, और जहां से उठकर वह आया था, उसकी पत्नी बैठी थी। गंदे चिथड़े, धूल से रंगे मटमैले कपड़े, वक्त से पहले बूढ़ी हो गयी गारू की पत्नी सारी गृहस्थी संभाले थी। और फिर उसी फुटपाथ पर दूर-दूर तक उसके जैसी गृहस्थी वालों की एक लंबी कतार चली गयी थी।

उसने फुटपाथ नं० दो पर बैठे-बैठे देखा, सामने उसका सबसे छोटा बच्चा एकाएक ही जोर-जोर से चीख उठा था। उसकी मां उसे हर तरीके से चुप करने का भरसक प्रयत्न कर रही थी, पर वह लगातार चीखे जा रहा था। बैठे-बैठे गारू को ऐसा लगने लगा जैसे बच्चे की हर चीख कोई जलती हुई सलाख हो, जिसे उसके कानों में बार-बार डाला जा रहा है। जैसे-जैसे बच्चा रोता, गारू को लगता जैसे भीतर से कोई 'आवाज' उसे गालियां दे रही है, कोस रही है। गारू उठ खड़ा हुआ। उसने एक बार फिर निश्चय किया, वह अस्पताल वाली इमारत में फिर जायगा, वह फिर एक बार अपना व्यवसाय चलाने का यत्न करेगा, जिसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धोखे से खो चुका है। गारू वहां पहुंचा, चौकीदार उसे जानते थे। उन्होंने उसे भीतर जाने दिया।

भीतर गारू पहुंचा तो डॉक्टर ने उससे पहले तमाम बार की तरह जल्द और मीठी-सी बात नहीं की। गारू कुछ देर खड़ा रहा, डॉक्टर उसी तरह सिर झुकाए हुए माइक्रोस्कोप में कुछ देखता रहा। गारू को डॉक्टर के इस व्यवहार पर बिलकुल आश्चर्य नहीं हुआ। फुटपाथ पर अपने जीवन के तैंतीस साल गुजारने के बावजूद गारू जीवन की गहराइयों और दुनियादारी को खूब समझता था। जब बर्दाश्त से अधिक देर तक चुप्पी रही तो गारू बोल उठा—हुजूर !

—हूं !—डॉक्टर ने बगैर सिर उठाए कहा।

गारू बोला—एक अर्ज है !

—कहो !— उसने उसी लापरवाही से कह दिया।

गारू जरा साहस से बोला—मेरे बच्चे तीन दिन से भूखे हैं। गोद का बच्चा तो मरा जा रहा है मालिक ! तीन दिन से उसकी मां के पेट में एक दाना नहीं गया। मेरी नहीं तो मेरे बच्चों की हालत पर ही रहम कीजिए।

अब डॉक्टर ने सिर उठाया। किसी ढांचे की तरह गारू सामने खड़ा हुआ था। पर उसे गारू के बीभत्स और गंदे शरीर को देखकर घृणा नहीं हुई। अस्पताल में अकसर वैसे ही ढांचे आया करते थे। उसने स्वर में हमदर्दी और प्यार घोलने का बनावटीपन पैदा कर कहा—मैं क्या कर सकता हूं?

—आप चाहें तो सब कुछ कर सकते हैं मालिक !— गारू किसी भिखारी की तरह गिड़गिड़ाया—बस ! एक बार मुझे काम में ले लीजिए—एक बार !

थोड़े कड़े स्वर में डॉक्टर ने कहा— मैं तुमसे दो बार कह चुका हूं, अब तुम हमारे किसी काम के नहीं। तुम्हारे खून में बिलकुल दम नहीं है, एकदम बोगस ! बेहतर हो तुम और कोई काम तलाश कर लो।

बात समाप्त होते न होते उसने अपना सिर फिर माइक्रोस्कोप पर झुका दिया, और गारू की ओर से उपेक्षा का एक गहन भाव प्रकट किया।

गारू हिम्मत नहीं हारा। उसने सुन रखा था, मीठी आवाज में जादू होता है। उसने आंखों में पहले से कहीं अधिक याचना का भाव प्रकट किया, और दोनों हाथ मिलाकर कहा—"डॉक्टर साब ! मेरे नन्हे-नन्हे आठ बच्चे हैं, सब भूख से मर जायेंगे ! मुझे सिर्फ इस मौके पर काम में ले लीजिए। हाल अगर पेट-पानी का टंपरेली बंदोबस्त हो गया तो मैं फिर कोई काम तलाश कर लूंगा। भीख मांगना भी नहीं आता हुजूर वरना वैसे ही तीन-चार दिन गुजार देते !" गारू किसी हलुए की तरह मुलायम होकर बोला—एक बार मुझे मौका दीजिए। मेरी उमर ही क्या मालिक ! सिर्फ तैंतीस साल, फिर मेरा खून कैसे बोगस हो सकता है ? फिर मैं आपसे जबरदस्ती थोड़े ही करना चाहता हूं। खून अच्छा हो या बुरा, मैं आपका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुक्म सिर आंखों पर लेता हूं। पर, इस बार एक मौका दे दीजिए ! मेरे बच्चे की कुत्तों से बदतर हालत है।

डॉक्टर ने फिर सिर उठाया। इस बार उसकी आंखों में तिरस्कार का एक स्पष्ट भाव तैर रहा था। एक क्षण गारू को घूरने के बाद वह बोला—तुम समझते क्यों नहीं, हम सरकारी नौकर हैं, इस तरह कैसे गैर जिम्मेवारी से तुम्हारा खून काम ले लें ? तुम तो हमारी टेकनीकल परेशानियां समझते ही हो। किसी भी मरीज के लिए तुम्हारा खून काम में ले लेना, उसके लिए हितकर नहीं है। उसकी जान की जिम्मेदारी कौन लेगा ?

गारू थोड़ा निराश हुआ। उदासी से उसका चेहरा फीका पड़ गया। फिर भी उसने कहा ही—आप चाहें तो सब कुछ हो सकता है। ज्यादा नहीं तो आधा छटांक ही ले लीजिए। फिर ऐसी तो कोई बात नहीं, मैं तो पिछले कई साल से यही धंधा कर रहा हूं। मेरे बाप ने भी यही किया था, सरकार ! इसी अस्पताल में हजारों का खून मैंने बेचा है। इस तरह मुझे निराश मत कीजिए।

डॉक्टर धर्मसंकट में पड़ गया। गारू का निवेदन गैरवाजिब नहीं था, उसने हजारों रुपये का खून बेचा था। उसका बाप भी यही करता था। कई साल से इसी धंधे के सहारे वह अपने परिवार का भरण-पोषण कर रहा था। ऐसी हालत में एकाएक ही उसके खून में कुछ गड़बड़ी आ गयी थी, फिर उसकी उम्र भी जवानी को लगभग पीछे छोड़ चुकी थी। और उसके खून में अब वह ताकत नहीं रही थी, जो किसी जवान व्यक्ति के खून में होती है। ऐसा खून जिसमें बीमारी और कमजोरी समाई हो, किसी मरीज के काम में ले आना, हत्या के बराबर का पाप मोल लेना ही था। डॉक्टर एक क्षण तक चिंतित हो गया। ऐसे आदमी को जो सालों से खून बेचने का धंधा कर रहा था, इस तरह उसके पेशे से रोक देना भी उचित नहीं था।

गारू बोला—कुछ सोच रहे हैं, हुजूर ? पर मैंने कभी भी खून बेचने में सोच-विचार करने का इतना वख्त नहीं लिया।— एकाएक गारू दयावंत हो गया। दुःख से भीगी आवाज में वह बोला—आप भी बाल-बच्चे वाले हैं, फरक इतना है कि आप जान बचाने का धंधा करते हैं, मैं जान देने का ! पर मैंने किसी से कम धरम-पुन्न नहीं किया, वो तो राम जाने किस जन्म का पाप है, जो मुझे ये कीड़ों की-सी जिंदगी गुजारनी पड़ रही है ! वरना मैंने किसी अमीर से कम धरम नहीं कमाया ! अमीर लोग धरमशालाएं, मठ, मंदिर खोलकर पुन्न कमाते हैं। पर सरकार ! मैंने खून बेचा है ! खून ! और···—और कुछ रुककर वह बोला—खून उस भाव पर कभी नहीं खरीदा जा सकता, जिस भाव पर मैंने बेचा है, खून की कोई कीमत नहीं।

एक बार तो डॉक्टर को लगा, जैसे किसी बड़े दार्शनिक से उसका सामना हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

9858
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गया है। उसे अपनी पढ़ाई-लिखाई पर भी संशय होने लगा। चिथड़ों में ढंका गारू जैसा आदमी भी इतनी समझदारी की बात कर बैठेगा, डॉक्टर ने विचार भी नहीं किया था।

गारू कहता गया —अन्नदाता ! मैं बहुत दुखी आदमी हूं, मेरी दरखास पर एक बार फिर गौर कीजिए !

डॉक्टर को गारू ने सचमुच ही उलझन में डाल दिया, दोनों स्थितियों में ही वह लाचार हो गया। फिर कुछ सूझ उसे आयी। जेब से दो रुपये के नोट निकालकर उसने गारू की ओर बढ़ा दिये। कुछ संकोच के साथ बोला – गारू ! सचमुच ही खून की कोई कीमत नहीं होती ! खैर, ये लो !—उसने हाथ में पकड़े हुए नोट हवा में हिलाये—मैं तुम्हें इसके आलावा और कुछ नहीं दे सकता !

गारू ने एक बार जलती हुई दृष्टि डॉक्टर के हाथ में थमे दो रुपये के नोटों पर डाली। बरबस ही लाख चाहे बगैर उसके चेहरे पर दृढ़ता और क्रोध के मिले-जुले भाव उतर आये। फिर भी विनम्र होकर उसने कहा—इन्हें रहने दीजिए, डॉक्टर साब ! मैं तो अपनी कमाई पर भरोसा करता हूं। आप इस सबके बजाय मेरा खून क्यों नहीं ले लेते, न आपका अहसान, न मेरी लाचारी !

खीझकर डॉक्टर ने नोट वापस जेब में रख लिये। बोला—तुम्हारा खून नहीं लिया जा सकता। वह किसी काम का नहीं है। तुम्हारे खून के सेल्स बेकार हैं। और तुम्हारे खून में बीमारी भी है।

गारू कहने लगा—मगर···

—मैंने कहा न ! चिल्लाकर डॉक्टर बोला—हम तुम्हारा खून नहीं लेंगे। सरकार का पैसा बरबादी के लिए नहीं है ! अब मेरा टाइम फालतू बरबाद मत करो, तुम जा सकते हो।—उसने अपना सिर फिर माइक्रोस्कोप पर झुका दिया।

गारू बाहर निकल आया। उसके पैर भारी थे। उदासी और निराशा ने सारे शरीर में आलस भर दिया था। गारू अस्पताल से बाहर गेट तक आया तो उसे अंबूराव दिख पड़ा। अंबूराव अस्पताल की ओर चला जा रहा था। उसकी उम्र चौबीस-पचीस साल से अधिक नहीं थी। गारू को उससे सहानुभूति हुई। उसका मन भर आया। एक दिन खुद गारू भी इसी उम्र में ऐसी ही चाल में, अस्पताल का गेट पार कर भीतर जाता था। खून बेचता था, पैसा लेता था। और अब इसी रास्ते से सिर झुकाकर निराशा से थका-थका लौट रहा था। अंबूराव जल्दी में था, वह गारू के पास बगैर रुके, भीतर जाने लगा, तो उसने उसे रोक दिया। अंबूराव जब पास आया तो गारू बोला—कहां जा रहे हो ?

अंबूराव ने उसी तेजी और मस्ती के साथ उत्तर दिया—बैंक तक ! जरा चेक पटाना है।—उसका मतलब खून की बिक्री से था। गारू समझ गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

—हूं !—उसी तरह मुर्दा आवाज में गारू ने कहा। वह अंबूराव को समझाना चाहता था। पर उसे चेक पटाने की जल्दी थी। उसने कहा—बस ! मैं अभी लौट के आता हूं। तू जाना मत !—वह अस्पताल की ओर बढ़ते-बढ़ते कहता गया—आज 'पुरोगिराम' है।

अंबुराव चला गया, तो गारू फिर फुटपाथ पर जाकर बैठ गया। सामने फुटपाथ पर अब भी उसकी पत्नी बैठी थी। गोद का बच्चा रो-रोकर शायद सो गया था। गारू सोचता रहा—एक दिन अंबूराव के बच्चे भी इसी तरह फुटपाथ पर बेबस पड़े रहेंगे, और अंबूराव नंबर दो पर इसी तरह, जिस तरह आज खुद गारू बैठा है, पड़ा रहेगा। सामने से उन्हें देखता रहेगा। एक दिन गारू भी इसी तरह चेक पटाने जाता था, इसी तरह 'पुरोगिराम' बनाता था। पर, अब उसका एकाउंट चुक गया है। बैलेंस में कुछ नहीं है। गारू को यह सोचकर दुःख हुआ, कि एक दिन अंबूराव का भी एकाउंट इसी तरह चुक जायेगा। बैलेंस खत्म हो जायेगा। उसके खून के सेल्स बेकार हो जायेंगे। देर तक सोचता रहा गारू।

कुछ देर बाद अंबूराव वापस लौटा। उसका चेक भुन गया था। आंखें मुंद-सी रही थीं। फुर्ती और तेजी उसके शरीर से दूर हो गयी थी। जब गारू के सामने वह आकर खड़ा हो गया, तो उसने उसके चेहरे पर सिक्कों की एक फीकी-सी चमक देखी। गारू का मन पीड़ा से भीतर ही भीतर रो दिया। इच्छा हुई, अंबूराव को समझाए। एक दिन उसका एकाउंट भी खत्म होने वाला है। पर अंबूराव इस बार भी जल्दी में था। उसने गारू का एक हाथ पकड़कर फुटपाथ से उठा लिया—चल ! 'पुरोगिराम' में देर हो जायेगी !

दोनों रास्ते पर चले तो अंबूराव कहता गया—गारू ! 'सराप' बड़ी जरूरी चीज़ है। नहीं मिलती तो अपनी तो जान ही निकल जाती है ! बदन टूटने लगता है यार !

गारू ने कोई उत्तर नहीं दिया। उसे अंबूराव के भविष्य के प्रति सहानुभूति थी।

अंबूराव कहता गया—यार गारू ! जिंदगी चार दिन की है। इसमें क्या रोना-गाना ? तबीयत के साथ खाओ-पियो, मौज करो !

गारू के मन में विचार आया, एक बार अंबूराव से कहे, ये धंधा अच्छा नहीं है, पर दूसरे ही क्षण गारू ने अपना इरादा बदल दिया। उसने अंबूराव से कुछ नहीं कहा। वह जानता था, इस तरीके से अंबूराव उसे अपने 'पुरोगिराम' से अलग कर देता। अंबूराव का स्वभाव दूसरी तरह का था। वह अपने किसी भी काम की आलोचना बर्दाश्त नहीं कर सकता था, और न ही उसे कोई सुझाव पसंद था।

जब गारू और अंबूराव शराब पीकर लौटे तो आधा रास्ता आते न आते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दोनों पर ही काफी सरूर आ गया था। गारू तो नशे में बहक-बहककर डॉक्टर को कोसने लगा। उसने कहा—अंबूराव ! वह बैंकवाला डॉक्टर है न ! कहता है, मेरा खून अब काम का नहीं रहा। उसके सेल्स में दम नहीं है !

अंबूराव चुपचाप चलता गया। गारू बोला—ऐसे जाने कितने डॉक्टर मेरे सामने आये और चले गये। किसी ने तो मेरे खून के सेल्स बुरे नहीं बतलाए। ये कल का लौंडा, मेरे सेल्स बुरे बतलाता है ! उसने लड़खड़ाती चाल में चल रहे अंबूराव को रोककर कहा—तू सच बता अंबूराव, मेरे सेल्स खराब हैं ? तुझे तेरे प्यारे से प्यारे की कसम ! ईमान से कहना, मेरा खून खराब है ?

—नई-नई ! यार ! वो डॉक्टर कुछ नई समझता ! वह एकदम लौंडा है। वो कुछ नहीं जानता।—अंबूराव ने अपने शराबी दोस्त का समर्थन किया।

—उसने मेरा खून खरीदने की नाहीं कर दी। अब तू ही सोच अंबूराव, मैं कहां जाऊं, क्या करूं ? अपुन लोग तो जन्म से ही ये धंधा करते आये।—लड़खड़ाते हुए कुछ रुककर गारू बोला—तू मेरा हमपेशा है, हमपेशा और भाईबन्द में कोई फरक नहीं होता। तू मुझे सलाह दे।

एक क्षण को अंबूराव भी सोच में पड़ गया। गारू उसका हमपेशा था, उसे कुछ-न-कुछ सलाह देना आवश्यक था। एक बार दिमाग पर उसने काफी जोर डाला। फिर बोला—गारू यार ! तू कमजोर भी तो बहुत है, नई तो कहीं मजदूरी कर लेता।

गारू ने उतर दिया—अंबूराव ! तू नशे में है ! मैं मजदूरी करूंगा ? मुझ पर वह नहीं बनेगी। मैं तो सीधा-सादा अपना खानदानी पेशा करूंगा, खून बेचा, पैसे लिये। ये कमाई भी काफी मेहनत की है।—नशे में एक जोरदार हिचकी लेकर उसने बात जारी रखी—मैं अपना खानदानी धंधा छोड़कर बाप-दादों की नाक कटवाऊंगा ? मजदूरी करूंगा ? हिश्श !

अंबूराव कोई उत्तर नहीं दे सका। वह नशे में जरूर था पर बेसुध होकर अपने हमपेशा पड़ोसी को कोई बोगस सलाह नहीं दे सकता था। कुछ देर दोनों ने चुपचाप रास्ता तै किया तो यह जिक्र ही समाप्त हो गया। दोनों हमपेशा मित्र शराब के गुणों, औरत की खूबियों और आदमी की जरूरतों पर गम्भीर चर्चाएं करते हुए फुटपाथ नंबर एक पर वापस आ गये।

गारू ने देखा, उसकी स्त्री के चेहरे पर मुसकान थी। बच्चे खेल रहे थे। गारू को एकाएक ही भरोसा नहीं हुआ। क्या वे तीन दिन के भूखे उसके बच्चे ही हैं ? जो तीन दिन से भूखे थे, और जिनके चेहरे मुर्दों से भी बदतर नजर आ रहे थे ? गारू को लगा जैसे वह सब परिवर्तन नशे में देख रहा है। उसने झूमते हुए फुटपाथ पर बैठी पत्नी से पूछ ही लिया—क्या बात है ?

पत्नी जानती थी, गारू के इस प्रश्न का अर्थ क्या था। उसने कुछ मुसकान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के साथ उत्तर दे दिया—सब ठीक हो गया है।

कैसे ? गारू ने अचरज से पूछा।

—डॉक्टर बहुत भला आदमी है। उसे तुम्हारा खून पसंद नहीं आया तो जब तुम चले गये तो उसने मुकुंदा का खून काम में ले लिया।

—मुकुंदा का ?—गारू चिल्लाया। उसकी चिल्लाहट में पीड़ा भी थी।

पत्नी चुप रही तो लड़खड़ाकर गारू जमीन पर बैठ गया। नशे से अधखुली आंखों से उसने पास ही लेटे हुए अपने सबसे बड़े लड़के मुकुंदा की ओर देखा, जो सो गया था। गारू देर तक बैठा उसकी ओर देखता रहा, उसने प्यार से सोते हुए मुकुंदा के सिर पर हाथ फिराया। गारू ने सोचा—ईश्वर कितना दयावंत है। उसने हर समस्या का कोई अंत जरूर रखा है। गारू ने झुककर मुकुंदा का माथा चूम लिया। उसे खुशी थी, मुकुंदा अपने बाप-दादों की शान कायम रखेगा। खानदानी धंधा छोड़ देना पाप भी है और बदकिस्मती भी।

गारू देख रहा था, मुकुंदा के चेहरे पर खून निकल जाने की कमजोरी में भी एक ऐसी चमक थी, जो खानदान की गवाही देती है।

१९६१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्रहण लगा चांद

सर्दी की सुबह कमजोर याददाश्त की तरह जल्दी ही छत पर से गुजर जाती है। कुछ देर बाद ही धूप निकल आती है और किवाड़ की दरारों में से सूर्य की किरणें जबरन कमरे में घुस पड़ती हैं। फिर भी, लिहाफ से बाहर सिर निकालना कर्जा चुकाने की हिम्मत से कम नहीं है।

ऐसी ही एक सुबह, मैं लिहाफ में था कि सर्दी का झोंका इधर से उधर गुजर गया। पीछे-ही-पीछे सूरज की कुछ किरणें बे-बुलाए मेहमान की तरह जहां-तहां से कमरे में घुस पड़ीं। मैंने कुछ साहस करके लिहाफ से सिर बाहर किया तो नीचे गली में चूड़ियों की खनक और झाड़ू की सरसराहट के मिले-जुले स्वर कानों में घुल-मिल गये।

गोमती गली में झाड़ू दे रही थी। ज्यों ही मैंने दरवाजा खोला, वह कह उठी, "भैयाजी, दरवाजा उढ़क लो, धूल आ जायगी।"

मैंने दरवाजा बन्द कर दिया और कुछ देर तक कमरे में बैठा सोचता रहा, गोमती के बारे में। वह हर रोज सुबह नयी किरण की तरह इस बर्फीली सर्दी में भी अपने काम पर मुस्तैद रहती। बिखरी-बिखरी जुल्फे, सावन की हसीन हंसी-सा चेहरा, अटूट फुर्ती, गहरी आंखें, जिनमें एक चुनौती-सी तैरती रहती—गोमती का कुल व्यक्तित्व था, जो हर औसत ज़िन्दगी के लिए एक सबक कहा जा सकता था। गोमती गली में आती तो मानो जवानी का एक दौर कचरे भरी गली पर गुजर जाता और वह गली आस-पास रहने वालों को एक ताजे फूल की तरह हंसती-सी नजर आती।

तभी बाहर से गोमती की आवाज आयी—"भैया, दरवाजा खोल दो।"

मैंने कल्पना के घोड़े को रोक लगाई और दरवाजा खोला तो देखा, सामने वाले मकान के चबूतरे पर पैर लटकाये गोमती बैठी थी। जांघ पर झाड़ू टिकाये वह अपने दोनों हाथों को पीछे ले जाकर गुस्ताख बालों का जूड़ा बनाने में जुटी थी।

दरवाजा खोलकर फिर से लिहाफ में जा दुबका तो वह देहरी तक आ गई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और एक मोहक सकुचाहट से पूछा—"चाय बोल आऊं ?"

और दिनों की तरह उसने आज भी चाय पीने की इच्छा प्रकट की थी। यही उसका पेटेन्ट तरीका था। मैंने उसे चाय बोल आने को कह दिया।

गोमती चली गई। कुछ देर बाद लौटी तो पीछे-पीछे होटल का छोकरा काली नेकर और गन्दी बनियान पहने हुए चला आया। उसने दो प्याले भरे। एक गोमती के सामने रखकर, दूसरा मेरे हाथ में थमा दिया।

गोमती आराम से देहरी पर पैर फैलाकर बैठ गई। उसने झाड़ू एक ओर टिका दी। मैं लिखता रहा। एक आवाज के साथ चाय की चुस्की खींचकर उसने कहा—"जाड़ा बहुत है।"

"हूं !" मैं लिखता रहा।

उसने फिर चुस्की ली और बोली—"बाबू, एक बात पूछूं ?"

"हूं !"

"तुम बाई को क्यों नहीं बुला लेते ? कैसे अकेले मन लगता होगा तुम्हारा ?"

"बुला लेंगे !" मैं उसी तरह लिखने में लगा रहा तो मेरी व्यस्तता को समझे बगैर वह फिर बोली—"राम जाने, तुम कैसे जाड़ा काट देते हो ? हां, तुम्हारे एक बच्चा भी तो है ?"

"हां, तो ?" अब मुझे लिखना बन्द करना पड़ा। गोमती पूरी तरह बात करने के मूड में थी।

"तुम्हें अपने बच्चे की याद नहीं आती ?" उसने बड़ी सरलता से पूछा।

"आती क्यों नहीं ?" हंसकर मैंने कहा।

"लो—चाय को भी तो देखो, बिलकुल पानी हो चली।" अपने कप-प्लेट एक ओर सरकाते हुए, उसने कहना जारी रखा—"अब तो बुला ही लो।" एक बच्चे की-सी जिद और वजन था उसमें।

"बुला लेंगे। इस कमरे में जगह कम है। ढाई आदमी का गुजारा नहीं होगा।"

"वाह !" वह बोली—"दिल में जगह हो तो जगह की क्या कमी ?"

झाड़ू एक हाथ में उठाकर उसने दूसरे हाथ से एक दार्शनिक की तरह तीलियां गिननी प्रारम्भ कर दीं। फिर आंखें झुकाकर, एक नटखट किन्तु बोझिल लज्जा के साथ दबे-दबे उसने कहा—"मेरा घरवाला तो मुझे छोड़ता ही नहीं !"

"अच्छा !" मुझे हंसी आ गई। गोमती की उमर चालीसे में प्रवेश करने को है, पर बात कैसी अल्हड़ जवानी की कर रही थी वह !

कहने लगी—"जब से ब्याह हुआ है, उसने तो मुझे कैद ही कर लिया है। तीन रोज से ज्यादा तो छोड़ता ही नहीं ! कहता है, तेरे बगैर ये घर खाने को दौड़ता है।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैंने मजाक किया—"कैद कर लिया होगा तूने उसे।"

अब तो वह पहले से कहीं अधिक लजा गई। इस प्रश्न से वह सकपका गई, और घबराहट में झाड़ू की कई तीलियां उसने चटखा दीं। उसी मस्ती में वह बोली—"नहीं-नहीं, मैंने उसे बिलकुल कैद नहीं किया। वही कहता है कि मैंने···" वह बात पूरी करते-करते ठिठकी, तो मैंने पूछा—"हां, गोमती, क्या कहता है वह?"

"हैं-हैं," कुछ और लजाकर उसने अटकी-अटकी बात कहनी चाही लेकिन जैसे खुशी से वह बोल न पा रही हो - उसका गला रुंध गया। कुछ रुककर वह फिर बोली, "कहता है कि मैंने ही उस पर कुछ जादू-मंतर कर दिया है।"

"कर दिया है···क्या?" मैंने कुछ शरारत से पूछा। अब मैं ठंड महसूस नहीं कर रहा था। गोमती की बातें ही काफी गर्म थीं।

"नहीं-नहीं," उसने एक हाथ मेरी ओर उठाकर हिलाया, जैसे मैं सचमुच ही उसे जादूगरनी समझता हूं। "मैंने उस पर कोई जादू नहीं किया।"

"फिर?" मैंने पूछा।

"वह तो यों ही ठिठोली करता है। उसकी आदत जो है!" गोमती बोली—"सीधी-सी तो बात ये है कि मुझे भी उसके बगैर अच्छा नहीं लगता।"

"तो दोनों का एक ही हाल है!"

"हां, नहीं-नहीं"—करती गोमती बगैर कुछ कहे चल दी। मैंने देखा, उसकी चाल तेज थी—बहुत तेज। चलते में उसका सारा शरीर हिल रहा था, जैसे वह दुनिया की सबसे अधिक सुखी स्त्री हो।

उसके बाद करीब तीन-चार रोज गोमती को चाय पीने का मूड ही नहीं आया। एक दिन फिर उसने चाय पी। हमेशा की तरह वह मेरे कमरे की देहरी पर आ बैठी। फिर उसने बात शुरू कर दी, "खाना तो खाते ही होंगे?"

"ये कोई बात हुई?" मुझे बरबस ही गोमती के विचित्र-से सवाल पर हंसी आ गई।

शायद उसे अपनी गलती का विचार आया, कुछ लजाकर उसने पूछा—"होटल में या घर में?"

"घर पर ही बना लेता हूं।" मैंने कहा।

आश्चर्य से उसने पूछा—"तुम्हें रोटी बनाना आता है?"

"हां।"

"मैं तो समझती थी, तुम सिर्फ लिखना-पढ़ना ही जानते हो!" बड़ी सादगी के साथ उसने कहा, "कल रात काफी देर से लौटे होगे, बाबू? तुम्हारी आंखें लाल हैं।"

मैं सचमुच ही रात देर से घर लौटा था। "हां, क्लब चला गया था।" मैंने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तर दिया।

"ये किलब क्या होता है ?"

"खेलने की जगह।" मैंने बताया।

"तुम जुआ खेलते हो ?" कुछ नफरत से वह बोली, "ये तो बहुत बुरी बात है।" इससे पहले कि मैं उसे कोई सफाई दूं, वह कहती ही गई—"मेरा घरवाला है न, उसे भी जुए की लत थी। शराब भी पीता था। पर घरवाली किसी कर्म की हो, तो मर्द को बस में रखती है। मैंने उसे धीरे-धीरे करके ठीक कर लिया है। अब न तो वह शराब पीता है, न जुआ खेलता है। इसीलिए तो कहती हूं कि बाई को बुला लो, सारी बुरी आदतें छूट जाएंगी।"

गोमती पर मुझे क्रोध भी आया और फिर उसकी सरलता पर हंसी भी। मैंने कह दिया—"तुम कहती हो तो मैं आज ही चिट्ठी लिखे देता हूं।"

"तो बुला रहे हो ?" वह खुश होकर बोली।

"हां," मैंने कहा।

"तुम अच्छे आदमी हो," उसने कहा, "अब एक कहा मेरा और करो, बाई को तो बुला ही रहे हो, ये रात-बिरात देर से घर आना छोड़ दो।" वह कहती गई—"मैं तो अपने से जानती हूं। पहले मेरा घरवाला भी देर से घर आता था। रोज रात को एक-एक, दो-दो बजे। तो मुझको 'चैन' नहीं पड़ता था।" शब्दों का प्रयोग कब कहां कैसे हो, गोमती नहीं जानती। कहने लगी—"मैंने उसे पहले तो प्यार से नाहीं की, जब नहीं माना तो एक मोटी डांट लगा दी। तब भी नहीं माना तो मैं उससे गाल फुलाकर बोलने लगी। चौबीस घंटे पास रहना, मेरा गुस्सा कब तक सहता? एक रात उसने मुझसे माफी मांगी और आगे से फिर कभी रात को देर से न आने का 'पिरन' किया। उस दिन का दिन है कि वह रोज रात को नौ बजे सिपाही की 'डूटी' की तरह घर आके बैठ जाता है।"

मैं हंस पड़ा तो गोमती लजाकर चुप हो गई। कुछ देर बाद उसने मन की अनपची बात भी कह दी—"और, अब तो उसे कुछ ऐसी आदत है कि सांझ हुए घर से बाहर पैर नहीं निकलता। हां, तो तुम बाई को बुला रहे हो न ?"

"सचमुच बुला रहा हूं।"

"अच्छी बात है।" गोमती आश्वस्त हुई, जैसे उसके अपने सिर से कोई बोझ उतरने वाला हो। उसने कहा—"एक बात और है, घरवाली न हो तो घर घूरे-सा दिखता है। तुम घरभर में ऊपर-ही-ऊपर से आलिस-पालिस कर लेते हो। खटिया, कुर्सी, टेबल के नीचे ढेर-सा कचरा पड़ा रहता है।"

"कहती तो ठीक हो।" मैंने अपनी भूल मान ली।

कुछ देर तक तो वह बैठी रही, फिर उठ खड़ी हुई। झाड़ू हाथ में उठाकर चलने का उपक्रम करती हुई बोली—"अब मैं जाती हूं, तुम बाई को जरूर बुलवा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेना।"

स्वीकारात्मक ढंग से मैंने सिर हिला दिया और वह चली गई।

फिर कई दिन हो गए, गोमती चाय पीने नहीं आयी। एक रोज मैंने जब वह बाहर सड़क पर हमेशा की तरह झाड़ू लगा रही थी, पूछ लिया—"गोमती, चाय पियेगी?"

थोड़ा रूठकर गोमती बोली, जैसे उसका रूठना सचमुच ही मुझ पर असर डालता, "अब मैं चाय तभी पीऊंगी, जब तुम बाई को बुला लोगे।"

मैं निरुत्तर हो गया।

उसके बाद तो करीब दो महीने गोमती मेरी याददाश्त से बाहर रही। इस बीच मेरा सारा परिवार आ गया था, और मैं घरेलू उलझनों में इतना उलझ गया था कि कई दिन तक गोमती और उसके बारे में सोच भी न पाया। न ही मेरा ध्यान नाली की ओर गया जिस पर सफाई न होने के कारण पहले जैसी रौनक और जवानी न रही थी। एक दिन भोर हुए अचानक ही नींद खुली तो सड़क से झाड़ू खरखराने के स्वर आ रहे थे। गोमती की याद एकाएक ही ताजा हो गई। दरवाजा खोलकर देखा तो गोमती की-सी झाड़ू लिये कोई दूसरी मेहतरानी थी जिसने मेरे द्वारा गौर से अपना चेहरा देखे जाने पर लम्बा-सा घूंघट खींच लिया। बाद में पत्नी से मालूम हुआ, गोमती ने कई दिनों से यह वार्ड ही छोड़ दिया है और अब वह काम पर नहीं आती।

एक माह तक और मैं गोमती को नहीं देख पाया। एक दिन आफिस जाते समय मैंने देखा कि वह अपने ढंग से सड़क के किनारे-किनारे रास्ता करती चली जा रही है। यों तो रास्ते में किसी महिला से बात करना संकोचपूर्ण लगता है, पर न जाने क्यों गोमती के पास पहुंचकर मुझे लगा, मानो बहुत दिन पहले खोयी हुई कोई कीमती चीज़ मुझे मिल गई हो।

मुझे देखते ही वह ठिठककर रुक गई।

मैंने गौर से देखा, उसका चेहरा पहले से कहीं अधिक स्याह पड़ गया था। वह मुसकान जो हमेशा उसके चेहरे पर खेलती रहती थी, गायब थी। आंखों की चमक चली गई थी और उसकी जगह ऐसी उदासी उभर आयी थी जिसमें पीड़ा का आभास होता था। एक फीकी-सी हंसी हंसकर उसने पूछा, "कैसे हो, बाबू?"

"ठीक हूं।" मैंने कहा, "तुमने हमारे वार्ड को छोड़ दिया है?"

उदास और बोझिल स्वर में उसने कहा—"मैंने सारे वार्ड छोड़ दिये हैं।"

"क्या मतलब?"

"मतलब ये कि कई दिनों से मैं काम नहीं कर रही हूं।"

"काफी कमजोर हो गई हो, बीमार रही थी क्या?"

उसने एक बार मुझे इस तरह देखा जैसे मैंने उसके मर्म के किसी घाव को छू

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिया हो। उसकी पीली-सी आंखों में पहले से कहीं अधिक पीड़ा तैरने लगी। कुछ रुककर उसने कहा—"बीमार ही समझो।" फिर उसने बात बढ़ाई—"तुम सुनाओ, बाई को बुलवा लिया है क्या!"

"हां।" मैंने कहा—"तुम तो फिर चाय पीने आयी ही नहीं!"

वह मेरी इस बात से कुछ सिहर-सी गई। मुझे लगा जैसे गोमती के मर्मान्त पर फिर कोई चोट पहुंची है। मैंने महसूस किया जैसे भीतर-ही-भीतर वह किसी अजीब-सी घुटन में घुट रही है। गोमती के पास खड़े-खड़े अब मुझे कुछ उकताहट-सी आने लगी, वातावरण में एक विचित्र बोझ-सा लगने लगा, जब कि इससे पहले गोमती की बातों में चटपटापन और रस था। परन्तु इस गोमती और उस गोमती में काफी अन्तर आ गया था। इसीलिए मुझे उसके पास देर तक खड़ा रहना भला नहीं लग रहा था। लाचार, मैंने औपचारिक बातें शुरू कर दीं—"तुम इस थैले में क्या लिये हुए हो?"

गोमती का चेहरा यकायक सफेद हो गया। आंखों में भय और लज्जा के सम्मिलित भाव उतर आए। तमाम लोगों की तरह झूठ बोलने का साहस उसमें नहीं था। गोमती ने सकुचाते हुए बता दिया, "इसमें शराब की बोतल है।"

"सिर्फ शराब की बोतल है या बोतल में शराब भी है?" शरारत से हंसते हुए मैंने पूछा।

वह दबे-मुंदे स्वर में फुसफुसाई, "श···रा···ब भी है।"

"शराब भी है!" एकाएक ही मुझे गोमती के इस उत्तर पर भरोसा नहीं हुआ। मैंने फिर पूछा—"कहां लिये जा रही हो?"

जमीन की ओर सिर झुकाये हुए उसने दाएं पैर के अंगूठे से जमीन कुरेदना प्रारम्भ कर दिया। मानो धरती के भीतर से बोल रही हो ऐसे उसने कहा, "अपने घरवाले के लिए ले जा रही हूं।"

"मगर तुम तो कहती थीं, उसने पीना छोड़ दिया है?"

"हां, उसने पीना छोड़ दिया था, पर बगैर पिए उसकी तबीयत खराब होने लगी। पक्के शराबी के लिए शराब जरूरी है। डॉक्टर ने बताया है कि अगर उसे शराब न मिली तो वह···" इसके आगे वह बोल न सकी। उसकी उदास और बेनूर आंखें नम हो गईं और चेहरे की स्याही गहरा गई।

गोमती से मुझे सहानुभूति हुई और दुर्भाग्य से बेहद दुख। इससे पहले कि मैं और कुछ पूछूं, वह आगे बढ़ चली। मैंने कहा—"सुनो, गोमती!"

मगर वह रुकी नहीं। चलते-चलते कहती गई, "किसी को बताना नहीं, इज्जत का सवाल है।"

इसके बाद अर्से तक मुझे गोमती के बारे में कोई खबर नहीं मिली। हां, कल ही एक लोकल अखबार में पढ़ा कि पुलिस ने एक ऐसी औरत को पकड़ा है जो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बगैर परमिट शराब लाया करती है। उस औरत ने पूछे जाने पर कुछ भी बताने से इनकार कर दिया है। तभी गोमती का चेहरा एकाएक मेरी नजरों के सामने उभर आया। लगता था, मैं किसी चांद को देख रहा हूं, जो कभी बेदाग था पर आज क्रूर नियति की बेदर्द पकड़ में है—ग्रहण में ग्रसित है।

१९६१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शहर का काजी

जब-जब यह खिड़की खोलता हूं, सिनेमा के टेलर की तरह हर घर की तसवीर स्पष्ट होने लगती है। एक-एक कर तमाम कहानियां सजीव हो उठती हैं। हर आदमी और हर घर की अपनी एक कहानी है। खिड़की खुलती है तो ये तमाम कहानियां उभरकर स्मृतियों के सहारे आंखों के सामने सजीव हो उठती हैं।

खिड़की से बहुत कुछ दीखता है। वह ईदे का मकान है, कच्ची माटी पर एक सादी खपरैल में छाया हुआ। चौक के इर्द-गिर्द और बीच में भी उसके बच्चे नंग-धड़ंग लापरवाही से डोल रहे हैं। उनकी संख्या आधा दर्जन से अधिक ही होगी। बड़ी लड़की मंझले को गोद चढ़ाए हुए है। सबसे छोटा किसी बरसाती केंचुए की तरह जमीन पर रेंग रहा है। एक और है, जो ईदे की घरवाली के पास खड़ा हुआ रें-रें कर रो रहा है। शायद उसके रोने का अभिप्राय मां का गोद में न लेना है। पर वह भी क्या करे? एक गोद की बच्ची है, जिसे सुलाने का प्रयत्न वह कर रही है। रें-रें तेज हो रही है और ईदे की घरवाली, जिसकी उम्र अभी मुश्किल से तीस होगी, पर जिसकी आंखों के पास काले गड्ढे हैं, गाल पिचके हुए हैं और देखने पर उम्र पचास के करीब लगती है, एक गंदी गाली राम नाम के चलतू उच्चारण की तरह लापरवाही से उच्चार कर उसे डांटती है। पर बच्चा यों घुड़कियों से डरने वाला नहीं, डांट के साथ ही उसका स्वर मियां की तोड़ी से हटकर एकाएक पंचम पर पहुंच गया है।

ईदे के घर से लगा हुआ एक दूसरा झोंपड़ा है, जिसका आंगन ऐसे सूना है, जैसे उस घर के दरवाजे कभी शहनाइयां बजी ही नहीं थीं! इस घर की मालकिन गौरा के ब्याह को लगभग पंद्रह साल हो गये। पड़ोस वाले ईदे का आंगन इन पंद्रह सालों में कई फसलें दे गया, पर गौरा का घर, मन सब कुछ उजाड़ और वीरान है। भगवान का दिया क्या नहीं है गौरा के पास? घर, ज़मीन, जेवर सब कुछ तो है, पर यह आंगन···इसका सूनापन गौरा के सीने में भाले की नोंक की तरह गड़ता है। लगता है जैसे वह किसी भिखारिन से भी गई-बीती है। कभी-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कभार वह सोचती है—आज से नहीं, एक युग से, पिछले कई जन्मों से वह भूखी है।

मेरी खिड़की का खुलना इन तमाम कहानियों का जन्म लेना है।

झुककर देखिए तो बायीं ओर वह सड़क है, जहां से बारातें गुजरती हैं और मुरदे भी। इस सड़क पर घीसू का चूरन का ठेला भी है और जौहरी पंजाब राय की ज्वेलरी भी। यहां सुन्ना गिरहकट भी रहता है और सोनेराम सेठ भी।

इस खिड़की के ठीक सामने और सबसे नजदीक बिहास बाबू का मकान है, जिसकी छत पर खड़े होकर वे पड़ोस के आस-पास वाले सभी मकान वालों से कुशल-क्षेम ले लेते हैं। मुहल्ले की घटनाओं पर संपादकीय नोट दे देते हैं और कभी किसी से लड़ाई हुई, तो गालियां भी। इस छत का उपयोग केवल गरमी की शाम को होता है। बरसात और सरदी का मौसम वे नीचे के बरामदे में ही गुजारते हैं। यह बरामदा भी इस खिड़की से नजर आता है।

बिहास बाबू का मकान कुछ इस ढंग का या ऐसी जगह पर बना हुआ है कि इस मुहल्ले में आगम-निगम के समय आदमी लाचार होकर उस बरामदे के सामने से निकलता है, जहां बिहास बाबू दो-चार लोगों से घिरे मुहल्ले के हर घर की भीतरी और बाहरी ज़िन्दगी पर चर्चा करते रहते हैं, टिप्पणियां चिपकाते रहते हैं।

उस दिन जब जानकी ने अपने घरवाले के साथ जाने से मना कर दिया और उसके पिता ने जानकी के पति के चरित्र को लेकर कुछ संदेहास्पद बातें तथा रहस्यपूर्ण घरू घटनाएं भरी भीड़ में उद्घाटित कर दीं तो एकाएक ही सारे मुहल्ले में अजब-सी खुसुर-पुसुर व्याप्त हो गई। बात की बात में समाचार बिहास बाबू तक पहुंचा। वे नहा रहे थे। संदेशवाहक छोकरे ने बाथरूम के दरवाजे पर खड़े होकर सारी घटना कह सुनाई। बोला, "बिहास बाबू, जानकी का घरवाला कहता है, वह उसे जबरन ले जाएगा। सात भांवरें पड़ी हैं, कोई चोरी नहीं!"

जल्दी-जल्दी शरीर पर पानी डालते हुए उतावली से बिहास बाबू ने पूछा, "तो जानकी की मइयो ने क्या कहा?"

लड़के ने चट् से जानकी की मां का डॉयलाग बताया, "उसकी मइयो बोली, 'मेरी लड़की सिर पर सौत बिठाल कर तेरे साथ नहीं रहेगी'!"

"हूं!" बिहास बाबू का स्नान समाप्त हो गया था। तौलिये से शरीर रगड़ते हुए उन्होंने फिर पूछा, "फिर वह क्या बोला?"

"कुछ नहीं।" लड़के ने उत्तर दिया, "वह भी कम थोड़े ही है! बोला, 'तुम्हारे बाप नहीं रोक सकते हैं! रोक सको तो रोक लो!' और तब वह घर में घुसने लगा। जानकी भीतर वाले कमरे में रो रही थी।"

"हूं!" बिहास बाबू ने बाथरूम से बाहर निकलकर खड़ाऊं पहनीं और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जल्दी-जल्दी कदम बढ़ाते हुए कमरे में चले गए। पीछे-पीछे चलता हुआ लड़का कहता गया, "तुम्हारे बगैर कुछ नहीं हो सकता, बिहास बाबू, वह जानकी को ले जाएगा, जरूर ले जाएगा !"

बिहास बाबू अब तक कपड़े पहन चुके थे। तहमत पर सफेद कुरता पहनकर उन्होंने बालों को संवारा। फिर दोनों हाथ कंधों के ऊपर डालकर चुटिया में गांठ लगाते हुए आगे बढ़े, "ऐसे कैसे ले जाएगा साला ! ऊंह ! बड़ा आया रुस्तम !"

लड़का उनके पीछे-पीछे चलता गया। बिहास बाबू सड़क तक आए तो उनकी जल्दी देखकर दो-एक राहगीरों ने पूछा, "कहां चले, बिहास बाबू ?"

"कहीं नहीं," उन्होंने बहुत सरल ढंग से कहा, "बस, यहीं जरा कल्ला के घर तक जा रहा हूं। उसकी लड़की की विदा करवाने दामाद आया है।"

"तो ऐसी जल्दी क्या है, एक पान तो खाते जाओ !" एक ने कहा तो बिहास बाबू उसी तेजी में आगे बढ़ते हुए बोले, "जरा ऐसा ही मामला है।"

कल्ला के घर पर काफी भीड़ थी। बिहास बाबू भीड़ चीरकर आगे पहुंचे। कल्ला जमीन पर सिर थामे बैठा हुआ था। भीतर से जानकी का रुदन बह निकला था। कल्ला के पास खड़ी हुई जानकी की मां मौलिकतम गालियां उच्चार रही थी। चौबीस-पचीस साल का एक दुबला-सा काला युवक घूरता हुआ अकड़कर चौक में खड़ा था। उसके हाथ-पैर लगता था जैसे माचिस की तीलियों से बने हुए हों। बिहास बाबू ठिठक गए। अन्दाजा किया, शायद यही युवक जानकी का आदमी है। उन्होंने साथवाले लड़के से पूछा, "ये जानकी का घरवाला है ?"

"हां।"

"हूं !" थोड़ा घूरकर बिहास बाबू ने उसे देखा। पीली छींट की बुश्शर्ट और काली ऊंची पैंट में उसका शरीर रंगबिरंगी पन्नी में लिपटे काले चाकलेट की तरह नजर आ रहा था। गाल पिचके हुए थे, जिनमें आंखें और दांत भर चमकते थे।

"इसे टी० बी० है !" बिहास बाबू ने घृणापूर्वक इतनी हलकी आवाज़ में कहा कि पास खड़ा लड़का भी न सुन सका।

जानकी की मां ने झटके के साथ धोती का पल्लू बांधा और हाथ हिलाकर व्यंग्यपूर्वक कहा, "चटकमटक के बुसकोट पहन लिया, जेब में हाथ डाल लिये और सीटी बजाते चले आये विदा करवाने !"

"तुमको क्या मतलब ?" लड़का चहका, "तुम्हारा क्या, हमारा पैसा, हम चाहे जैसा पहनें, चाहे जैसा खायें !" उसने मुंह कुछ इस तरह विकृत किया कि भीड़ में खड़े बिहास बाबू का मन बिगड़ने लगा। उन्होंने महसूस किया जैसे अन्दर-बाहर सारे शरीर में कुछ किरकिरापन समा गया है। इच्छा हुई कि कुछ कहें, पर बात मुंह पर आते-आते रुक गई।

कल्ला को आस-पास भीड़ की मौजूदगी खल रही थी। उसने जनता से याचना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की, "भई; तुम्हें क्या, तुम अपना काम देखो !"

"हां-हां," थोड़ा चीखकर बिहास बाबू बोल उठे। कुछ शर्मीले लोग हटे तो बिहास बाबू ने बाकी के लिए आगे बढ़कर जोरदार स्वर में कहा, "यारो, तुम लोग कैसे आदमी हो ? नौटंकी हो रही है क्या ? ऐं ?"

अस्सी प्रतिशत भीड़ छंट गई। बिहास बाबू ने बाकी बीस प्रतिशत की कोई फिक्र नहीं की और थोड़ा आगे बढ़कर कल्ला से पूछा, "क्या बात है ?"

कल्ला ने सारी कहानी कह सुनाई। पूरी तथा-कथा सुनने के बाद बिहास बाबू ने गंभीरतापूर्वक लड़के से प्रश्न किया, "क्यों, क्या बात है, भाई ?"

लड़के का मूड बिगड़ा हुआ था। चिल्लाकर बोला, "तुम कौन हो जी, ये हमारा घरू मामला है। अपना काम देखो !"

बिहास बाबू को इस उत्तर की अपेक्षा नहीं थी। एक क्षण उन्होंने गर्दन घुमाकर चारों तरफ की भीड़ देखी, वह फिर बढ़ गई थी। तिलमिलाकर बोले, "अबे ए ! होश में रह ! जानता है कहां खड़ा है ?" फिर कुछ धीमे स्वर में वे बोले, "जमीन में से तो निकला नहीं, किताबों की बातें करता है !"

यों तो बिहास बाबू झगड़ में विश्वास नहीं करते, पर घुड़की देने में उनका जवाब नहीं। उन्होंने अपना डायलॉग कुछ इस वजन के साथ उगला था कि लड़का घबरा गया। बिहास बाबू ने उसकी घबराहट का पूरा-पूरा लाभ उठाया और पास आकर पूछा, "क्यों रे, कल्ला जो कह रहा है, सच है क्या ? तूने एक और रख ली है ?"

"हां !" गर्दन लटकाकर टूटे-से स्वर में उसने कहा, "मगर इससे क्या, मैं दोनों को पाल लूंगा !" उसके स्वर में साहस था।

"वाह-वाह ! बड़ा लखपती है न ? हाथ-पांव देखे हैं कभी दरपन में ?" चिढ़कर बिहास बाबू बोले, "बेटा, पता है एक के रहते दूसरी करना जुरुम है ? कहे तो पुलिस बुला के भीतर करवा दूं ?"

इस उत्तर से लड़का एकाएक ही नर्म पड़ गया। उसकी आवाज में एक अजब-सी ढिलाई आ गई, जैसे बरसात का नम मौसम होते ही कलफ लगे कपड़े में एकाएक ही लुजलुजापन आ गया हो। उसने मधुर आवाज बनाकर कहा, "पहली जब आने को तैयार न हो तो क्या किया जाए ?"

बिहास बाबू आश्वस्त हुए। जादू असर कर गया था। गम्भीर स्वर में उन्होंने कहा, "चल, घर चलकर बात करें !" उन्होंने आगे बढ़कर लड़के का हाथ पकड़ लिया। चलते-चलते बोले, 'जमाने को तमाशा दिखाने से क्या फायदा !"

करीब आधा घंटे बाद बिहास बाबू अकेले बाहर निकले। उनके चेहरे पर प्रसन्नता की झलक थी। दूसरे दिन जानकी की विदा हुई। लड़का जब विदा करवाकर जा रहा था, तो उसने रास्ते में रुककर बरामदे में हुक्का पीते हुए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिहास बाबू के पांव छुए। उसकी आंखों में श्रद्धा थी, जैसे बिहास बाबू मंदिर की मूरत हों।

लोगों ने कारण पूछा तो बिहास बाबू ने कह दिया, "जमाना अजब है। दामाद और सास-ससुर लड़ रहे थे, मैंने जाकर फैसला करवा दिया।"

सुननेवालों को कोई अचरज नहीं हुआ, क्योंकि मुहल्ले में कोई तसवीर ऐसी नहीं है, जिसकी फ्रेमिंग बिहास बाबू ने न की हो। स्वयं मुझे इस मुहल्ले में रहते हुए काफी समय हो गया है। मैंने तो अब तक कोई ऐसी घटना देखी नहीं जिसमें बिहास बाबू ने प्रमुखता से करैक्टर रोल अदा न किया हो। कब किस घटना में उनका कैसा रोल रहे, इसका कोई ठिकाना नहीं!

एक दिन मैं बाजार जाता हुआ बिहास बाबू के बरामदे के सामने से गुजरा तो वे हमेशा की तरह पड़ोस के दो-चार लोगों से घिरे हुए थे। मुझे देखते हुए उन्होंने ऊंचे स्वर में कहा, "अजी भरमर जी, कहां?"

मैंने जान लिया, बिहास बाबू बात करने के मूड में हैं। कोई उत्तर न देकर मैं बरामदे में चला आया। जरा हटकर उन्होंने मेरे लिए बैठने की जगह बनाई। "आजकल तो दिखते ही नहीं हो? अखबार में काम ज्यादा रहता है क्या?" उन्होंने मुसकराते हुए पूछा।

"नहीं तो," मैंने कहा, "आप भूल रहे हैं, बिहास बाबू! कल ही तो आपसे भेंट हुई थी। पूरे दो घंटे आपके साथ रहा!"

बिहास बाबू ने अपनी याददाश्त की भूल संवारी, पर काफी समझदारी से। कहने लगे, "अरे यार, कल भेंट हुई थी, और कल से आज के बीच जाने कितना बखत गुजर गया। कुछ पता है इस कल से आज तक तो एक हजार एक केसेज बन-बिगड़ गये। वो चिरमिरीकर बाबू ने कल शराब पी और आज सवेरे उसे कलारी के गेट से हम लोग उठा के लाये? ये सब कल से आज के बीच में ही तो हुआ!"

हर दूसरे घर की चर्चा हर तीसरे घर के लिए आकर्षण है। मैंने पूछा, "कौन चिरमिरीकर?"

"अजी, वही—रोडवेज का टिकट बाबू। बहुत पीता है भई! राम-राम!" बिहास बाबू ने नाक सिकोड़कर घृणा के ऐसे 'एक्शन' प्रकट किए जैसे घर में नहीं, कलारी में बैठे हों। उन्होंने कहा, "रात को उसकी घरवाली आयी। कहने लगी, 'उनकी तलाश करो!' यार, मुझ पर सेवा के लिए किसी को नाहीं नहीं करते बनता। मैं उसे ढूंढ़ने निकला तो रात तीन बजे बेलबाग वाली कलारी पर औंधे मुंह पड़े पाया। राम-राम! भरमर सा'ब! परोपकार भी बुरी चीज है।" बिहास बाबू ने बात को एकदम मोड़ दिया, "दिनभर का साफ-सुथरा बदन था, पर उस शराबी बाबू को उठा के रिक्शे में रखना पड़ा! उसके मुंह से कैसी बदबू

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आ रही थी ! यार गोपी बाबू, तुम तो मेरे साथ थे। जैसे जमाने भर की सारी शराब उसी ने पी रखी हो !"

गोपी बाबू उसी मंडली के थे। उन्होंने तपाक से बिहास की बात का समर्थन किया, जैसे किसी बड़े नेता के सामने कोई कुर्सी-प्रेमी छोटा नेता हां-हूं करे, "आप ठीक कहते हैं, बिहास बाबू ! आप तो धर्मात्मा हैं। किसी का भला करो तो कष्ट तो उठाना ही पड़ता है। क्यों, सा'ब ?"

उन्होंने मुझसे पूछा तो कहना पड़ा, "ये तो है ही।"

अपनी प्रशंसा से बिहास बाबू की आंखों में चमक उभरी। चेहरे पर गौरव तैरने लगा। बोले, "वह चिरमिरीकर बाबू भी अजीब जिद्दी आदमी है। कम से कम एक हजार बार तो मैंने ही उसे समझाया है— शराब कोई अच्छी चीज़ नहीं है। ये चिरमिरीकर तो है क्या, मैंने शराब में अच्छों-अच्छों को सोने से धूल में मिलते देखा है ! पर वह है कि मानता ही नहीं !"

"आप ठीक कहते हैं," मैंने कहा तो बिहास बाबू और अधिक प्रोत्साहित हुए। कहने लगे, "भगवान जाने इन लोगों को शराब कैसे अच्छी लगती है ! मुझे तो अगर बदबू आ जाए तो कै कर दूं ! अब कल ही का किस्सा लो, उस चिरमिरीकर को रिक्शे में रखा तो इतनी बदबू दिमाग में समा गई कि रात भर सोया ही नहीं। आंख लगती ही नहीं थी। चार बार बिस्तरे से उठकर सौंफ खायी।"

गोपी बाबू ने फिर समर्थन किया, "बिहास बाबू, आपकी आंखें लाल तो हैं ?"

सम्भवत बिहास बाबू उनकी बात सुन नहीं सके। मैं उठने को हुआ तो बिहास बाबू ने फिर बैठा लिया, "ये मुहल्ला तो ऐसा ही है। यहां रहने का धर्म नहीं है। जाने कहां-कहां से दुनियाभर के शराबी-कबाबी, करेप्ट लोग आ बसे हैं। चिरमिरीकर को छोड़ो, खुदाबकस को ही लो। मैं कई दिनों से 'मार्क' कर रहा हूं, वह पीछे के रस्ते जहूर के घर जाता है और पीछे के रस्ते ही वापस लौट आता है। किसी दिन पकड़ पाया तो···वो लगाऊंगा, वो लगाऊंगा," दांत भींचते हुए क्रोध में बिहास बाबू कुछ इस तरह कहने जा रहे थे, जैसे खुदाबकस जहूर के यहां नहीं, उनके घर ही आता हो। "तबीयत हिरन हो जाएगी !" उन्होंने बात पूरी कर दी।

मैं चुप रहा। इस तरह के मामलों पर कोई टिप्पणी देना सिर पर टांका लगवाने की भूमिका तैयार करने से कम नहीं है। रहे बिहास बाबू, उनकी बात अलग है। हर घर में उनका अपने घर का-सा दखल है। वे कह रहे थे, "बीस साल इस मुहल्ले में रहते हो गये। कभी कोई उंगली तो उठा देखे ! चरित्र के मामले में मैं बहुत 'स्ट्रिक्ट' हूं। न तो मैं ऐसा हूं और न ही कोई ऐसा आदमी मुझे सुहाता है। जाने कैसा जमाना आया है। एक हमारा बखत था कि कोई औरत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस गली से नहीं निकलती थी और निकलती तो डेढ़ हाथ का घूंघट पड़ा रहता था। कभी किसी ने घूर के देख लिया तो सुकड़ के छुईमुई हो जाती थी, और अब ?" बिहास बाबू के चेहरे पर घृणा और चिन्ता के गहन भाव उभर आए। "अब तो सरे आम ठिल्-ठिल् करती औरतें निकल जाती हैं। न कोई लाज, न सरम ! ये सब सिनेमा का ही तो असर है !"

मैं फिर उठा तो बिहास बाबू ने नहीं रोका। शायद वे स्वयं अपने आप से 'बोर' हो गए थे।

बिहास बाबू की ये बातें मेरे लिए नयी नहीं थीं। हमेशा एक न एक नया विषय, नयी घटना लेकर वे बरामदे में बैठे रहते थे। मुहल्ले में कोई बात हो, बिहास बाबू किसी-न-किसी प्रकार वहां पहुंचकर अपना अस्तित्व जाहिर करते। लोगों को उनकी चर्चा-शक्ति पर जितना आश्चर्य था, लगभग उतना ही आश्चर्य उनकी स्मरण-शक्ति पर था। मुहल्ले में सैकड़ों व्यक्ति रहते हैं और बिहास बाबू उन सबका पेशा, नाम, शक्ल सभी कुछ याद रखते हैं। समय-बेसमय जब किसी की बात चल निकलती है तो उस व्यक्ति के घर-परिवार की अन्दरूनी बातों की वह ऐसी बाल की खाल निकालते हैं कि सुननेवालों को अचरज हुए बिना न रहे।

एक दिन खबरों की बात-चली तो मैंने पूछ लिया, "बिहास बाबू, आप अखबार क्यों नहीं मंगवाते ?"

बिहास बाबू ने हंसकर निहायत आसानी से उत्तर दिया, "क्या अखबार मंगायें, यार, मुहल्ले की ही इतनी खबरें हैं कि मन ऊब जाता है।" उन्होंने कुछ उपेक्षा के भाव से पूछा, "कहां-कहां की खबरें छापते हो तुम ?"

मैंने गर्वपूर्वक कहा, "सभी जगह की ! दुनिया के हर कोने की खबरें छापते हैं। चीन, जापान, इंग्लैंड, रूस, अमरीका···"

"बस-बस", बिहास बाबू ने मेरी बात काटी, "तुम जमाने की खबरें छापते हो, ये तो ठीक है, पर मुहल्ले की खबरें पता हैं ?"

मैं सन्नाटे में आ गया। बिहास बाबू ने मेरी बात मुझ पर ही लाद दी। पूछने लगे, "बताओ, तुम्हारा मकान मालिक क्या धंधा करता है ?"

मैं चुप रहा तो वे बोले, "नहीं मालूम ? तो सुनो, तुम्हारा मकान मालिक अफीम-स्मगलर है। चोरी करता है।"

मुझे सचमुच मालूम नहीं था।

बिहास बाबू कहते गये, "उसके यहां दो औरतें हैं। पहली ब्याहता अमृतसर में है, रखैल नागपुर में ! तुम्हें मालूम है, तुम्हारी पड़ोसिन मास्टरनी के यहां कौन-कौन आता है ?"

मैंने नकारात्मक ढंग से सिर हिलाया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्होंने कहा, "पता है, पंडित सोनेलाल कौन है ?"

"पुजारी !" मैंने उत्तर दिया।

"ये तो उसका पेशा है।" वे बोले, "पर वह है वर्णसंकर !"

मैं आश्चर्य से बिहास बाबू का चेहरा देखे जा रहा था।

"और सुनोगे ?" उन्होंने पूछा तो मैंने इनकार कर दिया। बिहास बाबू सचमुच विलक्षण आदमी हैं। मुझे उनसे डर-सा लगा।

बिहास बाबू ने बात समाप्त कर एक रहस्यपूर्ण मुसकराहट से मुझे देखा। उनकी आंखों में ऐसी चमक थी, जैसे उन्होंने मुझे परास्त कर दिया है। कुछ रुक-कर उन्होंने कहा, "क्या अखबार निकालते हो, यार ? कमीज के पीछे की बात तो मालूम नहीं और टर्की-तुर्की, रुमानिया की खबरें छापते हो !"

इच्छा थी कि बिहास बाबू को टर्की और तुर्की के बीच का फर्क समझाऊं, पर यह चर्चा बन्द कर देने में ही कुशल थी। बात बदलने की गरज से कह दिया, "बिहास बाबू, कल रात तो नींद ही नहीं आयी ! गली के पिछवाड़े काफी होहल्ला हो रहा था।"

वे हंसे तो उनके पीले दांतों की बदबू वातावरण में फैल गई। "मैं कितनी बार तो कह चुका हूं, यार, ये मुहल्ला ही अजीब है। यहां जो न हो, सो कम !"

"फिर भी तो, आखिर बात क्या थी ?"

"कुछ नहीं, बात जरा-सी हो तो भी लोग हंगामा कर देते हैं।" बिहास बाबू ने लापरवाही से इस तरह कहा, जैसे उनकी इस विषय में दिलचस्पी ही न हो, "बेला को जानते हो न ?"

"हां, वह हारमोनियम सुधारने वाले की लड़की, मेरे घर के पिछवाड़े ही तो रहती है।" मैंने फौरन बताया। डर था कि कहीं बिहास बाबू मेरे काम पर फिर व्यंग्य न कस दें !

"हां-हां, वही," निःसंकोच बिहास बाबू ने कहा, "बेला कल अपनी किसी सहेली के यहां गयी थी। रात को करीब दस बजे लौटी तो उसके भाई ने जवाब-तलब किया। उसका आरोप था कि बेला सिनेमा गई थी और उसके साथ कोई मर्द भी था। मैं पहुंचा, तब कहीं मामला सुलझा।" एक क्षण रुककर बिहास बाबू ने कहा, "अब आप ही सोचिए, भरमर साहब, कैसा जमाना आया है ! भाई बहन पर ऐसे गंदे आरोप लगाने लगे ! छिः-छिः !"

मैंने उनकी बात का समर्थन किया।

बिहास बाबू कहते रहे, "और वह लड़की तो भगवान की कसम, इस जमाने को देखते हुए देवी है देवी ! एकदम कलियुग आ गया है," कहते-कहते उनके चेहरे पर दुःख और घृणा के मिले-जुले भाव उतर आए।

बिहास बाबू विस्मय से आंखें फाड़कर बोले, "मैंने तो आज तक इतनी गन्दगी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देखी नहीं ! आज आदमी की भावनाएं, आचार-विचार सभी कुछ इतने नीचे हो गए हैं कि वह हर तरफ पाप-ही-पाप देखता है। जरा अन्दाजा कीजिये, भाई बहन पर सरे-सड़क खड़े होकर इतने गंदे आरोप लगाये ! ये कलियुग और आदमी के पतन की निशानी नहीं तो क्या है ?"

मैंने देखा—बात पूरी होते-न-होते बिहास बाबू की आवाज़ इतनी भारी हो गई थी, जैसे उन्हें जुकाम हो।

इसके बाद कई दिन तक मेरे दिमाग में बिहास बाबू की ये बातें घूमती रहीं।

आज आफिस से लौटने में मुझे कुछ देर हो गई थी। सड़क पर कोई बारात बाजे-गाजे और जुलूस के साथ आ रही थी, इसलिए साइकिल से उतरकर पैदल चलने लगा।

प्लाजा सिनेमा पर आज काफी भीड़ थी। भीड़ से बचता-खुचता रास्ता पार करने लगा तो अचानक ही नजर बुकिंग की खिड़की पर जा पड़ी। बिहास बाबू टिकट लेकर भीतर की ओर लपके जा रहे थे। याद आया—वे भी बिहास बाबू ही थे, जिन्होंने एक बार कभी भी सिनेमा न जाने की बात कही थी। इच्छा हुई कि टोककर पूछूं, "आप तो कभी सिनेमा जाते ही नहीं ?" पर रुक गया। बिहास बाबू अकेले नहीं थे। उनके साथ कोई महिला भी थी। जल्दी में उसका चेहरा तो नहीं देख सका पर काफी जानी-पहचानी-सी लगी।

मैं घर लौटा तो बिहास बाबू के बरामदे में अंधेरा था। अपने कमरे की खिड़की खोली तो पिछवाड़े आज फिर शोर हो रहा था। झांककर देखा—नीचे चौक में बेला का भाई चीख-चीखकर बाप से बहन की शिकायत कर रहा था, "तुम मानते नहीं हो, मैं बेला की उस सहेली से पूछ आया हूं। वह आज भी वहां नहीं गई ! और आज ही क्या, वह कई महीनों से वहां नहीं गयी ! आने दो बेला को···!"

मैं आगे सुन नहीं सका। दिमाग में बिजली-सी कौंधी—तो वह बेला ही थी···? प्रश्न उठा और डूब गया। मैंने लौटकर खिड़की बन्द कर ली। क्योंकि मैं जानता हूं कि आज मैं फिर नहीं सो पाऊंगा। रात को बेला लौटेगी, फिर भारी शोर उठेगा और अन्त में बिहास बाबू आएंगे, गिरतों को उठाने के लिए !

१९६१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक जवान भूख

विसाली शुरू से ही नंगे पैरों रहा और इसीलिए उसके पैर भद्दे और गंदे तरीके से किसी रीछ के चौड़े पंजे की तरह फैल गये। उसके पंजे की अंगुलियां कुछ उस तरह छितराकर फैल गयीं कि हर दो अंगुलियों के बीच एक अंगुली के लायक और जगह बन गयी। वह कद से ठिगना था, पर उसकी उम्र सतरह साल पार कर गयी थी। अखबार के दफ्तर में रातपाली करते रहने के कारण उसकी आंखों में कुछ अजीब-सा रंग उतर आया था और पलकें हमेशा ही बोझिल-सी रहने लगी थीं। रंग का गोरा होते हुए भी उसके सारे शरीर और चेहरे पर मैल की एक गहरी पर्त जम गयी थी। उसे नहाने की आदत नहीं थी। कभी-कभी विसली अपने शरीर की खूबसूरती और रौनक की ओर से बिलकुल ही लापरवाह रहता था और कभी-कभी बहुत सतर्क हो जाता। खाने-पीने का उसका कोई ठिकाना नहीं था। कभी सदावर्त के क्रम में लगकर खा लेता। सिलसिला जमा लेता तो कई बार आफिस के किसी बाबू के घर खाने का बड़ा साफ इरादा जाहिर कर खा आता। मैंने जब उसे शुरू-शुरू में देखा तो उमर का ठीक-ठाक अंदाजा ही नहीं लगा सका। मेरी जगह पर यदि कोई भी उसे देखता तो पन्द्रह-सोलह से ज्यादा उम्र नहीं आंक सकता था। विसली ऐसा ही था। उसके कानों में भारी-भारी कुण्डल पड़े रहते थे, जिनको कभी-कभी जरूरत पड़ने पर गिरवी रखकर वह सिनेमा जा सकता था, शराब पी सकता था और मौके-बेमौके किसी दोस्त की मदद भी कर सकता था। एक दिन वह हमेशा की तरह खाकी रंग की निकर और मैल से रंगी गंदी शर्ट पहनकर आया। आते ही कहने लगा—साब, कोनटे (किनारे) वाली मास्टरनी के यहां आज से काम पर जाऊंगा।

—तो फिर ये अखबार की नौकरी छोड़ दोगे क्या?—मैंने पूछा।

—नई, साब! इसको काहे को छोड़ूंगा?—उसने इस तरह आवाज में लोच पैदा कर कहा जैसे मैंने कोई बेकार सवाल कर दिया हो। वह आगे कहने लगा—कोनटेवाली मास्टरनी है न, उसकी बरौनी (नौकरानी) नौकरी छोड़कर किसी के घर बैठ गयी। सवेरे के बखत उनके यहां काम करूंगा, रात के बखत यहां।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दोनों तरफ के पैसे चित !—फिर वह खुशी से इधर-उधर हिलने-डुलने लगा।

मैंने पूछा—कितना पैसा देगी कोनटेवाली मास्टरनी ?

—पैसा तो अभी तै नहीं हुआ है, साब !—वह बोला—मगर जरा तफरीह ही रहेगी, काम भी ऐसा कुछ खास नहीं है। मास्टरानी की खोली दुमंजिले पर है, नीचे की मंजिल से ऊपर रसोई तक दस बाल्टी पानी भर चढ़ा देना होगा। बस, इतना-सा काम है !

—ठीक है !—मैंने कहा।

विसली कभी जमीन की तरफ और कभी ऊपर की ओर नजरें दौड़ाने लगा। फिर उसने दीवार पर टंगा कैलेण्डर देखकर कहा—आज संडे है न ?

—हां।

—तब तो फिर ठीक है—वह बोला, कुछ मुसकराया। फिर उदास हो गया।

मैं जानता था कि विसली हर रविवार को सिनेमा जरूर देखता है, भले स्नान न करता हो।

—विसली, सिनेमा जाना है ?—मैंने पूछा।

—ऐसी तो कोई बात नहीं है···फिर आपकी सरधा पर है···आठ आना भौत होगा साब !

एक रुपया लेकर विसली चला गया। आठ या नौ दिन बाद वह फिर मेरे पास आया। मैंने देखा, इस बार उसके कपड़े उजले थे। वह नहाया हुआ भी था। पैरों में चप्पल थी।

—राम-राम, भरमर साब !—कहता हुआ वह जमीन पर आकर बैठ गया। मैंने पूछा—क्यों विसली, कैसे हो ?

—ठीक ही गुजर रही है।—वह बोला, फिर उसने जेब से सिगरेट का पैकिट निकालकर उसके ऊपर की चमकती पन्नी निकालनी प्रारम्भ कर दी। डिब्बी खोलकर मेरी ओर बढ़ाते हुए उसने पूछा—सिगरेट ?

—नहीं !—मैंने कहा—बीड़ी छोड़ दी है क्या ?

—हां, साब ! बीड़ी जरा मास्टरनी बाई को पसंद नहीं। कहती हैं, नुकसानदेह तो होती ही है, पर बुरा भी दिखता है। दूसरी बात एक और है, एक दिन मास्टरनी बाई कह रही थीं कि उनका नौकर बीड़ी पिये तो उनका 'पुजीशन फाल' होता है, सो सिगरेट शुरू कर दी है। पीला हाथी है, बम्बई में बहुत चलती है !

—खर्चा ज्यादा नहीं बढ़ गया होगा ?

—काहे का खरचा साब ?—विसली सिगरेट जलाकर बोला—बीड़ी पीता था तो मेरा थोड़ा बहुत खर्चा भी होता था पर जब से सिगरेट पीता हूं, कुछ नहीं लगता, एक नया पैसा भी नहीं। मास्टरनी बाई की 'पुजीशन' का सवाल था

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सो खर्चा भी उन्हीं का लगता है। बस मेरा काम इतना है कि वे पीला हाथी का रोज एक पैकिट 'आफर' करती हैं और मैं हाथ बढ़ाकर ले लेता हूं !—विसली ने सिगरेट का एक गहरा कश खींचा और धुआं हवा में उगल दिया।

—सिनेमा जाओगे ?—मैंने पूछा।

—नहीं, साब !—उसने जवाब दिया।

—नहीं !—आश्चर्य से मैं उछल-सा पड़ा। मैंने एक बार फिर कहा—विसली, तुमको क्या हो गया है ! मैंने सिनेमा के लिए पूछा है !

—कुछ भी तो नहीं हुआ है, भरमर साब ? अब मुझे सिनेमा की जरा भी तंगी नहीं है, मास्टरनी बाई के यहां मुझे हर तरह की 'फैसेलिटीज' मिलती हैं !—हाथों की अंगुलियों पर गिनाते हुए उसने कहा—अंगरेजी सिनेमा, खाना, कपड़ा, सिगरेट और यहां तक कि···वह कहते-कहते सकपकाया—अब आपसे क्या छिपाना साब···शराब के लिए पैसे···

मुझे आश्चर्य हुआ विसली के प्रति मास्टरनी की हमदर्दी पर, फिर यह सोचकर चुप रहा कि वह मेहनती आदमी है, और उस-जैसे किसी भी आदमी को उतनी सहूलियतें दी जा सकती हैं। इसमें कोई आश्चर्य जैसी बात नहीं, पर एक प्राइमरी स्कूल की मास्टरनी इतनी सुविधाएं विसली को दे रही थी, इसलिए पूछ बैठा—लगता है मास्टरनी बाई बहुत चाहती हैं तुमको ?

—आप ठीक कहते हैं—विसली ने कहा—ईमानदारी की बात तो ये है भरमर साहब, कि मास्टरनी बाई मुझे अपने बेटे से कहीं ज्यादा चाहती हैं ! ये कमीज देखते हैं, सभी कुछ उन्होंने ही दिया है मुझे !—विसली ने कुछ मुसकराते हुए कहना ज़ारी रखा—मैंने प्रेस की भी नौकरी छोड़ दी है, अब कम्पलीट उन्हीं के साथ रहने का इरादा है। रोज़ एक घंटे पढ़ने भी लगा हूं।—थोड़ा रुककर उसने फिर कहा—पांच रोज़ की पढ़ाई में मैं दस्तखत करने लगा हूं। आप ही सोचिये, इतना दरियादिल मालिक किसी को मिल सकता है ?

—बेशक नहीं !—मैंने कहा।

—करैक्ट !—विसली तपाक से बोला—रहा सहूलियतों का सवाल, सो जितनी सहूलियतें उन्होंने मुझे दे रखी हैं, सभी थर्ड-ग्रेट हैं, कुछ खास खर्चा नहीं पड़ता उनसे।

मुझे लगा, विसली की याददाश्त पहले से कमजोर हो गई है। दो क्षण पहले मास्टरनी की तारीफ कर रहा था, और फौरन ही उसने बात का पहलू बदल दिया है।

—थर्ड-ग्रेट से तुम्हारा मतलब ?

वह बोला—अपने भाइयों के उतरे कपड़े पहनने को देती हैं, हाथी-छाप ढाई आनेवाली सिगरेट, और मैं शराब भी ठर्रा पीता हूं, देसी, और वो भी दस-पांच

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रोज में एकाध बार, उसमें कुछ खास खर्चा नहीं पड़ता। कहीं और भी अगर नौकरी करता तो साठ रुपैया पगार मिलती !—कुछ सोचकर जैसे हिसाब कर रहा हो, उसने कहा—उतना ही पड़ता है, फिर दिन-रात गधे की तरह तो जुता रहता हूं।

वह मुंह सिकोड़कर कहता गया—कपड़े धोना, खाना बनाना, बर्तन रगड़ना ···ये सब आसान नहीं हैं, भरमर साब ! मेरी जगह आप होते तो लगता कि जो सब सहूलियतें वह देती हैं कुछ भी नहीं हैं।

विसली की बातें और बात करने का लहजा मजेदार था।

विसली कहता गया—कभी-कभी सोचता हूं, भरमर साब, मास्टरनी बाई शादी कर ले तो अच्छा रहेगा। काफी उम रहो गई है, इस तरह बखत काटना ठीक नहीं लगता।

विसली कहते-कहते कुछ शरमाया भी, पर हिम्मत साधे कहता गया—इतनी उमर में कुंवारी रहना भला नहीं लगता, आपका क्या ख़याल है ?—बगैर उत्तर की प्रतीक्षा किये उसने कहा—मगर अब तो बुढ़ापे तक यों कुंवारा रहना फैशन हो गया है ! है न, साब ? मेरी बड़ी बहन की शादी तेरह साल की उमर में हो गई थी। फिर मास्टरनी बाई तो पूरे तेईस साल की हैं, तिस पर भी···

—तुम बहुत समझदार होते जा रहे हो, विसली !—मैंने कहा तो वह उठ खड़ा हुआ। उसकी सिगरेट समाप्त हो गयी थी। कहने लगा—अब चलूंगा, वे इन्तजार करती होंगी।

—कौन ? मास्टरनी ?

वह हंस दिया—एक अंगरेजी 'फिलिम' का पिरोगराम है।

मैंने मुसकराकर उसे विदाई दी, पर ध्यान से देखा तो ऐसा लगा जैसे तमाम साफ-सुथरा रहने के बावजूद और कपड़े पहनने के बाद भी उसके चेहरे पर वैसी चमक नहीं थी, जैसी गंदगी के समय मैले कपड़ों में उसके चेहरे पर रहती थी। ऐसा लगा जैसे विसली पहले की अपेक्षा बहुत अधिक प्रसन्न नहीं है।

फिर कई दिनों तक विसली का कोई समाचार नहीं मिला। बस एक दिन उसका एक दोस्त हरदेव मेरे पास उसके बारे में पूछने आया था। विसली करीब दस दिन पेशतर उसे पांच रुपये उधार दे आया था, जिन्हें हरदेव लौटाना चाहता था। हरदेव ने बताया कि चार रोज़ पहले एक रिक्शा में विसली को किसी खूबसूरत लड़की के साथ एम्पायर सिनेमा की तरफ जाते उसने देखा था। किसी औरत के साथ होने पर उसने टोकना ठीक नहीं समझा।

हरदेव ने यह भी बताया कि विसली की शक्ल पिछले दो माह से उसके मां-बाप ने भी नहीं देखी थी। यों तो मुझे मालूम था कि विसली पूरी तरह मास्टरनी का चौबीस घंटे का नौकर था, पर हरदेव का कहना था कि अब से दो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महीने पहले तो विसली कभी-कभी घरवालों से मिल-जुल भी आता था, किन्तु इस बार पूरे दो महीनों से घर नहीं गया था।

विसली मेरे लिए भी सचमुच पहेली बन गया। हरदेव के यह पूछने पर कि वह कहां नौकर है, जब मैंने मास्टरनी का नाम बताया तो हरदेव ने कुछ कुढ़कर कहा—रांड ने न जाने कैसा जादू कर दिया है साले पर!

और फिर वह बड़बड़ाता हुआ वापस लौट गया। शाम को जब बाजार से लौटकर मैं अपने घर आ रहा था तो मैंने देखा कि हरदेव के दोनों हाथों को पकड़े हुए दो पुलिस-कांस्टेबिल उसे सड़क से घसीटते ले जा रहे थे। शायद वह शराब पिये हुए था, बेहोशी जैसी हालत में बहकता-चिल्लाता चला जा रहा था। मुझे सड़क पर से गुजरते देखकर वह चिल्लाया—ओ भरमर साब! विसली साला मिले तो बोल देना, तेरे पांच रुपये हरदेव ससुराल से लौटके देगा!

मैं थोड़ा ठिठका तो हरदेव हंसा और पुलिसवालों ने एक साथ कई गंदी गालियां सड़क के खुशदिल वातावरण में घोल दीं, जैसे उन्हें गालियों की बदहजमी हो।

इस घटना के बाद भी एक माह तक विसली न तो मुझे कहीं दिखा और न मुझे किसी ने उसका ख़याल दिलाया।

एक दिन पड़ोस की एक नर्स ने बताया कि अस्पताल में करीब चार-पांच रोज हुए एक मरीज दाखिल हुआ है। करीब-करीब छोकरा है। कल बातों-बातों में जिक्र निकल आया तो कहने लगा—भरमर साहब को तुम जानती हो, सिस्टर? उनसे कह देना, विसली अस्पताल में है!

विसली अस्पताल में है? नर्स से कोई सवाल पूछने की गुंजाइश नहीं रही थी। विसली का चेहरा जैसे मेरी आंखों के सामने नाच गया—चौड़ी-चौड़ी अंगुलियां, फटे हुए पैर, गन्दा-सा बग़ैर नहाया-धोया बदन, मुसकराहटों और खुशियों से भरा चेहरा, बगैर तेल लगे बाल···विसली ऐसा ही था।

शाम को नर्स के साथ विसली को देखने अस्पताल गया। मरीजों की कतार में एक पलंग पर वह पड़ा हुआ था। मैंने उसका चेहरा देखा तो पहचानने में थोड़ी कठिनाई हुई। विसली के उदास चेहरे से दांत बाहर दीखने लगे थे। सारा बदन हल्दी के रंग की तरह जर्द-पीला पड़ गया था। आंखों के आस-पास काले-काले गढ़े उभर आये थे। उसे इस हालत में पहली बार देखकर तो मेरी इच्छा हुई, नर्स से पूछ लूं—यही है विसली?

पर, विसली बेशक वही था। नर्स ने उसे झकझोरकर जगाया तो उसने आंखें खोल दीं। मैंने महसूस किया, जैसे पलकें उठाने में उसे कुछ तकलीफ हुई थी।

—भरमर साब! माफ करना!—वह बोला—मैं उठ नहीं सकता, सारे हाथ-पैर जैसे टूट-से गये हैं। आप उस स्टूल पर बैठ जाइये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैंने पूछा – क्यों, कैसे बीमार पड़ गये ?

उसने जैसे मुसकराने का प्रयत्न किया, पर मुसकराहट चेहरे पर नहीं उभरी। उसने ओढ़ी हुई चादर अपने शरीर से हटा दी। उसका सारा शरीर देखकर मुझे लगा जैसे बरसों से 'ममी' की हुई किसी लाश से ढक्कन उठा दिया गया हो ! विसली का सारा शरीर महज हड्डियों का ढांचा बनकर रह गया था।

—काफी टाइम हो गया है न आपसे मिले, कैसा क्या चल रहा है सा'ब ? — उसने बात टाली।

—वह तो सब ठीक है, तुम अपनी बताओ ! कब से बीमार पड़े हो ? क्या बीमारी है ?

मेरे सवाल से उसके चेहरे का रंग और अधिक पीला पड़ गया। जबरन मुसकराने की कोशिश करने लगा, पर कुछ बोला नहीं।

—बोलने में कुछ तकलीफ होती है क्या, या डाक्टर ने मना कर रखा है ?

— नहीं तो, ऐसी कोई बात नहीं है !—उसने कहा, फिर कुछ देर के लिए चुप हो गया।

उसका चुप हो जाना मुझे सन्देह में डाल रहा था—कोई खतरनाक बीमारी है, जो नाम तक बताने में सकुचा रहे हो ?

—अभी नहीं—लापरवाही जताते हुए विसली ने कहा—ऐसी कोई बीमारी नहीं। अभी चार-पांच रोज हुए बीमार पड़ा हूं, दो-चार रोज और रहूंगा, फिर सब ठीक हो जायेगा ! हाथ-पैरों में थोड़ा दर्द है, और कुछ बुखार रहता है।

—कमजोर तो ऐसे हो गये हो जैसे एक अरसे से बीमार रहे हो ?

—नहीं, मेरी तन्दुरुस्ती ही बिगड़ गयी सा'ब, वैसे खाने-पीने में कोई कोर-कसर नहीं थी।

—कुछ फायदा भी है ?

—हां, बुखार धीरे-धीरे कम हो रहा है।

—और हाल-चाल सुनाओ !—मैंने बात का रुख पलटा— दो महीने तक कहां थे, वह तुम्हारा दोस्त हरदेव बहुत तलाश करता रहा।

विसली जैसे चौंक पड़ा। पर संयत होकर उसने उत्तर दे ही दिया—हरदेव आजकल हवालात में है, शराबबन्दी का कानून तोड़ा था उसने !—इससे पहले कि आगे की बात विसली पूरी करता, उसकी नजरें दरवाज़े पर अटक गयीं। अजीब-सा परिवर्तन हुआ विसली के चेहरे पर, मुखाकृति भद्दी हो गयी। कुछ इस तरह के भाव उसके चेहरे पर उतर आये जैसे उसने कोई डरावनी चीज़ देख ली हो और उसे आन्तरिक पीड़ा होने लगी हो ! मैंने दरवाज़े की ओर मुड़कर देखा, तो विसली ने गर्दन झुका ली।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दरवाजे पर एक जवान औरत खड़ी थी। चेहरा न बहुत सुन्दर था, न आकर्षक। उसकी आंखों में गहन भाव झांक रहा था, जैसे वह बड़ी मासूम हो, बहुत लाचार हो, बहुत पीड़ित हो ! वह बड़ी लापरवाही से विसली के पलंग की ओर चली आयी। उसके हाथ में पीतल का एक बन्द मुंह वाला बर्तन था, जिसे उसने विसली के सिरहाने की जमीन पर रख दिया।

विसली की गर्दन देर तक झुकी रही थी। मैं कुछ नहीं समझ सका। कुछ देर बाद विसली बोल उठा—मास्टरनी बाई ! ये दूध तो मैं पी लूंगा, पर तुम शादी कर लो ! मां कसम, अब तुम्हें शादी कर लेनी चाहिए।

विसली की इस बात से वातावरण एकदम बदल गया था। मास्टरनी ने अवाक होकर उसका चेहहा एक क्षण तक देखा, फिर आवाज की तेज गति की तरह उसने एक झटके के साथ दूध का बर्तन उठाया और मुड़कर वार्ड के कमरे से बाहर हो गई।

मैंने मुड़कर देखा, विसली की गर्दन बराबर झुकी हुई थी। कुछ देर बाद उसने चेहरा उठाया, इस तरह जैसे मनों बोझ उसके सिर पर रखा हो।

—मुझे प्रेस की नौकरी दिलवा सकते हो, भरमर सा'ब ? रातपाली भी कर लूंगा !

१९६१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक कामचोर औरत

"तेरे दिमाग बढ़ गये हैं।" भाभी ने चिल्लाकर कहा और फिर वे भीतर चली आयीं। रोते हुए मुन्ने को उन्होंने हवा में तमाचे का एक्शन दिखाकर डांट दिया —तू चुप हो जा! दिन भर रें-रें-रें करता है!

क्रोध में अक्सर वे इधर से उधर, उधर से इधर चहलकदमी करने लगती हैं। इसी आदत के अनुसार वे घर से बाहर आंगन में आ गयीं, जहां गोमती सिर झुकाये माथे पर झूल आये अपने रूखे बालों में चेहरा छिपाये किसी अपराधी की भांति खड़ी थी। ठीक उसके सामने आकर वे अपने स्वभाव के अनुसार गुर्राईं— तू हमारे काम की नहीं! बोलते-बोलते वे कुछ थमीं, जैसे जल्दी में कुछ गलत कह गयी हों— "हमारे ही क्या, तू किसी घर में काम लायक नहीं!" बात पूरी कर उन्होंने गलती सम्भाली।

गोमती यों चुपचाप खड़ी थी, जैसे फैसला हो गया हो, और अभियुक्त की सफाई की कोई गुंजाइश ही न रही हो। उसका सिर झुका हुआ था। हाथ ढीलेपन के साथ नीचे लटक गये थे— ठीक किसी लाश की तरह!

— दस बजे घरवालों का आफिस जाने का टाइम होता है, और तू बगैर कुछ कहे-बताये गायब हो जाती है। रोटियां लग गयी हैं तुझे!

गोमती चुप थी। दुनिया में तमाम ऐसी लाशें जिन्दा हैं। आंगन में यों तो अव्यवस्था के कारण तमाम ऐसी चीज़ें थीं, जो बिखरी हुई थीं पर नल के पास जूठे बर्तनों का एक भारी ढेर वातावरण में बेहद गन्दगी पैदा कर रहा था।

भाभी कहे जा रही थीं— "बेगार तो करवाते नहीं हैं? एक तारीख हुई नहीं कि तनखा लेने सिर पर भूत की तरह आ चढ़ेगी, और काम के नाम पर सांप सूंघ जाता है!" उन्होंने निर्णय लिया—"कल ले जाना हिसाब!" और वे फिर भीतर चली आयीं। रोते हुए मुन्ने को एक झटके के साथ उन्होंने गोद में उठा लिया, और देर तक कमरे में चहलकदमी करती रहीं।

कुछ देर में जब मैंने जान लिया कि वे नॉर्मल हैं, तो पूछा—अब हाथ से मांजने-रगड़ने पड़ेंगे भाभी बर्तन! गोमती को तो तुमने अलग कर दिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"हां, और चारा ही क्या है ?" उन्होंने उत्तर दिया, "तुम्हारे घर में तो बर्तन ही मांजने पड़ेंगे !" कन्धे से चिपका रहकर भी जब जिद्दी मुन्ना रो उठा तो झुंझला कर दो तमाचे उन्होंने उसकी पीठ पर जड़ दिये।

इसका मतलब था कि वे 'नॉर्मल' नहीं हैं। मैं चुप हो गया तो वे बड़बड़ाने लगीं।

"तुम नहीं जानते, अब पहले जैसी बात नहीं रही। नीच जातों के दिमाग आसमान पर चढ़े हुए हैं। देखते नहीं जब चाहे काम पर नहीं आतीं। इतने बड़े घर में पचास बरतन रोज मांजने लायक निकलते हैं। मैं तो मांज नहीं सकती।"

"आप ठीक कहती हैं।" उनका क्रोध ठंडा करने के लिए हर सही और गलत बात के समर्थन की जरूरत होती थी।

रोता हुआ मुन्ना थककर अब चुप हो गया था।

वे कह रही थीं, "बर्तन मांजनेवाली इसीलिए रखी जाती है न कि और काम के लिए फुरसत मिले। पर इसके रखने का कोई फायदा नहीं। महीने में मुश्किल से पन्द्रह दिन काम करती होगी, बाकी दिन गायब रहती है। सबसे बड़ी शिकायत तो यह है कि यह कहकर नहीं जाती।"

गोमती अभी हाल से भले ऐसा करने लगी हो, पहले तो ऐसा करती नहीं थी। पिछले एक साल से हमारे घर में वह बर्तन मांज रही थी। जहां तक मुझे याद है, आठ रोज से अधिक छुट्टी उसने नहीं मनाई थी।

भाभी बोलीं, "रांड है, इसलिए रहम आ जाता है। उसके छोटे-छोटे बच्चों का ख़याल कर जाती हूं, पर अब वह कामचोर हो गयी है। पिछले दो महीने से तीन दिन काम किया, एक दिन गायब ! ऑफिसवाले लोगों का घर है, ऐसे कैसे काम चल सकता है ?"

गोमती में एकाएक हुए इस परिवर्तन पर मुझे आश्चर्य था। पहले कभी वह इतनी लापरवाह नहीं रही। एक बार उसे बुखार आ गया था, तो उसने अपने पड़ोसी के जरिये हमारे यहां सन्देशा भिजवा दिया था कि वह काम पर नहीं आ सकती, हम लोग उसका इन्तजार न करें।

भाभी कह रही थीं, "इधर दो महीनों से उसे कई घरों में काम क्या मिल गया है कि पुरानी जगहों की चिन्ता ही नहीं रही।"

उनके स्वर से घृणा टपक रही थी, जैसे कोई पुराना फोड़ा फूट गया हो और उसमें अर्से से इकट्ठा होता रहा मवाद एकाएक ही रिसकर टपकने लगा हो। "इन कमीनों का कोई भरोसा नहीं। जिन दिनों काम नहीं मिलता था तो मुर्गे की बांग के साथ चली आती थी, कैसी मीठी-मीठी बातें करती थी ! और आज देखो, क्या पत्थर की मूरत की तरह चुपचाप खड़ी सुनती रही, मजाल है उसने गलती मानी हो ?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाभी ठीक ही कह रही थीं, सचमुच ही गोमती में इन दो महीनों में काफी अन्तर पड़ गया था। पहले बातें करती थी, पास-पड़ोस की कहानियां सुनती-सुनाती थी। कभी काम पर आने में देर हो जाती तो फौरन ही माफी मांगती। पर उस गोमती और आज की गोमती में ज़मीन-आसमान का अन्तर पड़ गया था। भाभी ने गोमती की लापरवाही की जो दलीलें दीं, एकाएक ही मैं उनसे सहमत नहीं हुआ। गोमती किसी पहेली की तरह मेरे दिमाग में घूम गयी। उसका आज का व्यवहार उसके बारे में विचार करने को बाध्य कर रहा था। भाभी ने उसे काफी लम्बी-चौड़ी डांट पिलाई थी, और वह सब कुछ सिर झुकाकर सुनती रही। एक बार तो मुझे भी भरोसा नहीं आया कि यह वही गोमती है, जो इससे पहले किसी भी आरोप को सिर झुकाकर स्वीकार नहीं कर सकती थी। धीरे-धीरे मुझे भी यह भरोसा होने लगा जैसे गोमती एक कामचोर औरत है। उसकी चुप्पी मेरे इस विचार को पुख्ता कर रही थी।

दूसरे दिन वह ठीक समय पर बर्तन मांजने आ गयी थी। भाभी ने उसे काम करने से रोका तो अत्यन्त दयावनत स्वर में उसने अपनी भूल स्वीकार की और क्षमा मांगी।

फिर वह रोज़ समय पर आने लगी। काम करती, बर्तन सम्हालकर बगैर कुछ कहे-सुने चुपचाप चली जाती। न जाने उसके स्वभाव में ऐसा विचित्र परिवर्तन क्यों हो गया था? ऐसा लगता था जैसे गोमती किसी अनजानी आग में मन-ही-मन जल रही हो। वह पहले से अधिक उदास रहने लगी थी। उसकी आंखों से ऐसा लगता जैसे भीतर-ही-भीतर कोई पीड़ा उसे घोल रही है। कुछ खोयी-खोयी-सी उसकी नजरें सदा ऐसी गम्भीरता में डूबी रहतीं जैसे उसकी कोई कीमती चीज़ गुम हो गयी हो, जिसकी तलाश में वह परेशान हो।

एक दिन अपने कमरे में बैठा सुबह का अखबार पढ़ रहा था तो मेरी छोटी भतीजी खेलती-खेलती कमरे में चली आयी, तुतलाती जुबान में उसने मुझे बताया —गोमती बर्तन मांजने में रो रही थी।

उस दिन मैं सोच-विचार में डूबा रहा—आखिर गोमती क्यों रो रही थी?

एक दिन ऑफिस से घर लौटा तो मालूम हुआ, भाभी ने गोमती को बहुत डांटा था।

गोमती ने कामचोरी का एक नया रास्ता अख्तियार कर लिया था। वह जल्दी में बर्तनों को थोड़ा-बहुत रगड़-पोंछकर धो देती थी, और इस तरह वे कई बार अधमजे ही रह जाते थे। तमाम बार यह भी देखा गया था कि बर्तनों पर जूठन भी लगी रह जाती थी। भाभी इसी बात पर आज गोमती से बिगड़ पड़ी थीं।

गोमती इस बार की डांट भी चुपचाप सिर झुकाकर सुनती रही थी, और उसने कोई सफाई देने की कोशिश नहीं की।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह क्रम करीब चार-पांच महीने चलता रहा। इस बीच छः मास पहले की गोमती का स्वाभिमान गिड़गिड़ाहट और बेशर्मी में बदल गया। उसने सैकड़ों बार डांट सही, हर बार क्षमायाचना की, उसने कई बार जरा-जरा-सी भूलें कीं और हर भूल पर बच्चों का वास्ता दे-देकर अपनी नौकरी बचाई। कुल मिलाकर स्वाभिमानिनी, साहसी और मेहनतकश गोमती इस छोटे समय में हीन, डरपोक और कामचोर औरत बनकर रह गयी।

इतने समय में केवल उसके स्वभाव में ही परिवर्तन नहीं हुआ था, बल्कि उसके शरीर और स्वास्थ्य में भी एक जबरदस्त हेरफेर हो गया था। उसकी काली-काली और मोटी-मोटी आंखों के पास गड्ढे-से पड़ गये थे, आंखों में जर्द पीलापन और चेहरे पर मनहूसियत-सी झांकने लगी थी। उसके बाल सदा अस्त-व्यस्त-से रूखे रहते थे। लगता था, वह अपने शरीर की ओर से बहुत लापरवाह रहती है। अब उसकी यह लापरवाही धीरे-धीरे शरीर के बाद कपड़ों पर उतर आयी थी।

एक दिन मैंने देखा, गोमती रसोई में जब जूठे बरतन मांजने के बाद रखने आयी तो वह पास की बैठक में इधर-उधर नजर चुराकर चली गयी। भीतर कोई नहीं था, कुछ देर बाद वह जब वापस निकली, तो मैंने पूछ लिया, "क्या बात है, गोमती ?"

कुछ चौंककर उसने उत्तर दिया, "कुछ नहीं, छोटे भइया ! एक तसवीर देख रही थी।" और वह तेज चाल में चली गयी। उसकी चाल में इतनी तेजी और उत्तर में कुछ ऐसी सकुचाहट थी कि जैसे वह कोई चोर हो और उसकी चोरी पकड़ ली गयी हो।

इस घटना के बाद करीब तीन रोज़ गोमती फिर बगैर कुछ बताये गायब रही। एक बार तो मुझे भी उसकी हरकत से संशय हो गया।

बाद में कई बार गोमती को इस तरह कमरे में बगैर पूछे घुसते मैंने देखा, किन्तु मजे की बात तो यह थी कि किसी भी चीज़ के गुम हो जाने की घटना इस बीच नहीं हुई। एक बार तो मैंने यहां तक देखा कि गोमती बैठक में चोरी-चोरी घरवालों की नजर बचाकर चली गयी और जब वापस लौटी तो उसकी आंखें लाल थीं, जैसे वह देर तक रोती रही हो।

मैंने उसे कभी नहीं रोका।

एक दिन शाम को जब मैं ऑफिस से घर लौटा तो मालूम हुआ, गोमती को नौकरी से निकाल दिया गया। भाभी ने गुस्से में उसे दो तमाचे भी मार दिये थे। बताया कि वह चोरी से बैठक में घुस गयी थी। मैं जानता था, यह गोमती की पुरानी आदत थी। मैंने भाभी से पूछा कि उसने कुछ चुराया तो नहीं ? उन्होंने बताया, "नहीं, पर वह बगैर पूछे बैठक में गयी ही क्यों ?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भीतर बैठक में आकर मैंने देखा, नये साल के कैलेण्डर में जिसमें एक खेलता हुआ बच्चा दिखाया गया था, के चेहरे पर न जाने किसने एक बड़ा छेद कर दिया था। मुझे याद आया, गोमती अकसर बातों-ही-बातों में अपने उस बच्चे का जिक्र किया करती थी, जो मर गया था। उसका रंग काफी गोरा-भूरा था, आंखें नीली-नीली थीं, और तन्दुरुस्ती काफी अच्छी थी।

कैलेण्डर में दिखाये गये बच्चे की इस तसवीर से गोमती के बच्चे का रंग-रूप बहुत कुछ मिलता-जुलता था।

और मुझे याद आता है गोमती के उस बच्चे के दाएं गाल पर एक काला-सा बड़ा मस्सा था। इस तसवीर के बच्चे के दाएं गाल पर भी एक काला और बड़ा मस्सा था।

गोमती ने एक दिन कहा भी था कि वह बैठक में एक तसवीर देख रही थी। मेरे सामने क्रमशः अब सारी घटनाएं स्पष्ट होती जा रही थीं।

गोमती को काम से निकाल दिया गया है, साथ ही वह तसवीर का काला मस्सा भी साथ लेती गयी है। वह सिर्फ कामचोर ही नहीं, चोर औरत भी थी।

१९६१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदत

किसी कम्पोजीटर लड़के के यह कह देने पर कि उसके आगे-पीछे कोई नहीं है, शिवलाल ने सारा कम्पोजिंग सेक्शन चीख-चीखकर सिर पर उठा लिया था। जोर से पूरब-पच्छिम हाथ फेंकते हुए उसने कहा था, 'तुम साले ! जैसे खुद बंडे हो वैसा सबको समझते हो ? मैं तुमको मार डालूंगा, हरामजादे !' फिर दिन भर की थकान से भरे चेहरे पर उभर आयी पसीने की बूंदों को बाएं हाथ की कोहनी से हथेली तक रगड़कर उसने बताया था—उसका एक छोटा भाई है। उसकी शादी हो गयी है, उसके दो छोटे-छोटे बच्चे हैं। यह बताकर उसने उस कम्पोजीटर लड़के से कह दिया था, 'तुम प्रेस से बाहर निकलो। मैं तुमको देखूंगा।' फिर वह बगैर किसी के समझाये-बुझाये इस तरह शांत होकर काम में जुट गया, जैसे एक क्षण पहले कोई बात ही नहीं हुई थी।

दिन की पाली का सारा कामकाज एक अजीब-सी खामोशी के साथ कटा। शाम को जब काम समाप्त होने पर लोग घर जाने लगे तो खासा गुलगपाड़ा मच गया। शिवलाल अपने 'अल्टीमेटम' के अनुसार प्रेस के बाहरवाले मैदान में आकर बैठा हुआ था और भीतर वह कम्पोजीटर लड़का, जिसे शिवलाल ने चुनौती दे रखी थी, आतंक से सूखा-सूखा चेहरा लिये प्रेस से बाहर निकल कर घर जाने को तैयार नहीं था। वह कह रहा था, 'वह जरूर मारेगा सा'ब ! गुंडे आदमी का कोई भरोसा नहीं !'

अनेक लोग उसे आश्वस्त कर समझाने में लगे हुए थे। पर शिवलाल का आतंक उसके दिमाग पर काफी वजन के साथ छा गया था। वह रुआंसी आवाज में बार-बार दुहराता था, 'वह जरूर मारेगा सा'ब ! आपने नहीं देखा, सारे दिन वह अपने 'केस' पर बैठा-बैठा कम्पोजिंग करते-करते मुझे कैसी आंखों से देखता रहा। वह नशेबाज आदमी है सा'ब ! वह मुझे जरूर मारेगा !' लगता था, अगर उसे और समझाया गया तो वह रो पड़ेगा।

बाहर शिवलाल को समझानेवालों की भी कमी न थी। वह उसी तरह क्रोध में आंखें तरेरता हुआ अपनी जिद पर अड़ा हुआ था। 'अभी कल का छोकरा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साला ! जबान लड़ाता है ! उसने क्या समझ के कहा कि मेरे आगे-पीछे कोई नहीं ? हरामी को नाक पोंछना आता नहीं और किताबों की बातें करता है ! निकले तो सही !'

एक कम्पोजीटर ने उसे धमकाकर चुप करना चाहा, 'भीतर मैनेजर है।'

'अरे, जा !' हवा में हाथ फटकारते हुए लापरवाही जताकर वह बोला, 'मैनेजर है तो मैं क्या करूं ? कोई प्रेस में बैठा हूं क्या जो डरूं ? मेरी 'डूटी' खतम हो गई, फिर क्या बात है ?' वह उसी अक्खड़पन के साथ कहता गया, 'उसको बाहर निकालो। मां कसम, उस कमीने को धूल नहीं खिलायी तो कहना शिवलाल आदमी का बच्चा नहीं, सुअर की औलाद था। हां।'

शिवलाल को समझानेवाले लौट आये, और जो समझाने जा रहे थे, उन्होंने अपना इरादा बदल दिया। कहने लगे—हम तो 'न्यूटरल' हैं। किसी की भलाई-बुराई क्यों गले बांधें ? हमारे लिए जैसा शिवलाल वैसे सब कम्पोजीटर !'

शिवलाल अपनी जिद पर अड़ा रहा। भीतर डर से दुबका बैठा हुआ वह कम्पोजीटर भी बाहर नहीं आया। रात के दस बजे तक जब वह बाहर नहीं निकला, तो लाचार शिवलाल ही भीतर आ गया। कम्पोजिंग सेक्शन में पहुंचकर उसने देखा वह लड़का बैठे-बैठे ऊबकर जमीन पर ही सो गया था। शिवलाल मुसकराता हुआ उसके पास जा खड़ा हुआ। लात की एक ठोकर उसे जमाकर वह बोला, 'अबे ! भूखा-प्यासा कब तक पड़ा रहेगा, कभी तो बाहर आयेगा ही ?

लड़के ने चौंककर आंखें खोलीं। उनींदी और बोझिल-सी पलकें उठाकर जब उसने खड़े शिवलाल को देखा तो डर से घिग्घी बंध गई। घबराकर उसने उसके पैर पकड़ लिये। कांपती आवाज में गिडगिड़ाया, 'शिवलाल दादा ! अब कभी कुछ नहीं बोलूंगा ! कान पकड़ता हूं !' उसने दोनों हाथों से कान पकड़कर भयभीत आंखों से सिर झुकाकर शिवलाल को देखा।

हंस गया शिवलाल। उसने अपने बलिष्ठ हाथ से लड़के के कालर का पिछला हिस्सा पकड़कर एक झटके के साथ उठा दिया। बोला, 'अबे मां के खलिहान ! इतना डर गया कि रोटी खाने तक नहीं जा सका ? हरामजादे ! जबान काबू में क्यों नहीं रखता ?'

लड़का आश्चर्य से शिवलाल का चेहरा देखे जा रहा था। वह बराबर डरा हुआ था और उसे शिवलाल की मुसकराहट पर भरोसा नहीं आ रहा था।

शिवलाल उसी तरह कहता गया, 'जमीन में से निकला नहीं कि हम जैसों से मुंह लड़ाने लग गया ? तेरे तो बाप की उमर के बराबर हूं !'

लड़के ने आंखें मलकर पुनः शिवलाल को देखा। सचमुच उसके आगे शिवलाल ही था क्या ?

शिवलाल ने उसे दरवाजे की ओर धकेल दिया, और बोला, 'चल ! तुझे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खाना खिलाऊं ? साली न जाने कहां-कहां की हत्या गले पड़ जाती है !' और फिर वह लड़के को एक पंजाबी होटल में खाना खिलाकर घर तक पहुंचा आया। एकदम विचित्र परिवर्तन था। जो शिवलाल दो घंटे पूर्व जिस लड़के को पीटने के इरादे से बाहर बैठा हुआ था, वह दो घंटे बाद उसी को भोजन करवाने होटल ले पहुंचा।

उसकी आदतों से सचमुच ही ऐसा लगता, जैसे उसके आगे-पीछे कोई नहीं है। मैंने कई बार देखा, शिवलाल प्रेस से तनख्वाह उठाता और अपने जरूरतमंद साथियों में बांट देता। एक दिन वह मेरे पास आया। कहने लगा, 'भरमर सा'ब ! एक दरख्वास्त लिख दीजिए।'

मैंने आश्चर्य से पूछा, 'क्यों, छुट्टी ले रहे हो ?'

'नहीं !' वह बोला, छुट्टी लेकर कहां जाना है ? वैसे ही डेढ़ सौ रुपये कर्ज़ उठा रहा हूं।'

'क्यों ?' मुझे और भी आश्चर्य हुआ। शिवलाल का यहां ऐसा कोई सगा-सम्बन्धी नहीं था, जहां के लिए इतने रुपयों की आवश्यकता होती ? उसके मां-बाप बचपन ही में मर गये थे। मेहनत-मजदूरी कर छोटे भाई को शिवलाल ने बी० ए० तक पढ़ाया-लिखाया। खुद विवाह नहीं किया पर भाई की शादी कर दी। करीब दो माह हुए प्रेस के ही किसी कम्पोजीटर ने मुझे बताया था कि शिवलाल के छोटे भाई ने उसे घर से निकाल दिया था, क्योंकि वह प्रेस की नौकरी छोड़ने को तैयार नहीं था, जब कि उसके छोटे भाई की, जो वहीं किसी हाई स्कूल में हेडमास्टर था, इसके नौकरी न छोड़ने से 'पोजीशन' बिगड़ती थी। ऐसी स्थिति में शिवलाल के लिए अपने भाई को मदद देने का प्रश्न ही नहीं उठता था। इसलिए पूछ लिया, 'तुम्हारे भाई को जरूरत है ?'

'अरे नई सा'ब !' हंसकर बोला, 'उसे क्या जरूरत ? पढ़ा-लिखा दिया, ब्याह-शादी कर दी, अच्छी-भली साहबी की नौकरी करवा दी। अब उसे क्या मदद की जरूरत पड़ेगी।'

'फिर ?'

'फिर कुछ नहीं !' उसने दृढ़ स्वर में कहा, 'मुझे खुद जरूरत है।'

'तुम्हें खुद ?' शिवलाल को स्वयं क्या जरूरत हो सकती है ? मन में संशय आया। लगा जैसे शिवलाल किसी गलत रास्ते पर मुड़ गया है। इच्छा हुई कि उसे समझाऊं, पर उसके स्वभाव से भलीभांति परिचित था। शिवलाल को शिक्षा या सलाह पसंद भी नहीं थी। मैंने लिखना प्रारंभ किया तो शिवलाल बोला, 'कुछ इस तरह लिखिए भरमर सा'ब कि दरखास मनीजर सा'ब के सामने रखूं, और तड़ से मंजूर हो जाय !'

मुझे हंसी आ गयी। शिवलाल बहुत सरल था। 'ऐसी ही लिखूंगा।' मैंने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहा।

जब दरख्वास्त लिख गयी, तो उसके नीचे बड़े-बड़े शब्दों में धीरे-धीरे कांपते हुए हाथों से हस्ताक्षर किये। नाम लिखने के बाद उसने गीली स्याही को फूंक-फूंककर सुखाया। फिर बोला, 'अब आपसे क्या छिपाना, सा'ब ! मुझे तो करजे की जरूरत है नहीं। कौन बाल-बच्चे बैठे हैं जिनका ब्याह क़ारज करना है। अपना वह भरोसी चौकीदार है न ?'

'कौन ?''

'अरे वही सा'ब !' उसने दरख्वास्त मोड़कर कमीज की जेब में रख ली। 'जो अभी दो महीने हुए नौकर हुआ है ?'

'अच्छा, अच्छा !'

'उसके भाई का ब्याह है।' शिवलाल इस तरह खिली-खिली आवाज में बोला जैसे उसका अपना ब्याह हो। 'सो भरोसी को जरूरत है। वह अपने यहां नया-नया नौकर हुआ है इसलिए मनीजर सा'ब ने करजे की नाहीं कर दी। विचारा बड़ा दुखी था। अब मैं अपने नाम करजा उठाकर दे रहा हूं।'

मुझे लगा, शिवलाल का दिमाग खराब हो गया है। भरोसी चौकीदार एकदम नया-नया आदमी था। ऐसी स्थिति में एकाएक बगैर किसी आधार के उसे डेढ़ सौ रुपये की राशि कर्ज दे देना इस जमाने में मूर्खता ही कही जा सकती है। मैंने पूछा, 'कोई चीज़ रख रहे हो ?'

'आप भी क्या बात करते हैं, भरमर सा'ब ? शिवलाल हंसकर बोला, 'उसके पास कोई चीज़ भी है, जिसे गिरवी रखा जाय ? एक बांस का मोटा डंडा है, जिसे लेकर रात को वह चौकीदारी करता है, दो जोड़े कटपीस की कमीजें हैं जिन्हें वह बगैर साबुन के धोकर पहनता है। वह क्या रखेगा ?'

'हूं !' मैंने कुछ सोचते हुए कहा, 'कुछ लिखा-पढ़ी कर रहे होगे ?'

मेरे इस प्रश्न पर शिवलाल और जोर से खिलखिलाकर हंस उठा। उसकी इस हंसी में एक ऐसी लापरवाही और व्यंग्य था, जैसे मैंने सवाल ही बे-सिर-पैर का किया हो ? उसी तरह उसने कहा, 'लिखा-पढ़ी तो उससे की जाती है जिससे बाद में अगर रुपया न मिले तो वसूली की जा सके ? फिर भरोसी के पास तो ऐसा कुछ भी नहीं, तब लिखा-पढ़ी काहे की ?'

'ऐसे ही दे दोगे ?' साश्चर्य मैंने प्रश्न किया, 'फर्ज करो भरोसी रुपया लेकर बदल गया तब ?'

'तब ?' शिवलाल ने बड़ी सरलता से उत्तर दिया, 'तब मैं कुछ नहीं करूंगा। डेढ़ सौ रुपये देने से मैं कोई गरीब नहीं हो जाऊंगा ? और न ही भरोसी का उनसे जनम कट जाएगा ? अच्छा, अब मैं चलूं ?'

और इससे पहले कि मैं और कुछ पूछूं, एक उड़ता हुआ सांकेतिक नमस्कार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरी ओर फेंककर शिवलाल कमरे से बाहर चला गया।

दूसरे दिन मुझे मालूम हुआ शिवलाल ने डेढ़ सौ रुपये उठाकर भरोसी चौकीदार को दे दिया था। मजे की बात तो यह थी कि भरोसी का गांव-पता ठिकाना तो दूर, शिवलाल को यह भी मालूम नहीं था, कि भरोसी शहर में कहां रहता है ?

अकसर उसके साथी कम्पोजीटर कहा करते थे—शिवलाल दुर्व्यसनी है, वह सट्टा खेलता है, गांजा पीता है और कभी-कभी शराब भी। पर मैंने शिवलाल को कभी नशे में बहकते, झूमते, गाली बकते या मारपीट करते नहीं देखा। वह कभी भी मेरे सामने आया, हमेशा ताजा और अपने आप में अनोखेपनवाला एक मुकम्मिल प्रभाव छोड़ता गया। एक बार उसी के साथी कम्पोजीटरों ने उसकी शिकायत की थी, वह सिनेमा पर ब्लैक कर रहा था। करीब तीन टिकट वहां उसने बेची थीं और हर टिकट पर लगभग आठ आने मुनाफा कमाया था। हमेशा चर्चा रहती थी कि शिवलाल बहुधंधी है। वह बहुत सारे हुनर खूब अच्छी तरह जानता है। मैंने सोचा, हो सकता है, शिवलाल के पास सिनेमा टिकट ब्लैक करने का भी एक धंधा हो।

वह सट्टा लगाता था पर और हुनरों की तरह वह अच्छे जुआरी के हुनर में कामयाब नहीं था। मुझे तो नहीं मालूम, पर सुना था शिवलाल अपनी रोज की कमाई में से तीन हिस्से सट्टे में खेल जाता और हमेशा हारता, क्योंकि जिस दिन वह जीत भी जाता, उस दिन उसे हार जाना पड़ता। जितने पैसे वह जीतता, मित्रों में बांट देता। किसी के बच्चे की तबीयत खराब होती, तो वह उसे उधार दे देता था। किसी मित्र के पास आर्थिक संकट होता तो वह उसे सहायता देता। और इस तरह शिवलाल की वह जीत भी उसके लिए हार ही होती। हां, शिवलाल उस जीत में एक खुशी अनुभव कर लेता था। किसी की मदद कर उसे आंतरिक शांति मिलती।

उसकी उम्र लगभग प्रौढ़ावस्था को पहुंच रही थी। और उम्र के अनुरूप ही उसके शरीर में क्रमशः परिवर्तन होते आ रहे थे। बालों में सफेद रंग थोड़ा-थोड़ा झांकने लगा था, आंखों में थोड़ी पिलाई-सी उभर आयी थी, और चेहरे पर झुर्रियां स्पष्ट दृष्टिगोचर होने लगी थीं। इन सब परिवर्तनों के बावजूद शिवलाल ने गजब की फुर्ती पायी थी। वह प्रतिदिन दस से बारह रुपये तक की मजदूरी कर लेता था, पर हमेशा उसे पैसे का कष्ट ही रहता। किन्तु उसके इस अर्थ-क्लेश का प्रभाव उसकी मानसिक शांति पर कभी कोई असर न डालता।

बीच में उसने काम पर आना बन्द कर दिया, तो मैंने एक दूसरे कम्पोजीटर से इसका कारण पूछा, मालूम हुआ शिवलाल बीमार है।

करीब दस रोज बाद शिवलाल काम पर आया। शारीरिक कमजोरी तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थी, पर उसके चेहरे पर किसी प्रकार का परिवर्तन न था। वह आया, उसी जिन्दादिली के साथ अपने मित्रों से मिला, हमेशा की तरह अपनी आदत के अनुसार काम करते समय बीच-बीच में वह गुनगुनाता रहा, साथियों से बातचीत करता रहा।

एक बार वह मेरे पास आया। कभी आठ आने पैसे उसने मुझसे उधार लिये थे, जिन्हें चुकाने आया था। मेरे कमरे के दरवाजे में पैर रखते ही उसने अठन्नी मेरी ओर बढ़ा दी और बड़ी लापरवाही की आवाज में बोला, 'सा'ब, ये आपकी अठन्नी।'

मैंने हंसकर अठन्नी हाथ में ले ली, तो वह बोला, 'बस ! ये ही एक आखिरी उधार था, जिसे चुका कर मैं निश्चिन्त हो गया हूं।' उसी तरह खड़े-खड़े उसने कहना जारी रखा, 'काफी उधार था, सा'ब ! महादेव पानवाले के बारह नये पैसे, देशमुख सा'ब के दो रुपये, दिल्लीवाले हकीम जी के सात आने और आपके आठ आने। सब तीन रुपया एक आना चुकाया सा'ब ! बस, अब कोई साला बात नहीं कर सकता। ऊंह !'

मुझे हंसी आयी। शिवलाल कितना सरल था। उसने अपने विचार से सोचा न होगा कि वह मेरे लिए एक गाली भी दे चुका है।

'आज तुम्हें एकाएक ही यह सारा उधार चुका देने का ख़याल कैसे आया ?' मैंने यों ही पूछ लिया।

मैंने यह प्रश्न बड़े साधारण तरीके से किया था, किन्तु शिवलाल पर इसकी व्यापक प्रतिक्रिया हुई। वह बैठ गया और इतना निश्चित होकर बैठ गया जैसे मेरे उस छोटे-से सवाल का कोई लम्बा-चौड़ा उत्तर देने जा रहा हो।

शिवलाल ने कहा, 'असल बात ये है, सा'ब,' कहते-कहते वह रुका, 'अभी मैं बीमार हो गया था न !'

'हां।'

उसने कहना प्रारंभ किया, 'तो बीमारी में मुझे कुछ सीखने को मिला है।'

'क्या ?' मैं उसी तरह लापरवाही से औपचारिक तरीके पर कहता गया जैसे गांव में किसी कहानी सुनानेवाले को उत्साहित करने के लिए बीच-बीच में श्रोता 'हूं, हां' करते हुए, कहनेवाले की बात ध्यान से सुनते जाने का प्रमाण देते चलते हैं।

वह कह रहा था, 'सा'ब, तो जब मैं बीमार पड़ा था तो मेरी किसी ने कोई खोज-खबर नहीं ली !'

'क्यों, तुम्हारे तो बहुत से दोस्त हैं, भाई हैं।'

'अरे सा'ब ! सब स्वारथ के हैं, बखत पड़े पर कोई काम नहीं आता। दोस्तों को तो छोड़ दो, वे बिराने हैं सा'ब ! पर सगा छोटा भाई ही जब पूछने नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आया, फिर किसकी शिकायत करें ?'

मैं सुनता रहा तो शिवलाल ने अपनी कहानी जारी रखी। बोला, 'ये मेरा छोटा भाई है न सा'ब, इसके लिए मैंने क्या नहीं किया ? खुद कुंवारा रहा, इसे पढ़ाया-लिखाया, इस काबिल बना दिया कि दो रोटी खा ले, अपना पेट भर ले, और बखत-बेबखत कोई आ जाय तो दो उसे खिला दे। पर उसका नतीजा यह मिला कि जब मुझ पर आयी तो उसने आके नहीं पूछा कि तेरी तबीयत कैसी है ? कहते-कहते मैंने देखा शिवलाल के चेहरे पर पहली बार विषाद की गहरी बदली छा गयी है। उसकी आंखों में दुःख और पश्चात्ताप के मिले-जुले भाव उतर आये हैं। ऐसी प्रतिक्रिया का उस पर होना बहुत स्वाभाविक भी था।

'फिर ?' मैंने पूछा।

'फिर क्या ?' शिवलाल एक क्षण में इस तरह बदलकर बोला, जैसे कहानी का अगला हिस्सा सुनाना तो दूर, कहानी प्रारंभ ही न हुई हो, 'अब मैंने किसी के साथ कोई भलाई न करने का 'पिरन' कर लिया है।'

'क्यों ?'

'क्यों क्या, सा'ब ? अब जो कुछ करूंगा अपने लिए करूंगा। बहुत कर ली भलाई !' घृणा से उसका चेहरा और विकृत हो गया। वह उठा और कमरे से बाहर चला गया।

और उस दिन के बाद से शिवलाल में सचमुच आश्चर्यजनक परिवर्तन मैंने देखा। अब वह न तो किसी को चाय पिलाता था, और न ही कभी किसी से चाय पीने के लिए कहता, बल्कि इस बीच मैंने एक नयी बात और देखी, शिवलाल खूब काम करता। वह हर रोज़ ओवर टाइम पर जाता। मेरी समझ में नहीं आया, शिवलाल इतना पैसा क्यों कमा रहा है, जब कि उसके पहले जैसे खर्च नहीं रहे ?

शिवलाल का यह रहस्य भी उसकी तमाम पुरानी आदतों की तरह अधिक दिन छिपा न रह सका। बहुत जल्द ही सारे प्रेस में यह खबर तेजी से फैल गयी कि शिवलाल बहुत शीघ्र ही खुद अपनी शादी करने जा रहा है। उसने लड़की भी पसन्द कर ली है। एक दिन बातों ही बातों में स्वयं शिवलाल मुझे बता गया कि सचमुच ही वह शादी करने वाला है। लड़की भी अच्छी मिल गयी है। रोटी के साथ-साथ कोई उसका अपना फिकर करनेवाला हो जायगा। मुझे आश्चर्य हुआ शिवलाल कितना बदल गया है ?

करीब आठ-दस माह तक शिवलाल का वही क्रम चला। वह मेहनत करता गया, खूब मेहनत करता गया, और फिर एक दिन वह गांव चला गया, जहां से शादी कर वह अपने लिए एक 'अपना' लानेवाला था। पन्द्रह दिन शिवलाल नहीं आया। और जब आया, तो लोगों ने देखा उसके कपड़े खूब रंग-बिरंगे रंगों से रंगे हुए थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसकी पीठ पर का सारा कुरता हल्दी के भरे-पूरे हाथों की छाप से रंगा हुआ था और उसका झुर्रियोंदार चेहरा एक ऐसी चमक से भरा हुआ था, जो सफलता का संकेत मिलने पर ही आती है। वह किसी खिले फूल की तरह मुसकराता हुआ सबसे मिला। साथियों के कुशल समाचार लिये और जब सब लोगों ने उससे मिठाई की मांग की तो वह इसके लिए भी सहर्ष तैयार हो गया। शादी के हाल-चाल पूछने पर उसने कहा, 'वह भी सुनाऊंगा, पहले मिठाई तो खा लो !'

मिठाई बांटने के लिए उसके पास बिलकुल पैसे नहीं थे। वह मेरे पास आया और दस रुपये उधार मांगे। मैंने रुपये देते हुए पूछा, 'शिवलाल ! ससुराल से सीधे यहां चले आ रहे हो क्या ?'

वह हंसने लगा। बोला, 'किसकी शादी ?'

'तुम्हारी।' मैंने उसी तरह कहा।

वह और जोर से हंसा। कहने लगा, 'इस बार फिर एक भलाई हो गयी है, सा'ब ! क्या करूं, साला मन बाज ही नहीं आता। सात सौ रुपये जोड़कर अपना ब्याह करने गया था, पर लड़की जोड़ की नहीं मिली। उसकी उमर उन्नीस साल थी।'

मैंने बीच ही में पूछा, 'मगर लड़की तो तुम देख आये थे ?'

'हां, सा'ब !' वह बोला, 'वही तो मैं कह रहा हूं, जोड़ फिट नहीं बैठा। कहां मैं सैंतीस साल का बूढ़ा ठठूं, और कहां वह उन्नीस साल की फुलझड़ी ? कोई मुकाबला है ?' उसने रुपये जेब में रख लिये। फिर मेरे कान के पास मुंह लाकर वह फुसफुसाया, 'किसी से कहना मत सा'ब, गांव के ही एक छोरे से वह मुहब्बत करती थी।'

'फिर ?' मैंने पूछा। उत्सुकता चरम सीमा पर पहुंचा दी थी शिवलाल ने।

'फिर क्या ?' शिवलाल ने उत्तर दिया, 'मैंने उन दोनों का मिलान करवा दिया।'

'और जो रुपये ले गये थे, उनका क्या हुआ ?'

'कुछ नहीं। वे भी उसके ब्याह में काम आ गये।' बात पूरी कर शिवलाल चला गया।

मैं देर तक उसके बारे में सोचता रहा। शिवलाल चाहते हुए भी अपनी आदत नहीं छोड़ सका था, जैसे कोई नशेबाज अपना नशा नहीं छोड़ पाता।

१९६१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सफर

ग्रैंड ट्रंक मेल ग्वालियर के प्लेटफार्म पर रुका, तो सात मिनट के लिए प्लेटफार्म जैसे भेड़ों का बाड़ा बन गया। मुसाफिर इधर से उधर, उधर से इधर इस तरह घबराते हुए दौड़ने लगे, जैसे शहर पर बम गिरा हो, या बड़ी नदी में बाढ़ आ गई हो, और लोग माल-असबाब लेकर भागे जा रहे हों।

"कुली ! कुली !···किधर मर गया? पैसे हराम के हैं क्या?" नीचे खिसक आये पैंट को ऊपर खींचते हुए, एक साहब चिल्लाये।

"मेल चालू हो जायेगा। लल्लू के बापू, पानी जल्दी पी लो।" कम्पार्टमेंट के एक कोने में सिकुड़ी-सिमटी मारवाड़िन ने क्षणभर को संकोच त्यागकर, अपने पति को प्लेटफार्म पर पानी पीने का आदेश दिया।

"पान, बीड़ी, सिगरेट, माचिस !" एक कड़वा स्वर फूटा।

"धीरे-धीरे चढ़ो, भइया। ट्रेन अभी रुकेगी।" एक कमजोर, साहसहीन मुसाफिर ने कम्पार्टमेंट के दरवाजे की भीड़ पर सज्जनता की बौछार कर, अपनी कमजोरी और लाचारी छिपाई।

"नासपीटे, दूर हट के खड़ा हो !" एक बदसूरत औरत ने कॉलेज के उस छात्र को डांटा, जिसकी कोहनी भीड़ में बार-बार उससे छू जाती थी।

"मेरी एक सीट घेरना," बाहर से एक साहब चिल्लाये।

"पहले मुझे तो जगह मिले," भीतर से हांफता-सा स्वर आया।

"अच्छा, डार्लिंग···खत देना।" प्लेटफार्म पर खड़े युवक ने ट्रेन में बैठी लड़की से कहा।

"चीरियो !" लड़की मुसकराई।

लड़का सिहर गया। कई मुसकराहटें ऐसी ही ठंडी होती हैं।

"चाय गरम !" एक आवाज़ आयी।

सरदार बलवान सिंह को जब और कहीं जगह नहीं मिली, तो उसने उस कम्पार्टमेंट की एक खिड़की के पास पहुंचकर, कुली को आदेश दिया, "सामान खिड़की से भीतर करो।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुली ने सिर पर रखा बक्स खिड़की से भीतर ठेलना आरम्भ कर दिया।

भीतर बैठा एक कमजोर मुसाफिर उसे बाहर धकेलने लगा।

कभी बक्स आधा भीतर, कभी पूरा बाहर।

सरदार जी कह रहे हैं, "जल्दी करो।"

कुली और ताकत लगाता है।

कमजोर मुसाफिर भीतर से पूरी शक्ति लगाकर बक्स बाहर ठेल रहा है। कुली शक्तिशाली है।

भीतर बैठा एक मुसाफिर चीखता है, "ए सरदार जी, ये आने का रास्ता नहीं है।"

बाहर सरदार जी चुप हैं। बक्स ठिल रहा है।

"यहां दम घुट रहा है, भाई। पैर रखने को जगह नहीं है। कोई दूसरा डिब्बा देखो।" कोई मुसाफिर कहता है!

"सब भर गया है, जी!" सरदार जी कहते हैं।

"हमने पैसे दिये हैं," एक मुसाफिर चीखता है।

"पैसे तो हमने भी दिये हैं," सरदार जी बरस पड़ते हैं।

भीतर की शक्ति कम हो गई। एक ज़ोरदार धक्का और बक्स भीतर। फिर होलडाल, बैग, पानी की केतली, और अंत में सरदार जी स्वयं भीतर आ जाते हैं। पहले से बैठे आस-पास के लोगों की दृष्टि में उनके प्रति घृणा का भाव उभर रहा है। विरोध की आवाज़ें अभी जारी हैं।

"कुली, कितना पैसा?" कोट-पैंट की क्रीज़ ठीक करते हुए, सरदार जी ने प्रश्न किया।

"बारह आना।"

सरदार जी चौंके। "मगर सरकारी रेट तो ठीक तीन आना है।"

"तीन आना कुलीगिरी का रेट है, पहलवानी का नहीं!" भारी आवाज़ में निडर कुली उत्तर देता है।

"ये लो आठ आने।"

"बारह आने से एक पैसा कम नहीं लूंगा," कुली कहता है।

क्रुद्ध दृष्टि से सरदार जी कुली को देखते हुए, बारह आने दे देते हैं। कुली पैसे गिनकर चला जाता है।

बाहर का कोलाहल अब शांत है। सात मिनट के स्टॉपेज वाले स्टेशन पर पांच मिनट ही में सब-कुछ धीमा पड़ गया है। इन पांच मिनटों में प्लेटफार्म विधवा की मांग की तरह सूना-सूना लगने लगा है। चायवालों और सिगरेट-पानवालों की इक्की-दुक्की आवाज़ें शेष हैं। लल्लू का बापू भी पानी पीकर ट्रेन में बैठ गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक गज-चिंघाड़ जैसी ज़ोरदार सीटी की आवाज़ के साथ ट्रेन चल देती है।

सरदार बलवान सिंह लम्बे सफर के मुसाफिर हैं। उन्हें सीट चाहिए। रात में बर्थ की ज़रूरत होगी। उनकी नज़रें इधर-उधर जगह टटोल रही हैं। सामने की बेंच पर चौथी सवारी की जगह एक बच्चा है। अगर उसे पास बैठी उसकी मां गोद में ले, तो एक आदमी की जगह बन जायेगी। उधर कोने वाली सीट पर एक साहब अपना होलडाल जमाये हुए हैं। कितना अच्छा हो, यदि वे होलडाल हटाकर आदमी को बैठने दें। सरदार जी खड़े-खड़े सोच रहे हैं। ट्रेन दूरी कम करती जा रही है। उनका सामान बेतरतीब पड़ा हुआ है।

सामने एक जवान लड़की सो रही है। उसके पैर नींद में बेतरतीब-से फैले हुए हैं। वह करवट लेती है। सरदार जी को जगह चाहिए। लड़की की मां घूर-कर उन्हें देखती है, जैसे वह कोई स्वादिष्ट मिठाई हों, जिसे वह खा जायेगी। लपककर वह लड़की की नंगी खूबसूरत पिंडलियों पर अपना दुपट्टा डाल देती है। सरदार बलवान सिंह के चारित्रिक सम्मान पर जैसे कोई भारी पत्थर गिर पड़ता है।

ऊपर बर्थ पर लेटा बूढ़ा ग्रामीण छींककर उठ बैठा। उसने कमर में लटकी पोटली से तम्बाकू और चिलम निकालकर, चिलम भरकर सावधानी से सुलगाई। रेल का मामला है, आग के काम में होशियारी रखना ज़रूरी है। तम्बाकू का एक गहरा कश खींचकर, उसने धुआं कम्पार्टमेंट में उगल दिया। सरदार जी ने नाक बन्द कर ली। धुआं चारों ओर फैलकर मुसाफिरों की नाकों में घुसने लगा। क्रोध से सब उसकी ओर देख रहे हैं। वह सोचता है, 'ये सब कितने बेवकूफ हैं। मुझे ऐसा लापरवाह समझते हैं। ज़िन्दगी भर चिलम पी है। क्या मजाल कि कभी आग चिलम से बाहर कूदी हो।'

उसके सामने वाली बर्थ पर दो कॉलेजी छात्र हैं, जो सिनेमा-सम्बन्धी चर्चा कर रहे हैं। वे फिल्मों के हीरो-हीरोइनों के प्रेम-प्रसंगों पर कमेंट्स कर रहे हैं। अंग्रेज़ी फिल्मों की तारीफ हो रही है।

सरदार जी जगह ढूंढ़ रहे हैं। सिर्फ वही बच्चे वाली जगह है, जिसे पाया जा सकता है। वे साहस कर बच्चे की मां से कहते हैं—"भैण जी, इस बच्चे को मैं गोद में बिठाल लूंगा। यह जगह मुझे दे दीजिये।"

बच्चे की मां सरदार बलवान सिंह को घूरती है, जैसे वे डर ही तो जायेंगे। फिर वह कह देती है, "बैठ जाओ।"

सरदार जी सिमट-सिकुड़कर बैठ जाते हैं, और बैठने के बाद फैलते हैं।

पासवाला मुसाफिर कहता है, "अपने सहारे बैठिये, भाई साहब!"

सरदार जी लापरवाही की हंसी हंसे।

"कहां जाइयेगा, सरदार जी?" सामने बैठे मुसाफिर ने पूछा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"कहीं नहीं।" आकस्मिक सवाल से चौंककर उन्होंने कह दिया। फिर बोले, "बम्बई तक जाना है। आप कहां जायेंगे ?"

"बम्बई जाइयेगा ? तो आपका-मेरा साथ रहेगा।" उस मुसाफिर ने कहा।

सरदार जी खुश हुए, "आप भी बम्बई जा रहे हैं ?"

"जी हां। वहां मेरी दुकान है।"

"दुकान है ?" पासवाले एक अन्य मुसाफिर ने पूछा, "काहे की दुकान है आपकी ?"

"जी," सकुचाकर उस मुसाफिर ने कहा, "अब आप से क्या छिपाना, साहब ? चौपाटी पर कपड़े का ठेला लगाता हूं।"

"कोई बात नहीं। चोरी तो करते नहीं। धंधे में काहे की शरम ? सतगुरु की नजर हुई, तो दुकान का ठेला कोई बड़ी शॉप बन जायेगा।" सरदार जी ने कहा।

"हां, साहब, ठीक ही तो कहते हैं। बम्बई ऐसी जगह है कि लाख रुपया लेकर जाओ, और बगैर टिकट वापस लौटो; और बगैर टिकट जाओ, और लाख रुपये लेकर वापस लौटो।"

"क्या नाम है आपका ?" सरदार जी बोले—"इतना लम्बा सफर है, कुछ जान-पहचान ही हो जाय।"

"मेरा नाम ?" बम्बई के दुकानदार मुसाफिर ने कहा, "मेरा नाम विट्ठल राव है। आप किस सिलसिले में बम्बई जा रहे हैं ? कोई रिश्तेदारी है ?"

"नहीं, जी।" सरदार बलवान सिंह सकुचाये। कहते-कहते उन्होंने मुंह की बात राल की तरह निगल ली। उन्हें खयाल आया कि घर पर दोस्तों ने कहा था कि 'बम्बई जा रहे हो। किसी को यह न बताना कि क्यों जा रहे हो। अकसर बदमाश मिल जाते हैं, जो नया आदमी जानकर दस-पांच रुपये की चोट कर ही देते हैं ?' यह सोचकर बलवान सिंह ने कह ही दिया, "हां, रिश्तेदारी ही समझिये। वहां दोस्त की फूफी का लड़का मिल में काम करता है। उसी के यहां जा रहा हूं।"

विट्ठल राव ने फिर कोई प्रश्न नहीं किया। उसे लगा कि सरदार जी उससे किसी बात का छिपाव कर रहे हैं। हंसकर बोला—"चार सौ बीस तो बम्बई में ही मिलेंगे, सरदार जी। अभी ग्वालियर से तो कोई खतरा नहीं।"

"नहीं-नहीं, सा'ब !" पास बैठे एक अन्य मुसाफिर ने कहा—"जेबकतरों की शुरुआत तो भुसावल से ही हो जायेगी। वहां से तो समझिये कि जाल बिछा रहता है बदमाशों का बम्बई तक। सूट, बूट, नेकटाई पहने हुए होंगे। आप के पास खड़े हो जायं, तो आप अंदाजा ही नहीं कर सकते कि ऐसा अप-टू-डेट आदमी भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जेब काटने का धंधा कर सकता है।" फिर आंखें फाड़कर वह मुसाफिर बोला—"मगर सच मानिये, वह आपकी-हमारी जेब इस सफाई से साफ कर देगा कि पता ही नहीं चले कि घर से रुपये लेकर भी चले थे या नहीं।"

सरदार जी ने कहा—"मैंने सुन रखा है। हमारी रिश्ते की चाची के मामू का लड़का ट्रैक्टर खरीदने यहीं ग्वालियर से बम्बई गया था। सात हजार के नोट उसके पास थे। मामू ने उसे समझाया कि ये रुपये-पैसे साथ न ले जाओ। बैंक के ज़रिये भिजवा देते हैं। पर वह माना नहीं। हंसकर कहने लगा, 'बम्बई पहली बार जा रहा हूं क्या ?" फिर कुछ रुककर सरदार जी ने कहा, "वह पहले भी कई बार रुपये लेकर बम्बई भाग चुका था।"

"एक्टर बनने गया था क्या ?" विट्ठलराव ने हंसकर पूछा।

"नहीं, डायरेक्टर बनने। हां, तो बम्बई उसकी घूमी पड़ी थी। उसने सात हजार रुपये अपने जूते में पैर के नीचे छिपा लिये और बम्बई रवाना हुआ।"

"फिर ?" आश्चर्य-चकित हो विट्ठलराव ने प्रश्न किया, "बदमाशों ने पकड़ लिया क्या गरीब को ?"

"नहीं, जी। कत्ल कर दिया होगा।" दूसरा मुसाफिर बोला।

"नहीं-नहीं," सरदार बलवान सिंह कहने लगे, "बम्बई पहुंचकर वह तीन दिन वैसे ही घूमता रहा। होशियारी तो वह ऐसी कर रहा था, जनाब, कि जूते पहनकर ही बैठता-उठता, जूते पहनकर ही लेटता, जूते पहनकर ही सोता। सो ऐसे ही चौथे दिन जब सोया, तो सुबह आंख खुली। उठ बैठा। उसे लगा, जैसे पैर हल्के हो गये हैं। नज़र घुमाई, तो देखा कि जूतों के ऊपरी खोल तो पैर में मौजूद थे, लेकिन तल्ले और रुपये गायब थे। काफी चिल्ल-पौं मचाई, पुलिस में रिपोर्ट की। पर क्या होता है, साहब ?"

"कमाल है, साहब, सफाई का भी कमाल है !" तीसरा मुसाफिर बोला, "सोते में जूतों के तल्ले निकाल लिये, और नींद तक न खुलने दी। कमाल कर दिया बदमाशों ने !"

"इसमें क्या कमाल है ?" विट्ठलराव बोला, "ऐसी ही बातों से तो बदमाशों को शक हो जाता है पैसा पास होने का। अरे, जब खाते-पीते-सोते किसी समय जूते नहीं उतारे जायेंगे, तो शक नहीं होगा ?"

सरदार बलवान सिंह ने कहा, "मगर तारीफ तो इस बात की है, भाई साहब, कि सोते में जूतों के तले निकाल लिये, और आदमी जाग नहीं पाया।"

"यही तो मैं भी कहता हूं।" वह मुसाफिर बोला।

"इसमें काहे का कमाल," विट्ठलराव ने फिर दलील दी, "बदमाशों ने जूतों के तल्ले काटने से पहले उसे क्लोरोफार्म सुंघाकर बेहोश कर दिया होगा।"

सरदार जी और अन्य मुसाफिर विट्ठलराव की अकाट्य दलील से चुप हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गये ।

विट्ठलराव ने मंह बिचकाया और लापरवाही के भाव से कहा, "यह घटना तो कुछ भी नहीं है, सरदार जी। मुझे तो बम्बई में रहते पांच साल हो गये। मैंने ऐसे-ऐसे बदमाश देखे हैं कि पूछिये नहीं। जेबकतरे तो इस सफाई के मिलेंगे कि दांतों तले अंगुली दबाकर रह जाइये।"

सरदार जी ने सहमति के भाव से सिर हिलाया।

विट्ठलराव कहता गया, "आपके कोट के नीचे जैकेट और उसके नीचे स्वेटर है। फिर उसके नीचे की कमीज में रुपये रखे हुए हैं। एक आदमी आकर आपको धक्का देकर लड़ाई मोल लेता है। फिर दूसरा बीच-बचाव करता है। बस, इस बीच आपकी जेब साफ।"

सरदार बलवान सिंह पर विट्ठलराव की बात का तत्काल प्रभाव पड़ा। घबराकर उसने जेब टटोली और आस-पास देखा। सामने बैठा एक सूटेड-बूटेड आदमी उसे घूर रहा था। बलवान सिंह को उसके हाव-भाव से लगा, जैसे वह कोई जेबकतरा हो।

"यह तो जेबकतरों की बात हुई," विट्ठलराव ने कहा, "उठाईगीरे तो अंधेर ही करते हैं, साहब ! आपके बक्स को अपना कहने लग जायेंगे। और फिर आप और हम तो क्या, कोई भी कुछ नहीं कर सकता। बक्स उनके बाप का।"

बलवान सिंह विस्फारित नेत्रों से विट्ठलराव को घूरता हुआ, उसकी बातें सुन रहा था। वह बीच-बीच में उस व्यक्ति की ओर देख लेता था, जो सूटेड-बूटेड था और उसे घूर रहा था। 'निश्चय ही कोई जेबकतरा या उठाईगिरा है,' बलवान सिंह ने विचारा और एक बार फिर अपनी जेब संभाली।

रेल की स्पीड कुछ धीमी होनी शुरू हुई, तो बलवान सिंह ने पूछा, "कौन-सा स्टेशन आ रहा है ?"

"स्टेशन नहीं आ रहा है। ट्रेन पहुंच रही है, सरदार जी !" विट्ठलराव ने हंसकर कहा, "न जाने कौन-सा स्टेशन हो। जब से हिन्दुस्तान आज़ाद हुआ है, स्टेशन भी तो ढेरों नये-नये बन गये हैं।"

ट्रेन की चाल क्रमशः धीमी पड़ती जा रही थी।

कुछ देर बाद स्टेशन आया, तो फिर वही कोलाहल शुरू हो गया। शोर-गुल होने लगा। मुसाफिर धक्कम-धक्का करने लगे। भीड़ बहुत थी। सरदार बलवान सिंह को प्यास बहुत तेज़ लगी थी। भीड़ के कारण दरवाज़े से जा सकना मुमकिन न था। वह खिड़की से प्लेटफार्म पर कूदकर पानी पीने चला गया।

विट्ठलराव चिल्लाया, "जल्दी आना, सरदार जी !"

"अभी आया," कहते हुए सरदार बलवान सिंह भीड़ में ओझल हो गया।

पानी पीकर बलवान सिंह लौटा। इस बार वह दरवाजे से ही आया। भीड़

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छंट गई थी। अपनी सीट पर बैठते हुए, बलवान सिंह ने सामनेवाले मुसाफिर से पूछा, "वे साहब कहां चले गये ?"

मुसाफिर ने उत्तर दिया, "वे यहीं उतर गये। कहते थे कि उनके मामा यहां रहते हैं। उनसे मिलकर जायेंगे।"

"अच्छा, अच्छा," बलवान सिंह आराम से फैलकर बैठता हुआ बोला, "आदमी मस्त था। चालीस-पचास मील तक तो सफर गप्पों में ही गुजर गया। मालूम भी नहीं हुआ।"

"हां, सा'ब, सफर में कोई गप्पें लड़ाने वाला दोस्त मिल जाय, तो समझिये कि बड़ी मस्ती में कटता है रास्ता।" और फिर वह हंसा।

एक लम्बी सीटी, और हल्के से धक्के के बाद ट्रेन चल दी।

सरदार जी फैलकर इस तरह बैठे कि लगभग लेट ही गये।

अब रास्ता जैसे खलने लगा था। रास्ता काटने के लिए विट्ठलराव जैसा अब कोई साथी नहीं था। कुछ देर बाद जब बलवान सिंह को बहुत ऊब लगने लगी, तो उसने पुस्तक निकालने के लिए सीट के नीचे से अटैची ढूंढनी आरम्भ की। पर वहां अटैची नहीं थी। उसने इधर-उधर चारों ओर देखा, अटैची नहीं थी।

पास में बैठे मुसाफिर ने पूछा, "क्या बात है, सरदार जी ?"

"कुछ नहीं," बलवान सिंह बराबर अटैची ढूंढने का प्रयत्न जारी रखते हुए बोला—"यहां मेरी अटैची रखी थी।"

"आपकी अटैची ?" वह मुसाफिर बोला, "वहां तो विट्ठलराव की अटैची रखी थी, जिसे पिछले स्टेशन पर वह अपने साथ ले गया।"

"ऐं !" सरदार बलवान सिंह पर जैसे वज्र प्रहार हुआ, "क्या कहते हैं आप ? यहां तो मैंने अपनी अटैची रखी थी। उसका रंग खाकी था।"

"जी हां, उसका रंग भी खाकी ही था।"

"तो फिर वह मेरी अटैची रही होगी," बलवान सिंह ने मन मारकर कहा, "कमीना ! यहां तो बड़ी-बड़ी बातें कर रहा था। जरा-सी अटैची पर ही नियत बिगाड़ बैठा कमबख्त !"

"कितने का माल गया, सरदार जी ?" एक मुसाफिर ने सहानुभूति दिखलाई।

"कुछ ज्यादा नहीं, थोड़े-से कपड़े थे।" बलवान सिंह ने उदास चेहरे पर जबरन अनावश्यक लापरवाही प्रकट करने का असफल प्रयत्न करते हुए कहा, "वह तो गनीमत हुई कि रुपये सब जेब में ही हैं वरना सतगुरु की सौगंध, परेशानी हो जाती।"

पड़ोस में बैठी पंजाबिन को भी सरदार बलवान सिंह से सहानुभूति हुई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बोली, "कपड़े-लत्ते ही गये हों, मगर इस ज़माने में तो एक नया पैसा खो जाय, तो भी दुःख होता है, जी।"

"मगर, माता जी, कौन किसके मन में पैठ सकता है? कौन जाने, कब किस के मन में बदनीयती आ जाय?"

एक मुसाफिर बोला, "अभी कैसी-कैसी बातें कर रहा था बदमाश, और यह हरकत कर गया। राम-राम! ईमान किस कदर बिगड़ गया है लोगों का!"

सरदार बलवान सिंह ने कहा, "जाने दो, जी। दो-चार रुपल्ली की चीज चुराकर जिन्दगी थोड़े ही कटेगी कमबख्त की। हम को मालिक और देगा, और वह हमेशा ऐसा ही करता फिरेगा।"

"सो तो है ही।" पंजाबिन ने समर्थन किया।

"खैर, छोड़िये। अपना भाग थोड़े ही ले गया, जी!" एक खोखली हंसी हंसकर, अपनी लापरवाही के प्रतिफल पर परदा डालते हुए, सरदार बलवान सिंह ने सामनेवाले मुसाफिर से कहा, "मगर आप तो कहते थे कि चोर और उठाईगीरे भुसावल से शुरू होते हैं।"

"क्या कहूं, साहब?" कुछ शरमाकर उसने उत्तर दिया, "किसी के माथे पर थोड़े लिखा रहता है कि वह शरीफ है या बदमाश। आप अगले स्टेशन पर रेलवे पुलिस में इस घटना की रिपोर्ट जरूर कीजिएगा। सफर में आजकल ऐसी घटनाएं आये दिन हो रही हैं।"

"अजी, छोड़िये।" सरदार बलवान सिंह ने उपेक्षा दिखाई।

"नहीं-नहीं, साहब। आप बड़े आदमी हैं, सह लेंगे; पर यही किसी गरीब पर बीतती, तो उसका क्या हाल होता?"

"आप कहते हैं, तो रिपोर्ट कर देंगे। पर होना-हवाना कुछ नहीं है।"

"ज़रूर कीजिए।"

अगला स्टेशन आया, तो बलवान सिंह ट्रेन में रखा अपना सामान पंजाबिन के सिपुर्द कर, उन साथी मुसाफिर के साथ अपना सामान चोरी जाने की रिपोर्ट करने उतरा।

भीड़ बहुत थी। गेट पर काफी संघर्ष करना पड़ा उन दोनों को।

करीब दस मिनट बाद बलवान सिंह घबराहट में कांपता हुआ वापस लौटा। कम्पार्टमेंट में आकर, उसने पंजाबी महिला से पूछा—"वे साहब आये क्या यहां?"

"नहीं।" उत्तर मिला।

एकाएक बाहर प्लेटफार्म पर उतरकर, वह पागलों की तरह चीखने लगा—"पुलिस! पुलिस! मैं बरबाद हो गया! मेरी जेब कट गई। इसमें नौ सौ रुपये थे।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आस-पास भीड़ एकत्र होने लगी। अनेक लोग तरह-तरह से उसे सांत्वना दे रहे थे। पर बलवानसिंह को उन सांत्वना देने वालों से डर लग रहा था। उसे हर ओर चोर, उठाईगीरे और जेबकतरे नजर आ रहे थे। लगता था जैसे भीड़ का हर आदमी उसका सामान ले भागेगा और जेब काट लेगा।

१९६१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बर्तन खटकते हैं

मुंशी हरभजनलाल को इच्छा हुई कि वे रो पड़ें और इतना रायें कि वे सारे लड़ाकू किराएदार एक-एक करके उनके आंसुओं की बाढ़ में बह जाएं। पर वे बड़े दुखी हुए यह सोचकर कि अगर वे इतना रो ही पाते, तो गर्मियों में मकान के नल की टोंटी सूखती ही क्यों ? और जब टोंटी ठीक तरह काम करती जाती, तो उनके किराएदार पद्मसिंह की पत्नी से लगातार धाराप्रवाह रूप में कंजूस, मक्खीचूस और अन्य-अन्य शिष्ट गालियां क्यों सुननी पड़तीं, और फिर उनकी शास्त्रीय गायिका पत्नी को उत्तर में डेढ़ घंटे तक राग बिलावल क्यों अलापना पड़ता ? और पत्नी जी घर की हाय-हाय, किट्-किट् से घबराकर उनके सामने उन्हें मायके पहुंचा आने का प्रस्ताव क्यों रखतीं ? फिर उन्हें जीवन में पहली बार क्रोधित होकर स्टंट फिल्म के नाकामयाब विलन की तरह किरायेदारों को सम्बोधित कर, क्यों कहना पड़ता, "देख लूंगा सब सालों को !···अगर इन कुंजड़े-कुंजड़िनों को घर से न निकाल दिया, तो मेरा नाम हरभजनलाल नहीं ! भूरी की अम्मा (उनकी पत्नी का गृह-नाम), तू मुझे तलवार से दो टुकड़े कर देना, अगर अब इनमें से एक को भी यहां मैं रहने दूं !"

मुंशी जी चुप हो जाते और भूरी की अम्मा का क्रोध भी शांत हो जाता। शाम को मुंशी जी अपने घर से निकलते। पद्मसिंह मिलता, तो राम-राम करके पूछते, "बड़े दुबले होते जाते हो। बहू खाना नहीं देती क्या ?"

पद्मसिंह हंसकर उत्तर देता, "ऐसी बात नहीं है, मुंशी जी। ऑफिस में काम ज्यादा रहता है।"

जहां तक स्वभाव की बात है, मुंशी हरभजनलाल पूरे देवता-टाइप आदमी हैं, पर जहां आत्म-सम्मान का प्रश्न हो, वहां उन्हें भी तिहाई-चौथाई गुस्सा आ ही जाता है।

उस दिन मुंशी जी को थोड़ा-बहुत गुस्सा हो ही आया। सुबह-सुबह उठे ही थे, कि भंगी ने आंगन में आकर कहा, "मुंशी जी, बाहर के घूरे पर टैम-बेटैम कचरा मत डाला करो। रोज-रोज देखता हूं, किसी दिन मुन्सीपाल्टी में रपोट कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूंगा।"

मुंशी जी को बड़ा बुरा लगा। बुरा लगने की बात ही थी। भंगी की इतनी मजाल कि ताल ठोंक कर चैलेंज दे जाय? मुन्सीपाल्टी में रिपोर्ट कर देगा! इच्छा हुई कि कह दें, 'जो मरजी हो, कर लेना।' फिर सोचा कि भंगी ठीक ही तो कहता है। अगर उनके किरायेदार बेवक्त वहां कचरा न डालते, तो वह कहता ही क्यों?

मुंशी जी ने मन की घुटन दबाकर, जवाब दिया, "नीचेवालों ने डाला होगा। उनसे कहो।"

"मैंने तो मकान-मालिक से कह दिया। नीचे-ऊपर के घपले में मैं क्यों पड़ूं? तुम जानो, तुम्हारा काम जाने।"

भंगी अपनी बात कहकर बाहर चला गया।

मुंशी जी की बात सुनकर, पद्मसिंह की पत्नी रसोई से बाहर आ गई। गीले आटे से सने दोनों हाथों को मुंशी जी की ओर उठाकर उसने कहा, "हम से कुछ मत कहना, मुंशी जी। हमारा कचरा वहां नहीं जाता।"

मुंशी जी बहुत-कुछ कहना चाहते थे, पर न जाने क्यों कह नहीं सके। मकान की निचली मंजिल में कुल तीन किरायेदारों के परिवार थे। किससे क्या कहा जाता? मुंशी जी लौटने को हुए, तो उनका दूसरा किरायेदार रामनाथसिंह कचौड़ीवाला खोमचा सजाते-सजाते चिल्लाया, "मुंशी जी, हमारी तरफ से भी कचरा उस घूरे पर नहीं गिरता।"

बात साफ थी। मुंशी जी ठिठक गए। 'क्या तीसरा किरायेदार?' मुंशीजी ने सोचा, 'कचरा उसी ने डाला होगा। तभी तो इतनी बात हो गई, मगर कमरे में छिपा बैठा है। कुछ बोला ही नहीं।'

वे भारी स्वर में चिल्लाए, "तीसगांवकर साहब!···अरे, व्यंकटराव जी!"

"आया, मुंशी जी!" कहते हुए व्यंकटराव तीसगांवकर कमरे से बाहर निकल आया।

उस समय वह पूजा की लाल धोती पहने हुए था। उसका सीना नंगा था और माथे पर त्रिपुंड खिंचा था। उसकी फैली हथेली पर घुला चन्दन देखकर मुंशी हरभजनलाल ने कहा, "अरे!···भाई, माफ करना! पूजा से उठा दिया।"

"कोई बात नहीं।···कोई बात नहीं।" व्यंकटराव ने निहायत भलमनसाहत से तकल्लुफ समाप्त किया।

मुंशी जी ने कहा, "भाई, बाहर कचरा मत डाला करो। वह भंगी···"

"क्या बाहर न डालकर कमरे के बीच सन्दूक में रखकर बन्द कर दिया करें?" व्यंकटराव की पत्नी रसोई बनाते-बनाते भीतर से बोली।

"मेरा···मतलब यह नहीं था," मुंशी जी ने कहा, "जरा समय का ख़याल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रखा करो। सवेरे सात के बाद का कचरा भंगी नहीं उठा सकते। सरकारी कायदा है।"

व्यंकटराव उस समय पूजा के मूड में था। बोला, "मगर हमारा कचरा तो सुबह के वक्त ही गिरता है। फिर कभी हम डालते ही नहीं।"

मुंशी जी चुप रहे। मगर उनकी पत्नी, जो स्नान करके लौटे रही थीं, गुसलखाने से बाहर निकलते ही बोलीं, "तुमने डाला नहीं। कचौड़ीवाले कहते हैं कि उनका गिरता नहीं और पद्मसिंह के घर से कह रही हैं कि वह डालती नहीं। फिर क्या आसमान से भूतों ने गिराया, या हमने डाला?"

व्यंकटराव तीसगांवकर की इच्छा हुई कि कुछ कहें। पर मुंशी की बात होती, तो कहना ठीक था। लाचार चुप रहा।

उसकी पत्नी रसोई छोड़कर बाहर आ गई और बोली, "आसमान से भूतों ने गिराया हो, या तुम्हारी तरफ से गिरा हो, हमें इससे कोई मतलब नहीं। हमें कभी कचरा डालते देखो, तो उसी बखत पांच सौ जूते देना। और जो खोटी कही, तो हम देंगे।"

व्यंकटराव ने अपनी पत्नी को झिड़का, "काय बड़-बड़ लावली आहे?"

ऊपर से आग-बगूला होकर श्रीमती मुंशी चिल्लाईं, "बड़ी आयी जूते देने वाली! एक की दो कर दूंगी! शरम नहीं आती बड़े-बूढ़ों के सामने जुबान चलाते? बेशरम!"

बड़े-बूढ़ों से मतलब मुंशी जी से था। मुंशीजी बोले, "मर्दों की बात में तुझे बोलने की क्या जरूरत है?"

व्यंकटराव की ओर संकेत कर, मुंशी जी की पत्नी ने कहा—"मरद खड़ा लुगाई को लड़वाता है! इसे लोक-लाज नहीं!"

तीर निशाने पर बैठा। व्यंकटराव हर बात सहन कर सकता था, पर उसकी मर्दानगी पर कोई आंच आए, यह उसकी सहन-शक्ति से बाहर की बात थी। उसने अपनी पत्नी का हाथ पकड़ा और मराठी में कुछ बड़बड़ाता हुआ अन्दर चला गया। बड़ी देर तक उसकी पत्नी और वह आपस में उलझते रहे और जब दोनों का राजीनामा हो गया, तब दोनों ने मुंशी जी और अन्य किरायेदारों को एकमत होकर कोसना प्रारंभ कर दिया।

व्यंकटराव कह रहा था, "मकान-मालिक तोहमतें लगाकर हमें निकालना चाहता है। कचौड़ीवाला और पद्मसिंह, दोनों को उसने पटा लिया है। वे ही कचरा डालते हैं और नाम हमारा लगता है।"

मुंशी जी अपने घर में, कचौड़ीवाला रामनाथसिंह अपने घर में और पद्मसिंह की औरत रसोई में बैठे-बैठे सब-कुछ सुनते-समझते रहे।

व्यंकटराव की पत्नी कह रही थी, "उन मरों का नाश हो, जो ऐसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'पाल्टीबाजी' कर रहे हैं ! उनके लड़के-नाती मरें, जो हमारा झूठा नाम लगावें !"

मुंशी जी लेटे रहे। उनकी पत्नी ने पलंग के एक कोने पर बैठकर कहा, "सुनते हो, कैसा चबड़-चबड़ कर रही है ?"

मुंशी जी ने जम्हाई लेकर कहा, "हूं।"

व्यंकटराव कह रहा था, "वह कचौड़ीवाला रोज चाट बनाकर ढेरों इमली बाहर फेंकता है। तमाम हरी मिर्च के ठूंठ घूरे पर पड़े रहते हैं। आलू के छिलकों का तो ठिकाना ही नहीं। और झूठ बोल रहा है, कि 'हम तो वहां कूड़ा डालते ही नहीं।' फिर क्या सिर में भर लेते हो ?"

कचौड़ीवाले ठाकुर रामनाथसिंह का खून उबला—इतना उबला कि उसके मन में अपने पूर्वज राणा सांगा की याद कसमसाने लगी। इच्छा हुई कि बन्दूक ले जाय और धायं से गोली मार दे। पर जमाने की रफ्तार की बात सोचकर चुप रहा। अच्छा हुआ कि उसके पास कई पुश्तों से बन्दूक नहीं थी।

व्यंकटराव की पत्नी सही मराठी बोलते-बोलते गुस्से में गलत हिन्दी बोलने लगी, "मुंशी तो खैर मकान-मालिक है। दो भली-बुरी कहेगा, तो सुन लेंगे। मगर पद्मसिंह की घरवाली क्या समझती है हमारे को ? हम अपने घर में बुरा-भला खाते हैं, किसी के दरवज्जे नहीं जाते मांगने को ! किसी से दबे हैं क्या ?"

"फिकर नॉट !" व्यंकटराव चिल्लाया, "आने दे पद्मसिंह को। बिससे मैं निपट लूंगा।"

पद्मसिंह की घरवाली को व्यंकटराव तीसगांवकर की बातें गर्मी में फुंसियों की किलबिलाहट-सी महसूस हुईं। उसने दृढ़ निश्चय किया कि हर बार की तरह वह पद्मसिंह से यह लड़ाई नहीं छिपाएगी। पर वह यह सोचने लगी कि ऐसी छिटपुट लड़ाइयों में मर्दों को डालना ठीक नहीं। और फिर उसके पति का गुस्सा ! परमात्मा बचाए ! अगर वह ताव में आ गया तो और लेने के देने पड़ जाएंगे। यह सोचकर वह रसोई से बाहर निकलकर, गला फाड़-फाड़कर चीखने लगी, "मेरा घरवाला घर में नईं ए, तो तुम लोग-लुगाई मिलकर मुझे दबाए लेते हो। सुन लो, मैं नहीं दबनेवाली। खास मालवा के जाटों की लड़की हूं। गले से लगके खून पी जाऊंगी !"

व्यंकटराव मर्द आदमी। औरत से क्या बोलता ? चुप रहा।

मुंशी की पत्नी छज्जे पर आकर खड़ी हो गई। कचौड़ीवाला विधुर रामनाथसिंह सोचने लगा कि अगर पहली पत्नी की मृत्यु के बाद दूसरी शादी कर डालता, तो उसकी पत्नी भी इसी तरह उसका सहारा लेकर लड़ जाती।

व्यंकटराव की पत्नी तेजी से बाहर आ गई। कहने लगी, "जबान संभाल कर बोलना मेरे से ! पद्मसिंह आएगा, तो झड़वा के रख दूंगी ! समझी ?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तत्काल जवाब मिला, "चल-चल, झड़वा के रख देगी ! तूने मेरा नाम क्यों लिया ? मैं डालती हूं क्या कचरा, बोल ?"

व्यंकटराव की पत्नी ने महाराष्ट्रीयन पल्ला कमर से बांधा, एक पैर जमीन पर धड़काया, फिर कहा—"कचरा आज नहीं डाला, तो क्या ? कभी डालती ही नहीं जैसे । नल का मीटर भी तूने ही तोड़ा था । बर्तन मांजकर राख वहीं डाल देती है । मोरी रुक जाती है । नाम मेरा लगता है । तेरे लच्छन मुझे सब मालूम हैं ।"

व्यंकटराव की पत्नी जरा सांस लेने को रुकी, तो पद्मसिंह की घरवाली ने तेजी से कहा, "मेरा मुंह क्यों खुलवाती है ? तूने उस दिन ठाकुर कचौड़ीवाले की कचौड़ियां चुराई थी, जब वह सो रहा था । मुझसे क्या नाक लगाके बात करेगी तू ? चोट्टी नई तो !"

कचौड़ीवाले रामनाथसिंह के कान खड़े हुए । फिर दुःख हुआ । अगर घर में औरत होती, तो पड़ोसवाले कचौड़ियां कैसे चुराते ? अच्छा दुःख दिया राम ने !

व्यंकटराव की पत्नी कछोटा लगा ही चुकी थी, अब अन्दर जाकर झाड़ू और ले आयी । मुंशी की पत्नी घबराकर कमरे में आयी, और मुंशी सहित बाहर आ गई । मुंशी जी ने जब मामला संगीन देखा, तो वापस कमरे में चले गए । बोले, "कैसी बातें करती हो ? औरतों की कुश्ती देखूगा क्या ? मैं तो कहता हूं, तुम भी भीतर आ जाओ । दूसरे की लड़ाई में अपना क्या लेना-देना ?"

झाड़ू लिये, रौद्र रूप बनाए खड़ी, व्यंकटराव की पत्नी ने चिल्लाकर कहा, "अब बोल !"

"क्यों, क्या जीभ कट गई है मेरी, जो बोलूंगी नहीं ? तू मुझे क्या झाड़ू दिखाती है, उस व्यंकटे को दिखा ! मुझे दिखाएगी, तो नाक-कान काटकर हथेली पर धर दूंगी !" पद्मसिंह की पत्नी गरजी ।

व्यंकटराव भीतर लेटा-लेटा सोचता रहा कि औरतों की लड़ाई में मर्द का बोलना ठीक नहीं माना जाता ।

उसका पत्नी ने झाड़ू बन्दूक की तरह हाथ में ले तो ली, पर फायर करने की उसे हिम्मत नहीं पड़ी । श्रीमती मुंशी को लगा, जैसे बात कुछ ज्यादा बढ़ने वाली है । उन्होंने अपनी बारीक आवाज को थोड़ा भारी बनाने की कोशिश की, और फिर मकान-मालिकों जैसे कठोर स्वर में कहा, "ए तुकोबाई ! ऐसी चमरिया लड़ाई लड़नी है, तो बाहर जाकर लड़ो । हमारे मकान में कभी ऐसी हाथापाई की लड़ाई नहीं हो सकती । समझीं ?"

कचौड़ीवाले रामनाथसिंह ने खोमचा तैयार कर लिया था और युद्ध का आनंद ले रहा था । जब मकान-मालकिन को ऐसा कहते सुना, तो उनका समर्थन करने लगा, "बाई लोगों को हाथापाई वाली लड़ाई नहीं सुहाती । मुंह से लड़ो ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

झाड़ूबाजी अच्छी नहीं। दो तुम कहो, चार वे कहें। धीरे-धीरे मुंह की लड़ाई मुंह-ही-मुंह खतम हो जाएगी। कुश्तीवाली लड़ाई मर्दों के लिए ही रहने दो।" ऐसा कहना उसका फर्ज था। कचौड़ीवाले को सन्तोष हुआ।

कचौड़ीवाले का जनाना स्वर सुनकर, व्यंकटराव कमरे से बाहर आ गया। उसने दबंग स्वर में कहा, "औरतों की लड़ाई में तुम्हारी क्या जरूरत है? कोई दिल की निकालनी है, तो मेरे से निकाल लो।"

कचौड़ीवाले रामनाथसिंह को गुस्सा तो बहुत आया, पर व्यंकटराव का भारी-भरकम शरीर देखकर वह चुप्पी साध गया। उसे अपनी तन्दुरुस्ती का ख़याल आया, जो पिछले चार सालों से विरह के दुख में बिगड़ गई थी।

इन बीच वाली बातों से लड़ाई की चाल कुछ धीमी पड़ रही थी। पद्मसिंह की औरत के हाथ में जलती लकड़ी देखते ही तुकोबाई का वह जोश तेजी पकड़ गया, जो धीरे-धीरे कम होता जाता था।

पद्मसिंह की औरत ने धुआं उगलती लकड़ी को हवा में घुमाते हुए कहा, "मैं आज तुझे सिलगा के न रख दूं, तो मेरा नाम पद्मिनी नहीं। तीन महीने खटिया से नहीं उठेगी। मरद को बगल में खड़ा करके लड़ाई लड़ती है?"

पद्मसिंह की पत्नी आगे को बढ़ी, तो व्यंकटराव ने तुकोबाई का हाथ पकड़कर पीछे कर लिया और खुद आगे हो गया। मुंशी जी भी दौड़कर नीचे पहुंचे। बीच-बचाव करने लगे। उन्हें देखते ही कचौड़ीवाला रामनाथसिंह भी बीच में आ गया।

मुंशी जी ने पद्मिनी को समझाया, "पद्मसिंह को घर में आ जाने दो। चार आदमी बुलाकर फैसला कर लेंगे।"

तुकोबाई ने चिल्लाकर व्यंकटराव को एक ओर हटाकर कहा, "या तो हम रहेंगे इस घर में, या ये!" और फिर भीतर चली गई।

मुंशी हरभजनलाल आंगन के दरवाजे तक गए। भंगी को बुलाकर, घूरे की ओर संकेत कर, उन्होंने गंभीर स्वर में कहा, "आइंदा से कोई इस घूरे पर सात के बाद कचरा नहीं डालेगा।"

भंगी ने जवाब दिया, "इस घूरे पर तो सात के बाद कचरा नहीं गिरता। मैं तो उस घूरे के लिए आप से कह रहा था।" और उसने इशारे से एक दूसरा घूरा दिखाया।

"क्या कहा?" मुंशी हरभजनलाल आंखें फाड़कर चिल्लाए, "तुम उस घूरे की बात करने आए थे?"

"हां, सा'ब!" भंगी ने उत्तर दिया।

मुंशी हरभजनलाल को जिन्दगी में दूसरी बार इतना जबरदस्त क्रोध आया, कि उनके मुंह से एक गंदी गाली निकल गई, और हाथ-पैर लड़खड़ाने लगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"अरे !···वह घूरा तो हमारा है ही नहीं। वह तो जूतेवालों का है—हरनाम सिंह का। बेमतलब की सिर-फुड़ाई करवा दी हमारे मकान में।"

मुंशी जी की चिल्लाहट सुनकर, सब बाहर आ गए। कचौड़ीवाले ने सब कुछ सुनाया।

गुस्से में पसीने से सराबोर मुंशी हरभजनलाल ऊपर आकर लेट गए।

शाम को व्यंकटराव के घर पर एक पार्टी हुई, जिसमें पद्मसिंह, कचौड़ीवाला और मुंशी जी— सभी आमंत्रित थे।

मुंशी जी की पत्नी, पद्मिनी और तुकोबाई रात को बड़ी देर तक बैठी पाक-विज्ञान सम्बन्धी चर्चा करती रहीं और घर के मर्द लोग औरतों की लड़ाइयों के आंखों-देखे हाल सुनते-सुनाते रहे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ड्यूटी मुसकराने की

बेबी को फूल तब अच्छे लगते हैं, जब वे गुच्छे की शक्ल में हों, ऐसे गुच्छे की शक्ल में, जिसमें पत्तियों के बीच वे हंसते हुए झांक रहे हों—ठीक वैसे ही, जैसे खुद बेबी तमाम चाहने वालों के बीच घिरी-घिरी झांकती है।

बेबी सिर्फ बेबी नहीं है। वह फूलों और पत्तियों के अर्थ, हंसना, मुसकराना और सिहरना या किसी को सिहरा देना खूब जानती है। वह जानती है कि औरत का सकुचाना क्यों कीमती है और आदमी पर कौन-सी शराब जल्द असर करती है।

बेबी को अंग्रेज़ी फिल्में देखने या सस्ती किताबें गुपचुप पढ़ने का शौक भले हो गया हो, भले ही उसे 'फिट' कपड़ों से लगाव रहे, पर मां-बाप की नजर में वह हमेशा 'बेबी' है। जैसे तीन साल का बच्चा बाप से चाकलेट की जिद करता है और क्रोध में हाथ में सांत्वना के लिए थमाया गया बिस्कुट फेंक देता है, या गोद में चढ़ाए हुए नौकर का कंधा काट लेता है, उसी तरह बेबी आज भी अपने बाप से क्लब में नाचने की जिद करती है, उसे अकेले में किसी 'बाय फ्रेंड' के साथ पिकनिक मनाने की इच्छा होती है और जिद न मानी जाने पर क्रोध में किताबें फेंक देने की या नौकर को गंदी-सी गाली देने की उसकी आदत है। गरज यह है कि बेबी की बचपन की आदतों के कलर भर बदले हैं, आदतें ज्यों की त्यों हैं—ठीक उसी तरह, जिस तरह बचपन की बेबी का शरीर भर बदला है, नाम ज्यों का त्यों है।

भोर के साथ जागने की उसकी आदत नहीं है और रात देर तक न सोना उसे पसंद है।

जब खूब दिन चढ़ आता है और बेबी के पापा सिविल जज श्यामकिशोर, जो रंग के श्याम भी नहीं हैं और आयु में किशोर भी नहीं, कोर्ट जाने लगते हैं, तब बेबी एक जवान अंगड़ाई लेकर उठती है। उठने के साथ ही वह किसी बकरी के बच्चे की तरह मिमियाकर रामबलीसिंह को बुलाती है। और रामबलीसिंह 'आया बेबी, बस आ ही रहा हूं' की टेर लगाता हुआ उसके ठीक सामने जा खड़ा होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बेबी आंख खोलती है, रामबलीसिंह सामने खड़ा होता है। एक क्षण वह रामबली का चेहरा टकटकी लगाए इस अंदाज से देखती है, जैसे वह किसी आईने में अपनी ही शक्ल देख रही हो। रामबलीसिंह, जिसकी उम्र चालीस पार कर कर गई है, अपने उदास चेहरे पर जबरन एक फीकी-सी मुसकान बिखेरता है, जैसे मुसकराहट बहुत सस्ती चीज़ हो। शुरू-शुरू में रामबलीसिंह को इस तरह मुसकराना कठिन और अजीब लगा था, पर अब उसे आदत पड़ गई है—जैसे किसी वेश्या को पहली, दूसरी और तीसरी बार शरीर बेचने में लज्जा का अनुभव होता है और फिर बाद में वह उसकी आदत बन जाती है।

बड़ा पुराना विश्वास है—भोर का मुसकराता हुआ सबसे पहला शुभ चेहरा देखने से दिन मनचाही खुशियों में बीतता है। बेबी के विचार से ऐसा चेहरा रामबलीसिंह का ही है। जिस दिन रामबली का चेहरा वह नहीं देख पाती, दिन विधवा के मन की तरह उदास-उदास कटता है। उस दिन न तो कोई मनचाहा दोस्त मिल पाता है और न क्लब में आनंद आता है। पिछले कई सालों से बेबी का यही विश्वास है। परिणामस्वरूप जज साहब ने रामबलीसिंह की ड्यूटी में यह काम भी शामिल कर दिया है। हर भोर रामबली हर स्थिति से जूझता अपनी इस विचित्र ड्यूटी पर हाजिर रहता है। बेबी रामबली का चेहरा देखने के बाद 'बेड टी' लेती है। बाद में जब तक वह दैनिक कार्यक्रमों से निवृत्त होती है, रामबली दौड़-दौड़कर उसके खास नाश्ते की व्यवस्था करवाता है। चाय, आमलेट, नमकीन बिस्कुट, मीठे बिस्कुट—सभी कुछ बेबी के लिए साफ प्लेटों में तैयार होकर टेबिल पर हाजिर रहता है। बेबी नाश्ता करती है, रामबली एक ओर अदब से मुसकराता खड़ा रहता है। बीच-बीच में बेबी को चुहल करने की आदत है—ऐसी चुहल, जिसका अर्थ कभी-कभी रामबलीसिंह समझ नहीं पाता।

एक दिन नाश्ते में अखबार के पन्ने उलटते हुए बेबी ने एक बच्चे की रंगीन तसवीर दिखाकर रामबलीसिंह से पूछा था, "रामबली, तुम्हारे यहां भी तो बच्चा है न?"

"हां, बेबी, एक है। बुढ़ापे का बच्चा!" रामबली ने खुश होकर उत्तर दिया।

"अच्छा," बेबी ने जरा उत्सुकता जताते हुए हाथवाली तसवीर पलटकर रामबली के आगे कर दी और पूछा, "ऐसा है क्या?"

रामबली ने झुककर तसवीर देखी। किसी मिल्क पाउडर के विज्ञापन में पुष्ट बच्चे की तसवीर छपी थी। उसने कहा, "इससे अच्छा है, पर बेबी, उसके पास कपड़े इतने अच्छे नहीं हैं।"

निहायत बचकना ढंग से बेबी ने सवाल किया, "इससे अच्छा है? यही दूध पिलाते हो क्या?" उसने अखबार में प्रचारित दूध की ओर संकेत किया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकुचाकर रामबली बोला, "नहीं बेबी, ये तो अमीर साहबों के चोचले हैं। मैं तो उसे बकरी का दूध पिलाता हूं।"

बेबी रामबली की बात से उदास हो गई। एकाएक मिल्क पाउडर का प्रभाव दिमाग से हट गया। उसने अचरज से पूछा, "बकरी का दूध इससे अच्छा होता है, रामबली ?"

"यह तो पता नहीं, बेबी, पर मैं उसे बकरी का दूध ही पिलाता हूं।" रामबली बोला।

"मुझे बच्चे बेहद पसंद हैं," बेबी ने कहा, तो रामबली ने हंसकर उत्तर दिया, "बच्चे तो सभी को पसंद आते हैं, बेबी। बच्चा और फूल ही तो ऐसी चीज हैं, जो हर तरह के आदमी को पसंद हैं।"

यह कहते समय रामबली बेबी की आंखों में बच्चे के लिए उभरी वह पसंद नहीं पहचान पाया, जो औरत की उम्र के साथ उसके मन के किसी कोने में अपने आप जन्म ले लेती है।

"तुम अपना बच्चा हमें किसी दिन दिखलाओगे, रामबली ?"

"जरूर, बेबी !" रामबली ने उत्तर दिया, तो बेबी नाश्ता समाप्त कर उठ खड़ी हुई। रामबली दौड़कर दूसरे कमरे में गया। उसने बेबी की सैंडिल पोंछी। फिर उसी तेजी से वह तीसरे कमरे में गया और जब वहां से वह लौटा, तो उसके हाथ में एक गुलदस्ता था, जिसमें कुछ पत्तियों के बीच घिरे गुलाब के कई फूल मुसकरा रहे थे। रामबली ने बेबी को गुलदस्ता बड़े अदब से झुककर भेंट किया। बेबी ने गुलदस्ता हाथ में लिया, कुछ लोट-पलटकर देखा और अंत में उसे सूंघा-- कई बार सूंघा। उसे फूल बेहद पसंद हैं, कम-से-कम किसी गुलदस्ते में गुथे, कैद फूल।

उस दिन बेबी के खूब चीखने पर भी रामबली नहीं आया, क्योंकि वह उस दिन ड्यूटी पर नहीं आया था। किसी के न आने पर जब बेबी ने जोर-जोर से चीखना और कपड़े फेंकना शुरू किया, तो एक दूसरा चौकीदार हड़बड़ाकर सामने जा खड़ा हुआ। बेबी ने उसका चेहरा देखा, तो क्रोध से आगबबूला होकर चिल्लाई, "रामबली कहां मर गया ?"

घबराकर चौकीदार ने उत्तर दिया, "आज वह आया नहीं है, सा'ब"

"यू ब्लडी !" बेबी और जोर से चिल्लाई, "क्यों नहीं आया ?" उसने बिल्ली की तरह घूरकर उससे प्रश्न किया।

चौकीदार उसी अदब से बोला, "मालूम नहीं, बेबी सा'ब !"

कुछ चिढ़कर बेबी मचली, "क्यों मालूम नहीं ? तू अपनी मनहूस शक्ल क्यों लाया ?"

चिल्लाहट सुनकर जज साहब दौड़े आए। कमरे में आकर उन्होंने देखा, पलंग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर बेबी लाल-लाल आंखों में क्रोध से चौकीदार पर गुर्रा रही थी, "हमारा सारा दिन खराब हो जाएगा आज। तुझसे किसने कहा था यह मनहूस शक्ल बताने को? निकल जाओ! निकल जाओ! गेट आउट!" उसने एक रेशमी तकिया उठाकर सामने खड़े चपरासी के सिर पर फेंक दिया।

चौकीदार उदास शक्ल में, तेज चलता, भयभीत-सा बाहर निकल गया। जज साहब बेबी के पास पहुंचे। काफी मीठी-सी आवाज में उन्होंने पूछा, "क्या हुआ, बेबी?"

बेबी ने छः महीने की बच्ची के-से अस्फुट रुदन में कहा, "आज रामबली नहीं आया, पापा?"

"ओ गॉड!" जज साहब ने आश्चर्य से इस तरह कहा, जैसे रामबली के मरने का समाचार सुना हो। एक क्षण वे शांत रहे। पिछले कई बरसों में यह पहला दिन था, जब रामबली इस तरह गैरहाजिर हो गया था। जज साहब ने बेबी के कंधे थपथपाकर सांत्वना दी, "रामबली को हम सजा देंगे, बेबी!"

बेबी उसी तरह मचलती गई। बोली, "पापा, हमारा आज का सारा दिन खराब हो गया।"

"आई नो! आई नो! बेबी!" जज साहब ने उसे समझाया, जैसे किसी दूध पीते बच्चे को दुलारकर 'चन्दा मामा' के नाम बहलाया जाय। उन्होंने कहा, "मैं जानता हूं, बेबी, रामबली बदमाश है। आई विल सी हिम! उसे आने दो, हम उसका सारा फ्रॉड ठीक करेंगे!" और इसके बाद जज साहब चले गए।

उस दिन बेबी कहीं नहीं गई। उसका मूड 'ऑफ' हो गया था। भीतर से कमरा बंद कर उसने रेडियो का स्विच ऑन किया। कोई विदेशी स्टेशन लगा था। विलायती धुनों पर अंग्रेज़ी नाच नाचती रही। जब थक गई, तो एक फिल्मी मैगजीन की तसवीरें देखती रही। नये फैशन की किताब पढ़ी। और इस तरह बेबी ने वह सारा दिन बिता दिया।

दूसरे दिन बड़े तड़के रामबली आया। उसका चेहरा उदास था। बाहर गेट पर ही जज साहब की मोटर के ड्राइवर ने उसे बीते दिन का हाल सुनाया—किस तरह बेबी सुबह उठकर चिल्लाई, कैसे उसका मूड ऑफ हुआ, जज साहब ने उसे किस तरह सांत्वना दी। रामबली ध्यान से, दिल थामकर सुनता गया। भीतर बंगले में घुसा, तो उसकी सांस जोर-जोर से चल रही थी। चेहरा भय से सूखा हुआ था। रामबली दबे पांव भीतर जाने लगा तो चौकीदार ने आकर रोक दिया। बताया, जज साहब बाहर बगीचे में टहल रहे हैं। उनका आदेश है, रामबली को आते ही सबसे पहले उनके सामने भेजा जाय।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रामबली भय से सिहर गया। जज साहब अदालत के मामले में जितने सख्त थे, घर के नौकरों या चपरासियों के मामले में भी उनका व्यवहार उतना ही कड़ा था। रामबली ने साहस किया, बगीचे में पहुंचा। एकाएक जज साहब के सामने जाने का साहस नहीं हुआ उसको। उनसे जरा दूर, बगल से गरदन झुकाए वह खड़ा हो गया। जरा साहस कर उसने पूछा, "हुजूर ने मुझे बुलाया?"

"हां!" कड़वे-से भारी स्वर में जज साहब बोले, "रामबलीसिंह, कल तुम गैरहाजिर थे?"

"जी, मालिक!"

"क्यों?"

"काम आ गया, सरकार!"

"यहां काम नहीं रहता क्या?" वह चिल्लाए, पर उन्होंने रामबली का चेहरा नहीं देखा। "नौकरी करते हो या मटरगश्ती?" जज साहब की डांट जारी रही, "जानते हो, तुम्हारी एक दिन की गैरहाजिरी से बेबी को कितनी तकलीफ हुई? सारे दिन वह कहीं नहीं जा सकी। उसका कोई पिकनिक का प्रोग्राम था। तुम्हारी जरा-सी गलती ने उसका पूरा दिन खराब कर दिया।"

रामबली बराबर चुप रहा।

जज साहब कहते गए, "तुम जैसे लोगों को सरकार जाने कैसे नौकरी दे देती है! ड्यूटी इज ड्यूटी! आयंदा से···"

रामबली ने ढीली-सी आवाज में उत्तर दिया, "अब कभी गैरहाजिर नहीं रहूंगा, सरकार। बस इस बार माफ कर दीजिए।"

"जाओ!" जज की कठोर आवाज में जरा भी फर्क नहीं आया। उन्होंने उसी तरह कहा, "ख़याल रहे, अब इस तरह की कोई शिकायत मेरे पास नहीं आनी चाहिए।"

रामबली लौट आया। जज साहब ने ठीक ही तो कहा था, ड्यूटी इज ड्यूटी। रामबली की ड्यूटी थी, मुसकराहट बेचना। और रामबली जानता था, उसे सरकार के यहां से जज की बेटी के लिए मुसकराहट बेचने की तनखाह मिलती थी।

बेबी के जागने का समय हो रहा था। रामबली बाहर दरवाजे पर आकर बैठ गया। देर तक अपने काम और जज साहब की डांट के बारे में सोचता रहा। धीरे-धीरे कर नौकरी के अर्थ वह समझ पा रहा था। नौकरी सिर्फ नौकरी है और नौकरी में ईमान, मुसकराहट, श्रम—सभी कुछ बेचना वैध है।

भीतर से हमेशा की तरह आवाज आयी, "रामबली! ओ रामबली! किधर मर गया?"

"आया, बेबी!" सारी भावनाएं दिमाग से एक ओर फेंककर रामबली भीतर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लपका, "बस, आ ही रहा हूं।"

बेबी ने आंखें खोलीं। रामबली सामने खड़ा था। रामबली को ख़याल आया, उसे मुसकराना भी है। अपनी लाचारी पर वह हंस दिया।

बेबी ने आंखें मलकर पूछा, "बड़े खुश दीख रहे हो! कल कहां रहे?"

रामबली को अपनी लाचारी और बेबसी पर इतनी हंसी आ रही थी कि वह बेबी का सवाल सुन ही न सका। उसी तरह हंसता रहा। बेबी ने कहा, "जानते हो, कल तुम्हारे न आने से मेरा कितना नुकसान हुआ?" फिर उसने नुकसान गिनाने प्रारम्भ कर दिए, "मैं क्लब नहीं गई। मल्होत्रा के साथ मेरा 'स्वीमिंग पूल' जाने का प्रोग्राम कैंसिल हो गया। पापा के साथ 'शॉपिंग' को जाने वाली थी, वहां भी नहीं गई। कुछ पता है, तुम्हारी जरा-सी लापरवाही किस कदर अपसेट करती है मुझे?"

रामबली ने हंसना बंद नहीं किया, तो खीझकर बेबी बोली, "रामबली! मैं कल बेहद परेशान रही और तुम खीसें निपोर रहे हो! बंद करो हंसना!"

रामबली की हंसी एकदम बंद हो गई।

"बदतमीज!" बेबी को क्रोध बहुत जल्द आता था। उसने कहा, "तुम बहुत बेवकूफ आदमी हो, रामबली! ड्यूटी पर न आने का अंजाम पता है?"

रामबली चुप रहा। सोच रहा था, आज से दस साल पहले इसी बेबी को उसने बोलना सिखाया था। एकाएक उसे भरोसा नहीं हुआ कि यह वही बेबी है, जिसे उसने कपड़ों के रंग समझाए हैं। यह वही बेबी है, जो रामबली को आज तमीज सिखा रही है। खड़े-खड़े रामबली थकने-सा लगा। उसे उकताहट आने लगी। ऐसा लगने लगा, जैसे उस कमरे में कोई जहरीली गैस भर गई है, जिसमें उसका दम घुट रहा है।

रामबली की चुप्पी ने बेबी की खीझ और बढ़ा दी। उसने कहा, "ऐसा लगता है, रामबली, तुम्हारा दिमाग आसमान पर चढ़ गया है। रोटियां लग गई हैं तुम्हें!"

रामबली सब कुछ चुपचाप सुनता जा रहा था। बेबी ने उससे बहुत कुछ कहा। उसने बहुत कुछ सुना। बेबी की हर बात रामबली के मन पर एक गहरा और स्थायी प्रभाव छोड़ती गई।

वह ड्यूटी के प्रति पहले से अधिक मुस्तैद जरूर हो गया था, किंतु अब उसका चेहरा पहले की तरह खुश नहीं दीखता था। काम में पहले की तरह फुरती नजर नहीं आती थी। लगता, जैसे वह आदमी से अधिक सिर्फ मशीन होकर रह गया है। उसका चेहरा पीला-पीला-सा नजर आने लगा और आंखों से गहरी उदासी बरसने लगी।

उस दिन बेबी का मूड काफी अच्छा था। रोज़ की तरह उसने रामबली का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चेहरा देखा, फिर 'बेड टी' ली और स्नान आदि से निपटकर जब नाश्ते पर बैठी, तो रामबली से पूछा, "रामबली, तुम्हारा घर यहां से कितनी दूर है ?"

रामबली ने बड़ा संयत-सा उत्तर दिया, "करीब दो मील, बेबी !"

"दो मील ?" बेबी ने इस तरह आश्चर्य से पूछा, जैसे चपरासी के दो मील साहब की लड़की के लिए दो सौ मील का माप रखते हों। "पैदल जाते हो ?"

"हां, बेबी !"

"माई गॉड !" बेबी ने रामबली के उत्तर पर आश्चर्य प्रकट किया। प्लेट से एक पूरा बिस्कुट उठाकर मुंह में रखते हुए कहा, "आज हम तुम्हें अपनी गाड़ी में बिठाकर तुम्हारे घर ले चलेंगे।"

"नहीं, बेबी !" रामबली इस तरह घबराकर बोला, जैसे बेबी ने उसे किसी ऊंचे पर्वत से गिरा देने जैसी बात कही हो। कहने लगा, "आदत बुरी हो जाएगी, बेबी !"

"नहीं-नहीं, रामबली ! एक दिन हमने तुमसे कहा था न, हम तुम्हारे बच्चे को देखने चलेंगे ?"

बेबी की इस बात से रामबली के चेहरे पर हवाइयां उड़ने लगीं। उसकी उदासी बढ़ गई। गदराई-सी टूटी-टूटी आवाज में उसने उत्तर दिया, "अब वह वहां नहीं होगा। दस-बारह रोज से बीमार था, आज रात को ही उसने दम तोड़ दी ! मैं आज सवेरे उसे गाड़ने जाने वाला था, पर ड्यूटी पर देर हो जाती, इसलिए नहीं गया। उसकी मां उसे गाड़ने गई होगी।"

रामबली ने एक बहुत बड़ी घटना इस साधारण ढंग से कह दी थी कि बेबी के हाथ से चाय का प्याला गिरते-गिरते बचा। आंखें फाड़कर उसने रामबली की ओर देखा। उसने आंखें मलीं और फिर देखा : रोज़ की तरह रामबली मुसकरा रहा था !

१९६१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जवान

मूरधनसिंह बरामदे में पड़ा-पड़ा बेचैनी से सिर हिलाता रहता। अधिक उतावला होता, तो उसके दोनों हाथों की मुट्ठियां भिंच जातीं, बहुत ही परेशान होता तो मुंह-ही-मुंह में बड़बड़ाता—नीच ! कुत्ते ! उसके दोनों पैर और शरीर का लगभग आधा हिस्सा लकवे ने बेकार कर दिया था। ऐसी लाचारी की हालत में वह कर भी क्या सकता था। जाने कितने सुख-दुःख के मौके दो बरसों में आये, पर मूरधनसिंह किसी मौके पर अपनी प्रतिक्रिया ठीक से प्रकट नहीं कर सका। हर्ष का मौका हुआ तो वह इसी चारपाई पर पड़ा-पड़ा हंस दिया, दुःख का समय आया तो उदास हो लिया। पर इस सबके बावजूद वह बेचैन नहीं हुआ था, उसने अपने भाग्य को नहीं कोसा था, न ही कभी भगवान् के प्रति अविश्वास प्रकट किया था, पर अभी कुछ दिनों से वह अत्यधिक बेचैन हो उठा था, उसने भाग्य कोसना प्रारंभ कर दिया था और रह-रहकर भगवान् के अस्तित्व पर अपना अविश्वास व्यक्त करने लगा था।

यों लड़ाई की खबरें उसे न मिलतीं तो ऐसा कुछ भी न होता, किन्तु ऐसी खबरें भी कहीं रुकती हैं। जैसी सब जगह फैलीं, वैसी उस तक भी आयीं, और मूरधनसिंह परेशान हो उठा। सबसे पहले उसे समाचार मिला था कि चीन ने मित्रता में विश्वासघात किया है। फिर उसने सुना, चीनी फौजें लगातार भारतीय चौकियों पर कब्जा कर रही हैं और फिर जो अफवाहों के दौर-दौरे चले, तो मूरधनसिंह व्याकुल हो उठा। रात को देर तक वह जागता रहता और लड़ाई के भविष्य पर सोचा करता। थोड़ी देर बाद ही उसे स्वयं की लाचारी का भास होता, मूरधनसिंह का तमतमाता चेहरा एक क्षण में स्याह पड़ जाता, कहता, 'मैं बड़ा अभागा हूं, सा'ब ! सरकार के लिए कुछ नहीं कर सकता। तकदीर की बात देखिए कि मेरा आधा धड़ बेकार है, वर्ना मैं···मैं···तो सा'ब, वो मार करता कि दुश्मन की हालत बिगाड़ देता।' बोलते-बोलते उसकी आवाज़ उठ जाती और वह पहले की ही तरह जोश खा जाता।

सामनेवाला उठकर चलने लगता तो मूरधनसिंह कहता, 'राम ! राम !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बड़ी कृपा की भाई सा'ब ! लाचार आदमी हूं, यों ही खबरें पाकर तसल्ली करता हूं ।'

'कोई बात नहीं ।' वह चला जाता और मूरधनसिंह फिर पहले की ही तरह उदास-सा पड़ा भीतर-ही-भीतर भाग्य को कोसने लगता ।

उसे अपना पुराना समय याद आता, जब वह मिलिटरी के सिपाही की हैसियत से नौकर हुआ था । कई साल तक वह आराम से पड़ा-पड़ा खाता रहा था, तभी दूसरी लड़ाई शुरू हो गई थी और मूरधनसिंह को उसमें जाना पड़ा था । स्टेशन पर सिपाहियों को उनके घरवाले, रिश्तेदार, दोस्त और न जाने कौन-कौन विदाई देने आए थे । मूरधनसिंह की बूढ़ी मां और घरवाली भी वहां पहुंची थीं । उनकी आंखों में आंसू थे । मूरधनसिंह ने उन्हें धीरज बंधाया था, 'ऐसे रोने से कहीं काम चलता है । मैं लड़ाई पर जा रहा हूं, मेरा दिल मजबूत करो, उल्टे यों रो-धोकर मन कमजोर कर रहे हो । हिश्ट !' मूरधनसिंह की मां और घरवाली ने असीम साहस और धीरज के साथ आंसू थाम लिये थे ।

मूरधनसिंह ने कहा था, 'जीत के लौटूंगा । देखना मइयो ! तेरी कूंख कैसी धन्न हो जाएगी । अपने देस की शान रखंगा । तुम लोग आराम और धीरज से रहना, जमाने भर के लोग लड़ाई पर जा रहे हैं, अकेला थोड़े हूं ।...'और फिर बगैर उनके किसी उत्तर की अपेक्षा किए मूरधनसिंह ने अपने बच्चे को, जिसे उसकी पत्नी कंधे पर चिपकाए खड़ी थी, 'प्चु ! प्चु !' कहकर दो बार प्यार किया था और जल्दी से डिब्बे में चढ़ गया था ।

पांच साल बाद वह लड़ाई से लौटा था । बहादुरी के कई तमगे उसके सीने पर लटके हुए थे । गौरव से उसका सिर उठा हुआ था । सिपाही से हवलदार तक तरक्की हो गई थी उसकी । अपनी मां और पत्नी से मिलकर उसने बड़े जोर से बहादुरी की कथाएं सुनाई थीं । दुश्मन को कैसे मारा था उसने । वे गोले-गोलियों के बीच से किस तरह कोस-दो-दो कोस रेंगते चले जाते थे । किस तरह खंदकें खोद-खोदकर नये-नये मोर्चे बनाये जाते थे और फिर कैसे दुश्मन को खदेड़ा जाता था । तब की बात ही और थी । मूरधनसिंह को एक-एक बात याद आती है । मोर्चे से लड़ाई जीतकर लौटा सिपाही, गांव-शहर के नागरिकों के लिए कौतूहल की चीज होती थी । वे उसे देखते और देर तक देखते जाते । कैसा आदमी होता होगा, जो पांच साल तक दिन-रात यम से लड़ता हुआ, जिंदा वापस आ गया है । वे मूरधनसिंह से तरह-तरह के सवाल करते थे—तुम्हें रोटी खाने का तो मौका मिलता न होगा ? लड़ाई बखत डर न जाते होगे ? तुम्हारे बगलवाले को जब गोली लगती होती, तो कैसा मन हो जाता होगा तुम्हारा ? आदि-आदि ।

मूरधनसिंह सारे सवाल सुनता और ठहाके मारकर हंस देता । फिर वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लड़ाई के ऐसे-ऐसे रोमांचकारी संस्मरण सुनाता कि सुननेवाले आंखें फाड़, मुंह बाए अवाक सुनते जाते। अन्त में और कभी-कभी बीच-बीच में वे सिपाहियों की बहादुरी पर श्रद्धापूर्वक टिप्पणियां देते—धन्न भाग बिन औरतों के, जो तुम जैसे लाल जनमती हैं और भइया, तुम्हारी भी क्या बात है, जो यूं हंस-हंस के नाई मौत बरनते हो। मूरधनसिंह के संस्मरणों में कभी-कभी दर्दीली कहानियां भी आ जातीं, जब अपने किसी साथी की बहादुराना मौत का किस्सा वह छेड़ देता। दुश्मन के किसी चौकी पर कब्जा कर लेने की बात वह कहता, तब सुननेवालों को जोश आ जाता। कई टिप्पणियां होतीं— साले के खेमे में घुस जाना था। खुद तो मरते पर उसके आदमी ठिकाने लगा देते। छिटपुट पराजयों के समाचार लोगों का खून खौला देते और वे अपनी सम्पूर्ण शक्ति से, विरोध के लिए तैयार हो जाते। वे बेचैन हो जाते और मन में एक आग भड़क उठती—कैसे दुश्मन को पीटा जाय। पर कई लोग जो बूढ़े थे, या किसी अन्य परिस्थिति के कारण लाचार थे, भीतर-ही-भीतर घुटने लगते थे। आज खुद मूरधनसिंह के साथ भी ऐसी ही स्थिति थी। रह-रहकर वह उतावला हो रहा था। बाजू फिर से बंदूक पकड़ने के लिए आकुल थे, आंखों में एक तीखापन पैदा हो गया था, पर यह फालिज! कितनी बड़ी लाचारी थी। मूरधनसिंह भीतर-ही-भीतर जल रहा था। ईश्वर ने कितना बड़ा मजाक किया है उसके साथ।

वह देखता—लोग किस तरह हंस-हंसकर फौज में भरती के लिए तैयार हो रहे हैं। जगह-जगह लोग सोना और पैसा सरकार के पास भेजने में जुटे हुए हैं, औरतों ने अपनी सोने की चूड़ियां और सुहागिनों ने मंगलसूत्र दिए हैं, जवान लड़के सिपाहियों के खातिर रक्त-दान कर रहे हैं। यह सब देख-सोचकर मूरधनसिंह को खुद पर खीझ आती। मन में क्रोध जनमता और अन्त में वह कभी भाग्य को और कभी ईश्वर को कोसता हुआ, तरह-तरह से बड़बड़ाने लगता। उसके पास सोना नहीं है, पैसा नहीं है, फिर भी वह बहुत कुछ कर सकता है। वह बूढ़ा हो गया है, सरकार उसे फौज में नहीं ले सकती, वह मोर्चे पर नहीं जा सकता। लड़ाई नहीं लड़ सकता, इससे क्या? इसके अलावा भी तो काम हैं, जो वह कर सकता था। कुछ नहीं तो वह लोगों को बन्दूक चलाना ही सिखाता, यदि ये भी नहीं तो मोर्चे के अस्पतालों में घायलों की सेवा ही करता, कुछ न बनता तो यहां-वहां छिटपुट सामान ही लाया-पहुंचाया करता। पर···तकदीर। इसका क्या करे मूरधनसिंह, जो उसके जिन्दा होते हुए भी उसे मुर्दा बनाने में उतारू है।

सोचकर मूरधनसिंह को स्वयं पर बेहद खीझ आती। क्रोध उमड़ता, पर इस सबसे क्या हो सकता था। भीतर-ही-भीतर जला जा रहा था मूरधनसिंह।

इधर कुछ दिनों से उसे हल्की-फुल्की पराजयों के समाचार मिले थे और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मूरधनसिंह के मन की आग और तेजी से भड़क उठी थी। मन होता था, दौड़े और दुश्मन के खेमे में जाकर दनादन-दनादन कइयों को यमलोक पहुंचा दे। पर इस विचार पर वह स्वयं ही कुढ़कर रह जाता। वह अपंग था, एकदम लाचार। वह जिन्दा था, पर मरे हुए से बदतर हालत में। तब ऐसे विचारों का मन में आना बेहद अजीब और अपमानजनक-सा लगता था। मूरधनसिंह को महसूस होता जैसे प्रकृति की अदृश्य शक्ति उससे कोई कठोर मजाक कर रही है। उस पर व्यंग्य कर रही है।

ऐसे जलन और क्लेश के क्षणों में उसे अपने इकलौते बेटे कप्तानसिंह की याद न जाने कैसे रह-रहकर आने लगी थी। करीब आठ वर्ष हुए मूरधनसिंह ने उसका चेहरा नहीं देखा था। कुछ आवारा लड़कों की संगति में पड़कर कप्तानसिंह घर से भाग गया था। मूरधनसिंह कई वर्ष उसका पता लगाने में व्याकुल रहा। उसने अखबारों में विज्ञापन दिये, इनाम की घोषणा की, मंदिरों पर बोलमा बोली। चबूतरे पूजे, न जाने क्या-क्या किया पर कप्तानसिंह तो दूर, यह खबर तक न लगी कि वह जिन्दा भी है या मर गया। कई बरसों की दौड़-धूप के बाद मूरधनसिंह सिर थामकर बैठ गया। इस बीच उसने अपनी घरवाली को बड़ी दमदिलासा दिलाई थी। इकलौता बेटा था, कोख में दर्द उठता कप्तानसिंह की याद कर तो वह बच्चों की तरह बिलख-बिलखकर रो उठती थी। शुरू के कुछ समय तो 'आ जाएगा, आ जाएगा' कहकर मूरधनसिंह उसे दिलासा देता गया। फिर तंग आकर एक दिन कह दिया, 'यों समझ ले कि मर गया।' परिणाम यह हुआ था कि मूरधनसिंह की घरवाली कुछ ही मास की बीमारी भुगतकर मर गई और मूरधनसिंह अकेला रह गया। थोड़े समय बाद उसे भी फालिज मार गया था, और अब वह अपने एक रिश्तेदार के बरामदे में पड़ा, यह जीवन-बोझ ढो रहा था। मन का कुछ पुख्ता था मूरधनसिंह कि उसने कप्तानसिंह को लगभग भुला दिया था, किन्तु जब से यह लड़ाई प्रारम्भ हुई थी, उसे कप्तानसिंह बेहद याद आने लगा था। अभी होता तो, मिलिटरी में सिपाहियाने से भरती हो जाता। मोर्चे पर जाता तो मूरधनसिंह की आत्मा को शांति मिलती। तमाम लोगों के सामने उसका सिर गर्व से तना होता। कोई अपनी डींग मारता तो मूरधनसिंह कहता, 'मेरा इकलौता बेटा भी देश की खातिर मोर्चे पर गया है।' सोचते-सोचते मूरधनसिंह की आंखें नम हो आयीं। यों जीवन में कभी वह रोया नहीं था, पर आज उसकी इच्छा हो रही थी कि जोर से रो पड़े और खुद को धिक्कारे, जो इतनी बोदी तकदीर लेकर पैदा हुआ।

शाम हो आयी थी और मूरधनसिंह वैसे ही विचारों में उलझा-उलझा कभी सामने की दीवार और कभी अपने हाथ की रेखायें देख रहा था। यों कोई स्वस्थ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदमी होता तो इतनी देर विचार करते-करते झपकी ले लेता, पर मूरधनसिंह की आंखों में नींद तो क्या, उसका आभास तक न था। वह सोच रहा था, खूब सोचे जा रहा था।

'ठाकुर दादा !'

मूरधनसिंह ने सिर घुमाकर देखा। पड़ोस के दो-तीन लड़के थे, जो दूर से उसे पुकारते हुए बरामदे की ओर बढ़े आ रहे थे। धुंधलका-सा होने लगा था, सो मूरधनसिंह ठीक से पहचान नहीं पाया।

'ठाकुर दादा !' वे लोग पास आ गये।

मूरधनसिंह ने देखा, उनके साथ मिलिटरी की ड्रेस पहने कोई ऊंचा-पूरा जवान था। वे सब उसके पास आ खड़े हुए।

'देखो तो सही, कौन आया है, ठाकुर दादा !' उनमें से एक ने कहा।

मूरधनसिंह उम्र से बूढ़ा, आंखों से कमजोर, शरीर से लाचार, ठीक से चेहरे नहीं पहचान पा रहा था।

जवान नीचे झुका और चारपाई के पास ही धरती पर उकड़ू बैठ गया। उसने बड़े धीमे स्वर में कहा, 'दादा !'

मूरधनसिंह के बूढ़े शरीर में अजब-सी कसमसाहट हुई। 'कौन कप्तान ? तू तो कप्तान है।' उसने व्याकुल होकर कहा।

'हां', दादा ! 'जवान बोला, 'मैं मिलिटरी में भरती हो गया हूं। आज ही मोर्चे पर जाना है मुझे, सोचा जाने अब लौटूं-न लौटूं, सो तुमसे मिलता चलूं।'

'कप्तान !' मूरधनसिंह का स्वर भारी हो गया। अनचाहे उसे रोना आ गया। उसने अपने दोनों हाथ ऊपर की ओर उठा दिए। जवान ने अपने सशक्त हाथों में उन्हें थाम लिया।

'तू···तू···मोर्चे पर जा रहा है।' हर्ष-स्नेह की सम्मिलित अनुभूति ने उसकी आवाज रुंधा दी थी, 'बड़ी खुशी की बात है। जा और दुश्मन को यों मारना कि आगे कभी इस ओर मुंह न करे। तू बड़े भागोंवाला है बेटा कि तुझे ऐसा मौका मिला है। तूने मेरी बात रख ली है।···' कहते-कहते मूरधनसिंह कुछ रुका, फिर उसने कहा, 'अरे, कोई लालटेन लाओ। मैं कप्तान का चेहरा तो देख लूं जी भर।'

एक युवक भीतर से लालटेन ले आया।

जवान खड़ा हो गया था।

मूरधनसिंह ने लालटेन की रोशनी में देखा, कप्तानसिंह के चेहरे पर शांति और गर्व का भाव था। मूरधनसिंह की बड़ी आंखें एक बार फिर नम हो आयीं, पर इस बार के आंसुओं में ठंडक थी, जो उसके कलेजे तक आ-जा रही थी और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हर क्षण उसे लग रहा था जैसे वह नीरोग है, चंगा है। मूरधनसिंह ने कप्तान का चेहरा देखा तो उसे यों लगा जैसे वह खुद 'जवान' है और मोर्चे पर जा रहा है।

१९६२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खाली कोना

बहल चिल्ला रहा था कमरे में—"यह कोई बात हुई ? हम वियतनाम को बचाना चाहते हैं। हम रोडेशिया के मामले में दखल देते हैं। और घर की हालत सुधार नहीं सकते।···ऊंह !"

प्रभजोत ने साफ-साफ सुना। जवाब में कोहली अपनी राय दे रहा था। वे दोनों बहस में उलझे हुए थे।

प्रभजोत चाहकर भी विश्वास नहीं कर सकी। बहल इतना ऊंचा बोल सकता है—उतनी भारी आवाज में। उसकी बरतन रगड़ती हुई अंगुलियां एक क्षण के लिए भगोने की पीठ पर ही थमी रह गईं, और सारा ध्यान बाहर बंट गया।

"चलो, छोड़ो भी, यार। मैं इस मामले में तुमसे बहस नहीं करना चाहता।" —बहल बड़बड़ाता हुआ, बाहर आ गया-- चौक में।

प्रभजोत ने आश्चर्यपूर्वक उसे देखा, और एक क्षण को उसे लगा, जैसे वह बहल नहीं, कोई और आदमी है—वह आदमी जो, चीख सकता है, और जिसे गुस्सा आ सकता है।

बहल के चेहरे पर एक खास किस्म का तनाव उभर आया था। वह उत्तेजित लग रहा था, और उसके चलने में एक खास तरह की तेजी पैदा हो गई थी।

"क्या हुआ ?" प्रभजोत ने अनचाहे ही सवाल कर दिया, हालांकि वह उससे कुछ नहीं पूछना चाहती थी। वह सिर्फ उसे देखती रहना चाहती थी। वह गुस्सा हो गया है। और जब कोई आदमी गुस्सा होता है, तो उसका मर्दपन चेहरे से झांकने लगता है।

"कुछ नहीं !" बहल की चाल अब तक सामान्य हो चुकी थी, "ऐसे ही कोहली से दो-दो चोंचें हो गईं।"

और वह एकदम सहज भाव से हंस दिया। यह क्रोध और तत्काल हंसी की प्रतिक्रिया ऐसी थी, जैसे बांह पर बिजली का कीड़ा क्षण के पचासवें हिस्से में आ बैठा हो और फुर्ती से उसे झटकार दिया गया हो।

प्रभजोत का चेहरा बुझ गया। उसके शरीर में आलस्य समा गया, और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भगोने की पीठ पर थमी अंगुलियां मशीनी ढंग से चलने लगीं।

"मेरा टिफिन तैयार हो गया क्या?" बहल पूछ रहा था। वह ऑफिस के लिए तैयार हो गया था, और काफी जल्दी में था।

"कर देती हूं," प्रभजोत ने राख में लिपटे हुए हाथ धोये और रसोई की तरफ चली आयी। पीछे-पीछे बहल था।

"काफी देर हो गई है। जरा जल्दी करो।" बहल कह रहा था।

प्रभजोत को अजीब-सा लगा। कैसे बोल रहा है, जैसे भीख मांग रहा हो। कितनी ढीली और कमजोर आवाज है। उसने जल्दी-जल्दी टिफिन तैयार किया, और बहल के हाथ में थमा दिया।

बहल चला गया।

प्रभजोत बड़ी थकी-सी चाल से बगैर मंजे बर्तनों की ओर चली आयी। बहल के अलावा कोई आदमी होता, तो वह झुंझला पड़ता, डांट देता। पर बहल? प्रभजोत के मन में कुछ चुभने लगता है। दस साल हो गये। बहल ने उसे कभी नहीं डांटा, कभी नहीं झुंझलाया, और ऐसा कुछ नहीं कर सका, जिससे प्रभजोत को एहसास हो कि वह किसी की बीवी है। उल्टे वह हर क्षण बहल की मौजूदगी नामौजूदगी में ढेर-सी रिक्तताएं जरूर अनुभव करती रही है।

अलस भाव से बरतन रगड़ती हुई, प्रभजोत की हथेलियों में जलन होने लगी। हथेली पर लगी हुई राख चुक गई थी। उसने पास रखे डिब्बे से दोबारा मुट्ठी भरी, और दूसरा बर्तन उठा लिया।

भीतरवाले कमरे से कोहली की गुनगुनाहट आ रही थी। प्रभजोत को यकायक ख़याल आया—यह तो उसके ऑफिस जाने का वक्त है। इस वक्त तक तो उसे चले जाना चाहिए था। वह उठी, और भीतर चली आयी।

कोहली तहमद लपेटे हुए, चारपाई पर पड़ा हुआ था। प्रभजोत को देखा, तो मुसकरा दिया।

"आज ऑफिस नहीं जाना है क्या?" प्रभजोत ने गार्जियन जैसे ढंग से सवाल किया।

"नहीं," कोहली ने उसी तरह मुसकराते हुए करवट बदली, "सेकेंड सैटरडे मना रहा हूं।"

प्रभजोत को न जाने क्यों उसका यह जवाब अच्छा नहीं लगा। बहल को सेकेंड सैटरडे नहीं मिलता। वह एक प्राइवेट फर्म में है। फिर जिस दिन उसे छुट्टी मिलती भी है, वह इस तरह घर में नहीं पड़ा रहता। अकसर पास-पड़ोस में गप्पें करने चला जाता है, या फिर बाहर घूमता रहता है। हालांकि प्रभजोत नहीं चाहती कि वह बाहर रहे, पर उसकी मौजूदगी से भी क्या लाभ? प्रभजोत तो खाली ही रहेगी। उसके मन के कई कोने वैसे ही अनभरे रहेंगे, जैसे गये दस सालों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से हैं।

प्रभजोत वापस चली आयी। अब कोहली सारे दिन घर में पड़ा रहेगा। वह छुट्टीवाले दिन अकसर घर से नहीं निकलता। प्रभजोत ने जल्दी-जल्दी बचे हुए बरतन रगड़ डाले। मन को एक बहम दिलाने की कोशिश की कि कोहली तो सारे दिन घर में रहेगा। वह उसका पति नहीं है, तो क्या हुआ ? प्रभजोत का दिमाग झनझना उठा। उसकी मौजूदगी और बहल की मौजूदगी में फर्क है, ऐसा कैसे समझा जा सकता है, या फर्ज किया जा सकता है ?

उसने मंजे हुए और राख में लिपटे बरतन धो डाले, और उन्हें रसोई में रख आयी। बालटी साफ कर, नल के नीचे लगा दी। नल की धार क्रमशः कमजोर होती जा रही थी। जाहिर था कि वह जल्दी ही बन्द होने वाला है। उसे ख़याल आया कि कोहली नहाया भी नहीं है अभी तक। उसने उसे एक आवाज दी—"जुगिन्दर। नल जाने वाले हैं। तुम नहा लो।"

"आया, भाभी !" कोहली का जवाब आया, तो प्रभजोत को कुछ अजीब-सा लगा। वह भाभी कहता है उसे और···

कोहली तौलिया कंधे पर डाले जब बाहर आया, तो प्रभजोत ने चोर नजरें घर में इधर-उधर घुमाकर, काफी दबे-से स्वर में कहा, "तुम मुझे भाभी मत कहा करो। कितनी ही बार कह चुकी हूं कि मेरा नाम लिया करो—प्रभजोत !"

कोहली मुसकराया। "बहल मुझसे तीन साल बड़ा है, और फिर तुम्हारा नाम लेने का हक भी उसे ही है। यह बात अलग है कि···" उसने बात अधूरी ही रहने दी, और कुछ इस ढंग से प्रभजोत को देखा कि वह झेंप गई।

"पर मुझे अच्छा नहीं लगता।" प्रभजोत ने कहा।

और जब वह वापस लौटने को हुई, तो कोहली ने फिल्मी अन्दाज में कहा—"अच्छा, भई, जैसी तुम्हारी मर्जी। मैं तुम्हारा नाम ही लिया करूंगा।" फिर तौलिया नल की नर्दन पर टांग कर, वह प्रभजोत के करीब आ गया। "पर एक शर्त है।"

प्रभजोत ने उसे नजदीक पाकर, सारे शरीर में कुछ झुनझुनी-सी अनुभव की। चेहरा उठाकर उसे देखा, जैसे पूछा हो, 'क्या ?'

"बहल के सामने मैं तुम्हें भाभी ही कहा करूंगा।"

प्रभजोत को लगा, जैसे कोहली ने न सिर्फ उसे कुरेद डाला है, बल्कि बहल के गालों पर उसकी मौजूदगी में ही कई तमाचे जड़ दिये हैं। "ठीक है। तुम मुझे वही कहा करो, जो हमेशा कहते रहे हो।" वह रसोई में चली आयी। उसकी पलकें भारी हो गई थीं और उसे लग रहा था, जैसे कोहली से बात करके वह हमेशा बहल का अपमान करती रही है।

कोहली जब तक नहाता रहा, वह रसोई में जबरदस्ती कोई-न-कोई काम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करती रही। कभी-कभी उसे बहल पर गुस्सा आ जाता है। क्यों ले आया था वह इसे? दोस्त है तो इसका यह मतलब तो नहीं कि उसे घर में ही ठहरा लिया जाये? अगर यह न होता, तो शायद प्रभजोत संभली रहती। आखिर उसने कई साल इस सब के बगैर भी तो गुजार दिये थे। दूसरे ही क्षण उसे लगा, जैसे वह निर्दोष है। बहल क्या जानता नहीं? क्या छिपा हुआ है उससे? उसकी जगह अगर कोई और रहा होता, तो न जाने क्या हो जाता घर में।

रिक्त कोने फिर उभर आये थे। न जाने कैसे प्रभजोत के दिमाग में पड़ोस वाला घर आ गया। उसे इस घर में आये भी उतने ही वर्ष हुए हैं, जितने पड़ोस वाली कुलवन्त कौर को आये हुए हैं। उनकी शादी होने में दो-चार माह का फर्क पड़ा होगा। और अब उस घर में तीन बच्चे हैं। सारे दिन शोर मचा रहता है। सबसे बड़ा लड़का तो अब इस काबिल भी हो गया है कि घर के काम-काज में थोड़ा-बहुत हाथ बंटा सके। जब-जब प्रभजोत उन बच्चों को देखती है, कुलवन्त को देखती है, तो ईर्ष्या से मन भर जाता है उसका।

कोहली कपड़े बदल रहा था। उसका सीना बालों से भरा हुआ है—इतने घने बाल कि तमाम शरीर से अलग ही उनका अस्तित्व लगने लगता है।

प्रभजोत ने देखा, और मन हुआ कि कोहली के सीने से कुछ बाल नोचकर बहल के सीने पर चिपका दे। वह जब बनियान उतारता है, तो लगता है कि एक बड़ी सफेद दीवार पर किसी शरारती बच्चे ने कोयले की दस-पांच आड़ी-तिरछी लाइनें खींच दी हैं। लगता है कि जैसे किसी औरत का सीना है वह।

कोहली भीतर कमरे में चला गया था।

प्रभजोत कपड़े लेकर नल पर आ गई। छुट्टी के दिन कोहली देर से खाना खाया करता है। इस बीच वह कपड़े धो लेगी। पर कपड़ों को उसने अभी बाल्टी में डुबोया ही था कि कोहली आ गया।

"भाभी, खाना नहीं खिलाओगी?"

"मैं समझ रही थी कि तुम देर से खाओगे।" प्रभजोत ने हाथ धो डाले।

कोहली उसके पीछे-पीछे रसोई तक चला आया। "असल में आज मैं जाने का प्रोग्राम बनाये हुए हूं।"

प्रभजोत पूछना चाहती थी कि कहां। पर उसने नहीं पूछा। कोहली के कहीं आने-जाने से उसे क्या लेना-देना है। फिर उसे आज उससे बात करना अच्छा नहीं लग रहा है। अकसर ऐसा होता है कि वह चाहकर भी उसे पसन्द नहीं कर पाती। उसे लगने लगता है, जैसे उसे पसंद कर वह बहल को अपमानित कर रही है।

उसने थाली परोस दी, तो कोहली चुपचाप खाने लगा। प्रभजोत वहीं, उसके पास बैठी रही।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सब्जी के दो-चार कौर खाने के बाद, कोहली ने शरारतन उसे छेड़ा, "आज सब्जी में नमक ज्यादा है।"

"भूल गई होऊंगी। अचार दूं? न रुचे, तो उसे छोड़ दो।"

"नहीं-नहीं, अचार की कोई जरूरत नहीं है। असल में इसमें तुम्हारा दोष नहीं है, भाभी। तुम नमक अपनी ओर से नपा-तुला ही डालती हो, पर चूंकि तुम डालती हो, इसलिए ज्यादा हो जाता होगा! तुम्हारा अपना नमक ही कौन कम है?"

प्रभजोत ने हंसकर बात टाल दी, हालांकि उसे यह मजाक बहुत बुरा लगा। कितना अच्छा होता कि कोहली की जगह बहल बैठा होता, और वह यह बात कहता। पर बहल खाना खाता है, तो इस तरह गरदन लटकाए हुए खाता है, जैसे वह आदमी नहीं, बैल है। न कोई फुर्ती, न बात, न मजाक।

"मैं दो दिनों के लिए घर जा रहा हूं," कोहली अपने आप ही बतलाने लगा, "कल रविवार है, और परसों जन्माष्टमी। सोचता हूं कि दो दिन की छुट्टी बेकार क्यों जाये?"

प्रभजोत ने कुछ नहीं कहा।

कोहली चुप हो रहा। उसने जल्दी-जल्दी खाना खाया और फिर उठ गया।

प्रभजोत फिर कपड़े धोने चली आयी।

कोहली जल्दी-जल्दी अटैची तैयार कर बाहर निकला।

"अच्छा, भाभी, परसों सुबह तक आ जाऊंगा", जाते-जाते वह कह गया।

प्रभजोत ने जैसे सुना ही नहीं। और अगर सुना भी, तो इस बात पर कोई विशेष ध्यान देने की जरूरत नहीं समझी। वह कहीं जाये या आये, उससे प्रभजोत को क्या सरोकार? वह सब वह इस तरह बताकर जाता है, जैसे प्रभजोत उसकी कमी महसूस करेगी, या वह प्रभजोत का कुछ है। उंह! प्रभजोत गीले कपड़े पीटने लगी। एक खाली खाने की पूर्ति के लिए उसने कोहली को शरीर सौंप दिया है, तो इसका मतलब यह तो नहीं हो सकता कि वह बहल की जगह ले लेगा?

बहल की जगह? प्रभजोत ने सोचा। क्या सचमुच बहल की कोई जगह है?

किवाड़ चरमराये, तो उसका ध्यान बंट गया। पड़ोसवाली कुलवन्त थी। वह दरवाजे को थोड़ा-सा ढकेलकर पहले तो झांकी, फिर धीमी चोर चाल से भीतर आ गई।

"राख होगी, भैनजी?"

"हां, है।" प्रभजोत ने कुछ कुढ़ते हुए, एक ओर रखे राख के डिब्बे की ओर इशारा कर दिया।

कुलवन्त उसी धीमी चाल से आगे बढ़ी। उसने डिब्बा उठा लिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रभजोत उसे घूरती रही। यह औरत अकसर इसी चोर चाल से उसके यहां आया करती है, जैसे किसी रहस्य-रोमांच की फिल्म की शुरुआत होने वाली हो।

राख का डिब्बा ले लेने के बावजूद कुलवन्त गई नहीं। बात करने लगी, "आज बहल बाबू नहीं हैं?" यह कहते हुए, उसने काफी खोदती नजरों से रसोई और कमरे के दरवाजे के पार तक देखा।

"नहीं हैं," प्रभजोत ने कड़वाहट से जवाब दिया। बरसों पड़ोस में रहने के बावजूद क्या इसे यह मालूम न होगा कि बहल को सेकेंड सैटरडे की छुट्टी नहीं मिलती। पर प्रभजोत जानती है, कि कुलवन्त जबरदस्ती उससे बात कर रही है — यह देखने के लिए कि कोहली घर पर है या नहीं।

"अरे, हां, मैं तो भूल ही गई थी।" कुलवन्त बोली, "बहल बाबू को सेकेंड सैटरडे नहीं मिलता!"

प्रभजोत चुप रही। उसने कपड़े पीटना चालू कर दिया, ताकि कुलवन्त समझ ले कि वह बात करने के मूड में नहीं है।

"दया आती है बहल बाबू पर," कुलवन्त ने कहा, तो प्रभजोत चौंक पड़ी। उसने देखा कि कुलवन्त मुसकरा रही थी। "बहुत सीधे हैं बेचारे!" और वह बाहर चली गई।

प्रभजोत देखती ही रह गई। मन हुआ था कि कुलवन्त की बांह पकड़कर रोक ले, और पूछे कि—क्या दया आती है? इस तरह की बातों का अर्थ क्या है? क्या कहना चाहती है तू? पर कुलवन्त जा चुकी थी। तिलमिलाकर रह गई प्रभजोत। लोग अकसर इसी तरह की बातें करते हैं। हर आदमी बहल सेसहानुभूति जतलाता है, उस पर दया करता है।

कपड़े धोकर, वह नहाने बैठ गई। उसने सिर बचाकर पानी डाला और धुली हुई धोती पहनकर, कमरे में चली आयी। कुलवन्त की बात अब भी दिमाग में घूम रही थी। उसे दया आती है बहल बाबू पर। क्यों आती है? उसे यह बिलकुल पसन्द नहीं, कोई बहल पर दया करे। और इस ख़याल के साथ ही उसे लगा, जैसे बहल खुद दया बटोरता है। और तो और, वह हमेशा प्रभजोत से ही इस तरह बात करने लगता है, जैसे कह रहा हो, 'मुझ पर दया करो।'

उसे बहल पर गुस्सा आने लगा। वह हमेशा इस तरह का व्यवहार करता है कि सामनेवाला उस पर दया करने लगे। उसे कभी क्रोध नहीं आता। कितने ही मौके आ चुके हैं, जब उसे गर्म हो जाना चाहिए था, पर बहल हर बार ठंडा रहा है। उस दिन कोहली ने उसकी मौजूदगी में ही प्रभजोत से काफी गंदा मजाक कर दिया था और वह बजाय नाराज होने के झेंपकर टाल गया था उस बात को। प्रभजोत को खुद बहुत क्रोध आ गया था। कोहली से उसके कैसे भी संबंध क्यों न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हों, पर बहल के सामने···आखिर वह पति है उसका। प्रभजोत को लगा था, कि बहल उबल पड़ेगा। वह प्रभजोत के चेहरे पर कई तमाचे जड़ देगा, और कोहली को घर से बाहर निकाल देगा। कितनी आशा से वह उसके चेहरे पर नजरें गड़ाये रही थी। वह चाहती थी कि बहल उसके गालों पर तमाचे जमाये, उसे गालियां दे। पर बहल···प्रभजोत ने दांत भींच लिये। उसने कुछ नहीं किया, कुछ नहीं कहा। वह कमरे से बाहर चला गया था, अजीब-सी बेशर्मी के साथ खीसें निपोरता हुआ।

प्रभजोत ने निराशा में डूबी हुई एक गहरी, खूब गहरी सांस खींची और रसोई में चली आयी। उसे भूख लगी थी, इसके बावजूद खाना खाने का मन नहीं हुआ उसका। कभी-कभी जब वह अप्रिय ख़यालों में डूब जाती है, तो उसका मन भारी हो जाता है। उसे कुछ अच्छा नहीं लगता—न खाना, न सोना और न बहल!

किवाड़ों पर फिर चरमराहट उभरी, तो वह आंगन में निकल आयी। साइकिल पर टिफिन कैरियर लटकाये, बहल आ गया था। उसने साइकिल एक किनारे खड़ी कर दी, और टिफिन कैरियर निकालकर प्रभजोत के हाथ में थमा दिया।

प्रभजोत ने उसे आंगन के एक कोने में रख दिया।

बहल भीतर चला गया और फिर फौरन बाहर आया। "कोहली कहां गया?" उसने पूछा।

"घर।" प्रभजोत ने बड़ा संक्षिप्त-सा जवाब दिया।

बहल फिर भीतर चला गया।

प्रभजोत उसके लिए चाय बनाने लगी। उसका दिमाग अब भी पिछले ख़यालों से भरा हुआ था। उसने निर्णय कर लिया था, इस बार बहल अगर कोई दया जैसी बात करेगा, तो वह उसे दुत्कार देगी, और उससे पूछेगी कि आखिर क्यों करता है वह यह सब।

बहल कपड़े बदलकर, उसके पास आ गया।

"एक प्याला चाय पिलाओगी?"

प्रभजोत का मन हुआ कि उस पर अभी ही बरस पड़े। कैसे कह रहा है वह—जैसे याचना कर रहा हो। वह याचना नहीं चाहती। बहल को कहना चाहिए था, "एक प्याला चाय बना दो।"

बहल उसे एक क्षण देखता रहा, फिर बोला, "कोहली जन्माष्टमी की छुट्टी मनाकर आयेगा। पूरे दिन घर कुछ खाली-खाली-सा लगता रहेगा, क्यों?"

प्रभजोत ने सुना। लगा, जैसे जल्दी में स्टोव की लौ पर हथेली चली गई हो। क्रोध फैल गया तमाम जिस्म में।

"क्यों, क्या खाली-खाली-सा लगेगा?" उसने तुनुककर सवाल किया, "वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारा कोई सगा है क्या ? कैसी बातें करते हो तुम ?"

बहल का चेहरा लटक गया, जैसे पहली क्लास के लड़के को मास्टर ने डांट दिया हो। उसकी आंखों में हमेशा की तरह दया-प्रार्थना के भाव उतर आये।

प्रभजोत अब भी सुलग रही थी। "मैं समझ नहीं पाती कि तुम कैसे आदमी हो !···बिलकुल दब्बू ! डरपोक ! ठंडे !"

बहल ने एक बार सिर उठाकर देखा। "मैं···मैं···" मिमियाने लगा, "मेरा मतलब था···मेरा मतलब था···"

"क्या मतलब था ?" झल्लाकर प्रभजोत और तीखी हो गई। बहल की मिमियाहट ने उसे और भी क्रोधित कर दिया, "मैं-मैं क्या कर रहे हो ? मैं तुम्हारी बीवी हूं या मालकिन ? कभी ढंग से नहीं बोलते।" कहते-कहते उसकी आवाज भर आयी। "तुम सब-कुछ जानते-देखते हो, पर कभी मुझे रोका तुमने ? कोई और होता, तो···तो न जाने क्या कर डालता। शायद मेरी जान ले लेता, पर तुम ?" वह रो पड़ी, "तुम नामर्द हो—बिलकुल नामर्द !"

बहल का चेहरा अब भी लटका हुआ था।

"बोलो···बोलो···तुमने अभी तक मुझे क्यों नहीं रोका, मेरा खून ही क्यों नहीं कर दिया ?" और वह फफक पड़ी।

१९६२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मजहब से ऊपर

यूनुस जब सुबह के समय घूमकर वापस लौटने लगा तो रास्ते में ही उसे ऐसा महसूस होने लगा था, जैसे बस्ती में कुछ हो रहा है। शायद ऐसा कुछ, जो हमेशा या साधारणतया नहीं होता। अब आगे बढ़ने पर उसे मालूम हुआ कि यह 'कुछ' एक भारी मजहबी दंगा था। बस्ती के नजदीक आते-न-आते दंगा जोर पकड़ गया। यूनुस डरा, पर साहस कर घर की ओर बढ़ चला। वहां उसके नाती-पोते-बच्चे सभी थे। पुलिस लारियां सड़क से गुजर रही थीं। यूनुस और जल्दी-जल्दी आगे बढ़ा। फायर ब्रिगेड की घंटियां उसे सुनायी दीं। डर से चौंककर उसने आस-पास देखा। जिस तरह बारिश के मौसम में आसमान पर काले-काले बादल आवारागर्दी करते हैं, कुछ इसी तरह धुएं के बादल बढ़ रहे थे। मारो! काटो!' के स्वर आ रहे थे। यूनुस ने सिर उठाकर देखा। दूर कई तरफ उसे धुएं के भारी-भारी गुबार उठते नजर आए। उसने अन्दाजा किया, यों तो धुआं चारों ओर से उठ रहा था, पर विशेषकर धुएं के बड़े-बड़े गुबार उस तरफ से उठ रहे थे जिधर यूनुस का अपना मकान था। घबराहट में यूनुस कई जगह सड़क पर गिरते-गिरते बचा।

दंगे के इस डर ने उसके बूढ़े शरीर में जीवन के प्रति ऐसा मोह और मन में ऐसा ममत्व पैदा किया था कि वह यकीन ही नहीं कर पा रहा था कि कभी वह भी उतने बुढ़ापे में इतनी तेज चाल चल सकता है?

जैसे-जैसे बस्ती नजदीक आती गई, उसकी चाल बढ़ी, मन आन्दोलित हुआ, घबराहट के कई दौरे हुए और मोह-ममता का प्रतिशत बढ़ गया।

यह इत्तिफाक ही था कि वह सकुशल घर आ गया। इस बीच न तो पुलिस की ही उस पर नजर पड़ी और न दंगाइयों से ही उसका सामना हुआ। शोर पहले से अधिक बढ़ गया था। मोटरें पहले से अधिक दौड़ रही थीं और चारों ओर से कभी तेज और कभी हल्की आवाजें आती थीं। आसमान पर कालेपन की एक-दो-तीन और फिर लगातार कई-कई परतें चढ़ती गईं।

जैसे-तैसे यूनुस आ गया तो सारे घर की बेचैनी दूर हो गई। उसने नाती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को चूमा। बेटे को एक भीगी-सी दृष्टि से देखा और पत्नी की मुसकान का मुसकराकर ही उत्तर दिया।

कमरे के दरवाजे बन्द थे। सारा घर चुप था। और सभी लोग खामोशी के साथ डरे-दुबके बैठे थे; जैसे इस घर में दो-चार दिन पूर्व कोई मातम मनाया गया हो!

बन्द दरवाजे के बाहर से आवाज आयी, "यूनुस मियां! तुम्हारे घर में आग लगने वाली है। अभी-अभी वह रामखिलावन कह रहा था, वह खुद आग लगाएगा।"

यूनुस, उसके बच्चे किसी को साहस न हुआ कि दरवाजा खोलें। भीतर ही से पूछ लिया—"तुम कौन हो?"

और फिर कोई उत्तर नहीं आया। रामखिलावन आग लगाएगा? एकाएक भरोसा कर लेने जैसी बात नहीं थी, पर जिस स्थिति से यूनुस गुजर रहा था, वह ऐसी ही थी कि लाचार हो गया यूनुस विश्वास करने के लिए। भावुक यूनुस घर से बाहर निकल आया।

यूनुस ने बाहर आकर देखा—सड़क सुनसान थी। मकानों की खिड़कियां बन्द। लगता था, जैसे सारा शहर अस्पताल का मुर्दाघर हो, जिसकी हर दीवार, और हर पत्थर उदासी और पीड़ा उगलती है। बीच-बीच में एक-दो बार कुछ फुसफुसाहटें पड़ोस के मकानों से उभरकर वातावरण की खामोशी को तोड़ देती थीं। और किसी भी तरह के शोर या फुसफुसाहट पर यूनुस चौकन्ना होकर चारों ओर देखता है।

पास ही रामखिलावन का मकान था। और जिस तरह तमाम मकान एक रहस्यपूर्ण खामोशी में डूबे हुए उदास मुर्दाघरों की तरह नजर आते थे, उसी तरह रामखिलावन के घर में भी खामोशी थी। यूनुस ने क्रोध और घृणा से दांत पीस लिये। आदमी वफादारी के मामले में कुत्ते से भी बदतर हो गया है! रामखिलावन उसके मकान में आग लगानेवाला था? उस यूनुस के मकान में, जिसने उसके और अपने मकान में कभी फर्क ही नहीं किया? एक बार फिर यूनुस के मन में विचार आया, रामखिलावन को घर से बाहर खींचकर पूछे, "तू मेरे मकान में आग लगाएगा?"

उसने भावावेश में न तो कर्फ्यू की और न सड़क की वीरानी की ही परवाह की। इस समय उसे न दंगाइयों से शिकायत थी और न पुलिस से। उसे सिर्फ रामखिलावन से शिकायत थी। यूनुस ने रामखिलावन के मकान पर पहुंचकर बन्द दरवाजा खटखटाया और बुलन्द टेर लगायी, "पंडित!"

उत्तर नहीं मिला। ऐसे मौके पर जब चारों ओर भय और अविश्वास के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बादल घने हो गए थे, दरवाजा खुलने का प्रश्न ही नहीं उठता था। और यह स्वाभाविक भी था।

यूनुस पहले से अधिक ऊंचे स्वर में चिल्लाया, "ए रामखिलावन !" विश्वास पुख्तापन पा गया। जरूर रामखिलावन के मन में पाप था, और वह उसके मकान में आग लगानेवाला था। यूनुस अपने घर के बाहर वाले चबूतरे पर आकर बैठ गया। उसने सोचा —अगर रामखिलावन आग लगाने आया तो पहली टक्कर उसी से होगी। सोचते-सोचते बूढ़े यूनुस की आंखों में क्रोध उतर आया। यूनुस भीतर ही भीतर जलकर बुझ गया। मन को बार-बार समझाता। दिमाग से ऐसा विचार उछालकर बाहर फेंक देने का प्रयत्न करता। पर यह बात कुछ इतनी कड़वी थी कि सारे मुंह और मन में जहर ही जहर घुल गया। और इसकी कड़वाहट बर्दाश्त करना उसके लिए एकदम असम्भव हो गया था।

यूनुस सोच रहा था, कितनी अजीब बात है ? रामखिलावन उसके मकान में आग लगाएगा ? उस मकान में, जिसमें यूनुस के बच्चे, नाती, पोते और बहुएं हैं ? उस मकान में, जिसमें रामखिलावन ने उसके साथ घंटों चौपड़ बिछायी है ? और तब सचमुच ही उसे यह बात नितांत अविश्वसनीय लगती कि यूनुस के मकान में रामखिलावन आग लगाने जा रहा था ?

सोचते-सोचते यूनुस का मन खराब होने लगा। उसने महसूस किया, जैसे हर तरफ धोखा है। ये जिन्दगी, मकान, दोस्त, रिश्तेदार—सब झूठ है। सब झूठ में जिन्दा है। और यूनुस का घर, चौपड़, रामखिलावन सब धोखा है।

उसकी इच्छा हुई, इससे पहले कि रामखिलावन उसके मकान में आग लगाये, वह उसी के मकान में आग लगा देगा। फिर दूसरे ही क्षण यूनुस को लगा, जैसे रामखिलावन के मकान में आग लग गई है। उसके छोटे-छोटे बच्चे चीख रहे हैं। खुद रामखिलावन का बूढ़ा चेहरा क्रमशः आग में झुलसकर समाप्त होता जा रहा है। आग बढ़ रही है। बाहर यूनुस ठहाका मारकर हंसते हुए पूछ रहा है—तो रामखिलावन, तू मेरे घर में आग लगाएगा ? क्यों ?

रामखिलावन के मकान को लपटों ने घेर लिया है। चीखों के स्वर आ रहे हैं।

सोचते-सोचते यूनुस का वैचारिक बहाव रुक गया। नहीं ! नहीं ! वह रामखिलावन के मकान में आग नहीं लगा सकता। रामखिलावन धोखा नहीं ! वह यूनुस का दोस्त है। उन दोनों ने जिन्दगी के तमाम साल और दिन एक साथ गुजारे हैं। पड़ोसी के नाते सुख-दुःख उन्होंने बांटा है। रामखिलावन की घरवाली उससे देवर का रिश्ता पालती है और खुद रामखिलावन ने यूनुस की बहन रफिया से राखी बंधवायी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धुआं अब भी उठ रहा था। भूले-भटके एक-दो बार शोर उठता था। बीच-बीच में मोटरों की भागदौड़ के स्वर उठते थे। कभी-कभी फायरिंग की गूंज उठती। यूनुस को ये सब उतना डरावना नहीं लगा। उसे डरावना लग रहा था आदमी। सचमुच यह सही भी था। आदमी कितना नीच है? जानवर से भी गया-बीता। अब यही क्या कम नीचता थी कि चालीस साल का पुराना दोस्त पड़ोसी भाई रामखिलावन चार घंटे के मजहबी दंगे में इतना बदला कि यूनुस के मकान में आग लगाने को तैयार हो गया?

एकाएक यूनुस की विचार-शृंखला टूट गई।

उसके ठीक सामने पुलिस की जालीदार मोटर रुकी। रायफलें लिये हुए कुछ पुलिस के जवान धड़ाधड़ कूदे और इससे पहले कि यूनुस घर में घुसता या उन्हें कोई सफाई देता, उन्होंने उसे पकड़कर लारी में डाल दिया। मोटर स्टार्ट हुई तो यूनुस ने जाली से देखा, रामखिलावन के घर की खिड़की खुली और पलक झपकते बन्द हो गई।

किसी पागल की तरह यूनुस चिल्लाया—मुझे छोड़ दो! रामखिलावन मेरे मकान में आग लगा देगा।

पुलिसवालों ने कोई ध्यान नहीं दिया।

यूनुस फिर फड़फड़ाया, "मैं दंगाई नहीं हूं!"

एक पुलिस कांस्टेबल ने उसे इस नफरत से देखा, जैसे किसी गंदी नाली के कीड़े को देख रहा हो। "दंगाई नहीं है तो फिर कर्फ्यू में क्यों बाहर आया?"

यूनुस ने याचना की—"हुजूर! मैं तो अपने घर की रक्षा कर रहा था। रामखिलावन मेरे घर में आग लगानेवाला है।" बोलते-बोलते उसकी आवाज में अजब-सी पीड़ा उभर आयी—जैसे कोई बरसों पुराने फोड़े का मुंह खुलकर उस में से पीप रिसने लगी हो, दर्द उठ आया हो।

फिर कोई उत्तर नहीं मिला। यूनुस रास्ते-भर चीख-चीखकर दुहाई देता गया, पर उसकी बेहद सफाई किसी ने नहीं सुनी। और तब तक नहीं सुनी, जब तक कि पुलिस लारी थाने में नहीं पहुंच गई। फिर उसका नाम-पता नोट किया जाने लगा तो उसने फिर अपनी बात प्रारम्भ कर दी।

"नाम?" दरोगा ने पहला सवाल किया।

"दरोगा जी!" वह आदर-भरे स्वर में कह उठा, "मैं यूनुस हूं, यूनुस खां! मेरा मकान आमती में है। मैं वहां कई साल से रह रहा हूं। कई साल से! और रामखिलावन भी वहां कई साल से रह रहा है। हम दोनों का मकान पास-पास ही है। इतने पास कि दीवारें तक एक हैं।"

"बाप का नाम?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मोहम्मद खां !" यूनुस ने फिर जवाब दिया, "मेरा बाप और रामखिलावन का बाप बचपन के दोस्त थे। मैं और रामखिलावन भी एक साथ खेले हैं। एक दफा हम दोनों ने साइंस कॉलेज के बाग से फूल चुराए थे तो मैं तो भाग आया, पर रामखिलावन पर बड़ी मार पड़ी। उन दिनों हम बहुत छोटे-छोटे थे। साथ स्कूल जाते थे, साथ घर लौटते थे।"

"पेशा ?" तीसरा सवाल हुआ।

"आप मानते नहीं, दरोगा जी ! रामखिलावन मेरे घर में आग लगा देगा। मुझे खूब मालूम है। वह बहुत गुस्सैल मिजाज का आदमी है और...!"

यूनुस की बात अधूरी रह गई। "मैं पेशा पूछ रहा हूं ?" दरोगा ऊंचे स्वर में चिल्लाया। उसे यूनुस की बहस से चिढ़ हो आयी थी।

"हां, मालिक !" हाथ जोड़कर यूनुस टूटे स्वर में बोला, "जिला कचहरी में चपरासी था। रामखिलावन भी मेरे ही साथ था।" उत्साहपूर्वक यूनुस जानकारी देता गया। बर्मन साहब मजिस्ट्रेट के पास हम दोनों अरदली में थे। रामखिलावन पंडित रोटी बनाता था, मैं ऊपर का कामकाज देखता था। पर अब दोनों की पेंशन हो गई है।"

"उमर ?"

"उमर ?" यूनुस हंसकर बोला, "बिलकुल रामखिलावन के बराबर है, सरकार ! मुझ में और उस में कुछ खास फर्क नहीं है। उसका और मेरा जन्म एक साल, एक महीने और एक हफ्ते हुआ था।"

दरोगा को लगा, जैसे आज का दिन उसके जीवन का दुर्भाग्यशाली दिन है। उसने सिर पीट लिया। फिर मोटी-सी आवाज में गुर्राया, "हवलदार ! इसे बन्द करो हवालात में ! कमबख्त ने सारा दिमाग चुन लिया है।"

हवलदार ने बूढ़े यूनुस की बांह पकड़ी तो वह फिर उस पुरानी रट में बोला, "आप मान नहीं रहे, दरोगा जी ! वह रामखिलावन जरूर मेरे घर में आग लगा देगा !"

दरोगा ने नहीं सुना। हवलदार उसे घसीटता हुआ ले गया और कोठरी में बन्द कर दिया।

हवालात की कोठरी में दीवार से सिर टिकाए-टिकाए देर तक यूनुस के मन में उथल-पुथल मचती रही। वैचारिक द्वंद्व होता रहा और मन की व्याकुलता प्रतिक्षण बढ़ती ही गई।

हर क्षण उसे ऐसा लगता, जैसे उसके मकान में आग लग रही है। दंगाइयों के साथ रामखिलावन खड़ा हुआ हस रहा है—किसी वहशी हसी में। यूनुस उद्विग्न हो उठा। बीच में कई बार उठकर उसने सीखचों से बाहर झांका।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाहर थाने में हंगामा हो रहा था, लोग पकड़-पकड़कर लाए जा रहे थे। कोई हंसता हुआ आता था। कोई रोता हुआ। किसी का घर जला दिया गया था, किसी ने घर जलाया था। दंगाइयों से भी खतरनाक हथियार बरामद किए गए थे।

यूनुस को लगा, यह जो कुछ हो रहा है, जानवराना है। यह तुर्की टोपीवाला और ये चुटियाधारी दोनों ही जानवर हैं। उसे लगा, जैसे इनमें से किसी के खिले हुए फूल-सा बच्चा नहीं है और न इन्होंने कभी कोई बच्चा देखा है।

रात-भर यूनुस ऐसा ही व्यथित और परेशान रहा। उसकी आंखों के लाल डोरे गहरे हो गए। बार-बार उसे ऐसा लगता, जैसे उसका नाती जोर-जोर से हाथ फैलाकर पुकार रहा है, "अब्बा! अब्बा!" सारी रात उसने ऐसे ही कल्पित सपने देखे।

सुबह जब कर्फ्यू समाप्त हो गया तो पुलिस लारी से उसे घर के पास वाली सड़क पर छोड़ दिया गया। तेज कदमों से वह घर की ओर बढ़ा। खामोशी अब भी थी—ऐसी खामोशी जो घर से मुर्दा उठ जाने के बाद हर कोने में गहरी हो जाती है।

यूनुस मकान तक आया। वह अब तक नहीं जला था। उसे तसल्ली हुई। इस शहर की पुलिस काफी सतर्क है। जिस तरह उसे पकड़ लिया गया, शायद उसी तरह रामखिलावन ने भी रात थाने में ही गुजारी होगी। यूनुस सोचता गया। मेरा मकान जलाने आया था। ओह!

यूनुस घर आया। नाती को चूमा। बेटे का कंधा थपथपाया। पत्नी को मुसकान दी। पर उत्तर में हर तरफ से मुसकान के बजाय उदासी ही मिली तो आश्चर्य से उसने पूछ लिया—"क्या बात है?"

उसके सब से बड़े बेटे ने उत्तर दिया, "रात को दंगाई आए थे। उन्होंने अपना मकान जलाना चाहा पर..."

इससे पहले कि वह अपनी बात पूरी करे, यूनुस के माथे पर शिकन पड़ गई। क्रोध से उसके हाथ कड़े हो गए, मुट्ठियां भिच गईं और झुर्रीदार चेहरे पर नीली-नीली नसें उभर आयीं, "मैं जानता था!" दांत पीसकर यूनुस चिल्लाया—"रामखिलावन यही करेगा।"

"नहीं-नहीं, अब्बा!" बड़े बेटे ने बात पूरी की, "रामखिलावन चचा ने तो हमें बचाया, और इस बीच-बचाव में दंगाइयों ने उन्हें जख्मी कर दिया।"

"क्या?" यूनुस को अपने कानों पर भरोसा ही नहीं आया। लगा, जैसे किसी ने उसे ऊंचे पहाड़ की चोटी से धकेल दिया है। बड़े भीगे और हल्के-से स्वर में उस ने पूछा, "कहां है रामखिलावन?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"पुलिस उन्हें अस्पताल ले गई। काफी चोटें आयीं ?"

यूनुस सिर थामकर जमीन पर बैठ गया। बार-बार उसे भीतर से कोई बात काटने लगी थी। उसे लगा, जैसे मन से कोई आवाज उठ रही हो, अभी आदमी नहीं मरा यूनुस ! अभी वह जिन्दा है। और दुनिया के हर मजहब से ऊपर एक और वस्तु है, जिसे आदमियत कहते हैं। आदमी अपने आप में एक बड़ा मजहब है।

न जाने कब तक यूनुस उसी तरह सिर थामे धरती पर बैठा रहा।

१९६२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भगत जी

भगत जी की तसवीर गांधी, गौतम या ईसा की तरह किसी घर में आदर्श का प्रतीक मानकर नहीं टांगी गयी, और शायद टांगी भी न जायेगी, पर इसके बावजूद उनका सौ फीसदी गौतम, गांधी की 'लिस्ट' में अगला नाम है।

भगत जी ने किसी पैगंबर की तरह कभी कोई चमत्कार नहीं किया, फिर भी यह निश्चित है कि वे मानवोचित दुर्बलताओं से काफी ऊंचे उठे हुए थे।

भगत जी न तो अधिक पढ़े थे, न उन्होंने कोई पुस्तक ही लिखी और न उन्होंने मानवता और दानवता की फिलासफी पर किसी चौराहे पर कोई लेक्चर ही दिया। इसके बावजूद भगत जी कई पढ़े-लिखे लोगों से अच्छे हैं, और अन्य लोगों से अधिक समझदारी और बुद्धिमत्तापूर्ण बातें करते हैं।

उन्हें चुनाव लड़ने की इच्छा नहीं, अभिनय की उत्कंठा नहीं, पर उन्हें चाह है खिले गुलाब की नाजुक पंखुड़ियों-जैसे हंसते-खेलते बच्चों की और उन्हें उत्कंठा है हरी-भरी लहलहाती धरती की शांति की।

वैसे भगत जी को मैंने देखा है, न तो वे किसी मंदिर की प्रतिमा हैं और न ईश्वर के अवतार! मैंने उन्हें देखा है, गांव की गंदी और बदरंग बस्ती में काले और बदरंग बच्चों के बीच। वे उनमें उतने ही खुश हैं, जितना खुश भोर का सूरज दिखायी देता है।

किसी पतझर के बूढ़े पेड़ की तरह कृशकाय, सांवला रंग, पलकें उठाती-गिराती नीली-नीली डूबी-सी गहरायी लिये, छोटी-छोटी आंखें, वसंत के पहले दिन-जैसी खिलती लजीली मुसकान, सपाट माथा, जवानों को चुनौती देनेवाला फुरतीला शरीर, आधी बांह का ग्रामीण सलूका और घुटनों-घुटनों तक ऊंची धोती, बालों के नाम पर सूना सिर, उसी तरह उनका माथा भी चंदन या तिलक के बिना एकदम सूना-सा रहता है।

भगत जी पैर में चप्पल नहीं पहनते। इसके कारण उनके पैरों में ढेर सारी बिवाइयां फट पड़ी हैं। राम जाने उनका पूरा नाम क्या है? भगत जी ब्राह्मण हैं, पर उनके कांधे पर जनेऊ नहीं है। एक दिन किसी ने पूछ लिया, "भगत जी!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जनेऊ नहीं पहनते ?"

"ऐसा बोझा क्यों लूं जो संभाल न पाऊं ? फिर वैसे ही मेरे कांधे पर काफी बोझा है।" भगत जी ने हंसकर उत्तर दे दिया।

उन महानुभाव को भगत जी की मानसिक स्थिति पर चिंता हुई। घबराकर बोले, "भगत जी, जनेऊ से बोझा मालूम होता है ?"

अपनी धुन में उलझे भगत जी ने उसी तरह उत्तर दे दिया, "जनेऊ का डोरा तो दो तोले का होता है, भैया जी ! पर उसके नियमों में दस हजार मन का बोझा है। जो यह बोझा न उठा सके, उसे जनेऊ नहीं पहनना चाहिए। समझे !"

बात कुछ गहरी थी। अतः भगत जी का उत्तर सुनकर प्रश्नकर्त्ता महाशय चुप हो गए।

भगत जी ने कभी भक्ति नहीं की। भगत नाम होने पर भी वे गेरुआ धारण नहीं करते। उनके साथ के लोगों के घर नाती खेल रहे हैं, पर भगत जी हैं कि जहां के तहां, निष्कपट भाव से कुंवारा जीवन बिताये जा रहे हैं। गांव में किसी का ब्याह हो, भगत जी यों खुशी मनायेंगे जैसे उनका अपना ब्याह हो रहा हो। गांव में किसी के लड़का हो, भगत जी यों गद्गद हो जायेंगे जैसे उनके अपना बेटा जनमा हो। कमाया तो बहुत, जोड़ते तो काफी हो जाता, पर लोगों का कहना है कि सब लुटा दिया उन्होंने। उनसे कभी इस बारे में पूछिए तो हंसकर जवाब देंगे, "क्या समझते हो भाई, जो कमाया सो उड़ाया, मरूंगा तो साथ लटकाकर थोड़े ले जाऊंगा ? और कमाया भी कितना है, बस, जैसे-तैसे इतना कमा पाता हूं कि दो रोटी खुद खा लूं और वक्त पड़े कोई मेहमान आ जाये तो चार वह खा ले। बहुत हुआ तो गांव में किसी के ब्याह-शादी के ब्यौहार में दो-चार-दस रुपये का लेना-देना कर दिया, जे ई पुण्य है। इस रोटी कमाने को कम खाना कहते हैं ? अरे, कमाई तो वह होती है कि ये झोंपड़ा चौबीस घंटे में बिसकर्मा की तरह महल बन जाये, भीतर झाड़-फानूस लटक जाये। कमाई तो वह है कि मुंह धुलाने को नौकर लगे। खाना खिलाने को नौकर लगे। जब ये सब नहीं तो फिर काहे की कमाई ? और फिर भैया, ईमान की बात तो यह है कि अपने हाथ-पैरों में ताकत है, सो किसी नौकर की जरूरत नहीं। आगे नाथ न पीछे पगहा, सो मकान की जरूरत नहीं। पेट-भर रोटी और जी-भर हंसी मिल रही है, सो चैन की बंसी बजा रहे हैं।"

सो भगत जी सचमुच ही बहुत खुश हैं। किसी के यहां ब्याह हो, कोई पूछे न पूछे, भगत जी आगे होकर इस तरह काम करेंगे कि लोगों को संशय हो जाये कि कहीं लड़के या लड़की के बाप भगत जी ही तो नहीं ? देन-लेन भी खूब दिल खोल कर करेंगे। कोई बीमार हो, भगत जी सेवा-सुश्रूषा में सबसे आगे ! कोई गमी हो, भगत जी पहले दुखी। किसी के खुशी हो, भगत जी पहले खुश। कर्ज देकर मांगना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सीखा नहीं, इसलिए कंगालों के लिए वे भगवान-स्वरूप हैं। उनके रुपये से मूल और ब्याज दोनों की वापसी का सवाल नहीं, सो ब्याज-खाऊ साहूकारों के लिए उनकी जिंदगी दुश्मन की तरह, निष्कटक कटी जा रही है। ईश्वर ने भी कभी दखल नहीं दिया।

भगत जी ने एक गाय पाल रखी है, सो रोज उसे चराने दूर तक चले जाते हैं। वापस लौटकर जब उसे दुहने का समय होता है तो दो-चार छोकरे जमा हो जाते हैं। जितना दूध निकलता है उसमें से आधा बच्चों में बांटकर आधा खुद पी लेते हैं। फिर गाय को दो-चार बार थपथपाकर भगत जी स्नान के लिए नदी की तरफ रवाना होते हैं और रास्ते में हर घर राम-राम, दुआ-सलाम बोलते हुए, कुशल-क्षेम पूछते जाते हैं।

उनका नाम भगत जी पड़ जाना एक बड़ी घटना ही है। गांव के बाहर काली मंदिर पर हर साल एक बड़ा मेला होता है। दूर-दूर के श्रद्धालु वहां मनोकामनाओं की झोली फैलाये ईश्वर-भक्ति के बदले, सुख खरीदने आते हैं। एक दिन भगत जी वहां भूले-भटके पहुंच गये तो काली मंदिर के पुजारी को बड़ा अचरज हुआ। बोला, "आज इधर कैसे ?"

भगत जी ने जवाब दिया "यों ही नौटंकी देखने आया था।"

पुजारी के आस-पास दस-पचास भक्त जमा थे। सोचा, इस नास्तिक आदमी से ठिठोली ही की जाये ! एक ने हंसकर कहा, "ब्याह की मनोकामना लेकर आये होंगे ?"

सभी खिलखिलाकर हंस पड़े। पुजारी ने कहा, "अरे भाई, अटकी पर कौन भगत नहीं हो जाता !"

भगत जी ने चिढ़ना सीखा ही नहीं था, हंसकर बोले, "हां पुजारी, बात कुछ ऐसी ही है। छोटा-मोटा भगत थोड़े ही हूं, बड़ा भगत हूं।" और फिर वे आगे बढ़ गये।

उनके इस कथन की प्रतिक्रियास्वरूप जब-तब लोग उन्हें भगत जी कहकर चिढ़ाने लगे। पर उन्होंने कभी बुरा नहीं माना। उलटे वे भगत जी के नाम से प्रसिद्ध हो गए।

एक दिन भगत जी घर के बाहरवाले चबूतरे पर बैठे थे, तो नदी से स्नान करके लौटता हुआ कुंभाराम बनिया उधर से आ निकला। जंगल की ठेकेदारी में उसने हजारों कमाकर गांव में एक धर्मशाला और मंदिर बनवा दिया था। वह रोज स्नान करके मंदिर जाता था और सारे रास्ते इस जोर से चिल्ला-चिल्लाकर श्लोक पढ़ता जाता था, जैसे विरोधी दल का कोई जुलूस सत्तारूढ़ दल के विरोध में नारे लगाता जाये ! भगत जी को बाहर बैठे देख, उसने श्लोक अधूरा छोड़कर उनसे कहा, "क्यों भगत जी, मंदिर चल रहे हो दर्शन करने ?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भगत जी ने उसके उत्तर में बड़ी मीठी और हलकी आवाज में कहा, "मैंने कौन पाप किये हैं ?" भगत जी स्वयं ही अपनी बात का व्यंग्य न समझ पाये और कई दिनों तक परेशान रहे, क्योंकि कुंभाराम उस दिन के बाद से उनसे बोला नहीं था। कुंभाराम की नाराजगी वे बरदाश्त न कर सकते थे। एक दिन उसके पास पहुंचे और बड़े ही सरल स्वर में बोले, "कुंभाराम ! तुम मुझसे नाराज क्यों हो ?"

कुंभाराम ने नाक सिकोड़कर उत्तर दिया, "तुम नास्तिक जो हो !"

"क्यों ?" साश्चर्य भगत जी ने पूछा। भगत जी अपने नास्तिक होने का कारण समझ नहीं पा रहे थे। उन्होंने एक बार भोलेपन से कुंभाराम की ओर देखा, उस के गले में तुलसी, रुद्राक्ष और न जाने काहे-काहे की ढेर-सी मालाएं पड़ी थीं। माथे पर त्रिपुंड था, हाथ में कैप्सटन सिगरेट और सामने शराब की बोतल ! बगैर कुछ बोले भगत जी ने एक बार अपनी ओर देखा, उनके हाथ में केवल दूध का एक गिलास था, जो वे मन्नू काछी के घर देने जा रहे थे। उसका बच्चा बीमार था और वह अपनी गरीबी के कारण बच्चे को दूध नहीं पिला सकता था। बड़ी ही सादगी से भगत जी ने कहा, "तुम मुझे इसलिए नास्तिक समझते हो कुंभाराम कि तुम्हारी तरह मेरे माथे पर चंदन, गले में मालाएं, हाथ में सिगरेट और सामने शराब नहीं है ?"

हालांकि भगत जी ने अपने जान में यह बात कुंभाराम को चिढ़ाने के इरादे से नहीं कही थी, पर कुंभाराम आग की तरह भभक उठा। उसने चिल्लाकर कहा, "भगत ! मैं तुमसे बात नहीं करना चाहता ! निकल जाओ यहां से !"

बड़ा अचरज हुआ भगत जी को। कुंभाराम न जाने क्यों उन पर इतना बिगड़ रहा है ? अतः आगे बढ़कर दूध का गिलास तो उन्होंने एक ओर रख दिया और लपककर कुंभाराम के पैर पकड़ लिये, फिर दयनीय स्वर में बोले, "मुझे बताओ तो सही, तुम नाराज क्यों हो ?"

कुंभाराम तो ऐसे ठंडा हो गया जैसे उफनकर बरतन के मुंह तक आया दूध आंच से उतार दिया गया हो। तो भी उसने कहा, "तुमने मंदिर चलने को क्यों मना किया था ?"

भगत जी को याद आया। "इतनी-सी बात पर ऐसे नाराज हो रहे हो ?" उन्होंने समझाते हुए कहा, "उस दिन मुझे दीना चमार की दवा लेने शहर जाना था, इसलिए नहीं की थी।"

आश्चर्यपूर्वक कुंभाराम ने प्रश्न किया, "उतनी ठंड में तुम दीना की दवा लेने इक्कीस मील चलकर शहर गये ?"

भगत जी हमेशा की तरह मुसकरा दिये, "क्या हुआ ? अरे, अगर दीना मर जाता तो उसके बाल-बच्चों का क्या होता ? इक्कीस मील पैदल की ही तो बात थी ?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुंभाराम का सिर शर्म से झुक गया। उसे लगा कि वह मंदिर में पहुंच गया है और ईश्वर की मूरत की जगह भगत जी को देख रहा है। पश्चात्ताप और ग्लानि से उसका कंठ अवरुद्ध हो गया। भगत जी कहे जा रहे थे, "तुम मेरे मंदिर न जाने पर नाराज हो गये? चलो, मैं अभी मंदिर चलता हूं। चलो न!" उन्होंने कुंभाराम का हाथ पकड़कर खींचा, पर कुंभाराम बुत की तरह मौन था।

चुप खड़े भगत जी सोच रहे थे कि कुंभाराम अब क्यों नाराज है?

१९६२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक प्लेट प्यार

बिजली के उस बड़े खंभे के नीचे जब शाम के सात बजे के बाद सब तरफ बिजलियों का उजाला होता है, अल्मूनियम की एक मैली पुरानी प्लेट सामने रखकर सुनहरी फिर आ बैठती है। खंभे के दायीं ओर जीवनमल घनश्यामदास की जूतों की बड़ी दूकान है। दूकान के बाहरी हिस्से में बड़े-बड़े शो-केस लगे हैं, जिनमें जूतों की नयी से नयी डिजाइनें बड़ी सावधानी से सम्हालकर, सफाई के साथ सजाकर रखी जाती हैं। हर शो-केस में मरकरी ट्यूब जलते हैं, और उनके प्रकाश में नये जूतों का अंग-प्रत्यंग जगमगा उठता है। बची-खुची रोशनी फुटपाथ पर और वहां के कचरे के साथ-साथ, एक हद तक सुनहरी के बदन पर भी पड़ती रहती है। सुनहरी के बदन के लिए इतनी ही रोशनी काफी है। सिर्फ इसी रोशनी में उसकी फटी धोती और भीख में मिले बे-नाप ब्लाउज से उसकी जवानी सड़क पर इस तरह बिखरी रहती है, जैसे सूरज के जनम के साथ ही सारी दुनिया पर किरणें जबरन छितराकर फैल जाती हैं। जिस तरह सूरज की किरणों को रोका नहीं जा सकता, कुछ उसी तरह सुनहरी की जवानी का असर भी आस-पास के कुछ लोगों पर रोका नहीं जा सकता।

सामनेवाली दूकान में किराना तौलते-तौलते पुहूराम सिंधी की आंखें तौल के कांटे से फिसलकर फुटपाथ पर बैठी सुनहरी की बगलों में और सीने के इर्द-गिर्द गड़ जाती हैं। इस अनचाहे नजरों के गड़ाव ने पुहूराम के तमाम ग्राहक जड़ से उखाड़ दिये हैं, पर कमबख्त सुनहरी का पुहूराम क्या करे, जो सरकारी खंभे के चालीस पॉवर वाले लट्टू के नीचे सौ पॉवर की अपनी जवानी लेकर आ बैठती है! सुनहरी को घूरना पुहूराम उस समय छोड़ पाता है जब पाव वाले ग्राहक को आधा पाव और आधा पाव वाले को पाव भर सामान तोल जाता है। तब ग्राहक उसे डांटता है—"पुहूराम, होश में हो कि नहीं!"

पुहूराम, तम्बाकू और पान में गर्क अपने पीले-पीले दांत ग्राहक की तरफ निपोरकर एक बेशर्म हंसी हंसते हुए कहता है, "कल रात जरा सो नहीं पाया। दूसरा शो देखने गया था, नींद घिर रही है।" ग्राहक निबटाकर पुहूराम फिर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी आंखें सुनहरी के गोरे गालों पर गड़ा देता है और उसके दांत अपने आप एक-दूसरे से भिच जाते हैं। सोचता है, उन आमों की क्या बात, जिनमें गदराहट ही गदराहट है !

पिछले दो सालों से सुनहरी इसी तरह नियमित यहां आ बैठती है। राहगीर गुजरते हैं। वह अपनी भूखी और रीती आंखों से कभी उनके चेहरे और कभी अपनी अल्मूनियम की प्लेट को देखती है। सुनहरी की आंखों से सारे आंसू बह चुके हैं। अगर वे बहकर चुक न गए होते तो वह इस तरह फुटपाथ पर बिजली के खंभे के नीचे न आ बैठती।

फलों की रेड़ी लगानेवाले लाला चंदनराम की हार्दिक इच्छा है कि अपने सारे नागपुरी सन्तरे सुनहरी के गले में उतार दे और उसकी आंखों के रास्ते वह खुद उसके दिल में उतर जाये। पर दो साल में ऐसा एक बार भी नहीं हुआ। इस बीच सन्तरों की दो फसलें आयीं और चली गईं। न तो उसके नागपुरी सन्तरे सुनहरी के गले में उतरे और न ही वह उसकी आंखों के रास्ते दिल में उतर सका। एक बार तो यहां तक हुआ कि सुनहरी के भीख मांगने के बजाय चंदनराम खुद उसे भीख देने पहुंचा तो सुनहरी ने उसका सन्तरा हाथ में लेकर घुमा-फिराकर देखा और न जाने उसे कैसी नजरों से घूरते हुए वापस कर दिया था ! तब चंदनराम उसकी आंखों के रास्ते दिल में उतरते-उतरते पलकों ही में उलझा रह गया था।

बाजार का यह सारा हिस्सा हवलदार उम्मेदसिंह की निगरानी में है। इसके उस छोर पर वनस्पति घी की दुकान 'असली देशी घी' का साइन बोर्ड लगाए हुए है और इस छोर पर बेकारों के लिए कामदिलाऊ दफ्तर है, जिसमें पचीस रुपये में नौकरियां बिकने लगी हैं। हवलदार उम्मेदसिंह की उम्र अभी मुश्किल से पैंतीस की होगी। बदन का हर जोड़ दर्द करने लगा है और आंखों के आस-पास कालापन उभर आया है; मगर दिल में कूट-कूटकर जवानी भरी हुई है। अपनी खस्ता आवाज में कॉलेज के किसी बिगड़े हुए छोकरे की तरह ऐसी जवान बातें करता है कि किसी चालू फिल्म के 'डायलॉग' भी शरमा जाएं। दिन में दस दौर इस सड़क के करता है और हर दौर में 'सिटी बस' के 'स्टॉप्स' की तरह इसके भी कई स्टॉप हैं। जिस तरह 'बस' का हर 'स्टॉप' आमदनी का जरिया है, उसी तरह उम्मेदसिंह के स्टॉप्स भी आमदनी के जरिए हैं। जहीर गौस, परांठेवाले की दुकान पर वह सुबह मुफ्त नाश्ता करता है; 'सुहाग पान भंडार' से फोकट में पान खाता है और चंदनराम से रोज पावभर फलों की नेग बंधी है। मंगोड़ेवाली मौसी उसे मुफ्त इश्क देती है, पर सुनहरी से उसे कभी कुछ नहीं मिला। यों हवलदार उम्मेदसिंह काफी सख्त आदमी है। चुटकियों में 'ऐक्शन' लेता है; दफाएं लागू करता है और चालान कर देता है; पर सुनहरी के प्रति उसके सिपाहियाना जिस्म में न जाने ऐसा कौन-सा मुलामियत का स्रोत बह निकला है कि उसने न तो कभी कोई 'ऐक्शन'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिया, न दफाएं लागू कीं और न चालान ही किया ! एक बार जब उम्मेदसिंह का प्रेम-प्रस्ताव सुनहरी ने बड़ी बेरहमी से ठुकरा दिया था और वह मुंह की खाकर लौटा था, तो चंदनराम उसे उकसाने को बोला था, "हवलदारजी, इस साली को अपनी जवानी पर बड़ा गरूर है। किसी को कुछ गिनती ही नहीं। उस दिन मैंने सन्तरा दिया तो उसने ऐसे ही वापस फेंक दिया था।"

उम्मेदसिंह का 'मूड' बिगड़ा हुआ था मानो कड़वी चीज़ अनजाने खा गया हो। उसने एक बार पास के खंभे के नीचे बैठी सुनहरी को घूरा और चुप रह गया।

चंदनराम ने फिर कहा, "हवलदारजी, इसका इलाज जरूर होना चाहिए। दिमाग ही नहीं मिलते इसके !" चंदनराम ने अपनी बात की प्रतिक्रिया उम्मेदसिंह के चेहरे पर देखी और बोला, "परसों कह रही थी···" उसे रुकता देखकर क्रोध में बड़े उतावलेपन के साथ उम्मेदसिंह ने पूछा—"क्या कह रही थी ?"

"बुरा मत मानना, हवलदारजी," चंदनराम रुक-रुककर बोला, "कह रही थी, उम्मेदसिंह का मुंह सड़े टमाटर जैसा पिलपिला है। हवलदार तो लगता ही नहीं, मुआ धोबी घाट का धोबी दीखता है।"

"हरामजादी !" उम्मेदसिंह क्रोध में होंठ चबाने लगा, "इसके भी हुस्न का भूत न उतारा तो मेरा नाम उम्मेदसिंह नहीं।" वह अपनी घनी मूंछों में मोटे शैतान बिल्ले की तरह गुर्राया—"कहना, किसी भंगी की औलाद था।"

चंदनराम के चेहरे पर अस्पष्ट-सी मुसकराहट नाच गई। उम्मेदसिंह ने उसे एक बार फिर घूरा और गालियां बड़बड़ाता हुआ चला गया।

'जीवनमल घनश्यामदास जूता शॉप' के मालिक सेठ जीवनमल गाढ़ी धूप में सुनहरी को डामर की सड़क पर नंगे पांव चलते देखता तो उसे ऐसा महसूस होता मानो डामर की गरमी से सुनहरी के मुलायम तलवों में छाले नहीं पड़ रहे, बल्कि स्वयं उसके सीने में पड़ रहे हैं। कई बार इच्छा हुई कि जाकर सुनहरी के कदमों में लेट जाय और उससे कहे—"सुनहरी, मेरे सीने पर पांव रखके निकल जा। गरमी से डामर पिघल गया है, तेरे तलवे जल जाएंगे;" किन्तु वह विचार बड़ा मूर्खतापूर्ण था न ! जीवनमल ने फौरन उसे मस्तिष्क से निकाल फेंका। उस रात जब सुनहरी लौट रही थी, तो एक सुनसान गली में जीवनमल उसके पास जा पहुंचा। सुनहरी बचकर निकलने लगी तो उसने रास्ता रोक लिया और बड़े याचनापूर्ण ढंग में कहा, "सुनहरी, तू रोज गर्मी में डामर की सड़क पर चलती है, तेरे पांव जल न जाते होंगे ! ले, मैं तेरे लिए एक जोड़ी चप्पल लाया हूं।" कहकर जीवनमल ने अपनी बगल में दबा हुआ चप्पलों का डिब्बा उसकी ओर बढ़ा दिया।

सुनहरी ने एक बार जलती नजर से जीवनमल को घूरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"ले, ले न !" जीवनमल की आंखों में याचना और सफलता की आशा भी थी।

सुनहरी ने जवाब दिया, "मुझे नहीं चाहिए !"

जीवनमल और कुछ कहने को था कि सुनहरी ने बात पूरी कर दी, "ये चमकनी जूतियां अपनी जोरू को क्यों नहीं देता जाकर !" जीवनमल अवाक् खड़ा ही रह गया। सुनहरी सारे रास्ते खुश होती सोचती आयी कि, ईश्वर ने उसे भिखारिन बना दिया तो क्या हुआ ! शरीर तो ऐसे सांचे में ढाल दिया है कि जीवनमल उसे जूतियां भेंट करना चाहता है, चंदनराम उसे अपनी सारी फलों की दूकान ही खिला देने को दीवाना है, पुहूराम और वह उम्मेदसिंह···?' सोचते-सोचते सुनहरी मगन हो उठी। उसने अपनी चिथड़े वाली धोती का पल्लू सम्हाल लिया और चाल में मस्ती बढ़ा दी। रह-रहकर रास्ते-भर सुनहरी जीवनमल, चंदनराम, पुहूराम और हवलदार उम्मेदसिंह के बारे में सोचती ही चली आयी, 'ये सब किस तरह मेरी खुशामद करते हैं, कितने भूखे और लाचार हैं, बेचारे !'

हर बार यह विचार करके भी उसे तसल्ली हुई कि वह उन्हें हमेशा दुत्कारती रहती है, डांट-डपट देती है। सहसा एक ठोकर लगी तो उसकी विचारधारा भंग हो गई। फिर नये सिरे से उसने सूत्र सम्हाल लिया। हां, एकमात्र बाबूलाल हम्माल ही ऐसा आदमी था, जिसे सुनहरी नहीं डांट सकी थी। बाबूलाल उसी बाजार में, जहां सुनहरी भीख मांगने बैठा करती थी, एक थोक किराना दुकान पर हम्माली करता था। उसका कद ठिगना था और सीना चौड़ा। सारा शरीर गठा हुआ था। श्रम के प्रति अटूट श्रद्धा और विश्वास ने उसके चेहरे पर चमक पैदा की हुई थी। उससे पहली भेंट में ही सुनहरी बेहद प्रभावित हो उठी थी। बाबूलाल ने न तो उसे भूखी आंखों से देखा था और न ही जीवनमल या चंदनराम की तरह कोई चीज़ भेंट करनी चाही थी। पहली बार जब वह सुनहरी को मिला, सुनहरी ने उससे एक नया पैसा मांगा था। कुछ घृणापूर्वक उसने उसे देखते हुए कहा था, "मजूरी क्यों नहीं करती ?"

सुनकर सुनहरी सन्न रह गई थी। उसे अपनी जवानी पर गर्व था, मगर ऐसा कटु अनुभव पहली बार हुआ था। एक ऐसा आदमी भी है, जो उसे दुत्कार सकता है; जिस पर सुनहरी की जवानी, शरीर की गदराहट और नशीली आंखें कोई प्रभाव नहीं डाल सकतीं !

उस दिन से सुनहरी के मन में बाबूलाल के लिए एक खास जगह बन गई। जब-जब बाबूलाल उसके पास से पसीने में सराबोर हारा-थका गुजरता, वह अपनी अल्मूनियम की खाली प्लेट उसकी ओर उठा देती और याचना करती, "एक पैसा दे दे, तेरा राम भला करेगा।"

हमेशा की तरह बाबूलाल ठिठकता, पलटकर उसे घूरता और फिर एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उलाहना सुनाकर, मजदूरी या नौकरी करने की सलाह देता हुआ अपने रास्ते चला जाता।

एक दिन उसने सुनहरी को सलाह भी दी थी—"भगवान ने ऐसा अच्छा बदन दिया है, कहीं नौकरी या मजदूरी क्यों नहीं कर लेती? अंधी या कोढ़ी तो है नहीं, जो भीख मांगती है! अरे, नौकरी नहीं कर सकती तो न सही, किसी मेहनती आदमी से ही फेरे डाल ले। भगवान ने रूप-रंग तो खूब दिया ही है। तुझसे ब्याह करना कौन न चाहेगा?" उस बात को आज याद करके सुनहरी अपने आप में शरमा गई। उस घड़ी इच्छा हुई थी कि कह दे, "तुझसे ज्यादा मेहनती और कौन मिलेगा? तू ब्याह करेगा मुझसे?" पर कहने की हिम्मत न हुई, चुप रह गई थी। उस दिन सुनहरी ने समझ लिया था कि बाबूलाल के मन में उसके लिए प्यार है। जब बाबूलाल चला गया तो सुनहरी को लगा, जैसे उसके सामने रखी खाली प्लेट भर गई है, और उसमें बाबूलाल का प्यार झलक रहा है। एक अजब-सी गुदगुदी और लज्जा उसके सारे अंग में समा गई। उस दिन सुनहरी को भीख मांगने की अपनी जिन्दगी से कुछ नफरत-सी हुई थी। उसने निश्चय किया था कि वह जल्दी ही बाबूलाल के सामने ब्याह का प्रस्ताव रख देगी, और फिर···? सोचते-सोचते सुनहरी के विचारों में भी एक 'फुलस्टॉप'-सा लग गया था, क्योंकि उसके आगे की कल्पना स्पष्ट ही नहीं थी। राम जाने लड़का होगा या लड़की! सुनहरी आगे नहीं सोच सकी थी।

उसके बाद कई बार सुनहरी और बाबूलाल का सामना हुआ, बातचीत चली किन्तु हर विषय पर बातचीत करते रहने के बावजूद सुनहरी को साहस न हुआ कि अपने भीतर की बात भी उससे कह दे।

इधर कुछ दिनों से उम्मेदसिंह उसे बेहद तंग करने लगा था। बात-बात पर रोज उसे झिड़कता, दुत्कारता और फुटपाथ छुड़ा देने की धमकी देता था। चंदनराम ने भी यही रुख अपनाया था। वह उसके सामने खड़े होकर अपनी रेड़ी लगाता। कुछ इस तरह खड़ा होता था कि सुनहरी उसकी रेड़ी के पीछे छिप जाती। राहगीर सड़क पार कर जाते इधर और सुनहरी को भीख मांगने का मौका ही न मिलता। दो दिन से चंदनराम की लगातार यही साज़िश चल रही थी। परिणामतः सुनहरी की प्लेट खाली रहने लगी। आज लगातार तीन घंटे तक बैठी रहने के बाद सुनहरी भीख में केवल दो आना ही प्राप्त कर सकी तो उसे चंदनराम को टोकना ही पड़ा।

सुनहरी ने चंदनराम से वहां खड़े होकर रेड़ी न लगाने की प्रार्थना की तो वह उबल पड़ा। चीखकर बोला, "ये जगह तेरे बाप की है क्या? 'मुन्सीपाल्टी' में किराया जमा करता हूं।"

सुनहरी ने कहा, "गुस्सा काहे को होता है, चंदनराम! तू बड़ा आदमी है,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'मुन्सीपाल्टी' को किराया दे सकता है मगर मैं गरीबनी तो कुछ करने से रही !" सुनहरी उसे खाली प्लेट दिखाती हुई बोलती गई "देख, दोपहर तक आज मुझे सिर्फ दो आने ही मिले। तेरे यहां खड़े होने से मेरा भीख का धंधा चौपट हुआ जा रहा है। जरा बगल से लगा लिया कर !"

चंदनराम पूरी तरह झगड़े के लिए तैयार था। उसने और भी ऊंचे स्वर में कहा, "मुझसे जबान लड़ाती है हरामजादी, भिखारिन ! तेरी हैसियत ही क्या है ?"

शोर सुनकर दो-चार लोग जमा हो गए। जीवनमल भी दूकान से उतर आया। वह सुनहरी से पहले ही जला-भुना था। अपनी जलन को बुझाने का अच्छा मौका समझकर उसने सुनहरी को डांटा—"तुझे मर्दों में मुह लड़ाते लाज नहीं आती ?"

चंदनराम ने और भी उत्साहित होकर उसे लताड़ा और इकट्ठे हुए लोगों को संबोधित करते हुए बोला, "देखी भाइयो, इस भिखारिन की बातें ! कहती है, यहां से यह ठेला हटा लो। यह भी कोई भीख मांगने की जगह है ! अपना धंधा कर-कराके किसी तरह बाल-बच्चों को पालते हैं। इसके कहने से यह जगह छोड़ दें ताकि यह आपसे भीख मांगे ! जरा आप ही न्याय करो।"

सुनहरी सकुचाकर चुप हो गई। चंदनराम इतना क्रोध क्यों दिखा रहा था, इसका कारण उसे मालूम था। लोग एकमत होकर उसको कोसने लगे। इस सिलसिले में कई राहगीरों ने उसके बदचलन होने का भी फतवा दे दिया। सुनहरी का मन खराब हो गया। वह वहां से उठकर चली आयी। आज उसे भीख मांगने के पेशे से बेहद घृणा हो गई। वहां से चलकर वह बजाय अपने घर जाने के, बाबूलाल के घर की ओर रवाना हुई। हरिजन बस्ती में ही उसका मकान था। एक दफा बातों ही बातों में बाबूलाल ने पता बता दिया था। सुनहरी ने निश्चय कर लिया था, आज वह साफ-साफ कह देगी, "मुझे नौकरी करवा दे या मुझसे ब्याह कर ले।"

बाबूलाल के घर सुनहरी पहुंची तो अंधेरा हो चला था। सड़कों की चहल-पहल समाप्त होकर उदासी आती जा रही थी। बाबूलाल बाहरवाले चबूतरे पर ही बैठा बीड़ी पी रहा था। सुनहरी को सामने से आते देखकर उठ खड़ा हुआ। घर के किवाड़ उढ़के हुए थे। बाबूलाल ने झटपट खोलकर भीतर आने के लिए रास्ता कर दिया। सुनहरी निस्संकोच भीतर चली आयी। पीछे-पीछे बाबूलाल आया। उसने लालटेन की बत्ती जरा ऊंची कर दी, जिसे वह बाहर जाने के पूर्व नीची कर गया था।

रोशनी में सुनहरी ने देखा, बाबूलाल के घर में यों सामान तो काफी था, पर सभी अस्त-व्यस्त पड़ा हुआ था। एक टूटी-फूटी झोलदार चारपाई पड़ी हुई थी,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिस पर बिछौना काफी गंदा था। एक आले में हनुमान जी की तसवीर लगी हुई थी। सुनहरी प्रसन्न हुई कि बाबूलाल के मन में भक्ति-भावना भी है। इस कलजुग में ऐसी भावना वाला पति मिले तो बड़ी बात। एक कोने में जूठे बर्तन पड़े हुए थे। सुनहरी को लगा, जैसे यह सारा सामान और घर उसी को निमंत्रण दे रहा है।

बाबूलाल ने सुनहरी को चारपाई पर बैठने का संकेत दिया। सुनहरी उस पर बैठी तो उसमें धंसकर ही रह गई।

बाबूलाल ने पूछा, "तू आज इत्त बखत काहे को आयी ?"

सुनहरी को साहस नहीं हो रहा था कि एकाएक ही कैसे बात शुरू कर दे। पर लाचारी थी। उसके अलावा और कोई चारा भी नहीं था। सकुचाते हुए बोली, "बात जे है, कि मैं नौकरी करना चाहती हूं।"

"सच !" खुशी से लगभग उछल पड़ा बाबूलाल। "नौकरी करेगी तू ? यह तो बहुत अच्छी बात है।" वह सुनहरी के नजदीक आ गया। सुनहरी को उसका इस तरह नजदीक आना बहुत अच्छा लगा। उसने कहा—"हां, मैं नौकरी करूंगी। आज भीख के पीछे मुझे बहुत खरी-खोटी सुननी पड़ी।"

सुनहरी की बात पूरी होते न होते बाबूलाल बोला, "भीख का धंधा ही ऐसा है।"

बाबूलाल ने पास बैठे-बैठे बड़े अचरज और अविश्वास से उसे देखा।

सुनहरी के चेहरे पर दृढ़ता थी।

दूसरे ही क्षण कुछ विचार कर बाबूलाल ने कहा, "मैं अभी चलकर तुझे सेठ से मिलवाये देता हूं।" कहते-कहते वह रुका, मानो सपाट सड़क पर दौड़ती साइकिल के आगे एकाएक कोई बड़ा पत्थर आ गया हो। सुनहरी आशा के साथ उसका चेहरा देखे जा रही थी। कुछ संकोच के साथ बाबूलाल ने अटकी हुई बात उगली—"सुनहरी ! मेरा सेठ जरा मसखरा है, उसे जरा हंस-खेल के खुश कर लेना। नौकरी पक्की समझ।"

सुनहरी को लगा, जैसे उसके बदन को बिजली का करेंट लग गया हो। नीचे से ऊपर तक झनझना गया उसका सारा बदन। उसने कुछ नहीं कहा। चुपचाप उठी, खाली प्लेट उठायी और घर से बाहर जाते समय उसने एक नजर बाबूलाल को देखा।

बाबूलाल की गरदन झुकी हुई थी।

सुनहरी लौट आयी।

दूसरे दिन उसने जीवनमल की भेंट स्वीकार कर ली। उम्मेदसिंह इधर से निकला तो उसे अपने पास बुला लिया। मुसकराकर पूछा—"हवलदार जी, नाराज हो मुझसे ?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उम्मेदसिंह ने एकाएक कोई उत्तर नहीं दिया। सुनहरी ने कुछ सस्ते इशारे से उसे देखा, बोली—"सनीमा चलोगे ?"

उम्मेदसिंह ने स्वीकारात्मक ढंग से मूंछें हिलायीं।

बाबूलाल उधर से गुजरा, तो सुनहरी ने अल्मूनियम की प्लेट उसकी ओर भी बढ़ा दी। एक क्षण को वह ठिठका, लेकिन फिर चलता ही चला गया। उसका साहस न हुआ कि वह सुनहरी की ओर देखे।

सुनहरी देर तक अपनी प्लेट देखती रही, जो अब पैसों से भरी हुई थी। कुछ दिन पहले उसने उस प्लेट में प्यार छलकता देखा था, आज उसी में पैसे छलके पड़ रहे हैं।

१९६२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिछिया

एक बोतल बेहतरीन अंग्रेज़ी शराब, नदी की-सी चंचलता और मस्ती, नये कपास की मुलायमियत और अलसुबह बेल से छिटके जुही की-सी जवानी और ताजगी यदि एक साथ मिल जाएं, तो बिछिया बनती है। पर ऐसा मेल मुश्किल है, ठीक उसी तरह, जिस तरह बिछिया की ठोड़ी पर एक खास ढंग से रखा तिल किसी के चेहरे पर मिलना मुश्किल है।

ऐसे दुर्लभ मेलोंवाली बिछिया को भाग्यशाली शहराती बाबू सुदेश, जंगल से ब्याहकर लाया था।

बिछिया एक गोंड औरत थी, और जंगल विभाग के बाबू सुदेश से उसे तभी प्यार हो गया था, जब वह सरकारी ड्यूटी पर मंडला की तरफ के जंगलों में गया हुआ था।

सुदेश गया था अकेला और लौटा बिछिया को साथ लेकर। अब से पांच महीने पहले शादी के नाम पर ऊंची-ऊंची कल्पनाएं करने और शरमा जाने वाले सुदेश का मुहल्ले में बिछिया के साथ आगमन बेहद मजेदार घटना थी। सारा मुहल्ला उस तांगे के इर्द-गिर्द जमा था, जिस तांगे से सुदेश बिछिया को लेकर बड़े गर्व से आया था। बिछिया को देखकर शहराती मुहल्लेवाले जितने आश्चर्य-चकित थे, उससे कहीं अधिक बिछिया उन्हें देखकर अचरज में थी।

बिछिया की वेशभूषा सभी के लिए आश्चर्य और आकर्षण की चीज़ थी। आगे बीचोबीच मांग बनाकर बालों को दोनों ओर सीधा-सपाट खींच लापरवाही से बिछिया ने जूड़ा बांध रखा था। घुटनों से ऊपर एक अधूरी धोती चारों तरफ लपेटी गई थी और उसकी लपेट इतनी तंग थी कि शरीर का आगे-पीछे वाला उभार कपड़े में से भी बेतरह स्पष्ट हो गया था। मुहल्ले की औरतों ने पहले तो बिछिया को देखा, फिर आपस में एक-दूसरे के चेहरे देखे और अन्त में अनचाहे लजा गईं। बिछिया के सीने पर चोली की जगह, मोटे कपड़े की एक पट्टी बंधी हुई थी, और उस पट्टी में पीछे पीठ पर गांठ लगाई गई थी। गले में कौड़ियों की ढेर सारी छोटी-बड़ी मालाएं पड़ी थीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

औरतें उसे देखकर खिलखिलाकर हंस पड़ीं। वे हंसते-हंसते इस तरह लजा रही थीं, जैसे उस धोती में बिछिया के अंग नहीं, उनके अपने अंग उभर आए हैं। उन्हें ऐसा लगा, जैसे उस अधूरी धोती में बिछिया की नहीं बल्कि उन सबकी पिंडलियां उघर गई हैं। वे यह भी अनुभव करने लगी थीं, मानो वह सफेद पट्टी बिछिया के नहीं, उनके अपने सीने पर बंधी हुई है।

बिछिया भी अचरज के भाव से उन्हें आंखें फाड़-फाड़कर देख रही थी। जब वे हंस दीं तो उसे भी हंसी आ गई। उसे यह सब एकदम विचित्र लगा। उसने सोचा, ये सब कितनी अजीब हैं? ऊपर से नीचे तक एक खोल में मढ़ी हुई हैं। कैसा लगता होगा इन्हें? न हिरनी की तरह तेज दौड़ सकती हैं, और न पैर ऊंचे-नीचे फेंककर 'रीना' (एक गोंड नृत्य) नाच सकती हैं। शहर की हर चीज़ अजीब है। उसने पहले से अधिक घूरकर आस-पास इकट्ठा औरतों के समूह को देखा। इनके गले में तो कौड़ियों की माला भी नहीं है!

बिछिया हंसी तो मोहल्ले की औरतों का हंसना बंद हो गया। हर तरफ एक गंभीरता छा गई।

बिछिया घर में आयी। लगता था, जैसे शहर में चारों तरफ एक बंधाव है, एक कैद है। घर के खुले दरवाजे पर अब भी एक-दो महिलाएं और कुछ बच्चे जमा थे। उनके लिए बिछिया का पहनावा एकदम अजूबा और नयी चीज़ थी। एक कौतूहल था, जो सारे मुहल्ले में फैल गया। न जाने क्यों, सुदेश को कुछ झेंप-सी लगी। इच्छा हुई, दरवाजा बन्द कर दे ताकि नुमाइश का यह दौर समाप्त हो जाए। पर ऐसा करना पराजय स्वीकार कर लेना था। बिछिया यों तो एक कोने में खड़ी होकर घर, दीवारें, छत और सामान को आश्चर्य से देख रही थी, पर जब दरवाजे पर उसने औरतें और बच्चे फिर खड़े देखे तो देहरी पर आ खड़ी हुई। समझ में नहीं आ रहा था, वे क्यों जमा थे? बिछिया ने दाएं-बाएं सिर घुमा-फिराकर उन्हें पहले से कहीं अधिक गौर से देखा, और कुछ इस तरह देखा कि एकत्र लोगों को लगा, जैसे बिछिया में जितनी विशेषता उनके लिए है, उससे कई गुना अधिक बिछिया को उनमें लग रही है। वे धीरे-धीरे वहां से खिसकीं, तो बिछिया फिर हंस दी। एक क्षण को सारे कमरे में हलकी-सी खनखनाहट गूंज गई। लौटती हुई औरतों ने ठिठककर उसे ईर्ष्यालु दृष्टि से देखा। बिछिया के गोल चेहरे पर हंसी के साथ वह तिल कुछ खास ढंग से ऊंचा-नीचा हुआ था। आंखों की पुतलियों में शराबी ढंग से हरकत हुई थी, साथ ही होंठों पर ऐसी थिरकन हुई कि उन औरतों को अपने हर तरीके, चाल-ढाल, रूप-रंग में बुढ़ापा और पुरानापन-सा महसूस होने लगा। लगा, जैसे वह जंगली लड़की उन्हें चुनौती दे रही है, उनकी खिल्ली उड़ा रही है; और वे उसकी चुनौती, खिल्ली सब कुछ स्वीकार कर रही हैं। उन्हें स्वीकार करना पड़ रहा है, क्योंकि वे उसके सामने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फीकी हैं, बेहद फीकी हैं। थोड़ी देर में वे सब चली गईं।

दो-तीन रोज गुजरे। बात आयी-गयी हो गई।

बिछिया शहरी जीवन की अभ्यस्त नहीं थी। न उसे बाल संवारना आता था, न ठीक से शहरी तौर-तरीका। न उसकी चाल में वह नाटकीयता थी, न हंसी में सकुचाहट। वह चलती तो इस तरह निस्संकोच, स्वयं को ढीला छोड़कर कि देखनेवालों को शराब का-सा नशा चढ़ने लगता। इस स्वाभाविक ढंग से वह खिलखिला उठती, जैसे चीनी के दो प्याले टकरा गए हों। कोई उसकी ओर देखता तो वह निस्संकोच उसे देखती रहती—उसी की तरह टकटकी बांधे।

सुदेश को बिछिया की इन हरकतों में कुछ पुरानापन-सा लगने लगा। उसका यों हंसना, मुसकराना, चाल-ढाल—सब में एक विकर्षण पैदा होने लगा। बिछिया की वजह से लोग उस पर अंगुलियां उठाते हैं। जंगली औरत का पति अपने आप में एक अजूबा चीज़ है। उसने अनुभव किया था, जैसे उसके तमाम मित्र उसके घर सिर्फ इसलिए आते हैं, ताकि बिछिया को, उस जंगली औरत को देखकर, उसकी टकटकी का मजा लें, उसे घूरें। न जाने क्यों, उसे बिछिया में एक ऊबन-सी लगी। जब वह जंगल में था और बिछिया से उसकी पहली-पहली मुलाकात हुई थी, तब उसे उसकी यही बातें पसंद आयी थीं। उसकी चाल के साथ कूल्हों का हिलना और मुसकराहट ने उस पर भी नशा चढ़ाया था। एकटक देखते रहने का उसका तरीका और उसकी वह जंगली वेशभूषा, अल्हड़पन सभी कुछ भा गया था। बिछिया को पा लेने की उसकी इच्छा तीव्रतर होती चली गई थी। पर अब बिछिया की उन सभी आदतों से, जिन पर रीझकर उसने उसका साथ किया था, सुदेश को घृणा हो गई थी।

बिछिया की हंसी कभी रुकती ही नहीं। वह हंसने के लिए भी हंसती, गैर-जरूरत भी हंसती। सुदेश आफिस से लौटता तब बिछिया बोलती कम, हंसती ज्यादा। वह उसी तरह, जैसे जंगल में 'बाबू' कहा करती थी,'बाबू' कहती। सवाल करती —'चहा पियोगे ?''

बिछिया चाय बना लेती थी। सुदेश उत्तर नहीं देता था। वह मुसकराता भी नहीं था जबकि वह पहले इसके उत्तर में जोर से हंस देता था।

बिछिया कहती, "बाबू ! तुम्हारे लिए हमने 'चहा' बना के रखी है।" वह चाय का कप उसकी ओर बढ़ाती।

सुदेश कप लेता, प्याला होंठों तक ले जाता। 'थू ! फू !' मुह की सारी चाय थूक देता। गरजता—"ये चाय है ? ये तो काढ़ा है ! नीम का काढ़ा !'

बाबू गुस्सा होता है। बिछिया सुकचा जाती। पहले तो वह ऐसा कभी नहीं करता था। उसे अचरज होता। जंगल में सुन्दर बर्तन भी नहीं थे। इस पीतल की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पतीली की जगह अल्मूनियम के बड़े कटोरे में चाय बनती थी और कुल्हड़ में पी जाती थी, और यही बाबू कैसे रुच-रुचकर उस चाय को पीता था ? सोचते-सोचते बरसाती घटाओं की तरह मन भर आता। तब कुल्हड़ में चाय पीकर दो बार 'च्च् ! च्च् !' कर स्वाद प्रकट करता था। कहता था, 'बिछिया, तेरी ऐसी चाय मुझे सौ-सौ जनम मिले ! चाय क्या है, अमृत है अमृत ! और अब यही बाबू ...?' विचारती बिछिया, पर समझ कुछ न आता।

उसने पड़ोस की एक-दो शहरी महिलाओं से मित्रता गांठ ली थी, सो उनसे शहरी रीति-रिवाज सीख रही थी। उसने चाय बनाना, खाना बनाना, धोती पहनना, टिकी-बेंदी करना, बाल संवारना — सभी कुछ सीखा था।

जंगल से आयी थी तब कानों में चंदन के फूल थे। सुदेश ने एक दिन नापसंदगी जाहिर की। बोला—"ये अपना जंगल का फैशन छोड़ दे। सारे मुहल्ले में निराला बनाव-सिंगार करती है। जानवर कहीं की ! उतार दे ये गंदे फूल !'

बिछिया ने कुछ आश्चर्यपूर्वक उसे देखा। पहले तो कहता था, "तेरी बात ही और है।" उस दिन चांदनी रात में अपनी ड्यूटी छोड़कर जंगल में मिलने आया था। पास आकर देर तक खड़ा देखता रहा। ऐसे देखता रहा था, जैसे जनम से भूखा हो। मानो थोड़ी देर ऐसे ही चांदनी और रही, तो जीती ही निगल जाएगा ! उधर झाड़ियों में ले जाकर बोला था, 'तेरे कानों में ये मोटे-मोटे चंदन वाले फूल बहुत अच्छे लगते हैं।' उसने कसम उठाई थी, कहता था—'भगवान की सौगंध, बिछिया। तू बेहद सुन्दर है। इस जंगली सिंगार में कितनी भली लगती है तू ! तेरे कान के फूल ही नहीं, सारा बदन चंदन है।'

बिछिया बोली थी, 'हट् !' और उसने फिर सौगंध उठा ली थी। 'सच्ची ! तेरे फूल बड़े महकदार हैं।'

वही सुदेश कह रहा था—"उतार इन्हें ! फेंक दे ये काठ के टुकड़े।"

बिछिया दुखी हो गई। उसने उसी दम कानों से चंदनवाले फूल निकालकर एक आले में डाल दिए। समझ में नहीं आता था, बाबू को क्या हो गया जो पहले की सारी बातें बदल गईं। जिन बातों में मन देता था, उन्हीं से अब जी चुराने लगा है। बिछिया प्रयत्न करती कि वह उसे खुश रखे, पहले की तरह हंसे, उसके पास बैठे, प्यार करे; पर न जाने क्या बात थी कि उसके हर तरह का प्रयत्न करने पर भी वैसा न हो पाता था। इसके विपरीत सुदेश के स्वभाव में धीरे-धीरे बिछिया के प्रति उपेक्षा की भावना बढ़ती चली जा रही थी। बिछिया इस घृणा और उपेक्षा का अनुभव करती तो मन में भारी असंतोष उमड़ता, पर पी जाती। सुदेश काफी रात गए घर लौटता और बड़ी जल्दी चला जाता। छुट्टी के दिन भी अधिक देर घर न ठहरता और ठहरता भी तो इस तरह गुमसुम रहता कि बिछिया को उसकी मौजूदगी तक अनुभव न होती। लगता, जैसे घर खाली है,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और उसमें चारों तरफ एक मनहूसियत फैली हुई है ।

सुदेश के मन की कमजोरी भी बढ़ती चली जा रही थी । उसने इधर मिल-जुलकर शहर से छोटी जगह तबादला करवा लिया था । कई बार चाहा भी सुदेश ने कि बिछिया को उसके सब अधिकार दे, पर वह चाहकर भी वैसा न कर पाता ।

प्यार के लिए तरस गई बिछिया । सुदेश आता तो उसकी इच्छा होती, उसके पास पहुंचकर उसकी छाती के बाल नोंच ले ! उसे झिंझोड़कर चिल्लाए, पूछे—'तुझे क्या हो गया है, शहराती बाबू ! मुझे क्यों तरसा रहा है ? देख ! मैंने चन्दन के फूल कानों से निकालकर फेंक दिए हैं । मैं बाल संवारने लगी हूं । चाय बनाना भी मैंने सीख लिया है । मैंने पिंडलियां ढक ली हैं । मुझे शहरी बोलना आ गया है । नये पैसे गिन लेती हूं । वह सब कर सकती हूं जो तू चाहता है···' पर बिछिया कुछ न पूछ पाती । सोचती, खूब सोचती और सब पचा लेती ।

एक दिन सुदेश हमेशा की तरह जब देर से घर आया तो बिछिया का मन हुआ, उससे पूछे, 'शहराती बाबू ! उस दिन जंगल में तूने कहा था—तेरे पास से हटने को मन नहीं करता ! यों लगता है, जैसे तेरे पास ही बैठा रहूं ! पर अब तू···' पर बिछिया सोचकर रह गई । कुछ पूछ न सकी ।

उस दिन सुदेश अपने आफिस के किसी साथी को साथ ले आया । बिछिया ने चाय बनाई, तो शक्कर जरा ज्यादा हो गई ।

चाय पीते हुए सुदेश के मित्र ने पूछा, "तुम शक्कर बहुत ज्यादा लेते हो क्या ?"

सुदेश ने एक क्षण पास खड़ी बिछिया को इस तरह घूरा कि वहां खड़ी न रह सकी । दूसरे कमरे में चली गई । "जाहिल है साली ! गोंड जंगली है न ?" घृणा-पूर्ण स्वर में सुदेश बोला ।

भीतर कमरे में खड़ी बिछिया का मन भारी हो गया ।

"यह कौन है ?" सुदेश का मित्र प्रश्न कर रहा था ।

"एक जंगली औरत," सुदेश ने उससे नफरत-भरे स्वर में कहा, "मैं जिन दिनों मंडला-रेंज में था, इसे काम-काज के लिए रख लिया था ।"

"नौकरानी है ?"

"हां ।" सुदेश कह रहा था ।

बिछिया का कलेजा धक् से रह गया ।

"बड़ी मारू है यार !" वह पराया आदमी टिप्पणी कर रहा था, "तुम्हारी पसंद की दाद देता हूं, सुदेश बाबू ! उधर के रेंज में यही मजे हैं । मैं तो तीन साल से बड़े साहब के पास 'ड्राई' कर रहा हूं, कुछ होता ही नहीं !'

बिछिया की आंखें नम हो आयीं । यह पहला वक्त था जब भीतर की तमाम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उदासी उसकी आंखों से बह निकली।

"चलो" सुदेश की आवाज आयी, "किसी होटल में चाय पी लेंगे।" वे दोनों चले गए।

लगभग घंटे-भर बाद सुदेश लौटा। कमरे में बिछिया खड़ी हुई थी। सुदेश ने अचरज से उसे देखा। उसके कानों में वही चन्दन के फूल थे। उसकी पिंडलियां नंगी थी, उनके ऊपर वही अधूरी धोती लपेटी गई थी। वैसे ही सीधे-सपाट बाल बनाए गए थे। सुदेश एकटक देखता ही रह गया। वह अपनी पुरानी झोलदार चाल में उसके पास तक आयी। बिछिया की इच्छा थी, उससे कहे, 'देख ! मेरे कूल्हों में वही लोच है, बदन पर वही उतार-चढ़ाव, आंखों में उतना ही नशा, मैं अब भी चांदनी में भूख की चीज़ हूं। तेरी तरह कोई भी मर्द मुझे नोंच डालना चाहेगा। अभी कुछ भी तो नहीं बिगड़ा ? पर···' बिछिया ने ऐसा कुछ भी नहीं कहा। बोली—"शहरी बाबू ! एक और जगह नौकरी मिल गई है मुझे ! काम-काज में गलती हुई हो तो माफी देना !" बोलते-बोलते उसके स्वर में गदराहट आ गई। "घर की चीज़ें सम्हाल लेना।" कहकर बड़ी फुर्ती के साथ वह कमरे से—घर से बाहर निकल गई।

सुदेश की इच्छा थी, उसे रोके, किन्तु न जाने ऐसी कौन-सी चीज़ थी, जिसने उसे ऐसा करने से रोक दिया।

१९६२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक हल : सवाल से पहले

'इन्विटेशन कार्ड' के अनुसार सचदेव को ठीक सात बजे 'गेलॉर्ड होटल' में पहुंच जाना था। चौहान ने पार्टी अरेंज की थी। कार्ड भेजने के अलावा उसने फोन पर भी कह दिया था, "तुम्हें हर हालत में आना है।" सचदेव ने वायदा दिया था, "आऊंगा।" चौहान ने उसे याद दिलाया था, "खाली तुम नहीं, भाभी भी आयेंगी। मेहता, नायर, मुखर्जी— सभी अपनी बीवियों के साथ पहुंच रहे हैं। तुम्हें भी भाभी को साथ लाना पड़ेगा।" सचदेव इस बार जवाब देते-देते कुछ हिचकिचाया, तो चौहान ने उसे सोचने-निर्णय करने का भी मौका नहीं दिया था। वह बोला था, "कृष्णा भाभी जरूर आ रही हैं। तुम अगर अकेले आये, तो मुझे बहुत दुःख होगा।" सचदेव ने कहना चाहा था—"पर···" चौहान ने मौका नहीं दिया—"अच्छा, नमस्ते !" उसने फोन बन्द कर दिया था।

सचदेव ने बेबसी से दो बार 'हलो ! हलो !' किया और रिसीवर रख दिया। उसे खुद पर भी झल्लाहट हुई, चौहान पर भी क्रोध आया। जान-बूझकर चार लोगों में सचदेव की हंसी उड़वाना चाहता है। कृष्णा भाभी को लाना !··· क्यों लाना कृष्णा भाभी को ?···क्या इसलिए कि सभी लोग समझ लें, सचदेव की बीवी अनपढ़ है ?···निरी अनपढ़ !···पलंग और सोफा चेयर में फर्क करना नहीं जानती।···अब तक नये फैशन का कोई कपड़ा पहनना तो दरकिनार रहा, धोती भी शऊर से नहीं पहन सकती ! कई बार सचदेव ही उस पर झल्लाया है— "क्या धोती पहनी है तुमने ! आगे की तरफ पैर का अंगूठा छू रही, पीछे की तरफ टखनों से ऊपर चली गयी है ! मेरी समझ में नहीं आता, तुम्हें कैसे बदलूं !" और ऐसे हर मौके पर सचदेव ने देखा है, वह फूहड़ हंसी हंसकर धोती संवार लेती है।···और सचदेव लाचारी और खीजभरा जहरीला धुआं मन-ही-मन में घोंटकर चुप हो जाता है। महीनों से यही चल रहा है। वह बराबर एक ही ढंग से रहती है। ठीक वैसे ही, जैसे रहती आयी है। और सचदेव हमेशा उसे डांटता है—उसी तरह, जैसे पहले से अब तक डांटता आया है।

सचदेव ने दीवार पर टंगी घड़ी देखी। चार बजनेवाले हैं। कुछ मिनट और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काटकर उसे आफिस छोड़ देना है। अगर ठीक वक्त पर पार्टी में पहुंचना है, तो उसे यहां से चार बजे ही फुरसत पा लेनी होगी। घर जायेगा, कपड़े बदलेगा और फिर गेलॉर्ड पहुंचेगा। इतना बड़ा शहर। यहां आकर जिन्दगी टुकड़ों में बिखर जाती है। आफिस और मकान में ही मीलों का फर्क है। जरा-सी जरूरत पूरी करने के लिए आदमी मीलों में रास्ता तय करता है। यह सब न करे, तो घर की चहारदीवारी में बन्द हो जाये। और इस ख़याल के साथ ही बरबस सचदेव के दिमाग में एक बिन्दु फैलने लगा—घर !···सचदेव का जैसा घर है, उसे घर कहा जा सकता है ? घर के नाम पर अच्छा-खासा डेढ़ सौ रुपये का फ्लैट ले रखा है उसने, पर रहनेवाले अगर ढंग के न हों, तो डेढ़ हजार का बंगला होने से भी कोई फर्क नहीं पड़ता।

सचदेव ने जल्दी-जल्दी टेबुल पर फैली हुई फाइलें बटोरीं। फाउण्टेन पैन कोट की जेब में लगाया और डेस्क को कोने में सरकाकर, ड्राअर बन्द किया। चार बज रहे थे। कांटा चार के आंकड़े को पार करे इससे पूर्व ही वह कुर्सी से उठ पड़ा। कुछ मशीनी ढंग से इधर-उधर मुड़कर उसने अपने साथियों को देखा, आंखों ही आंखों से विदाई ली और 'लिफ्ट' से तीन मंजिलें पार कर नीचे आ गया। यह बड़ी इमारत पार करते समय वह खुद को बहुत हलका-हलका अनुभव कर रहा था। जब दरवाजे से बाहर आ गया, तब तो वह बिलकुल हलका हो गया। उसने एक गहरी श्वास खींची, लौटकर आफिस की कई मंजिली इमारत पर एक पथराई हुई-सी दृष्टि फेंकी और बस-स्टॉप की ओर बढ़ चला।

फुटपाथों पर जिन्दगी दौड़ रही थी—कभी मोटरों से मुकाबला करती हुई और कभी थके-हारे पैदल कदमों के साथ चलती हुई। सचदेव को कुछ अजूबा नहीं लगा। इस शहर में आये उसे दो साल से कुछ ज्यादा हुए जाते हैं, उसने रोज जीवन को इसी दौड़-धूप में देखा-भुगता है। शुरू-शुरू में उसे यह आपाधापी थोड़ी खली थी, पर धीरे-धीरे वह अभ्यस्त होने लगा था और अब यह सब इतना निश्चित और अनाकर्षक हो गया था उसके लिए कि वह बिलकुल प्रभावित नहीं हो पाता था।

बस-स्टॉप पर पहुंचा, तो वह बहुत खुश था। वह अकेला आदमी है जिसे यहां से बस पर चढ़ना है। आफिस खत्म न होने के कारण यह स्टॉप सूना है। शायद बस में भी काफी जगह मिल जायेगी। उसने एक बार पुनः नजर लौटाकर अपने आफिस की दैत्याकार इमारत देखी, उसके आस-पास खड़ी और दूर तक नजरों के पार चली गयी इमारतें भी उसने देखीं। इनमें हजारों आदमी-औरतें काम कर रहे हैं। अभी डेढ़ घंटे बाद आफिस छूटेंगे और हर फुटपाथ, सड़क, बस, स्कूटर, टैक्सी उनसे भरे हुए होंगे। कैसा अजीब-सा माहौल होता है उस वक्त ! शहर एक तूफान से घिर जाता है जैसे। लगता है, किसी जंगल में आग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लग गयी है और छोटे-बड़े जीव-जानवर चीखते-चिल्लाते यहां-वहां भाग रहे हैं। ऐसे हर समय सचदेव घबरा जाता है। उसे बस के लिए 'क्यू' में खड़ा होना पड़ता है और लाइन इस तरह सरकती है, जैसे अजगर सरक रहा हो।

बस आयी, तो हर ख़याल की लड़ी तोड़कर वह फुरती से उसके भीतर समा गया। कोने में एक सीट खाली पड़ी हुई थी। सचदेव लपककर उस पर जा बैठा। बस में सीट मिल जाना भी एक चान्स होता है। सचदेव ने चान्स ले लिया था। वह जेब से एक रुपया निकालकर चुपचाप अपनी सीट पर बैठा कंडक्टर का इंतजार करता रहा।

सामनेवाली सीट पर कोई जोड़ा बैठा हुआ था। एक बच्ची थी, जो नायलॉन की नीले रंग की फ्राक में ठीक किसी दुकान के शो-केस में खड़ी कागज की गुड़िया की तरह चुपचाप, खिड़की से सटी बाहर दौड़ते हुए शहर को देखे जा रही थी। सचदेव टकटकी बांधे उस जोड़े को देखता रहा। वे हंस-हंसकर एक-दूसरे से फुसफुसाहटों में बातें कर रहे थे। सचदेव के कानों में कुछ बोल पड़े।

'तो तुम 'प्रामिस' करते हो, कल आफिस से जल्दी आओगे ?'

'प्रामिस !' पुरुष जवाब देता है।

'वाकई ?' युवती सन्देह और अविश्वास में डूबी आंखें उसके चेहरे पर टिका देती है।

'कसम से !' पुरुष पुनः आश्वस्त करता है।

'याद रखना !···एक बार फिल्म का मूड बन जाये, तो न जाने पर बड़ी बोरियत होती है।'

'नहीं-नहीं ! ऐसा नहीं होगा।' पुरुष भरोसा दिलाता है। युवती खुश हो जाती है। वह पुरुष के शरीर से और सिमट जाती है और पुरुष जवाब में बच्ची को उठाकर गोद में जोर से भींच लेता है।

सचदेव को अच्छा लगा। कितने सुखी हैं ये लोग ! लड़की पढ़ी-लिखी लगती है। किस मिठास के साथ बात कर रही थी, जैसे जबान पर चाश्नी चढ़ा रखी हो और सोचते-सोचते वह दूर तक अन्दाज कर गया। शायद इन दोनों ने लव-मैरिज की होगी। कॉलेज में एक साथ पढ़ते रहे होंगे या फिर पड़ोसी रहे होंगे। लड़की के बोलने में कुछ पंजाबी टोन था और पुरुष जब बात करता था, तो लगता था, जैसे बंगाली लोकधुन में हिन्दी गीत सुना रहा है। सचदेव सोचता रहा था, और फिर एकाएक ही उसे खुद का ध्यान हो आया था। कितनी घिसी-पिटी और पुराने ढंग की जिन्दगी जी रहा है वह ! माता-पिता ने लड़की पसन्द कर ली थी। बिरादरी के दस-पांच आदमी जमा हुए थे और सचदेव के गले में कृष्णा बांध दी गयी। इस ख़याल के साथ ही वह मन-ही-मन विचित्र-सी बेचैनी से घिर गया। सिलसिले में उसने ढेरों बातें सोच डालीं। उसे याद आया, शादी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के बाद कृष्णा ने कुछ ही समय में उसकी जिन्दगी को अपनी ही तरह ढाल दिया था। उसे न सिनेमा का शौक है, न घूमने का। सचदेव ने कई बार उससे प्रस्ताव किया था, किसी दिन पिकनिक पर चला जाए। वह एक ट्रांजिस्टर भी खरीद लाया था। शहर से दूर पार्क के किसी एकान्त कोने में गपशप करेंगे। रोमांटिक बातें होंगी। सचदेव शरारती बातें कर कृष्णा को मीठी-मीठी चुटकियां लेगा और कृष्णा 'धुत् !···अरे···? छिः !···' कहकर रूठने का अभिनय करेगी। कितने मजेदार क्षण होंगे वे ! पर कृष्णा ने हर बार उसके प्रस्ताव को काट दिया। वह दिनभर घर में ही उलझी रहती थी। ठीक उसी तरह, जैसे अभी उलझी रहती है। सचदेव जैसे सोचते-सोचते अपने आप पर झल्लाने लगा, उसने कई जोड़े देखे हैं। रोज देखता है। सभी के पास वक्त होता है और वे जिन्दगी को जिन्दगी के अर्थों में जीते हैं और एक कृष्णा है। लगता है, शादी करने के बहाने सचदेव औरत नाम की एक मशीन ले आया है।

सचदेव ने सोचा, कृष्णा मशीन ही तो है। उसने खुद को और घर की तमाम जिन्दगी को मशीनी ढंग से जिया है। उसे याद है, शादी के बाद सुहागरात वाले दिन जब सचदेव उससे यहां-वहां की उखड़ी-उखड़ी अधूरी-सी बातें करता हुआ उसके रेशमी कपड़ों में लिपटे हुए शरीर के पास पहुंचा था, तो उसने बदन उसके हवाले कर दिया था। न कोई बोल, न कोई तड़प !···सचदेव ने उसे बाजुओं में लपेट लिया था और कृष्णा चुपचाप समर्पित हो गई थी। सचदेव ने उसे कसा था। बार-बार उसकी ठोढ़ी पकड़कर उसके चेहरे को अपने सामने किया था और कृष्णा हर बार आंखें मूंदे रही थी। उसने न कसन अनुभव की थी, न पीड़ा। सचदेव ने याद किया, तो घुटने लगा—मुर्दा कहीं की !···सचदेव को लगा था—कृष्णा का शरीर बेजान है !···ठंडा···ढीला ! न उसमें उमर का कोई जोश है, न जवानी की गर्मी ! सचदेव को याद है, उस दिन वह कृष्णा के शरीर से खेलता रहा था और कृष्णा ने किसी बार कोई विरोध नहीं किया था···और तो और, उसने सांसें तक बेआवाज उगली थीं। और सचदेव ने उस सारे समय में अनुभव किया था, जैसे वह एक बेजान खिलौने को मनचाही दिशा में हिलाता-झुलाता खेल रहा है। और उस दिन के बाद कई दिन यही होता रहा था··· इसी तरह ··बिलकुल एक मशीनी ढंग से। सचदेव रोज कृष्णा को बाजुओं में कस लेता, उसके गालों पर गर्म-गर्म होंठ रख देता और हर बार आंखें मूदकर कृष्णा शरीर का हर हिस्सा उसके आगोश में सौंप देती···ठीक एक खिलौने की तरह, जो सदा समर्पित होता है···निर्जीव ! सचदेव को यह कभी पसन्द नहीं आया। कृष्णा से हमेशा उसे ऐसा ही समर्पित सुख मिला है···वह तरसाना चाहता है !··· रूठना-मनाना चाहता है···विरोध चाहता है। इस ठंडे स्पर्श और सदा समर्पण के भाव में उसे आनन्द नहीं मिलता। लगता है, जैसे वह पत्नी नहीं, जेब में पैन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगाये हुए है···हर क्षण उसकी आज्ञा में चलनेवाला। उसके चाहे मुड़नेवाला। जैसे कृष्णा औरत नहीं, एक चादरा है। सचदेव जब, जिस ढंग से चाहे, मोड़-तोड़-कर उसे ओढ़ सकता है !···वह आगे भी बहुत कुछ सोचता, पर कंडक्टर उसके सामने आ खड़ा हुआ था।

···हूं ? उसने आंखों-ही-आंखों में सचदेव से सवाल किया। उसके हाथों में सधी पंचिंग मशीन कर्कश स्वर में सचदेव के चेहरे के नजदीक आकर चीखी।

"राजौरी गार्डन !···" सचदेव ने हाथ का नोट कण्डक्टर की ओर बढ़ा दिया।

मशीन पूर्ववत् किटकिटाती रही। कुछ देर बाद सचदेव के हाथों में टिकट और रेजगी आ गये। कंडक्टर आगे बढ़ गया।

कितने सुखी हैं ये लोग ! सचदेव की पुतलियां बस में चारों ओर आवारा-गर्दी करती हुई पुनः सामने बैठे जोड़े पर आ टिकीं। बच्ची पहले की तरह खिड़की के शीशे से चिपटी हुई बाहर देख रही थी और वे दोनों पहले जैसे ही मीठी-मीठी मुसकानों-सिहरनों का आदान-प्रदान करने में मशगूल थे। युवती हर बोल के साथ पुरुष की ओर इस तरह देखती थी, जैसे एक चेलेंज दे रही हो !··· यह चेलेंज ही तो एक जोश पैदा करता है मन में ! सचदेव ने सोचा। उसे कृष्णा की सूखी आंखों का ख़याल आया। किस बुझे ढंग से देखती है, जैसे सामने हर समय पतझर होता है। उदास, सूना और बेरौनक ! उसकी आंखें हर समय जैसे कुछ खोजती-सी रहती हैं और वह हमेशा कोरों पर कोई चिन्ता लपेटे रहती है।

सचदेव ने एक गहरी श्वास खींची और खिड़की के बाहर देखने लगा। कुछ जोड़े फुटपाथ पर चले जा रहे थे। सभी खुश और एक-दूसरे से गपशप करते हुए नये से नये फैशन के कपड़ों में लिपटे हुए। सिनेमा के पास मर्द-औरतों की भारी भीड़ थी। बस में बैठे हर बदलते हुए दृश्य को सचदेव ने आंखें भरकर देखा। कितनी ही बार मन होता है उसका कि कृष्णा को साथ लेकर वह भी इसी तरह घूमे, कनॉट प्लेस पर सिनेमा देखे, पर कभी कृष्णा का स्वभाव आड़े आ गया है और कभी उसकी जेब। और हमेशा वह एक घुटन पीकर रह गया है। कभी-कभी उसे लगता है, जैसे कृष्णा नहीं, उसका भाग्य ही टेढ़ा है।···भाग्य ? सचदेव ने सोचा—क्या सचमुच भाग्य नाम की कोई चीज़ होती है ?···नहीं-नहीं, ऐसा कुछ नहीं है। आदमी अपनी सारी कमजोरियां और असफलताएं भाग्य पर थोप देता है। पर खुद अनसुलझे प्रश्नों के घेरों से दूर भाग जाता है, कायर की तरह !

सचदेव ने कभी भाग्य के कायर मार्ग को नहीं पकड़ा। वह बराबर खिड़की से बाहर नजर गड़ाकर देखे गया। असल में उसके जीवन की सबसे बड़ी कमजोरी है कृष्णा। अनपढ़, फूहड़ और हर पुरानेपन में गिरफ्तार। जब-जब सचदेव ने जिन्दगी को उल्लासपूर्वक जीना चाहा है, ऊंचे लोगों तक पहुंचना चाहा है, एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शानदार और खूबसूरत घर की कल्पना तैयार की है, तब-तब कृष्णा का फूहड़पन और बदमिजाजी उसमें रुकावट बन गयी है।

इसी सिलसिले में सचदेव को याद आयीं कई घटनाएं। वे सब, जब कृष्णा रुकावट बन गयी थी। एक बार उसने सोफासेट खरीदना चाहा था। आसान किश्तों पर मिल रहा था। कृष्णा के सामने प्रस्ताव रखा, तो उसने न इनकार किया था, न स्वीकार। पूछा था, "धीरे-धीरे पैसा चुकेगा, तो कुछ ज्यादा कीमत देनी पड़ेगी न?"

"हां।" सचदेव बोला, "करीब सौ रुपये ज्यादा लगेंगे।"

कृष्णा की हमेशा बुझी रहनेवाली आंखों में उदासी और बढ़ गयी। उसने कहा, "अभी ऐसी जरूरत क्या है?"

"घर में कुछ ऐसा तो होना चाहिए, जिससे लगे कि घर है। बाहर से चार आदमी आ जायें, तो बैठने-उठने को ढंग की चेयर चाहिए!"

कृष्णा ने कोई जवाब नहीं दिया। जाहिर था, वह सचदेव की राय से सहमत नहीं है। और सचदेव चाहकर भी सोफासेट नहीं खरीद सका था। वह घर में अशान्ति नहीं चाहता। और भी कई बार ऐसा ही हुआ था। एक बार उसकी पगार बढ़ी, तो उसने घर आकर कृष्णा को खुशखबरी सुनाई थी और कृष्णा की आंखों में पैदा हुई चमक को देखते हुए प्रस्ताव कर दिया था, "आज तो गोल्डन नाइट होटल में चलकर खाना खाया जाये।"

फिर वही उदासी, कृष्णा ने वही पुराना तरीका अपनाया।···"तुम क्या खाओगे? मैं घर पर ही बनाये लेती हूं।"

सचदेव ने सुना। आज भी उसे ख़याल है, उस क्षण उसे लगा था, जैसे किसी ने उसके खूबसूरत सपने को घायल कर दिया है और उसकी हर आशा छटपटा रही है। वह कुछ नहीं बोला। न उसने यह बताया कि वह क्या खाना चाहता है और न ही दोबारा उसने 'गोल्डन नाइट' होटल में चलने का प्रस्ताव किया। कृष्णा ने दो-एक बार फिर उसे कुरेदा था—"क्या खाना चाहते तो?"···पर उत्तर में जब सचदेव ने अनमनेपन से कहा, "कुछ खास नहीं!" तो कृष्णा चुपचाप लौट गयी।

सचदेव मोटर में बैठे-बैठे ऊबने लगा। कितना लम्बा सफर होता है। पूरा एक घंटा लगता है घर से आफिस तक। लौटते में फिर एक घंटा खर्च करो। दिन ख़त्म हो गया। दो साल हो गए हैं इस शहर में रहते। रोज दिन इसी तरह ख़त्म हो गया है, छुट्टियां उसने घर में पड़े-पड़े काट दी हैं। या तो पड़ोस से कोई किताब मांगकर पढ़ता रहता है, या फिर निरुद्देश्य बाजार में चहलकदमी कर आता है। ढेरों चीज़ें दीखती हैं बाजार में, जिनसे अच्छा घर बन सकता है, अच्छी जिन्दगी जी जा सकती है, पर सचदेव सिर्फ सोच सका है। कभी कुछ ला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं सका। ऐसा नहीं है कि वह ला नहीं सकता, घर को संवार नहीं सकता, पर कृष्णा ?···वह तो जैसे जिन्दगी के हर खूबसूरत ख़याल की दुश्मन है। सारी पगार न जाने कैसे खर्च करती है कि महीने की हर बीस तारीख के बाद घर को रबर की तरह खींच-खींचकर चलाती है। सचदेव ने सोचा, तो फिर झल्लाहट में भर गया।

"राजौरी गार्डन !"···कण्डक्टर चीखा, तो सचदेव भीड़ चीरता हुआ बस से बाहर निकल आया। घर की ओर बढ़ते हुए वह फिर पुराने ख़यालों पर आ गया था। अभी घर पहुंचेगा ! कृष्णा की बुझी आंखें और उदास चेहरा स्वागत करेगा। यह स्वागत ऐसा होता है, जैसे काले झण्डे दिखाये जा रहे हों ! विरोध प्रकट किया जा रहा हो। अजीब औरत है ! सचदेव ने सोचा। उसे मुसकराना ही नहीं आता ! उसे याद है, पहले कृष्णा ऐसी नहीं थी। जब से इस शहर में आयी है, वह लगातार पहले से ज्यादा उबाने लगी है।

वह घर आ पहुंचा। कलाईघड़ी पर एक नजर डाली— पांच बज चुके थे। उसने पार्टी का टाइम याद किया। सात बजे पहुंचना है उसे। यहां से बस अगर वक्त पर मिल जाये तो साढ़े छः बजे तक निकला जा सकता है। बीस मिनट का रास्ता है।

वह फुर्तीले कदमों से भीतर कमरे में आ गया। कृष्णा सामने थी। सचदेव ने उसे देखा, फिर फौरन चेहरे से नजरें हटा लीं। रोज-रोज वह चिन्ता और कुण्ठाओं से घिरा चेहरा बर्दाश्त नहीं कर पाता। उसने फुर्ती से कपड़े उतारे। पैंट उतारकर खूंटी पर टांगी, पाजामा पहना, फिर चप्पलों में पैर डालकर बाथरूम की ओर बढ़ा···कृष्णा उसके पीछे-पीछे गयी।

"मुझे छः बजे बाहर जाना है—एक पार्टी में।" सचदेव ने अपरोक्ष रूप से चाय की फरमाइश की। फिर बाथरूम का दरवाजा बन्द कर लिया।

हाथ-मुंह धोकर जब तक वह वापस कमरे में आया, कृष्णा चाय बना लायी थी।

प्याले को होंठों से टिकाते हुए सचदेव का मन हुआ था, सामने खड़ी कृष्णा से पूछे—"तुम चलती हो ?"···पर उसने नहीं पूछा। वह जानता है, कृष्णा टाल देगी। ये टालना एक किस्म का इनकार ही होता है। कुछ दिनों से सचदेव खुद इस तरह के विषय टाल जाता है, जिनमें कृष्णा के स्वीकार या इनकार की आवश्यकता पड़े।

जल्दी से चाय की प्याली खाली कर सचदेव ने उसे कृष्णा की ओर बढ़ा दिया। सचदेव ने एक बार फिर कलाईघड़ी देखी— छः बजने में कुछ मिनट बाकी थे। उसने कपड़े बदलने शुरू कर दिए। कृष्णा कप लिये हुए अब भी वहीं खड़ी थी। सचदेव को उसकी मौजूदगी एक बोझ की तरह महसूस हुई। अनचाहे ही पूछ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिया उसने—'क्यों ? क्या बात है ?'

"कुछ नहीं," कृष्णा ने आदत के अनुसार एक उदास मुसकराहट चेहरे पर फैलाकर सचदेव के सवाल से अलग सवाल किया, "तुम कितने बजे तक लौट आओगे ?"

"यही कोई आठ-साढ़े आठ तक !" सचदेव जूते के फीते बांधते हुए बोला—"क्या बात है ?" उसने पूछा। शायद कृष्णा कुछ कहना चाहती है। कृष्णा चुप रही, तो एक बार फिर उसने पूछ लिया—"क्या बात है ?" वह चाहता था, कृष्णा कुछ कहे। कृष्णा कुछ चाहती है ? ये उसके लिए कम खुशी की बात नहीं है।

"कुछ नहीं।" कृष्णा कहते-कहते रुक गयी।

"कुछ तो ?" सचदेव फीते बांधकर उठ खड़ा हुआ।

"मैं ···" कृष्णा ने हिचकिचाते हुए कह दिया, "पड़ोसवाले मेहताजी की घरवाली 'अनसूइया' फिल्म देखने जा रही हैं। ···वह कह रही थीं, मैं भी चलूं··· तुम कहो तो देख आऊं ? पास ही है। ज्यादा दूर होती, तो जाना कठिन होता।"

सचदेव ने विस्मय से आंखें फैलाकर कृष्णा को देखा। वह अब भी पूर्ववत् बुझी आंखों से उसकी ओर देख रही थी। कैसी अनहोनी देख रहा है वह ? कृष्णा फिल्म देखेगी ?···भले अनसूइया ही क्यों न देख रही हो, पर फिल्म ?···सचदेव के लिए निश्चित रूप से हैरानी की बात थी। वह एकाएक कोई जवाब नहीं दे सका।

"मैं इनकार कर देती हूं उनसे।" कृष्णा को लगा, जैसे सचदेव को उसका प्रस्ताव पसन्द नहीं आया है। वह मुड़ने को हुई, तो सचदेव ने टोक दिया—"नहीं ! नहीं !···मैं कब इनकार कर रहा हूं, जरूर जाओ !"

कृष्णा रुक गयी।

सचदेव बोला—"मैं चाहता था, तुम मेरे साथ चलो ! कोई अच्छी फिल्म देखते। सोशल···!"

"मेहताजी की घरवाली कहती थीं, ये फिल्म भी बहुत अच्छी है। अपन फिर कभी साथ-साथ चले चलेंगे। मैं मेहताजी की घरवाली से किसी दिन 'पास' ले लूंगी। फिर !···अभी तो उनके 'पास' में एक आदमी की ही गुंजाइश है, तो मुझे ले जा रही हैं !"

"तो तुम 'फ्री-पास' पर देखने जा रही हो ?" सचदेव काफी देर बाद समझ सका, कृष्णा फिल्म क्यों देखने जा रही है।

"हां," कृष्णा बोली—"तो क्या फालतू खर्च करके देखने जाऊंगी ?" वह मुड़ी और जूठे कप-प्लेट लेकर भीतर चली गयी।

सचदेव ने एक गहरी श्वास खींची-छोड़ी। उसे कृष्णा पर दया भी आयी, क्रोध भी। वह बाहर निकल गया, तो पीछे से कृष्णा ने कहा, "ये तो

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. Gurukul Kangri University Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेते जाओ !"···सचदेव की हथेली पर उसने पांच रुपये का एक नोट ला रखा।

"इतने की क्या जरूरत है ?" सचदेव ने पूछा।

"जेब में पड़े रहते हैं, तो अच्छे रहते हैं।" कृष्णा ने जवाब दिया।

"इतने में तो अपन फिल्म देख सकते हैं।" सचदेव बोला, "तुम मेहता के यहां से 'फ्री-पास' न भी लो, तो चलेगा।"

"फिर तुम पार्टी में कैसे जा सकोगे ? कल आफिस जाते वक्त भी तो रुपया-दो रुपया लगेगा और तुम जानते ही हो, अभी पगार में छः दिन बाकी हैं।" कृष्णा उत्तर देते-देते कुछ हिचकी, "वह तो मेहताजी की घरवाली के यहां 'पास' आ गया, वर्ना मेरी हिम्मत तो 'सती अनसूइया' देखने की भी नहीं थी। तारीफ तो गये महीने से सुनती आ रही हूं।"

सचदेव अवाक् उसका चेहरा देखे गया, जिस पर कोई नयापन नहीं था। वही चिर-परिचित फीकापन···उदासी ··आंखों के इर्द-गिर्द बढ़ती जा रही कालिमा···

उसने चुपचाप पांच का नोट अंगुलियों में भींच लिया और कृष्णा की ओर से एक चोर की तरह नजर बचाता हुआ, फुर्ती के साथ बस-स्टॉप की ओर बढ़ गया।

१९६२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धरम की धरती

सेठ गोरधनदास ने जब मंदिर कमेटी को पक्का आश्वासन दे दिया तो उसके तीनों मुख्य सदस्य उठकर बाहर चले आए।

रिटायर्ड ओवरसियर खन्ना ने बाहर निकलते ही अपने दुचे कनस्तर से चेहरे पर उगी भारी-भारी मूछों में मुसकराकर लाला कीरतदास से कहा "मैं न कहता था कि सेठ धरम-पुन्न के काम में हम-तुम—सभी से सौ कदम आगे है। हम लोगों ने जरा ही बात उगली थी कि एकदम मान गया। भई, कुछ भी कहो, मैं तो ऐसे आदमी की चरणधूल माथे से लगा सकता हूं। भगवान ने लक्ष्मी दी है तो दिल भी दिया है। और ठीक भी है," वह कहता गया, "धनदौलत सिर पर रख-कर थोड़े ही ले जानी है! आदमी जो कुछ धरम-पुन्न करता है उसी के साथ जाता है।"

लाला कीरतदास कुछ कहने वाला था पर रामधन पुजारी बीच में ही बोल पड़ा। अपने गंजे सिर को खुजाते हुए, तिलक लगे माथे पर दो-चार सिकुड़नें पैदा कीं। फिर कहा, "भरोसा मुझे भी था। गोरधनदास का सुभाव ही ऐसा है। मैं तो अकसर उसके यहां कथा बांचने जाता हूं। जी भरके चढ़ोतरी करता है! मन लगाकर भगवान की लीला सुनता है। हर बार इस तरह भोजन परसादी कराता है कि आत्मा परसन्न हो जाती है।" बात पूरी करते-करते रामधन पुजारी ने होंठों पर यों जीभ फिराई जैसे पिछली तमाम सत्यनारायण कथाओं के न्योतों पर खाए पकवानों का स्वाद अब ले रहा हो।

लाला कीरतदास ने कहा, "सीधी-सी बात है, पंडितजी! आदमी की जेब में पूंजी हो तो देने-दिलाने, खाने-खिलाने का मन होता है पर जब कुछ हो ही नहीं तो क्या देना-लेना? राम-कृपा से गोरधन सेठ के पास पैसा है, सो दे देता है। न होता तो क्या देता?"

"यह मत कहो!" ओवरसियर खन्ना ने कीरतदास की ओर घूरकर देखा, फिर गुर्राकर बोला, "लालाजी! आदमी की जेब में लाख पड़े हों मगर देनेवाले का दिल ही दूसरा होता है। हर कोई यूं दान नहीं कर देता।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"तुम ठीक कहते हो, खन्ना साहब !" रामधन पुजारी ने कहा, "लोगों की तिजोरियां भरी हों मगर धरम की इच्छा न हो तो कोई फूटी कौड़ी भी नहीं देता। देने वालों के मन ही दूसरे होते हैं, कीरतदासजी !"

खन्ना से बात कहते-कहते एकाएक रामधन पुजारी लाला कीरतदास से प्रश्न कर बैठा, "गोरधन सेठ ने जो हिस्सा दान-पेटे हमें दिया है उसका उसे सात रुपया महीना किराया मिल रहा था मगर समाजहित देखा और पुत्र की भावना प्रबल हुई तो इस आमदनी पर भी लात मार दी ! और कोई होता तो ऐसा करता ?"

एक बार तो कीरतदास भी मान गया, रामधन ठीक ही कहता है—ऐसे लोग कम ही होते हैं जो अच्छी-भली आमदनी का जरिया तोड़कर समाजसेवा और धरमकरम में जुट जाएं। गोरधनदास ने सात रुपए माहवार की आमदनी पर लात मारकर वह जमीन, जिसमें फिलहाल एक विधवा रह रही थी, विष्णु के मंदिर के लिए दान कर दी थी।

सड़क का मोड़ आ गया तो ओवरसियर खन्ना ने अपने सहयोगियों से कहा, "मैं तो अब घर चलता हूं, भाई ! बाकी काम शाम को निबटा लेंगे।"

कीरतदास ने पूछा, "मगर गोरधन सेठ का संदेश भी तो उस विधवा के पास पहुंचाना है। जब तक वह मकान खाली नहीं करेगी, मंदिर का नक्शा कैसे बन सकता है ?"

खन्ना ठिठक गया, कीरतदास ठीक कह रहा था। जब तक वह मकान खाली नहीं हो जाता, मंदिर का नक्शा तैयार नहीं हो सकता था। उसने जाने का इरादा बदल दिया। बोला, "अच्छा, चलो, लगे हाथ यह काम भी निबटा लें।"

"चलो, चलो ! दूर ही कितना है !" रामधन गले में पड़ा राम-राम अंकित अंगोछा संभालते हुए आगे-आगे हो लिया। विष्णु मंदिर निर्माण कमेटी के सभी सदस्य सेठ गोरधनदास के उस मकान की किराएदारिन के पास मकान खाली करने का संदेश ले जा रहे थे, जो सेठ जी ने समिति को धरमखाते दान कर दिया था।

मुहल्ले के लगभग सभी मकान पक्के बने हुए थे, एकमात्र यही मकान कच्चा था। जब तीनों कच्चे मकान के नजदीक आने लगे तो रामधन पुजारी ने पास चल रहे लाला कीरतदास का कंधा दबाकर धीमे स्वर में कहा, "इस मंदिर के निर्माण से एक काम यह भी होगा, कीरतदास जी, कि आस-पड़ोस की शोभा बढ़जाएगी।"

कीरतदास पुजारी जी का मतलब नहीं समझा तो रामधन ने एक रहस्यपूर्ण मुसकराहट के साथ अपनी बात समझाई, "अपने मुहल्ले में सभी मकान पक्के हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिर्फ यही कच्ची और गंदी टपरिया है, जो ऐसी सुन्दरता में सफेद कोढ़ के दाग-जैसी घिनौनी लगती है।"

बात कीरतदास को भी जंची। हां में हां मिलाते हुए बोला, "भगवान जो करता है, ठीक ही तो करता है। मंदिर भी बन जाएगा और बदसूरती भी टल जाएगी।"

रामधन कुछ और भी कहना चाहता था किन्तु खन्ना ने उसका हाथ दबाकर चुप हो जाने का संकेत कर दिया। कच्ची झोंपड़ी नजदीक आ गई थी। उसमें रहनेवाली विधवा औरत बाहर बैठी जूठे बरतन रगड़ रही थी। ये तीनों उस के घर के ठीक सामने जाकर रुके थे लेकिन उसने कोई ध्यान नहीं दिया। वह पहले की ही तरह अपने काम में लगी रही।

ओवरसियर खन्ना ने अपनी आवाज में थोड़ी मिठास पैदा की, फिर कहा, "बाई ! ओ नारायणीबाई !"

उस कच्चे मकानवाली महिला ने, जिसका नाम नारायणीबाई ही था और जो अधेड़ उम्र की सांवली-सी उदास और परेशान औरत दीखती थी, सिर थोड़ा ऊंचा करके कुछ अचरज से उन्हें देखा। एकाएक कुछ बोल न सकी क्योंकि ये सभी व्यक्ति मुहल्ले के अत्यन्त सम्माननीय और बड़े लोग थे। नारायणी, जिसके चेहरे को इस बत्तीस-चौतीस साल की उम्र में ही परिस्थितियों ने प्रौढ़ावस्था से भर दिया था, सोच भी नहीं सकती थी कि इन बड़े लोगों को कभी उससे भी कोई काम हो सकता है, इसीलिए वह दो क्षण आश्चर्य से आंखें फाड़े उनकी ओर देखती रही।

रामधन पुजारी ने नारायणी की कशमकश भांप ली। किस में दान का कितना माद्दा है, यह वह पिछले कई सालों से परखना जानता था। नारायणी का मन समझते देर न लगी। बोला, "बाई ! हम लोग तो तुम्हीं से एक प्रार्थना करना चाहते हैं।"

नारायणी को अब भी भरोसा नहीं हुआ कि वे लोग उससे कुछ कहना चाहते हैं और उसी के पास आए हैं। ऐसी कौन-सी बात हो सकती थी, जिसका संबंध उससे होता और जिसके लिए इन्हें उसके पास आना पड़ता ! नहीं, उसने गलत सुना।

वह चुपचाप काम करती रही लेकिन जब उसने देखा कि काफी देर हो जाने के बाद भी वे लोग वहीं खड़े हैं तो वह अपनी धोती के पल्लू से गीले हाथ पोंछती हुई उनके सामने जा खड़ी हुई।

खन्ना ने अपनी आवाज फिर मीठी बनाई, "हमें सेठ गोरधनदास जी ने भेजा है।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वागत करती हुई नारायणी आगे-आगे चली। तेजी से आगे बढ़कर उसने अपनी कच्ची दीवार से टिकी हुई टूटी चारपाई उठाकर सामने वाले मैदान में डाल दी। "बैठो, मालिक !" उसने कहा।

खन्ना बैठने को हुआ तो रामधन ने फुसफुसाकर उसे झिड़क दिया, "क्या करते हो, यार ! कितनी गंदी खटिया है ! राम जाने कैसे-कैसे रोग समाए होंगे ! खड़े रहो।" फिर नारायणी की ओर मुड़कर ऊंची आवाज में कहा, "हम खड़े ही ठीक हैं, बाई ! दो मिनट की ही बात है।"

उसने खन्ना की ओर देखते हुए फुसफुसाकर कहा, "तुम बात शुरू करो।"

"तुम्हीं शुरू करो, पुजारी !" उसी तरह दबे-मुंदे स्वर में खन्ना बोला, "मुझे हिंदी ठीक तरह से नहीं आती।"

"मैं तो इस महीने का किराया खुद दे आयी थी, हुजूर !" नारायणी को अचरज था कि क्या संदेश हो सकता था क्योंकि किराया तो उसने मकान मालिक के पास नियमित रूप से पहुंचा ही दिया था और लाला गोरधनदास और उसके बीच किराए को छोड़कर संबंध ही क्या था ?

"यह बात नहीं, बाई !" रामधन ने बात शुरू की।

"हम तो दूसरे ही काम से आए हैं।" खन्ना बोला।

"सारे मुहल्ले की तरफ से एक मंदिर बनवाने का विचार है।" लाला कीरतदास ने कहा।

नारायणी कुछ कहती पर रामधन बात को यों छीन ले गया जैसे फुटबाल का कोई तेज खिलाड़ी दूसरे दल के खिलाड़ी से गेंद आगे ले निकले। उसने कहा, "तुम्हारे घर के पास वाली जो धरती है न, वह धरमखाते की धरती है। सारेमुहल्ले वालों ने यही सोचा है कि यहां पर विष्णुजी का मंदिर बनवा दिया जाए।"

नारायणी को हर्ष हुआ कि उसके घर के बिलकुल बगल में मंदिर बनेगा। सोते-जागते भगवान का ध्यान रहेगा, रामनाम सुनाई पड़ेगा।

हंसकर बोली, "जे तो बहुत अच्छा विचार है, महाराज ! इससे पुन्न मिलेगा।"

"यही तो हम सोचते हैं, बाई !" खन्ना ने एक रहस्यपूर्ण दृष्टि से रामधन को देखा। फिर बोला, "पर क्या करें, धरती कम पड़ गई है। इतनी जमीन में तो मढ़ैया ही बन सकती है। मंदिर के लिए तो ज्यादा जगह चाहिए ! क्यों, खन्ना साहब ?"

नारायणी ने मुड़कर जमीन की ओर देखा जैसे जगह का हिसाब कर रही हो।

खन्ना ने रामधन की हां में हां मिलाई, "हां, जगह कम है।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रामधन ने जब देखा कि बात किनारे पर आ गई है तो बोला, "इसीलिए सेठ गोरधनदास जी ने तुम्हारा टपरा भी धरमखाते में मंदिर कमेटी को दान कर दिया है। अब तुम कहीं दूसरी जगह बंदोबस्त कर लो, नारायणीबाई, ताकि अगले महीने से ही मंदिर के निर्माण का लग्गा लग जाए।"

नारायणी को जैसे आसमान से धकेल दिया किसी ने ! घबराकर बोली, "मगर, महाराज···!"

रामधन ने उसे बात करने का मौका ही नहीं दिया। उसी तरह कहता गया, "इसमें, बाई, अगर-मगर मत करो, अब तुम्हारे घर की धरती धरम की धरती है, पुन्न का काम है, इसमें अपने स्वारथ को मत धंसाओ !"

"मगर, महाराज, इस मकान में सालों से रह रही हूं ! एक जुग बीत गया, हुजूर !" नारायणी लगभग गिड़गिड़ाते हुए बोली, "ऐसे कैसे घर छोड़ दूं, मालिक ? मुझ बेवा को और कहां जगह मिलेगी ? थोड़ी-बहुत उमर बची है सो अपनी छत्तर-छाया में गुजर जाने दें।"

खन्ना ने रामधन के चेहरे की ओर देखा और फिर उन दोनों ने कीरतदास की ओर। तीनों ने आंखों में एक निश्चय किया।

नारायणी उसी तरह गिड़गिड़ाती जा रही थी, "अब आप ही सोचें, मालिक, मुझ गरीबन को और कहां सिर छिपाने की जगह मिलेगी ? आप लोग चाहो तो सब कुछ हो सकता है, मालिक। मुझे यहीं पड़ी रहने दो।"

खन्ना ने अपनी लाचारी बताई, "हम क्या कर सकते हैं, बहन ! हम तो मंदिर कमेटी के लोग हैं। मदद मांगने गोरधनदास जी के पास गए थे तो उन्होंने तुम्हारी वाली धरती ही मंदिर-पेटे दान कर दी !"

नारायणी हाथ जोड़े खड़ी थी।

कीरतदास ने नाटकीयता के साथ कहा, "हाथ-वाथ मत जोड़ो। मेरा मन दुखी हो जाता है। मेरे स्वारथ की बात होती तो मैं परवाह नहीं करता पर यह धरम का काम है। इसमें मैं कुछ नहीं कर सकता। गोरधन सेठ धरती दान कर चुका है। अब मंदिरखाते तुम्हें भी इसे छोड़ देना चाहिए।" फिर थोड़े कड़े स्वर में उस ने नारायणी को चेतावनी दी, "पुन्न के काम में आड़े आना ठीक नहीं, नारायणी बाई, परलोक का ख़याल करो !"

रामधन पुजारी ने पाप-पुण्य और लोक-परलोक पर नारायणी को एक छोटा-सा प्रवचन दे दिया। उसने कहा, "देख, बाई ! तू इस धरती पर रह रही थी, हमे काटती थोड़े ही थी ! मगर अब यह धर्म का काम है सो यहां आए हैं।"

बात करते-करते थूक निगलकर कहे गया, "परलोक का ध्यान किसे नहीं होता ? गरीब हो या अमीर, तू हो या मैं—सभी को अपनी चिंता है। हम यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काम निस्वार्थ कर रहे हैं। इसमें हमारा इतना ही स्वार्थ है कि हमारा परलोक सुधरे। तुझे भी अपने परलोक का ख़याल होगा ? हमारी माने तो इस परोपकार के काम में आगे आ और धरम की धरती मंदिर के नाम पर बिना किसी झगड़े-टंटे के छोड़ दे। इससे तेरा नाम भी होगा और सुरग में जगह भी बनेगी।"

नारायणी ने फिर प्रयत्न किया, "मगर, पंडित जी···"

रामधन, खन्ना और लालाजी कोई बात सुनने को तैयार नहीं थे। खन्ना ने जरा रूखेपन के साथ कह दिया, "तुझे खबर देनी थी सो द दी। अब तू जाने तेरा काम जाने···।" और इससे पूर्व नारायणी कुछ कहे, सब वापस हो लिये।

नारायणी ने साफ-साफ सुना, वे बातचीत करते जा रहे थे, "कमीन औरत है ! धरम के कारज में आड़े आ रही है ! इसके कीड़े पड़ेंगे···"

नारायणी कुछ क्षण चुपचाप खड़ी रही, फिर उसने जल्दी-जल्दी अपना काम निबटाया और सेठ गोरधनदास के यहां पहुंची। सेठ जी पूजा से निबटकर बैठक में आए ही थे कि नारायणी हाथ बांधे सामने जा खड़ी हुई। गोरधनदास पहली ही दृष्टि में समझ गए, नारायणी क्यों आयी है। फिर भी उन्होंने पूछा, "क्या बात है, नारायणी ?"

नारायणी ने बात शुरू की, "आप तो जानते ही हैं, मैं उस धरती पर बीसियों साल से रह रही हूं। इस मंहगाई के बखत में कहां जाऊंगी ? मुझसे कोई भूल तो नहीं हुई, मालिक ?"

"अच्छा, तो तू मकान के बाबत आयी है ?" सब कुछ जानते-बूझते भी सेठ गोरधनदास ने अनजान बनने का प्रयत्न करते हुए कहा, "मंदिर कमेटी वाले पहुंचे होंगे तेरे पास ?" फिर एक गहरा सांस खींचकर बताया, "वह धरती तो मैंने मंदिर के लिए दान कर दी, नारायणी ! अब तो तुझे कहीं और ही ठिकाना ढूंढना पड़ेगा ! दान-धरम के मामले में मुझसे मना नहीं किया जाता।"

नारायणी उसी तरह प्रार्थना करती रही। कहने लगी, 'सेठजी ! धरम के लिए कौन नाहीं करता है ! मगर मुझ गरीबनी का कुछ तो ख़याल करो। इतने बड़े शहर में कहां मकान मिलेगा ? और अगर मिल भी गया तो फिर उतना किराया मैं कहां से दे पाऊंगी ?"

गोरधनदास ने नारायणी की मौजूदगी से सोफे की मखमली गद्दी पर भी खुरदरापन अनुभव किया। कुछ रूखे-से-स्वर में बोले, "मैं अब कुछ नहीं कर सकता, नारायणी ! धरती दान कर चुका हूं और तू ही सोच, दान दी चीज़ कभी वापस ली जा सकती है ? अब तो तू जगह खाली कर ही दे।"

नारायणी और भी प्रार्थना करती किंतु इसी बीच भीतर से सेठानी जी का संदेश आया कि सेठ पूरनमल जी के यहां कथा में जाना है। गोरधनदास उठे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक बार फिर उन्होंने नारायणी को धरम की धरती खाली कर देने का सुझाव दिया और चले गए।

लाचार नारायणी लौट आयी।

तीसरे दिन सवेरे ही सवेरे मंदिर कमेटी के सदस्य गोरधनदास के यहां पहुंचे। आज दान की कार्रवाई होने वाली थी इसलिए सभी सदस्य उतावले थे।

गोरधनदास भीतर वाले कमरे से बाहर बैठक में आए तो नमस्कार वगैरह की औपचारिक क्रिया के बाद खन्ना ने जानकारी दी, "सेठ जी ! सब काम हो गया है। कल शाम नारायणी ने भी अपना सारा सामान उठाकर पास वाले फुटपाथ पर रख लिया है। अब जल्दी से मंदिर का निर्माण शुरू करा दिया जाए।"

रामधन ने एतराज किया, "अभी कहां से निर्माण शुरू होगा? जरा नक्शा तो बनवा लें।"

"नक्शे का इन्तजाम हो गया है," लाला कीरतदास ने बताया, "अपना भतीजा कारपोरेशन में नक्शानवीस है। मैंने उसे जगह दिखाई थी, आज शाम तक नक्शा भी आ जाएगा।"

"ऐसे कैसे निर्माण प्रारंभ होगा?" खन्ना ने कीरतदास की बात से कुछ चिढ़कर कहा, "वाह ! यह तो ठीक है कि नक्शा आ जाएगा लेकिन उस नक्शे के लिए अपन सबकी रजामंदी होनी चाहिए।" फिर बड़े खुशामदी लहजे में सेठ गोरधनदास की ओर संकेत करके बात पूरी की, "सेठ जी की पसंद भी तो होनी चाहिए।"

कीरतदास कटकर रह गया जैसे भारी भूल की हो उसने। लजाकर बोला, "सो तो है ही, सो तो है ही, सेठ जी को बिना बताए नक्शे पर काम थोड़े ही होगा।"

"सब आपकी कृपा है जो आप मुझे इतना मानते हैं, मगर···" गरदन खुजलाते हुए गोरधनदास काफी शरातपूर्ण ढंग से बोले, "बड़ी उलझन में पड़ गया हूं, कुछ समझ में नहीं आता कि क्या करूं, क्या न करूं?"

"क्यों?" खन्ना ने अचरज से प्रश्न किया। लाला कीरतदास और रामधन पुजारी ने भी चेहरे पर यही भाव प्रकट किए।

"अजी, बड़ी ओछी बात है," सेठ गोरधनदास ने कहा, "कल हमारे साले साहब आ गए हैं यहां। उन्हें यह धरती बहुत पसंद आ गई। कहते हैं, 'वहां तो एक जोरदार अंगरेजी होटल बनाया जाए, जिसमें अंगरेजी नाच-गाने का भी प्रबंध रहे।"

खन्ना, कीरतदास और रामधन आश्चर्य से एक-दूसरे के चेहरे देख रहे थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"अब आप ही बताइए, कैसे मना किया जाए?" गोरधनदास बोले, "सगे साले हैं। कोई दूर का नाता रहा होता तो टालमटोल की भी जा सकती थी।"

गोरधनदास फिर बोले, "आप लोग मुझे क्षमा कर दें। वह जगह अब मैं नहीं दे सकता।"

"मगर फिर मंदिर कैसे बनेगा, सेठ जी?" लाला कीरतदास ने प्रश्न किया।

"क्यों नहीं बनेगा?" गोरधनदास ने उसी तरह कहा, "अगर बाकी धरती मंदिर के लिए कम पड़ती है तो मैं मदद करने के लिए हाजिर हूं।" उन्होंने व्यावारिक ढंग से सुझाव रखा, "बाकी धरती भी मैं लेने को तैयार हूं। थोड़ी-बहुत नकदी दान कर दूंगा। आप लोगों को थोड़ी तकलीफ तो होगी मगर जैसे ही जमीन मिल जाए, खरीद लीजिएगा।"

खन्ना ने बाएं पैर के अंगूठे से जमीन कुरेदते हुए कीरतदास की ओर देखा और फिर दोनों ने रामधन पुजारी की ओर। बाद में तीनों ने एकमत होकर सेठ गोरधनदास का सुझाव मान लिया।

जलपान के पश्चात तीनों उठे। बारी-बारी से गोरधनदास को नमस्कार किया और बाहर चले आए।

१९६२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक कांटा

काफी सोच-विचार के बाद मिस्टर वर्मा ने कांटा जड़ से निकाल देने का निश्चय कर लिया था। गए हफ्ते लड़के की पहली सालगिरह मनाकर यद्यपि मिस्टर वर्मा बेहद खुश हुए थे, फिर भी मन में एक कांटा था, जो चुभ रहा था। कुछ दिनों से तो यह चुभन बेहद बढ़ गई थी। और अब स्थिति यहां तक पहुंच गई थी कि रह-रहकर दर्द उठने के बजाय यह दर्द लगातार रहने लगा था। वे ऊपर से बहुत स्वस्थ थे। न तो उनके शरीर को कोई कष्ट था, न ही चेहरे पर कोई शिकन, फिर भी यह कांटा कुछ इस तरह गड़ गया कि वे स्वस्थ होते हुए भी स्वयं को बहुत कमजोर और बीमार अनुभव करने लगे। हर श्वास के साथ उन्हें तकलीफ होने लगी और हर विचार में पीड़ा। अंत में इस कष्ट ने उन्हें कांटा निकाल फेंकने को बाध्य कर दिया।

यों तो मिस्टर वर्मा की तमाम जिन्दगी ही कांटों का लम्बा-चौड़ा इतिहास थी। वे विवाह के एक वर्ष बाद से ही एक कांटे की चुभन बर्दाश्त करते रहे थे। हर वर्ष इसकी चुभन बढ़ती गई थी और अब जब शादी हुए पूरे उन्नीस साल गुजर गए थे तथा मिस्टर वर्मा जवानी की रंगीन इमारत खाली कर वृद्धावस्था की पुरानी इमारत में आ गए थे। प्रौढ़ावस्था एक अवस्था है, जो जवानी के बाद आती है, पर हिन्दुस्तान में अकसर आदमी जवानी के तत्काल बाद उस अवस्था को लांघकर सीधा वृद्धावस्था ही पाता है। तब एकाएक ही सालों पुराना कांटा निकल गया था। वर्मा दम्पति की युगों पुरानी साध पूरी हो गई थी। पिछले वर्ष ही उनके एक लड़का पैदा हुआ था और इस वर्ष जब वर्मा दम्पति ने परम्परानुसार अपनी शादी की बीसवीं वर्षगांठ मनाई तब इसी के साथ बच्चे की पहली वर्षगांठ का भी आयोजन किया। वैसे बच्चा उनकी शादी वाले दिन से पूरे दो हफ्ते पहले हुआ था, पर मिस्टर वर्मा ने उसकी वर्षगांठ दो हफ्ते विलम्ब से, शादी की वर्षगांठ पर ही रखी।

डबल वर्षगांठों के इस एकल कार्यक्रम में ऐसी रौनक हुई, जो पहले बीस सालों में कभी नहीं हुई थी। पिछले वर्षों की अपेक्षा इस वर्ष आमंत्रित मेहमान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधिक रहे सो रहे, साथ ही मिठाइयां दुगुनी हो गईं और चाय का दौर तीन बार हुआ। श्रीमती खन्ना ने विशेष रूप से पंजाबी बन्ना सुनाया और मुलजी भाई देसाई की तीनों लड़कियों ने गरबा नृत्य प्रस्तुत किया। यों श्रीमती वर्मा को सिनेमा के गीत विशेष पसन्द नहीं थे, पर इस दिन उन्होंने खासतौर से अपना मनपसन्द गीत 'तेरी महफिल में रतजगा है' सुनाया। मिस्टर वर्मा गम्भीर स्वभाव के आदमी थे, पर मित्रों की भीड़ में वे भी हल्के चुटकुले सुनने-सुनाने का लोभ संवरण न कर सके। गरज यह कि इस वर्षगांठ में ऐसे कार्यक्रम हुए जो पिछले बीस वर्षों में कभी नहीं हुए थे। सारी रात कहकहों और मुसकराहटों के बीच गुजरी। मिस्टर वर्मा के बूढ़े बदन में भी जवानी फूट निकली थी और वे महसूस कर रहे थे जैसे इस कदर उमंगें और कसमसाहट उन्होंने कभी जवानी में भी अनुभव नहीं की थीं। पर, भाग्य की बात, मिस्टर वर्मा शायद पैदा ही इसलिए हुए हैं कि कांटों से उनका संग रहे। इस जिन्दादिल पार्टी के समाप्त होते-न-होते एक ऐसा कांटा मिस्टर वर्मा के सीने में जा गड़ा कि यह खुशियों वाली पार्टी उन्हें एक श्मशान की तरह बीभत्स और उदास लगने लगी। वे स्वयं को इस चुभन में इतना बूढ़ा और बीमार अनुभव करने लगे जितने बुढ़ापे की उन्होंने कभी कल्पना भी न की थी।

इस पार्टी के दिन की ही बात है। चौतरफा खुशियों की मुसकराहटें और मस्ती के फूल झर रहे थे। मेहमानों का तांता लगा हुआ था। श्रीमती भवनानी और श्रीमती वर्मा की मित्रता दोनों की शादी से पहले की थी। तब की, जब वे दोनों कॉलेज में एक साथ पढ़ा करती थीं। और साथ-साथ कॉलेज के लड़कों के फिकरों के मजे लिया करती थीं। इस पार्टी में वे भी शरीक हुईं। अन्तर इतना-भर था कि मिसेज वर्मा अपने एकमात्र लड़के की पहली सालगिरह और शादी की बीसवीं वर्षगांठ मना रही थीं, जबकि मिसेज भवनानी अपनी शादी के इस बीसवें साल में बारहवें लड़के की पहली सालगिरह का निमंत्रण-कार्ड लेकर देने आयी थीं।

मिसेज भवनानी ने अपने स्थूलकाय शरीर को मिस्टर वर्मा और मिसेज वर्मा के बीच एक दीवार सदृश अड़ा दिया तथा थोड़ा नीचे झुककर सुनहरी पन्नों में लिपटे हुए बिस्कुटों के पैकिट श्रीमती वर्मा के हाथ में दिए। "मुन्ना कहां है?" कहकर एक सवाल किया और फिर पास ही पालने में लेटे बच्चे के दोनों गालों पर हल्की-सी दो चपतें कसकर प्च् ··प्च् ··किया। बाद में एक मुसकान के साथ कहा—"लवली ! लवली !!"

श्री और श्रीमती वर्मा दोनों ने एक-दूसरे की ओर गौर से देखा, जैसे श्रीमती भवनानी बच्चे की नहीं, उन दोनों की ही तारीफ कर रही थीं।

श्रीमती भवनानी पालने के पास से मुड़ीं। बोलीं—"इसका चेहरा आप दोनों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से मेल नहीं खाता···।" बीच में ही बात तोड़कर वे अपने स्थूलकाय शरीर के अनुरूप एक हंसी हंसीं, "मिसेज वर्मा !" सचमुच यह कितनी अजीब बात है कि आपके बच्चे का चेहरा आप दोनों में से किसी से मेल नहीं खाता।"

श्री वर्मा और श्रीमती वर्मा की हंसी फूट पड़ी ।

श्रीमती भवनानी ने मुड़कर बच्चे के गाल पर दोबारा प्यार भरी थपकी दी। एक मुसकान के साथ कहा--"क्या संयोग है कि बच्चा नाक-नक्श में मां-बाप किसी से मेल नहीं खाता। घर के नौकर से टकराता है।" उन्होंने पास खड़ी एक अन्य महिला को पालने के पास खींचकर बच्चा दिखाया—"देखिए, श्रीमती खन्ना ! जरा गौर से देखिए। इसके चेहरे का हर कोना हरीराम से मिलता है कि नहीं ?"

श्रीमती वर्मा के चेहरे का रंग उड़ गया— इस तरह, जैसे कुछ देर पहले धरती पर फैला पेट्रोल ।

श्रीमती खन्ना ने बच्चे का चेहरा गौर से देखा। लगता था, हरीराम हंस रहा है। उन्होंने फौरन श्रीमती भवनानी का समर्थन किया—"लगता है, बच्चे पर नौकर की छाया पड़ गई।"

श्रीमती भवनानी इस तरह हंसीं, जैसे फटी ढोलक को किसी बच्चे ने थपथपा दिया हो। "देखिए न ! इसकी आंखें, नाक, होंठों की मोटाई, और तो और··· रंग—सब कुछ वर्मा साहब के नौकर से मिलता है।"

एक कांटा गड़ गया मिस्टर वर्मा के सीने में। लगा, जैसे किसी ने सरे बाजार खींचकर तमाचा मारा हो। बच्चे का चेहरा न उनसे मेल खाता है, न उनकी मिसेज से··· उसका चेहरा उनके नौकर हरीराम से मिलता है···क्यों मिलता है ? मिस्टर वर्मा का सिर झनझनाने लगा।

श्रीमती भवनानी देर तक बातें करती रहीं। पार्टी में रह-रहकर हंसी के ठहाके गूंजते रहे। गीत चलते गए। न जाने कितने लोग बधाइयां दे-ले गए। पर मिस्टर वर्मा का कोई शोर न सुनाई पड़ा। केवल एक शोर था, जिसे वे सुन पा रहे थे। उनके बच्चे का चेहरा न तो उनसे मेल खाता है, न उनकी पत्नी से···। उसका चेहरा हरीराम से मेल खाता है—उनके नौकर से !

इस घटना के बाद वे बहुत अशांत रहे थे। न तो उन्हें इन आठ दिनों में ढंग से नींद ही आयी थी, और न चैन से वे किसी मसले पर विचार ही कर सके थे। उन्हें हर सवाल से आगे एक सवाल खड़ा लगता था। बच्चे की नाक, आंख, कान···यहां तक कि रंग, सभी कुछ तो हरीराम से मेल खाता। उत्तेजना की स्थिति यहां तक पहुंची थी कि इन आठ दिनों में वे कई बार बच्चे के पास जाकर खड़े देर तक उसका चेहरा देखते रहते थे। वे उसे देखते, समझने की चेष्टा करते। श्रीमती भवनानी ने किस हद तक ठीक कहा था ? उन्हें लगता, जैसे बच्चा हर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोण से हरीराम से मिल रहा है। उसकी आंखें, नाक, कान, चेहरा-मोहरा—सभी कुछ तो हरीराम से मिल रहा है।

एक बार बच्चा उनकी ओर मुसकरा दिया तो सीने में गड़ा कांटा जोर से चुभकर एक कसक पैदा कर गया था। उन्हें लगा था, जैसे बच्चे के चेहरे के पीछे हरीराम का चेहरा है। वह हंस रहा है। तभी बच्चा चीखकर हंस दिया था, और मिस्टर वर्मा को यों अनुभव हुआ था, जैसे वह बच्चा नहीं श्रीमती भवनानी हंस रही हों। और श्रीमती भवनानी क्यों न हंसतीं? इस बच्चे का चेहरा न तो मिस्टर वर्मा से मिलता है, न श्रीमती वर्मा से।

आठ दिनों की लगातार मानसिक ऊहापोह के बाद मिस्टर वर्मा ने एक निर्णय लिया था। यह निर्णय उन्हें जल्दी ही कार्यान्वित करना था, क्योंकि कल ही उनके बहन-बहनोई आने वाले थे। और, वे जब बच्चे को देखते तो क्या कहते···? शायद यही कि इस बच्चे का चेहरा···!

दूसरे दिन ऑफिस से लौटते ही उन्होंने हरीराम को बुलाया। पूछा—"तुम भोजपुर के हो न?"

"जी, हजूर!" हरीराम ने बहुत घबराकर कहा। उसे मालिक का इस तरह एकाएकी सवाल काफी अटपटा लगा था।

मिस्टर वर्मा गम्भीर रहे। कुछ समय वे सोचते रहे, फिर जेब से सौ का एक नोट निकालकर हरीराम को देते हुए बोले—"भोजपुर तो रात को गाड़ी जाती है न?"

"जी, हजूर!" असमंजस में पड़े हरीराम ने उत्तर दिया। "बड़ी लाइन का 'इसटेशन' है सा'ब। इसपरेश भी जाता होगा।"

'हूं।' मिस्टर वर्मा ने कहा—"रात तक तुम आराम से अपना सामान बांध सकते हो।"

रुपए हाथ में लिये खड़ा हरीराम बेहद घबराया। मालिक का यह व्यवहार उसकी समझ में नहीं आ रहा था। इससे पहले उसने अपने मालिक को ऐसी उलझी-उलझी बातें करते नहीं सुना था।—"कहां जाना है सा'ब?"

"भोजपुर!" मिस्टर वर्मा ने फौरन बताया। उन्होंने नोटों की ओर संकेत किया। "ये तुम्हारी दो महीने की पगार है।" कुछ रुककर वे बोले—"तुमने हमारी बहुत सेवा की है, हरीराम। पर अब नौकर रखने का हमारा बूता नहीं।···" बोलते-बोलते, वे फिर अटके, "इसीलिए तुम्हारे-जैसा आदमी हमें छोड़ना पड़ रहा है। तुम तो जानते ही हो, महंगाई कितनी बढ़ गई है? अब तो यही चारा है कि हर काम हाथ से करें। बुरा मत मानना, हमारी लाचारी है।···" कुछ अटककर उन्होंने बात पूरी की, "वर्ना तुम-जैसा नौकर कौन छोड़ना चाहेगा?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हरीराम आश्चर्य से उन्हें देख रहा था। दस साल पुराने नौकर को निकालने का यह निर्णय इतनी जल्द और एकाएक लिया गया था कि हरीराम की समझ में नहीं आ रहा था। लगता था, या तो वह समझ नहीं पा रहा है, या फिर मिस्टर वर्मा का दिमाग खराब हो गया है।

"अब तुम जा सकते हो।" मिस्टर वर्मा बोले।

हरीराम ने विनम्र स्वर में पूछा—"मेरा कसूर, हजूर? दस साल मुझे काम करते हो गए। मेरे जानते में तो कभी गलती हुई नहीं। फिर भी अगर कोई बात है तो बता दें, सरकार! मैं गलती सुधार लूंगा।"

मिस्टर वर्मा की इच्छा हुई थी, कहें—'गलती? गलती तो तूने बहुत बड़ी की है। तुझे उस गलती की बड़ी सजा भी मिलनी चाहिए।' पर, उन्होंने स्वयं को संयत किया। उसी तरह बोले—"हरीराम! तुम महंगाई की तरफ देखो और फिर बताओ कि हम नौकर कैसे रख सकते हैं?" कुछ रुककर उन्होंने कहा, "या तो तुम और कहीं काम पर चले जाओ, या फिर अपने गांव वापस लौट जाओ।"

हरीराम चला गया।

शाम को जब मिस्टर वर्मा के बहन-बहनोई आए तो उन्होंने सबसे पहले बच्चा देखने की इच्छा प्रकट की। थोड़ी देर बाद जब उन्होंने बच्चा देखा तो वे बहुत खुश हुए। बहन बोली—"बहुत प्यारा बच्चा है। पूरी तरह बाप पर गया है।" कुछ रुककर उन्होंने मिस्टर वर्मा के बहनोई और अपने पति का ध्यान बच्चे की ओर दिलाया—"देखो जी! जरा ध्यान से देखो! इसकी नाक, आंख, ठोढ़ी, सब··"

"बिलकुल वर्मा जैसा है।" उनके पति ने समर्थन किया। पास ही खड़े मिस्टर वर्मा परेशान थे।

"और तो और, इसका सिर भी बाप जैसा है।" मिस्टर वर्मा के बहनोई कह रहे थे—"बस! जरा रंग···"

"अरे! रंग का क्या?" मिस्टर वर्मा की बहन ने कहा, "बच्चों का रंग कोई निश्चित थोड़े होता है? यह तो पेट का रंग है। अब जरा बाहर की हवा लगी है तो देखना रंग भी बदल जाएगा!"

मिस्टर वर्मा टकटकी लगाए, गुमसुम खड़े बच्चे की ओर देखते रहे। उनके बहन-बहनोई ठीक ही तो कह रहे थे। इसकी ठोढ़ी, नाक-नक्शा, सिर—सभी कुछ तो उन जैसा ही है।···"कितना प्यारा बच्चा है? इसमें साफ-साफ मिस्टर वर्मा की झलक है।···" एकाएक वे तेजी से मुड़े, दूसरे कमरे में जाकर उन्होंने कपड़े बदले और फिर जब घर से बाहर जाने लगे, तो उनकी बहन ने पूछा—"कहां जा रहे हो?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"स्टेशन जा रहा हूं", वे जाते-जाते कहते गए, "अभी आया। नौकर को काम से गांव भेज रहा था, अब उसे रोकना है, काम हो गया।"

१९६२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

टूटे हुए रेशमी धागे

जब ली फांग तिब्बत से भागकर यहां आया तब उसे सबसे पहले तसल्ली की सांस इसी बर्फीली हद में मिली थी। कई दिनों के बाद उसने यहां आकर अमन और निश्चिन्तता अनुभव की थी। इस पहाड़ी गांव से करीब चार मील दूर भारत-चीन सीमा के सिलसिले में भारतीय चौकी बनी हुई है, वहां मुस्तैद हिन्दुस्तानी सिपाही भयानक शीत से जूझते हुए दिन-रात अपनी धरती की रखवाली करते हैं। इसी राह में भारतीय सीमा के कई मील भीतर गीती का होटल था। होटल क्या, पुराने जमाने का भटियारखाना-सा था। मेज-कुर्सियों के नाम पर लकड़ी के आड़े-तिरछे बेतरतीब-से टुकड़ों को जैसे-तैसे कर, एक-दूसरे से जोड़कर रख दिया गया था। किसी मेज के दाएं पैर में तीन जोड़ थे, तो किसी के पैर ही न था, ईंटों के सहारे दूसरा किनारा थमा था। चाय की टंकी की जगह लोहे का भगोना और केतली के नाम पर अल्यूमीनियम का औंधा नीचा डिब्बा, गीती के पास था, और चूंकि आस-पास दूर तक चाय की कोई व्यवस्था न थी, अतः गीती का होटल नेफा क्षेत्र के इस बर्फीले गांव में बम्बई या दिल्ली के किसी श्रेष्ठ होटल से रत्ती-भर कम कीमती न था।

गीती के इसी होटल पर आकर ली फांग ने चाय की प्याली कई दिनों बाद होंठों से लगाई थी। उसने चाय के दो 'सिप' लिये थे और अनुभव किया था जैसे पेकिंग के किसी होटल में जिन्दगी जी रहा हो। हां, उसने उस दिन पेकिंग के होटल के बारे में ही सोचा था। हालांकि वह तिब्बती शरणार्थियों की भीड़ के साथ हिन्दुस्तान आया था, उसे हिन्दुस्तानी सरकार ने तिब्बती जानकर ही पूर्ण सहायता दी थी। उसने भी गीती, भारत सरकार और यहां के सभी लोगों को स्वयं के तिब्बती होने का ही विश्वास दिलाया था।

यहां आकर ली फांग ने स्वयं को पूर्णतः तिब्बती प्रमाणित किया। वह बुद्ध को नहीं मानता था, पर यहां आने के साथ ही उसने बौद्ध धर्म के अनुयायी की तरह अहिंसा का उद्घोष प्रारम्भ कर दिया। वह नियमित रूप से मठ पहुंचने लगा। ली फांग ने कुछ ऐसा ताना-बाना बुना कि सिर्फ तिब्बती शरणार्थी ही नहीं,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वहां के भारतीय नागरिकों का खरे सिक्के जैसा मित्र और शुभचिन्तक बन गया। ग्रामीणों ने निष्कपट भाव से उस पर विश्वास किया, और गीती तो अपना मन ही हार बैठी ली फांग के लिए। वह खाली समय में ली फांग के साथ बैठी घंटों गपशप करती, कभी-कभी होटल बन्द कर, दूर बर्फीली पहाड़ियों और चश्मों के आस-पास ली फांग के साथ घूमने निकल जाती। कभी ली फांग उसे तिब्बत का भूगोल बताता, कभी गीती उसे हिन्दुस्तानी रस्मो-रिवाज समझाती। कभी ली फांग तिब्बत पर चीनी हमले के लोमहर्षक आंखों देखे बयान सुनाता तो कभी गीती उसे भारतीय सैनिकों की बहादुरी की कहानियां सुनाती। हिन्दुस्तानी सीमा चौकी के अधिकतर सिपाही आते-जाते गीती के होटल में चायपान करते रहते थे, अतः गीती को उनकी सम्पूर्ण गतिविधि और नयी सैनिक स्थिति की जानकारी रहती थी। गीती बड़े निष्कपट भाव से ली फांग को सब-कुछ सुना जाती। उलटे भूले-भटके यदि ली फांग और कोई बात गहराई तक कुरेदकर पूछता तो गीती दूसरे दिन उसे सम्पूर्ण जानकारी ला देती। ली फांग जिस उद्देश्य से यहां आया था, उसमें गीती बड़ी सहायक सिद्ध हुई थी, और उसने निर्णय किया था कि इधर-उधर हाथ-पैर फेंकने के बजाय वह केवल गीती को साधे रहेगा और खूब साधे रहेगा। और कमाल था ली फांग का—उसने नकली प्यार का शहद कुछ इस सफाई से उंड़ेला कि गीती एक नासमझ अनजान मक्खी की तरह उसमें और चिपककर रह गई।

और अन्त में एक स्थिति ऐसी आयी जब गीती रात सोते, सुबह जागते, चाय बनाते, खाना खाते—हर समय ली फांग के ख़यालों में ही डूबी रहने लगी।

न जाने क्या बात थी कि ली फांग दिनभर सोता, रात हुए उससे मिलता। गीती सारा दिन बड़ी बेचैनी से गुजारती, हर समय उसे ली फांग का ख़याल रहता। उसने कई बार उससे कहा भी—"तुम सुबह-दोपहर-सांझ किसी समय होटल नहीं आते। कभी दिन में भी तो आया करो।" तो ली फांग टाल गया। उसने कहा, "भगवान बुद्ध पर एक किताब लिख रहा हूं, रात को मेरी नजर जरा कमजोर रहती है, सो लिख नहीं पाता। सारा दिन लिखता हूं, जल्दी ही किताब पूरी कर दूंगा, फिर समय मिला करेगा।"···और निष्कपट गीती ली फांग की बात मान गई।

ली फांग किताब लिखे गया। उसने अध्याय-के-अध्याय लिखे, भारतीय धरती के नक्शे बनाए, रास्ते सुझाए, चौकियों की सैनिक शक्ति का कच्चा चिट्ठा लिखा, आदमियों की जानकारी दी, हमलों के समय भारतीय सेनाओं को इस क्षेत्र में कहां से मदद मिल सकती है, उसमें कितना समय लग सकता है, किधर से हमला करना चाहिए, आदि-आदि, कितने ही भेद ली फांग ने भारत से भेजे।

गीती कल्पनाओं का स्वर्ग तैयार करती रही। उज्ज्वल बर्फीले पहाड़ों में उसने नयी जिन्दगी, सुख-शांति और प्रेम का एक पौधा लगाया था। बर्फ की इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शांत बस्ती में शहरों के प्रगतिशील जीवन की तरह खोखलापन नहीं था। गीती भी अन्य बस्तीवालों की तरह निष्कपट निष्कलंक, निस्संकोच लोगों से बातचीत करती। विश्वास के सौदे होते। लोगों के चेहरों पर संतोष और शांति की मुसकराहटें नाचती रहतीं। हर भोर सारे गांव का जीवन बर्फ और कुहरे से ढंकी घाटियों में एक अंगड़ाई लेकर जागता। तमाम दुनिया की तरह सूरज की सुनहरी किरणें इन झोंपड़ियों की छोटी-सी बस्ती पर भी आ गिरतीं···और जीवनक्रम अपनी गति के साथ घूमने लगता।

विलासपूर्ण शहर, भव्य अट्टालिकाएं और मानव निर्मित कृत्रिम सौन्दर्य से पूर्ण शहरी जीवन छोड़कर लोग इन पहाड़ी वादियों में शांति खोजने आते हैं। यहां पहाड़ी झरने, किस लापरवाही और अलमस्ती के साथ हंसते हुए बहे जा रहे हैं और वैसी ही हैं यहां की पहाड़ी लड़कियां। किसी आजाद झरने की ही तरह स्वच्छन्द हैं इनकी चाल, इनकी हंसी, खिलखिलाहटें, सौन्दर्य—सभी कुछ। न कोई फिक्र न, कोई बंधन, न कोई भय। जीवन अपनी शांति के साथ बहे जा रहा है, बहे जा रहा है। गीती के होंठों पर किसी बम्बइया लड़की के होंठों की तरह लिपस्टिक नहीं पुती, न उसके शरीर पर कोई चुस्त लिबास है, पर इस सबके बावजूद बम्बइया लड़की को उसे देखकर कुढ़न होती है।

पर गीती यह सब कुछ नहीं सोचती। या यों कि उसे यों सोचने की आदत नहीं है। वह सोचती है केवल ली फांग के बारे में। ली फांग के उन वायदों के बारे में जो उसने किसी एकांत क्षेत्र में प्रकृति की सौंगध उठाकर किए हैं। उसे खूब याद है, उस दिन ली फांग और दिनों की अपेक्षा शाम को जल्द आ गया था। उसने गीती से होटल बन्द कर देने के लिए कहा था और प्रस्ताव किया था कि दूर पहाड़ों में कहीं घूमने चलें। गीती भला कैसे न मानती ? उसने इक्का-दुक्का बचे ग्राहकों को फौरन निबटाया और ली फांग के साथ हो ली।

सूरज डूब ही रहा था। शीत सारे दिन की अपेक्षा तेज हो गई थी। ली फांग के हाथ-में-हाथ दिए गीती दूर पहाड़ी वादियों में निकल गई। उसने एक पहाड़ी लोकगीत भी गाया, जिसका आशय था—

ये पहाड़ी झरने
कुंवारी कन्या की तरह मुसकरा रहे हैं।
इन घाटियों में आवाज गूंजती है,
जैसे, दो प्रेमी 'एक आत्मा दो शरीर' हों।
ईश्वर इस गांव को सलामत रखे।

गीत गाते समय गीती सुर्ग के प्रति असंयत हो गई थी। उसे लगा था जैसे इस से पहले यह गीत कभी किसी ने नहीं गाया। उसने अनुभव किया था—जैसे यह गीत केवल उसी का है। उसी के गाने के लिए बना है। गति के बीच-बीच में ली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फांग ने जोर-जोर से दाद दी थी। और फिर वे दोनों एक टीले पर जाकर रुक गए थे। उन्होंने एक-दूसरे को गौर से देखा था, और फिर जोर से हंस दिए थे। यह हंसी देर तक पहाड़ों में दोहरी गूंजी थी। और ली फांग ने हंसकर कहा था, "जानती हो ये पहाड़ हमारे प्रेम के गवाह हैं। इन बर्फीली चोटियों ने एक रहस्य कैद कर लिया है—मेरे-तुम्हारे प्यार का रहस्य।"

गीती उसकी बात से सहमत नहीं थी। उसने विरोध प्रकट किया था—"रहस्य क्यों कहते हो? प्यार रहस्य नहीं है। इसे बाजे-गाजे के साथ प्रकट कर दिया जाएगा, हमारे देश की यही रीति है।"

और एक सकुचाहट के साथ ली फांग ने गीती के कथन से सहमति व्यक्त की—"हां-हां, तुम्हारा कहना भी ठीक है। फिलहाल तो यह एक रहस्य ही है—प्यार के रेशमी धागों से ढका हुआ।···पर इसे कभी-न-कभी तो प्रकट होना ही है।"

गीती ने उत्तर कोई नहीं दिया, केवल लजा गई। उसके श्वेत कपोलों पर सूरज की डूबती किरणों का रंग गुलाबी होकर चमकने लगा। कुछ देर वे दोनों चुप रहे थे। एक के मन में आनन्द के भावी क्षणों की सुखद अनुभूति थी, तो दूसरे के मुख पर रहस्यमयी मुसकान।

गीती बोली—"मैं···मैं···" उसके स्वर में नारी-सुलभ लज्जा उभर आयी थी—"मैं चाहती हूं कि अब हम अधिक समय तक यों आवारा न घूमें! हमें··· हमें···"

"बस, अब अधिक देर नहीं है," ली फांग ने पुराने बहाने की मरम्मत कर पुख्ता किया—"जल्दी ही वह समय आ जाएगा। तुम्हारी सरकार हम तिब्बतियों के प्रति कितनी मेहरबान है। हमारे लिए नौकरियां और रहने का इंतजाम हो रहा है। जल्दी ही यह सब हो जाएगा और फिर मैं तुम्हें लेकर उस नौकरी पर चला जाऊंगा।"

गीती ने कोई उत्तर नहीं दिया।

ली फांग काम की बात पर उतर आया, "गीती, मैंने सुना है कि इधर सीमा पर चीनी फौजों का जमाव हो रहा है पर तुम्हारी सरकार ने इधर से कोई बन्दोबस्त नहीं किया है।"

गीती को यह विषय-परिवर्तन कुछ बुरा लगा, पर ली फांग को वह अप्रसन्न भी नहीं करनी चाहती थी। बड़ी सरलता के साथ उसने उत्तर दिया था—"सुना मैंने भी है पर हम लोग और सरकार निश्चिन्त हैं क्योंकि चीनी हमारे दोस्त हैं, हम ऐसा सोच भी नहीं सकते।"

"हूं", ली फांग एक रहस्यपूर्ण मुसकराहट के साथ बोला, "मेरा मतलब विश्वास-अविश्वास से नहीं है। मैं तो केवल इतना पूछ रहा हूं कि सरकार ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी चौकियों पर कोई बन्दोबस्त किया है या नहीं ? तुम्हारे होटल पर जो फौजी लोग आते-जाते रहते हैं, कभी बताते न होंगे ?"

"हां-हां, कभी बातचीत होती है, तो बताते हैं।" गीती ने जवाब दिया।

"तो अपनी ओर से चौकियों पर वही पुराना बन्दोबस्त है !"

"हां।" गीती बोली।

"हूं।" ली फांग ने नया सवाल किया—"किसी जगह आदमी नहीं बढ़ाए गए ?"

"नहीं।" गीती ने कहा, "जरूरत क्या पड़ी है ? हमारी सरकार और चीन सरकार में दोस्ती है, फिर चौकियों पर ताकत बढ़ाने की क्या जरूरत है ?"

ली फांग ने एक ठंडी सांस ली। कुछ देर वह पहाड़ों को इधर-उधर घूमकर देखता रहा। फिर बोला—"अच्छा गीती, वैसे इधर अपनी ओर से कितना बन्दोबस्त होगा ?"

"सिपाही कहते हैं, कोई खास नहीं।" गीती ने बतलाया, "बस, इतना कि अपनी धरती की पहरेदारी भर का।"

"हूं।" ली फांग चुप हो गया।

सूरज लगभग डूब चुका था। कुछ धुंधलका-सा फैला तो ली फांग बोला—"अच्छा, अब चलो।" और फिर वे दोनों हाथ-में-हाथ डाले लौट पड़े। रास्ते में गीती बहुत कुछ सोचती आयी थी। उस दिन के बारे में, जो जल्दी ही आने वाला है; जब सरकार ली फांग को नौकरी दे देगी।

होटल आते ही ली फांग ने कहा था—"अब मैं चलूं ?"

"अभी ठहरो न।" गीती ने उसे रोकना चाहा था।

"नहीं।" ली फांग ने उत्तर दिया, "वह किताब।" कहते-कहते कुछ रुका वह—"वह किताब बस पूरी होने को है।"

ली फांग के किसी जरूरी काम में वह आड़े आना नहीं चाहती और किताब के मामले में तो बिलकुल नहीं। एक दिन ली फांग ने उसे बताया था, यह किताब छपते ही मैं मशहूर हो जाऊंगा। जगह-जगह मेरा आदर होगा, पैसा मिलेगा और न जाने क्या-क्या ? ऐसे काम में गीती भला क्यों रोड़ा बने ! इसमें ली फांग की इज्जत है। ली फांग की इज्जत उसकी अपनी इज्जत है। गीती ने उसे नहीं रोका।

ली फांग चला गया।

घर पहुंचते ही उसने पुस्तक को अंतिम रूप दिया था : रास्ता साफ है। भारत सरकार को मित्रता पर पूरा भरोसा है। हर चौकी पर नाम-मात्र को सिपाही हैं।...हमें कब हमला करना होगा ?

उधर से तारीख निश्चित हो गई थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तेरह नवम्बर की रात को एक भयानक हमला हुआ भारतीय चौकी पर। शांत बर्फीले पहाड़, जिनमें सिर्फ झरनों की कल-कल गूंजती थी, चीनी मोर्टार तोपों, मशीनगनों और हथगोलों के चीत्कार से भर गए। सफेद बर्फ रक्त-स्नान करने लगा। मुट्ठी-भर हिन्दुस्तानी सिपाहियों को अपने उन चीनी दोस्तों से लाचार होकर जूझना पड़ रहा था, जिन पर गीती और गीती-जैसे निष्कलुष करोड़ों हिन्दुस्तानियों को मैत्री का भरोसा था। इस चौकी पर हिन्दुस्तानी सिपाहियों की संख्या चालीस थी। नेफा के मोर्चे पर हमला बोला था पूरी एक चीनी डिवीजन ने, जिसमें अनुमानित रूप से पन्द्रह और बीस हजार के बीच सैनिक होते हैं। हिन्दुस्तानी सिपाही हमले के लिए तैयार न थे। उन्हें भी अपने करोड़ों देशवासियों तथा सरकार की तरह चीनियों का भरोसा था। इस हमले से वे हतप्रभ तो रह गए किन्तु अधिक देर नहीं। उन्होंने स्वयं को सम्हाला और फिर फौरन कर्तव्य-पथ पर अड़ गए। हजार के लिए एक हिन्दुस्तानी। इस मुकाबले में तिहाई से अधिक भारतीय सैनिक मित्रों के विश्वासघात का मजा खुद से कई गुनों की बलि के रूप में चुकाते हुए मारे गए, बाकी पीछे हटे।

भारतीय सिपाही पीछे हटे। हमला-ग्रस्त क्षेत्र में हलचल फैली। लोग विश्वासघातियों से मुकाबले के लिए तैयार होने लगे।

गीती ने इस आपत्तिकाल में ली फांग की तलाश की। वह कई बार उसके घर गई पर वह वहां नहीं था। उसने आस-पास के घरों पर तलाश की, पर उसका पता न चला। सारे दिन वह ली फांग को दूर-दूर तक तलाश करती रही। न जाने किस खतरे में फंस गया हो वह? गीती घबराने लगी। पास के शहर से गांवों में इंतजाम के लिए पुलिस दस्ते आने लगे थे। खतरनाक पहाड़ी रास्तों पर सिपाही तैनात हो चुके थे। मुकाबले के क्षेत्र और असुरक्षित क्षेत्रों से ग्रामीणों को निकालकर सुरक्षित स्थान तक पहुंचाया जाने लगा। कुछ पहाड़ी रास्तों पर सैनिक तैनात हुए, इधर से जाने वालों को रोक दिया गया था क्योंकि ये रास्ते दुश्मन की ओर जाते थे। ऐसे ही एक रास्ते तक ली फांग की तलाश करती हुई गीती पहुंची, पर उसे रोक दिया गया। लाचार गीती घर आकर बैठ गई। उसे अपने जीवन का इतना मोह न था, जितनी ली फांग की चिन्ता थी। न जाने किधर फंस गया वह? कहीं दुश्मन के हाथों न पड़ गया हो? वे क्या उसे ज़िन्दा छोड़ देंगे? शायद नहीं। विश्वासघातियों का क्या भरोसा? गीती से मनौती की। मन में कई बार पहाड़ी देवता को याद किया और हर बार ली फांग की कुशलता की प्रार्थना की।

इसी सोच में गीती की दोपहर ढली, शाम हुई। ली फांग का पता न था। इस बीच गीती के मन में न जाने कैसे-कैसे विचार आते रहे, हर बार ली फांग के अमंगल के। और उसकी परेशानी बढ़ती गई।

अंधेरा हो चुका था पर गीती ने दीया नहीं जलाया। वह टूटी चारपाई पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पड़ी-पड़ी सोचती रही···वही बातें···वही अमंगल की बातें। लग रहा था, जैसे इस दुर्भाग्यशाली दिन में कुछ ऐसा होने वाला है, जो एकदम अजीब और अनचाहा है।

एक चरमराहट हुई और दायीं ओर की कमजोर किवाड़ी का एक पल्ला खुला। एक पुरुष आकृति कुछ स्पष्ट हुई। अंधेरे के कारण गीती पहचान न सकी। "कौन है?" उसने कठोर स्वर में पूछा।

"मैं···मैं हूं ली फांग।" अंधेरे में वह जल्द भीतर घुसा और पलटकर उसने किवाड़ बन्द कर लिया, "आज तुमने रोशनी नहीं की?" वह गीती के पास आ गया।

गीती उठी, "आज सारे दिन तुम किधर गए थे? मैं बहुत परेशान रही।" उसने रोशनी कर दी। एक उदास और कमजोर उजाला कमरे में बिखर गया। गीती ने दीए की लौ बढ़ानी चाही।

"नहीं, गीती!" ली फांग दबी आवाज में फुसफुसाया, "रोशनी कम ही रहने दो।" उसने कहा, "इसी में बेहतरी है।"

गीती ने पलटकर उसे देखा। 'रोशनी कम रहने दो'—ली फांग कैसी घबराहट के साथ यह बेतुकी-सी बात कर रहा है। उसने देखा—ली फांग के कपड़े अस्त-व्यस्त थे। बाल अजब-सी लापरवाही के साथ फैले हुए थे। चेहरे की चमक-दमक गायब थी। लगता था, उसके सामने ली फांग नहीं, उसका निगेटिव खड़ा हुआ है। भद्दा-सा, अजीब और कुछ ऐसा, जिसे पहचानना कठिन है। "क्या बात है? तुम बहुत परेशान हो। हमलावर इतने नजदीक तो नहीं, हमें जल्दी ही यहां से हटा दिया जाएगा किसी सुरक्षित जगह।" गीती बोली।

"धीरे बोलो।" ली फांग पूर्ववत् घबराहट के साथ बोला, "मैं खतरे में हूं।" उसने बीच में सांस साधी—"पुलिस मेरी तलाश कर रही है।"

"पुलिस तलाश कर रही है?" गीती की समझ में नहीं आ रहा था, ली फांग कैसी बहकी-बहकी बातें कर रहा है। "पुलिस! पुलिस तो हमारी रक्षा के लिए आयी है।" उसने कहा।

"हां, पुलिस तुम्हारी रक्षा के लिए आयी है, और मेरी गिरफ्तारी के लिए।" ली फांग फुसफुसाया, "मैं बहुत खतरे में हूं, गीती! आज सारे हिन्दुस्तान में मुझे कोई नहीं बचा सकता, सिर्फ तुम बचा सकती हो—तुम, जो मुझसे प्रेम करती हो।"

क्या हो गया है ली फांग को? पहले तो कभी ऐसा नहीं था। गीती परेशान हो गई। "तुम कैसी बातें कर रहे हो?" उसने पूछा।

"मैं ठीक ही कह रहा हूं, गीती!" ली फांग के माथे पर पसीना छलछला आया, "मैंने तुम्हें धोखा दिया है, पर मैं लाचार था। मैं तिब्बती नहीं, चीनी हूं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और मुझे सिर्फ हिन्दुस्तान में जासूसी के लिए भेजा गया था।"···वह बगैर रुके कहे गया, "मेरे सारे घरवाले पेकिंग में हैं। मैं सौगंध उठाता हूं, गीती, मैंने यह जान-बूझकर नहीं किया। मैं कभी भी इसके लिए तैयार न था। पर चीन सरकार ने मेरे परिवार की हत्या कर देने की धमकी देकर मुझे इसके लिए लाचार कर दिया था। तुम्हीं सोचो मैं क्या करता?"

गीती बुत की तरह खड़ी रह गई।

"गीती!" ली फांग ने फिर कहा, "मुझे माफ कर दो। तुम मुझसे प्रेम करती हो। तुमने वायदे किए हैं। आज जब यह रहस्य खुल गया है, तब मैं तुम्हारी शरण में आया हूं। मुझे भरोसा है तुम मुझे बचा लोगी, वर्ना मुझे कुत्ते से बदतर मौत मिलेगी। गीती! मुझे बचा लो। मेरे घर पर पुलिस ने छापा मारकर सब बरामद कर लिया है।" ली फांग सांस लेने को रुका।

गीती खड़ी हुई थी—चुप, एकदम चुप। पर उसके मन में एक ज्वालामुखी फूट निकला था—ली फांग! चीनी! विश्वासघाती! इसने सिर्फ उसी के साथ धोखा नहीं किया, सारे देश के साथ धोखा किया है। पर गीती इससे प्रेम करती है। गीती ने कितनी ही रातें सिर्फ इसी के सपने देखे हैं। पहाड़ों के सामने प्रेम की सौंगधें उठाई हैं। गीती क्या करे?

"तुम चुप क्यों हो, गीती?" बेचैन होकर ली फांग कहे गया, "बोलो! मुझे भरोसा दिलाओ कि तुम मुझे बचा लोगी। तुम्हें मुझसे प्रेम है। बोलो, गीती!"

गीती की मुट्ठियां भिंच गईं—वे सब रेशमी धागे बड़ी तेजी के साथ टूट रहे थे जो उसने ली फांग के साथ बुने थे।

ली फांग और भी कुछ कहता, इसके पूर्व ही गीती बोल उठी—"हां! मैं तुम्हें बचा लूंगी। यों तुमने भारी अपराध किया है, पर मैं तुम्हें प्रेम करती हूं। तुमने मेरे साथ भारी धोखा किया है। मेरे देश के साथ धोखा किया है···फिर भी मैं तुम्हें बचा लूंगी, क्योंकि मैं तुम्हें प्रेम करती हूं। मैं तुम्हें कुत्ते की मौत मरते नहीं देख सकती।"

ली फांग की जान-में-जान आयी। "तुम कितनी महान हो, गीती! मैं सारे जीवन तुम्हारी कृपा नहीं भूल सकता। कितना सच्चा है तुम्हारा प्रेम···"

"मैं तुमसे तारीफ नहीं सुनना चाहती," गीती ने कठोर स्वर में कहा, "अब तुम चुप हो जाओ। मैं शहर जाकर तुम्हारे खाने के लिए कुछ लाती हूं।"

ली फांग चुप हो गया। गीती बाहर चली गई।

कोई आधा घंटे बाद गीती लौटी। पर यह क्या? ली फांग चौंककर उठ पड़ा। "गीती!" उसने चिल्लाकर कहा। इससे पूर्व कि गीती कुछ कहे, उसके पीछे आ रहे आदमियों ने ली फांग को पकड़ लिया। उसके हाथों में हथकड़ियां डाल दी गईं और पीछे से बन्दूक का धक्का देकर आदेश दिया गया, "चलो!"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ली फांग चुपचाप आगे चल दिया। वे कमरे से बाहर निकले, गीती उनके पीछे-पीछे बाहर तक आयी। जाते समय ली फांग ने कुछ कहा नहीं, केवल घूरकर देखा उसे।

गीती के चेहरे पर शांति थी। उसे लगा, जैसे प्रेम की परीक्षा में वह पूर्ण खरी उतरी है। ली फांग को पकड़कर भारतीय सैनिक जब जाने लगे, तब गीती ने उससे कहा, "मुझे माफ करना, ली फांग ! मैं प्यार में धोखा बर्दाश्त कर सकती हूं, इससे भी कोई बड़े धोखे का जहर पी लेना मेरे लिए सम्भव है···पर कोई मेरे देश की धरती से विश्वासघात करे, यह मैं किसी शर्त पर बर्दाश्त नहीं कर सकती। भले वह मेरा भाई, बाप अथवा प्रेमी, कोई भी क्यों न हो !"

ली फांग ने सिर झुका लिया। पीछे चल रहे सैनिक ने उसकी पीठ पर फिर बन्दूक की नोंक रखी और कठोर आवाज में कहा, "चलो !"

१९६२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सब्र और सब्र

रेडियो के ड्रामा आर्टिस्ट रामजीवन मेहता को अगर यह मालूम होता कि 'होटल लवली' की सर्विस गोगिया पाशा के जादू की तरह प्राम्प्ट है, तो वह शायद यहां नहीं आता। वह होटल को एक सस्ता आरामगाह मानता था, और उसका ख़याल था कि अगर ऊबन से भरे क्षण को जिन्दगी की आशावान महक से भरना हो तो कोठे पर जाने या सिनेमा देखने की अपेक्षा किसी भी शानदार होटल में एक कप कॉफी के साथ चेहरे देखते रहना कहीं अधिक सस्ता और बेहतरीन साधन हो सकता है। उसने कई बार अपने ख़याल को कार्यरूप में परिणत किया था, और हर बार पाया था कि उसका ख़याल गुलामी के जमाने की विक्टोरिया रानी के सिक्के की तरह सच्चा है। आज भी होटल लवली में इसी इरादे से वह आया था, पर बजाय ऊबन भरा वक्त कटने के वह थोड़ी ही देर में पहले से कई गुना ऊब से भर गया। वह अपने आप पर झल्लाया! इतनी प्राम्प्ट सर्विस? आदमी टेबिल पर आया नहीं कि बैरा सामने खड़ा है, या जैसे ग्राहक बाद में आया था, बैरा पहले से ही खड़ा हुआ था। कॉफी का खाली कप देख-देखकर मेहता को कुढ़न हुई। कितनी गलत जगह आ गया वह? उसे ख़याल आया, अभी मुश्किल से पांच मिनट बीते होंगे, जब उसने इस होटल की यह टेबिल घेरी थी। वह आकर बैठा या उसने दाएं-बाएं कपड़े संभाले थे, गर्मियों में भीतर का पसीना, कपड़ों की क्रीज तोड़ने लगता है, इस तरह जैसे आदमी बूंदा-बांदी के मौसम में भीग गया हो।···और जब कपड़े संभालकर मेहता ने चेहरा ऊपर उठाया तो देखा, बैरा सामने खड़ा था।

"एक गिलास पानी।" मेहता ने फुर्ती से यों आर्डर दिया, जैसे सामने वाले को पत्थर मार दिया हो। और जब बैरा निहायत पाबन्दी के साथ लौट गया तो मेहता फिर कपड़े संभालने लगा। कोई शहरों में शहर है नागपुर? आदमी बनियाइन पहने रहे, तो लगता है, कोट के ऊपर चेस्टर लादा हुआ है।

—खट्!···मेहता का ख़याल सूत के इकलौते धागे की तरह टूट गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पानी का गिलास सामने रखा हुआ था। मेहता ने गर्दन जरा ऊंची की, तो वह परेशान हो उठा, बैरा पुनः पहले जैसी मुस्तैदी से खड़ा हुआ था।

मेहता का मन हुआ था, कहे—दो मिनट चैन लेने दोगे, पर न जाने क्यों वह ऐसा कह नहीं सका। पूछा—"क्या है?"

बैरे ने फुर्ती से उसी की टेबिल पर पड़ा हुआ 'मीनू' उठाकर एकदम उसके सामने कर दिया। वह मुसकराया, तो मेहता झेंप गया। उसने 'मीनू' के पन्ने उलटने-पलटने प्रारम्भ कर दिये। कटलेट पिचहत्तर पैसा, आमलेट पिचहत्तर पैसा, दोसा पचास पैसा, और फिर···पचास पैसा, पचास पैसा, तीस पैसा, पच्चीस पैसा, मेहता एक-एक पर नजरें दौड़ाता चला गया···चाय पन्द्रह पैसा···कॉफी—पच्चीस पैसा···अगर पिचहत्तर पैसे के कटलेट या पचास पैसे के दोसे से ही ऊबन मिटानी होती तो नब्बे पैसे के दोसे देकर सैकंड क्लास में सिनेमा भी देखा जा सकता था। उसने आर्डर दिया एक कॉफी।

बैरा चला गया। मेहता को लगा, जैसे होटल लवली में कुछ देर के लिए पंखे चलने बंद हो गये थे—पर अब फिर खुल गये। ये सोचकर उसे फिर खीझ हुई कि अभी फिर वह बैरा आ जायेगा, और पंखे फिर बन्द हो जायेंगे!···होटल है या तमाशा? मेहता ने सोचा और अनचाहे ही आंखें पड़ोस वाली उस टेबिल पर उछाल दीं, जिस पर दो खूबसूरत लड़कियां कॉफी के धीमे-हल्के सिप खींचने लगी थीं। वे एक-दूसरी की ओर मुसकरा लेतीं, कभी एक-दो बोल भी फूटते और फिर कॉफी का हल्का-सा सिप। मेहता तो जैसे डूब गया। उसने महसूस किया जैसे उन दोनों लड़कियों के होंठ कप से छूकर सिप लेते हैं, और उस सिप के साथ यहां, दूर बैठे मेहता के सीने से कोई चीज़ बाहर खिंची चली जाती है। उसने एक ठंडी सांस खींची, और हथेलियों को बड़ी बेबसी के साथ कभी मीनू के चिकने कागज पर और कभी टेबिल की कनातों पर फिराते हुए लड़कियों को देखना जारी रखा।

—खट्!···ठीक पानी के गिलास की तरह कॉफी टेबल पर आकर चीखने लगी।

मेहता का ध्यान टूटा। झल्ला उठा। हद हो गई बेवकूफी की! इतनी प्राम्प्ट सर्विस?···अभी एक मिनट हुआ आर्डर गया था। चाहते हैं, ग्राहक जो लेना हो, ले, गले में उड़ेले और होटल से बाहर हो जाये। जैसे आदमी न हुआ कचरे का डिब्बा हुआ, जो डालना है—उसके खुले गले में डाल दिया—छुट्टी हुई। बड़ी परेशानी के साथ मेहता ने कॉफी का कप हाथ में लिया, और एक घूंट खींचा। फिर जब पड़ोस वाले चेहरों को देखना चाहा तो यह देखकर कि अब वहां सिर्फ खाली कुर्सियां बची थीं, वह पहले की अपेक्षा कहीं ज्यादा बेचैन हो गया।···दूर-दूर तक होटल के शानदार फर्नीचर पर उदासी फैली हुई थी। इक्का-दुक्का ग्राहक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बैठा हुआ था, और इधर-उधर दो-चार बैरे घूम रहे थे— निरुद्देश्य। एक भी ऐसा चेहरा नजर नहीं आ रहा था, जिसके सहारे कॉफी का कप देर तक खाली न होता, तब तक जब तक कि ऊब का मौसम न गुजर जाता। मेहता के मन में जैसे कोई चीज़ कुरेदने लगी —बेचैनी ! इतना खूबसूरत होटल !···शानदार फर्नीचर ···और प्राम्प्ट सर्विस !···पर कितना बोर? ओह ! मेहता ने जल्दी-जल्दी कॉफी के सिप खींचे और कप खाली कर दिया। आज पहली बार उसका ख़याल झूठ निकला था— होटल आरामगाह नहीं है !·· कम-से-कम इतनी प्राम्प्ट सर्विस देने वाला होटल तो आरामगाह नहीं हो सकता। मेहता ने बिल भुगतान किया और इस निश्चय के साथ कि अब कभी होटल लवली में नहीं आयेगा, टेबिल छोड़ दी। वह पहले से कहीं ज्यादा परेशानी की हालत में जब बाहर निकलने लगा तो सामने से चले आ रहे चौधरी ने उसे रोक लिया—"हैलो, मेहता ! कैसा क्या है? वापस हो रहे हो?"

"हां," मेहता ने बड़ी उदासी के साथ जवाब दिया, "मैंने कॉफी ले ली है।"

"अरे, उससे क्या होता है।" चौधरी निरर्थक हंसा। उसने मेहता की बांह पकड़कर उसे लौटाया, "आओ। एक कॉफी और हो जाये, मेरे साथ।"

मेहता का मन हुआ था, कहे—"ये होटल नहीं है, मशीन है। बोलने के साथ सामान आयेगा और बात की बात में उसे समाप्त कर बाहर चले जाना होगा। ···पर न जाने क्यों, वह नहीं कह सका। अनचाहे ही चौधरी के साथ खिंचा चला गया।

होटल की टेबिल-कुर्सियों पर पूर्ववत् वैसी ही उदासी बिखरी हुई थी। इक्का-दुक्का ग्राहक था, और पहले की ही तरह बैरे निरुद्देश्य इधर से उधर घूम रहे थे।

चौधरी और मेहता कोने की छः कुर्सियों वाली टेबिल के गिर्द आ बैठे। उन दोनों ने कोई बात नहीं की। अपने-अपने कपड़े संभाले और फिर बेमतलब होटल में इधर-उधर देखा।

बैरा सामने आ खड़ा हुआ।

मेहता ने एक बार घूरकर उसे देखा। इच्छा हुई, इतने जोर से चीखे कि इमारत हिल जाये। फिर वही प्राम्प्टनेस ! कभी-कभी प्राम्प्टनेस भी कितनी बोर होती है। इस होटल में आदमी क्या तसल्ली पायेगा?

चौधरी ने आर्डर दिया—दो पानी, फिर कॉफी।

—कहो, भई चौधरी···

चौधरी और मेहता ने एक साथ ध्यान दिया, फिर दोनों ही बोल उठे— आओ ! आओ···क्या इत्तिफाक है? मेहता ने आने वाले का स्वागत जारी रखा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

···तुम खूब आये, सहगल ? इस शहर में कब आये ? तुम तो इन्दौर में हो न ? फैमिली-वैमिली भी वहीं है क्या ? चार साल बाद मिल रहे हैं अपन लोग, तुम तो जब से इन्दौर में पहुंचे, न, कोई खबर है, न कोई सन्देशा है ? सोशल वैलफेयर में ही हो न ?···अरे भई चौधरी, कॉफी तीन बोलो न यार !

'बैरा।' चौधरी ने आर्डर बढ़ाया—'कॉफी तीन।' फिर वह सहगल की ओर मुड़ा —'तो इन्दौर में ही जमे हुए हो ?'

— आजकल ग्वालियर में हूं।

'क्यों ?' मेहता ने उसे टोका, 'तुम तो सोशल वैलफेयर में थे न ?'

'हां, पर अब इन्फार्मेशन में हूं।' सहगल ने जवाब दिया, 'ग्वालियर ब्रांच में।'

'और फैमिली ?' चौधरी का सवाल आगे बढ़ा।

'सब ग्वालियर ही हैं।' सहगल ने तत्परता से उत्तर दिया। फिर पूछा—'तुम तो यहीं हो न ?'

'हां, विदर्भ बोर्ड में।'

'और तुम, मेहता ?'

'अपुन कहां जायेंगे, यार !···बस आकाशवाणी करते हैं, यों ही गुजर जायेगी।'

'गुजर क्या जायेगी, गुजरती ही समझो।' सहगल ने कहा, और अपने ही मजाक को सफल बनाने की गरज से हंसी में पहल की। चौधरी और मेहता ने उसकी हंसी में स्वर मिलाये, बात रख ली। फिर तीनों यों चुप हो गये, जैसे सवाल चुक गये थे। मेहता ने टेबिल की कनातों पर अंगुलियां पटकीं, सहगल ने टाई संभाली, कसने लगी थी। चौधरी ने इधर-उधर आंखें दौडाईं, फिर एक गहरी श्वास खींचकर कहा—'कोई होटल है साला—ढंग का एक चेहरा नजर नहीं आता।'

'मैं तो पहले ही कहने वाला था।' मेहता बोला।

कॉफी आ गई थी। तीनों ने अपने-अपने कप खींचे। सहगल ने सिगरेट जलाई और जब पैकिट टेबल पर छोड़ दिया तो मेहता ने निहायत बेतकल्लुफी से उसमें से सिगरेट निकालकर पैकिट चौधरी की ओर बढ़ा दिया।

चौधरी ने सिगरेट ली—थेंक्यू !

'मुझे नहीं', मेहता बोला—'सहगल को दो ! इन्फार्मेशन में है। गोल्डफ्लेक पीता है। लगता है, लैम्बरेटा भी ले लिया होगा। क्यों, सहगल ?'

सहगल ने सिगरेट का एक छल्ला बनाया। बोला—'अभी कहां, यार ? नंबर लगा रखा है, देखो कब मिलता है ?'

'तो मध्यप्रदेश में भी ये हालत है।' चौधरी ने अचरज से सवाल किया,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

टाई संभाली, और फिर बात आगे बढ़ा दी— 'यहां तो ब्लैक चल रहा है।'

'मध्यप्रदेश में क्या कम ब्लैक है।' सहगल बोला, 'तीन-चार सौ तो ईजीली ले लेते हैं।'

—सैकण्डहैंड क्यों नहीं तलाशते ?

'नये के दाम पर मिलता है।' सहगल ने बेहद संजीदगी से कहा—'यहां क्या हालत है ?'

'बिलकुल तुम्हारे यहां जैसी।' चौधरी ने कॉफी का एक घूंट लेकर मायूसी के साथ उत्तर दिया, 'मैंने भी तो बुक कराया हुआ है, अब तक कुछ नहीं हुआ। ऐजेन्ट कहता है—अभी एक साल और सब्र करना होगा।'

'ओफ्फोह ! जिन्दगी अजब तरीके से तंग हुई जाती है।' सहगल ने कहा, एक गहरी श्वास खींची, कॉफी का एक घूंट लिया, और फिर सिगरेट के एक साथ कई कश खींचे—छोड़े।

'जिन्दगी की मत पूछो, यार !' मेहता ने उदासी में डूबे-डूबे कॉफी का कप खाली कर डाला, 'बेहद कड़वी हो गई है ! आदमी जीना चाहे तो नहीं जी सकता, आदमी मरना चाहे, तो नहीं मर सकता। सड़ी-सड़ी चीज़ों के दाम आसमान पर पहुंच गए हैं। लाइफ इतना बिजी है कि दौड़ में साइकिल नहीं चलती, स्कूटर चाहिए। और स्कूटर पर ब्लैक है ! तीन हजार कीमत और तीन सौ रुपये ब्लैक ! ···तीन सौ रुपये !'

'तीन सौ रुपये ?' सहगल लगभग चिल्ला उठा। उसने जल्दी में कॉफी का घूंट लिया—आखिरी घूंट। पूछा—'कहां है तीन सौ ब्लैक ? खुदा के लिए मुझे फौरन स्कूटर दिलवा दो। अभी, इसी वक्त तीन हजार तीन सौ देता हूं, सीधे ग्वालियर ले जाऊंगा। यहां तो अति है मेरे भाई ! पांच-पांच सौ तक ब्लैक है···। बोलो मेहता, दिलवाते हो !'

'अरे ! यहां भी पांच सौ है, यार ! चौधरी ने कहा, 'तीन सौ तक होता तो मैं ही न ले लेता।'

—मगर मेहता, तुम तो कह रहे थे···

'ये क्या कहेगा ?' चौधरी बोला, 'मैं तो महीनों से परेशान हूं। ये नागपुर है, मियां ! तीन सौ नहीं, पांच सौ, और उससे भी ऊपर का ब्लैक है।'

मेहता ने सिगरेट का ठूंठ, टेबिल पर एश ट्रे होते हुए भी, जमीन पर डालकर बूट से रौंद डाला। कहने लगा—'मुझे तो अब से करीब साल-भर पहले का ख़याल है, तब तीन सौ ही ब्लैक था। उन दिनों मैं भी स्कूटर के चक्कर में था। फिर सोचा, जब चार हजार ही खर्च करने हैं, तो क्यों न एक फिएट ले लूं !···'

'फिएट पर क्या कम ब्लैक है ?' सहगल ने अनजाने में कोट पर झाड़ गया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिगरेट या गुल साफ करते हुए जवाब दिया—'उस पर तीन-तीन और चार-चार हजार तक मांगते हैं।'

'पूछो नहीं !···बुरा हाल है ! बुरा हाल है !' चौधरी बोला, फिर उसने टेबिल पर रखे हुए बिल को उठाया, पैसे देखे और रेजगी जेब से निकालकर प्लेट में डाल दी।

सहगल उठ खड़ा हुआ। मेहता और चौधरी साथ-साथ उठे। और जब तीनों होटल लवली से बाहर आ गये तो मेहता ने छुट्टी चाही—'भई, मुझे तो माफ करना। अब जाऊंगा, बहुत देर का रेडियो स्टेशन से निकला हूं।'

'अच्छा भाई !' सहगल ने हाथ बढ़ा दिया, तो मेहता ने उससे हाथ मिलाया, फिर बोला, 'जरा एक सिगरेट तो पिलाओ !'

सहगल ने पैकिट निकाला। एक ही सिगरेट थी, निहायत बेतकल्लुफी के साथ मेहता ने इकलौती सिगरेट जलाई, और पैकिट फेंककर रवाना हो गया।

'स्साला ! मांग-मांगकर सिगरेट पीता है, फिएट खरीदेगा। ऊंह !' चौधरी ने फिर टाई की गांठ ढीली की, नफरत से उस रास्ते की ओर देखा, जिधर अभी-अभी मेहता चला गया था। फिर जेब से चारमीनार का पैकिट निकालकर सिगरेट जलाई, 'तुम तो गोल्डफ्लेक पीते हो ?'

सहगल हंस दिया।

दोनों सड़क पर आगे बढ़े, तो पास की पान की दुकान से आवाज उठी—'राम राम, चौधरी बाबू !'

चौधरी ने लौटकर देखा, वह एकाएक ही परेशान हो गया जैसे। घबराकर चिल्लाया—'मिलूंगा, महाराज ! मिलूंगा।' वह शायद और भी कुछ कहता, पर सहगल की मुसकराहट देखकर सहम गया।

दो क्षण दोनों चुप रहे, फिर चौधरी बोला—'अच्छा, डियर, अब मुझे भी माफी दो। एक काम की बात याद आयी है···' और इससे पूर्व कि सहगल उसे इजाजत दे, वह पास की गली में मुड़ गया।

सहगल ने ठंडी सांस खींची। वह पास की पान की दुकान पर चला आया। जेब से कुछ रेजगी निकाली और ठेले में हाथ बढ़ाया—'शेर का एक बंडल तो दो, यार !'

१९६२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चीड़ का आदमी

सरमन से उस कैदी ने बहुत कुछ कह दिया था। इतना कुछ कि सरमन की खूंख्वार आंखों में नमी आ गई—उन आंखों में, जो कभी नम होना तो दूर, फांसी के बाद कैदी की विद्रूप लाश देखने में झपकती तक न थीं। पत्थरदिल सरमन ने घर आकर महसूस किया, जैसे उसके पाषाण-हृदय में कोई ऐसा नमकीन सोता निकल आया है, जो उसकी आंखों के रास्ते बाहर आकर, उसे किसी गहरे दुःख में डुबोये दे रहा है। कैदी तो सरमन ने किसी मध्यमवर्गीय गृहस्थ की अनगिन परेशानियों की तरह ही अनगिन देखे थे, पर उस कैदी में कोई और ही बात थी। वह और कैदियों की तरह सरमन को देखकर चौंका नहीं था, और न रोया-गिड़गिड़ाया ही ! बस, उसने एक छोटा-सा निवेदन किया था। निवेदन इतना अधिक हल्का और छोटा था कि सरमन को अपनी मजदूरी की तरह छोटा लगा। कैदी का निवेदन एक जल्लाद से ? कितनी भयानक कल्पना है यह ? पर यह सही है कि उस नवयुवक ने अपने यमदूत सरमन से ही वह प्रार्थना की। ऐसी प्रार्थना, जो उसे मिली हजारों सरकारी आज्ञाओं की तरह उसका मन वेध गई, और बरबस ही स्वयं को लाख रोके बगैर, सरमन कैदी का निवेदन पूरा करने के लिए बाध्य हो गया। कैसा विचित्र है वह कैदी कि साधारण बात की तरह उतनी बड़ी बात कह गया ? निश्चय ही वह बहुत बड़ी बात थी, इतनी बड़ी बात कि जिसने एक जल्लाद को पानी कर दिया ! वह बात एक ऐसी नुकीली सुई थी, जिसने सरमन के दिल की क्रूरता के धागे, जिनमें उसकी आदमियत बन्द थी, उधेड़ डाले। सरमन परेशान-सा खुद में उबल गया—कमबख्त कैदी ! तूने मुझे साधारण आदमी बना दिया ! रोने वाला ! कमजोर मन का आदमी ! चीड़ का आदमी !

सरमन सचमुच आदमी हो गया, तभी तो उसने अपनी ओर से कैदी की आज्ञा के भी आगे बहुत कुछ करने की ठान ली। सरमन के आदमी बनने के चांसेज पहले भी आये थे, उसके मन पर पहले भी बड़े नश्तर चले, पर वे आपरेशन इतने सशक्त नहीं थे कि सरमन उतने साधारण इलाज से, सरलतापूर्वक आदमी बन जाता। कुछ भी हो, आखिर सरमन जल्लाद था, जिसकी ज़िंदगी में ज़िंदगी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का कुछ महत्त्व नहीं होता। इसमें वह और उसका पेशा कुसूरवार नहीं, क्योंकि सरमन के एक पेट है, जिसमें भूख लगना लाजिमी है। भूख, जो आदमी और जल्लाद में फर्क करना नहीं जानती ! पर उस कैदी की बात, जिसने सरमन को केवल भूख तक ही आदमी नहीं रहने दिया, बल्कि सारी जिंदगी के लिए आदमी बना दिया।

कैदी के वे बोल (किंवदंतियों के अनुसार) पारस के टुकड़े की तरह प्रभावशील थे, जो उसके लोहे के दिल से टकराये और तत्काल ही फौलादी सरमन चीड़ का आदमी बनकर रह गया। एक जल्लाद के जीवन में कितना महान परिवर्तन था यह !

सरमन सोचने लगा, उसके मन ने उसके पेशे से इतना विद्रोह कभी नहीं किया। तब भी नहीं, जब उसकी पहली पत्नी ने आत्महत्या कर ली थी ! इसलिए नहीं कि सरमन स्वभावतः कटु व्यवहार करने का आदी था; बल्कि इसलिए कि उसे मालूम हो गया था, सरमन जल्लाद का पेशा करता है। सरमन के लिए यह सचमुच विचित्र बात थी कि उसकी पत्नी ने आत्महत्या के लिए फांसी का रास्ता ही चुना था। अब भी, जब कभी वह किसी मुलजिम को फांसी पर चढ़ाता है, तो उसकी पत्नी का विद्रूप चेहरा उसकी आंखों में नाच उठता है। उस चेहरे ने सरमन के हृदय में भय तो उत्पन्न किया, किन्तु हृदय-परिवर्तन का ज्वार न ला सका। उसकी पत्नी की आत्महत्या भी उसके मन के लिए एक आपरेशन था, जो असफल साबित हुआ।

सरमन अपनी पत्नी की याद कर बहुत दुखी हुआ। उसकी पत्नी को ठीक तरह फांसी का फन्दा लगाना नहीं आता था; वरना मौत के बाद उसका चेहरा इतना भयानक और गंदा कभी न होता। उसने फन्दा बिलकुल गलत लगाया। सरमन को बहुत पीड़ा हुई यह सोचकर कि उसकी पत्नी को आत्महत्या में बड़ा कष्ट हुआ होगा। बड़ी देर से जान निकली होगी उसकी। इसलिए सरमन हर कैदी को फांसी लगाते समय यह ध्यान रखता है कि उसकी जान जल्द-से-जल्द आसानी से निकल जाए। सरमन का विचार है कि हर ईमानदार पेशेवर जल्लाद को चाहिए कि वह अपने कैदी का खयाल रखे। उसकी जल्दी-से-जल्दी जान ले लेने में कुशलता बरते। सरमन का हृदय घृणा से भर आया, जब उसने अपने पेशे की भयानकता को समझा। और फिर एक लड़ी-सी बंध गई, क्रमानुसार घटनाएं उसको याद आती चली गईं। उसे वह दिन याद आया, जब वह फांसी लगाने के लिए पारिश्रमिक के सम्बन्ध में जेलर से बात करने गया था। जेलर उस दिन बड़ा प्रसन्न था। पर अचानक ही सरमन को देखकर चौंक गया। उसके लिए सचमुच ही यह अपशकुन की, और आतंक पैदा करने वाली घटना थी कि उसके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहले बच्चे के जन्मदिन पर सबसे पहले एक कठोर-हृदय जल्लाद मुबारकबाद पेश करे !

सरमन अत्यन्त शांतभाव से उसके पास गया था, पर जेलर ने उसकी सरलता में भी जो कठोरता पायी, उससे उसके हृदय में धड़कन होने लगी । जल्लाद जब उसके पास आकर खड़ा हो गया, तब जेलर क्रुद्ध होकर चिल्लाया—"इस समय तुम क्यों आए यहां ? किसने आने दिया ?"

जेलर की इस चिल्लाहट का सरमन पर कुछ भी असर न हुआ । वह पूर्ववत् बिना हिले-डुले खड़ा रहा। उसके इस विचित्र व्यवहार को देखकर जेलर ने अनुभव किया कि ऐसी चीख-चिल्लाहट का एक जल्लाद पर उतना ही असर हो सकता है, जितना किसी पत्थर की चिकनी शिला पर छोटे-मोटे झरने के गिरने का होता है। सरमन ने हाथ जोड़कर विनम्र भाव से कहा – "इधर से निकल रहा था। सन्तरी ने बताया, हुजूर ने बेटा पाया है। सोचा, सरकार को मुबारकबाद ही देता चलूं, सो चला आया। भगवान आपके घर के चिराग को सौ साल सलामत रखे। खूब फले-फूले, तरक्की करे।"

नवयुवक जेलर सन्नाटे में आ गया। एक जल्लाद किसी बच्चे को हंसने-खेलने का वरदान दे रहा था ! सारी जिन्दगी जीवन लूटने का पेशा करने वाला जल्लाद किसी की जिन्दगी के लिए दुआ कर रहा था । कितनी भयानक, किन्तु असंभव बात लगी वह जेलर को। कोढ़ की तरह घृणित और किसी पत्थर पर दूब उगने की तरह असंभव ! जेलर की इच्छा हुई कि वह उस शैतान का मुंह न देखे, घर में छिपकर दरवाजा बन्द कर ले। सरमन के चेहरे की दृढ़ता देखकर वह बहुत डर गया था । दिल कड़ा कर वह अपने स्थान पर बैठा रहा ।

सरमन ने कहना प्रारंभ किया—"मुझे किसी ने नहीं रोका, हुजूर ! लोग मुझे सरमन दरजी के नाम से जानते हैं, उन्हें यह मालूम नहीं कि मैं कपड़े सीने का नहीं, जिन्दगियां छीनने का धंधा करता हूं।" सरमन इतना कहकर एक क्रूर मुसकराहट में मुसकराया।

जेलर का क्रोध थोड़ा हल्का हुआ। उसने सोचा – सरमन का इसमें क्या कुसूर ? सब लोग उसे दरजी ही जानते हैं।

सरमन अपने रूखे और सख्त हाथों को एक-दूसरे से रगड़ते हुए चिल्लाया – "मैं ये पेशा तो न करूं, सरकार ! पर इन दिनों दरजी का धंधा जरा ठीक नहीं चलता। ईश्वर जाने, लोगों के कपड़े ही ज्यादा नहीं फटते या उनके पास महीने में दो-चार बार कपड़े सिलवाने का पैसा हो जाता है ! इसीलिए मैंने यह गंदा पेशा अपनाया है। हालांकि इसमें भी कोई खास आनन्द नहीं आता, पर दरजीगिरी से थोड़ा ज्यादा पा जाता हूं इसमें। बस, गुजर लायक !"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"कितना ?" न चाहे बगैर भी जेलर ने यह प्रश्न कर डाला।

"यही कोई साठ-पैंसठ रुपया हर महीने। एक आदमी को फांसी पर लटकाने के मुझे बीस रुपए मिलते हैं। मेरी मेहनत और काम को देखते हुए ये पैसे कुछ भी नहीं हैं, मालिक ! किसी आदमी को फांसी पर चढ़ा देना कोई आसान काम नहीं है," सरमन गर्व से सीना तानकर बोला—"कि इसे चाहे कोई छोटा काम समझकर कर डाले। फांसी लगाना तो एक बहुत बड़ा हुनर है, हुजूर ! ये एक ऐसा गुन है कि इसे भी और तमाम इल्मों की तरह बगैर उस्ताद के नहीं सीखा जा सकता। हर जल्लाद मुजरिम को फांसी पर लटकाते समय उसकी पूरी तरह जांच-पड़ताल करता है। जैसे मुजरिम का गला देखकर उसकी तकलीफ का ध्यान रखना। हर आदमी का गला एक-सा नहीं होता कि मुलायम हो या कड़ा हो, शरीर, गला वगैरह सब अलग किस्म के होते हैं। मुजरिम को फांसी देने से पहले फंदा डालते समय उसका गला देखा जाता है, कि उसका गला मुलायम है या कड़ा ? बदन गठीला है या कमजोर ? मजबूत दिल का है या फुसफुसे दिल का ? ऐसी कुछ बातों की देख-परख के बाद ही जल्लाद सरकारी आदेश पूरा करता है।"

जेलर सरमन की हर बात गुमसुम सुनता गया। सरमन कहे जा रहा था, "हुजूर ! अगर किसी को मालूम हो जाये कि मैं जल्लाद हूं, ऐसा गंदा पेशा करता हूं, तो मेरी जात मुझे जात-बाहर कर देगी। कोई पास भी न बैठने देगा। हुक्का-पानी छूट जायेगा।" जेलर के करीब मुंह खिसकाकर सरमन दयनीय स्वर में बोला—"यह कोई भी नहीं सोचने वाला कि मैं यह पेशा पेट के खातिर करता हूं। भला आप ही सोचिए, हुजूर ! कोई भी आदमी बगैर किसी मजबूरी के ऐसा भयानक धंधा कर सकता है ? आस-पास के पांच जिलों में मैं ही अकेला जल्लाद हूं। आप मुजरिम को जेल में बन्द रखने भर के सैकड़ों रुपए पा जाते हैं, और हम, सरकार, जो एक मिनट में मुजरिम की जान ले लेते हैं, केवल बीस रुपए पाते हैं ! बीस रुपए इस जमाने में कुछ भी नहीं हैं, मालिक ! आप जानते ही हैं, बीस से रोटी-कपड़ा तो दूर, बदन की ठीक तरह मालिश भी नहीं हो सकती ! अभी कल की ही बात है कि मेरी नयी जोरू ने चांदी की तोड़ियों की मांग कर दी। बताइए, इन दस-पांच रुपयों में कैसे तोड़ियां दिलवाऊं ?" सरमन की अंतिम बात सुनकर जेलर ने कहा—"तुम केवल तोड़ियां ही लाना चाहते हो न ? कितने की मिलेंगी ?"

सरमन झेंप गया। बोला—"केवल तोड़ियों की बात नहीं है, सरकार ! बात की बात है। मेरी औरत के बदन पर एक भी गहना नही है। हो भी कैसे सकता है, पचास-साठ ही तो कमाता हूं मैं। पन्द्रह तो कैसे भी पेट काटकर बचा लूंगा पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसकी मांग केवल तोड़ियों तक ही तो नहीं होगी, मालिक !" जल्लाद इतना कहकर कुछ रुका।

जेलर ने घबराकर पूछा—"फिर तुम क्या चाहते हो ?"

"बस इतना हुजूर, कि मुझे ज्यादा-से-ज्यादा फांसी के मुजरिम मिल जाया करें, महीने में आठ-दस !" सरमन जल्लाद ने यह बात इतनी लापरवाही से कही कि जेलर सिहर उठा।

एक जल्लाद की पत्नी के गहनों की पूर्ति के लिए अधिक-से-अधिक आदमियों की जिन्दगियां ? जेलर का मन पहले से अधिक घृणा से भर आया। पर उसे सरमन की बातें आवश्यकता से अधिक रोचक और विचित्र मालूम हुईं। उसने सरमन की ओर गंभीरता से देखकर कहा—"तुम्हारा कहना ठीक है, पर यह कैसे संभव है कि तुम्हारी इच्छा-पूर्ति के लिए अधिक-से-अधिक फांसी के मुजरिम दिए जाएं ? सोचो कि यह कितनी बुरी बात है कि आदमी के जीवन का तुम्हारी नजरों में कोई मूल्य नहीं ?"

सरमन जेलर के इस महत्त्वपूर्ण प्रश्न का उत्तर इतनी लापरवाही से दे देगा, यह जेलर ने न सोचा था। सरमन ने कहा—"मुझे दूसरों के मरने-जीने से कोई मतलब नहीं ! मैं तो खुद को खुश देखना चाहता हूं। खैर, ये तरकीब आपको नहीं भाती तो न सही, पर आप हमारी मेहनत के पैसे ऊपर से सिफारिश करके तो बढ़वा ही सकते हैं, फिर इतनी ही मेहरबानी कर दीजिए, गरीबपरवर ! बीस की जगह तीस कर दीजिए, औरों को न हो तो न सही पर हम जैसों का तो जरूर ही बढ़ना चाहिए, जो अपने काम में निहायत मुस्तैदी और ईमानदारी बरतते हैं।"

जेलर का चेहरा सरमन की बातें सुनकर निस्तेज हो गया था। वह कभी सोच भी न सकता था कि एक आदमी का दिल इतना कठोर हो सकता है ! उसने सरमन को समझा-बुझाकर आश्वासन देते हुए घर लौटा दिया। तब सरमन चला आया था, और उसके बाद से अब तक कुछ नहीं कहा था। और न जेलर ने ही कुछ कहने-सुनने का प्रयत्न किया। बहुत दिनों के बाद सरमन आज फिर उसी जेलर के पास एक नये क़िस्म की याचना लेकर आया था। वह खुश था कि वह आज एक 'आदमी' की तरह जेलर से बात करेगा और उसे उसकी बातों में वह जहरीली कड़वाहट महसूस नहीं होगी जैसी पहले हुई थी। पर जेलर ने सरमन को बैरंग लौटा दिया, क्योंकि इस मामले से उसका कोई संबंध नहीं था। उसने सलाह दी कि वह अपनी सिफारिश लेकर उस जज के पास जाये, जिसने उस मुजरिम को फांसी की सजा दी है। सरमन जेलर के इस उत्तर से बिलकुल भी निराश नहीं हुआ। वह सीधा उस जज के पास गया, पर जज को बड़ी कड़वाहट महसूस हुई सरमन की बात सुनकर। ऐसा होने की बात ही थी। जल्लाद एक जज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से उस युवक की सजा माफ कर देने की दरख्वास्त लेकर आया था। वह कह रहा था, "मैं उस युवक के संबंध में कह रहा हूं, हुजूर ! जिसे कल सुबह फांसी होने वाली है। वह मेरे सामने रोया-गिड़गिड़ाया नहीं, पर उसने जो बात मुझसे कही, वह सचमुच ही दिल हिला देने वाली है। आप जानते हैं···इसी जेल में···मैंने इन्हीं हाथों से···" सरमन जज की ओर हाथ फैलाकर बोला—"जाने कितनों को लटका दिया है ? पर, सरकार ! मेरी जिन्दगी में यह पहला मौका है, जबकि इतना कमजोर मैं स्वयं को महसूस कर रहा हूं। परसों मैं उस युवक का वजन लेने गया था, आप आश्चर्य करेंगे, मालिक ! उसने मुझसे एक अजीब बात कह दी—ऐसी बात कि जो मुझ जैसे किसी भी कठोर आदमी का मन जीत सकती है।"

सरमन भावुकता में और भी न जाने क्या-क्या बकता, पर जज ने उसकी बातों से उकताकर पूछा—"क्या उसने प्राणों की भीख मांगी तुमसे ?"

"बिलकुल नहीं !" सरमन आंखें फाड़कर आश्चर्यपूर्वक चिल्लाया—"अगर ऐसा होता तो मैं आपकी सेवा में उसकी सिफारिश लेकर कभी न आता, मैं अपना फर्ज जानता हूं।"

जज बौखला गया, जल्लाद की बातों से, और फिर वह सिफारिश का नाम सुनकर तो और भी चिढ़ गया। वह क्रुद्ध होकर ऊंचे स्वर में चिल्लाया—"तुम उस कैदी की सिफारिश लेकर आये हो, जिसने झूठे संदेह पर अपनी पत्नी की हत्या कर डाली ? तुम्हारी सारी सिफारिश बेकार है ! मैं सजा दे चुका, अब कुछ नहीं हो सकता !"

जल्लाद ने अत्यन्त शांत स्वर में पूछा—"कोई रास्ता नहीं निकल सकता ?"

जज ने अपने चेहरे पर उदासी के भाव प्रकट कर दिये। "अब कोई रास्ता नही निकल सकता। उसकी अपील भी खारिज हो चुकी है। फांसी का दिन भी निश्चित किया जा चुका। सजा लिख देने के बाद कभी कुछ नहीं हो सकता।" जज ने बात पूरी की। सरमन के मन पर गहरी निराशा छा गई। फिर भी उसने एक बार और हिम्मत की—"क्या आपके हाथ में कुछ भी नहीं है, सरकार ?"

न्यायाधीश चुप हो गया। सरमन ने दो क्षण मौन का अर्थ समझा। फिर बोला—"तकलीफ माफ करें, हुजूर ! पर यह तय है, मैं उसे फांसी पर नहीं चढ़ाऊंगा। भले ही मुझे नौकरी से हाथ धोना पड़े। मैं उससे वायदा कर चुका हूं कि मैं उसकी इकलौती बच्ची को पाल लूंगा, जिसका उसके बाद दुनिया में कोई नहीं रहेगा। आप ही बताइये, हुजूर ! अगर मैं ही उसे फांसी पर लटकाऊं, तो इन्हीं हाथों से उसकी बच्ची कैसे पाल सकूंगा ? फिर सही बात तो यह है कि मैं इस पेशे के योग्य रहा ही नहीं !"

सरमन इतना कहकर जज के बंगले से लौट पड़ा। और जज ने अपनी कार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के ड्राइवर को बुलाकर, उसकी पिछली काम-चोरियों का जिक्र करते हुए उसे बहुत फटकारा, क्योंकि उसका मूड बिगड़ गया था, और उसके क्लब जाने का टाइम निकला जा रहा था।

१९६२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लछिमा

कीर्तन जोशी ने लछिमा को पहली बार छत्तीसगढ़ के एक गांव में देखा था। वह धोती के नाम पर घुटनों से ऊंचा एक कपड़ा लपेटे हुए थी और उसी कपड़े की पट्टी ने पीठ का चक्कर खाकर उसका सीना ढंक दिया था। लछिमा का रंग सांवला भले ही रहा हो पर चेहरा सुन्दर था उसका। उसकी आंखों में चंचलता और चितवन में चुभन थी। उस दिन वह नंगे पांव नदी किनारे की तरफ बड़ी मरदाना चाल में चली जा रही थी। उधर से आ रहा था कीर्तन जोशी। उसके साथ दो-चार आदमियों की भीड़ थी। किसी डाक्यूमेंटरी फिल्म के सिलसिले में आया था वह। लछिमा पास से निकली तो कीर्तन जोशी एकाएक ऐसे ठिठककर रह गया था जैसे रास्ते में कोई गहरा गढ़ा आ गया हो। उसने लछिमा की ओर घूरकर देखा तो उत्तर में लछिमा की आंखों में भी उसने ऐसा तीखापन पाया कि उसे लगा, जैसे बन्दूक की दो गोलियां उसके सीने में जा समायी हैं। अभी वह उन आंखों का तीखापन अनुभव कर ही रहा था कि लछिमा तेजी से मुड़कर पास की पगडंडी से गुजर गयी। कीर्तन जोशी देर तक वहीं खड़ा, दूर जाती हुई लछिमा को उस समय तक देखता रहा, जब तक कि वह पास के खेतों में जाकर आंखों से ओझल न हो गयी।

इस पहली भेंट में लछिमा को कीर्तन जोशी ने देख भले लिया हो पर किसी विशेष इरादे तक न पहुंचा था। इरादा तो उसने तब किया जब लछिमा से उसकी दूसरी भेंट हुई।

उस दिन गांव से कुछ दूर, दूरबीन गले में लटकाये वह फिल्म के एक-दो प्राकृतिक दृश्य शूट कर रहा था। कैमरामैन, सिनेरियो राइटर और फिल्म के दो-चार अभिनेता साथ थे उसके। एक ऊंचे टीले पर कैमरा फिट था और जोशी कैमरे में आंखें गड़ाये सामने के दृश्य देख रहा था, तभी उसने देखा—सामने की झाड़ियों के बीच से तीर की तरह निकलकर लछिमा उसी की ओर दौड़ी आ रही है। वह एक हाथ ऊपर की ओर उठाये हुए थी, जैसे रोक रही हो। कीर्तन जोशी ने रुककर उस संकेत को समझने का प्रयत्न किया। लछिमा पास आ गयी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थी। उसने जोर-जोर से नकारात्मक संकेत में हाथ घुमाते हुए कहा था—नईं ! नईं !

निष्क्रिय होकर कीर्तन ही नहीं, उसके सभी साथी अचरज से कभी उसे और कभी एक-दूसरे को देखने लगे। वे समझ नहीं पा रहे थे कि लछिमा क्यों हाथ हिला रही है ?

उन्हें यों निष्क्रिय देखकर खुश हुई थी लछिमा। उसके सांवले-सुन्दर चेहरे पर मुसकान की कुछ कलियां खिल गयीं। पर उसने ये कलियां फूल नहीं बनने दीं। फौरन ही आवाज का टोन बदला, चेहरे पर कुछ खिन्नता के भाव पैदा किए और कीर्तन जोशी, जो सबसे ज्यादा चमकदार कपड़े पहने हुए था, की ओर रुख करके गुर्राकर कहा—"बाबू साब ! सिकार का इतना ही सौक है तो गांव बाहर जंगल-ही-जंगल पड़े हैं। वहां करो।"

लछिमा की हर बात और क्रिया उनकी समझ में नहीं आ रही थी। वे उसी तरह बुत बने रहे। उत्तर न पाकर लछिमा और खीझी, उसे लगा, जैसे वे सब जान-बूझकर उससे कुछ हंसी कर रहे हैं, सो जरा तीखे स्वर में बोली—"सब के सब बहरे हो क्या ?" कुछ रुककर उसने कैमरे की ओर संकेत करके कहा—"इत्ती बड़ी तोप-बन्दूक ले के गांव में सिकार करने आये हो, किसी बड़े जंगल में जाते।"

लछिमा क्या कहना चाहती है, अब समझ पाए कीर्तन और उसके साथी। वह कैमरे को बन्दूक समझ रही थी और उन लोगों को शिकारी। कीर्तन उसे समझाये, इससे पूर्व ही लछिमा ने पहले की अपेक्षा कहीं अधिक क्रोधित होकर कहा, "तुम नईं जाओगे यहां से ! अच्छा," और फिर लपककर उसने कैमरे को पकड़ लिया। "नहीं जाओगे तो मैं तुम्हारी तोप नीचे खाई में फेंक दूंगी।"

"अ-र-र-र-र, सुनो तो सही !" कीर्तन जोशी ने घबराकर कैमरा सम्हाल लिया, "क्या करती हो ? यह तोप-बन्दूक नहीं, कैमरा है, कैमरा !"

"केमरा !" लछिमा ने आश्चर्य से पूछा। माथे पर बेतरतीबी से बिखर आये सूखे बालों को पीछे की ओर हटाकर बोली—"जे केमरा क्या होता है ?"

"कैमरा नहीं समझती ?" कीर्तन जोशी को उसके ढंग देखकर भय लगा था सो बड़ी ढीली-सी आवाज में उसे यों समझाने लगा, जैसे प्राइमरी का मास्टर कच्ची पहली के बच्चे को समझाता है। "कैमरे से फोटू निकलता है।"

"फोटू ?" लछिमा पहले की अपेक्षा और परेशान हुई। उसने सिर खुजलाते हुए पुनः पूछ डाला—"जे फोटू क्या है ? तुम मुझे बावरी बनाते हो ? इधर···" उसने दूर, जिधर से वह स्वयं आयी थी, संकेत किया—"मेरी बकरी चर रही है। तुम उसी पर निसाना लगा रहे थे। मैं सब जानती हूं।"

कीर्तन जोशी बड़ी उलझन में पड़ा। कुछ-कुछ उसे खीझ भी हुई। अजब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जंगली लड़की है। केमरा नहीं समझती, फोटू नहीं जानती! पर, वह व्यर्थ के झगड़े में नहीं पड़ना चाहता था, सो समझाने लगा—"तुम चिन्ता मत करो, ये बन्दूक नहीं है। हम शिकार करने नहीं आये हैं। थोड़ी देर तक यहीं ठहरो, हम तुम्हारे सामने ही अपना काम समाप्त कर चले जाएंगे।"

लछिमा को भरोसा नहीं आया था। डर था, कहीं वे लोग उसकी बकरी न मार दें। सारे गांव से सुना था, शहरी छली-कपटी होते हैं। यही सोचकर वह रुक गयी। अपने सामने उन्हें कुछ नहीं करने देगी। कीर्तन जोशी और उसके साथी काम-काज में लग गए थे पर उनमें से सभी बीच-बीच में उसे देख लेते—कभी लछिमा की ऊंची धोती से नंगी पिंडलियां और कभी बदन पर कपड़े का गसाव। लछिमा भी उन्हें देखती पर समझ न पाती कि वे उसे यों क्यों देख लेते हैं।

देर तक कैमरा इधर-उधर घुमा-फिराकर कीर्तन जोशी ने काम पूरा किया। सामान उठते देखकर लछिमा को बड़ी शांति मिली। उसकी बकरी बच गयी। इस बीच वह न जाने कैसी-कैसी अल्हड़ बातें सोचती रही—अगर ये लोग उसकी बकरी मार देंगे तो वह दौड़ के फगुआ को बुला लाएगी। फगुआ इन सबकी ऐसी खबर लेगा कि सारा छल-परपंच भूल जाएंगे। उसने इस बीच कई बार फगुआ के बारे में सोचा और हर बार मन-ही-मन शरमा गयी। यों मर्द गांव में जमाने भर के थे, जिन्हें वह देखती थी, कभी-कभी बातचीत भी करती थी, पर फगुआ को जब वह देखती, उससे बातें करती, उसके बारे में सोचती, तभी अजीब-सी लाज से भर जाती वह। न जाने क्यों रह-रहकर उसका बदन बेकाबू होने लगता। मन होता, उसके बालों से भरे सीने का तकुआ (तकिया) लगाये लेटी हुई घंटों चांदनी में डूबा आसमान देखती रहे। यहां बैठे-बैठे भी उसने फगुआ के बारे में अधिक और बकरी के बारे में कम सोचा। हर विचार ने उसे भीतर-ही-भीतर गुदगुदाया, शर्म पैदा की और सारे बदन को विचित्र-सी गर्मी से भर दिया। लगता, जैसे बदन के हर रोम में फगुआ समा गया है और उसे झिंझोड़ डालता है। ऐसी तन्मयता के साथ वह फगुआ के बारे में सोचती रही और कीर्तन जोशी और उसके साथियों के बारे में भी सावधान न हुई, जिनके कैमरों ने अनेक बार उस पर निशाने साधे थे, उनके शटर दबे थे और लछिमा विभिन्न रूपों-मुद्राओं में कैद होकर रह गयी थी।

सामान उठ गया। लछिमा ने देखा, कीर्तन जोशी उसके एकदम नजदीक खड़ा उसे घूर रहा था। उसकी आंखें लछिमा के चेहरे पर ऐसे गड़ी हुई थीं कि लछिमा के देखने पर भी नहीं हटीं।

लछिमा को सिवाय इसके और कोई अनुभूति नहीं हुई कि वह एक शहरी आदमी है। उसने न तो लज्जा का ही अनुभव किया और न सकुचाहट का।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बगैर कुछ कहे-सुने वह स्वाभाविक चाल में वापस हो ली। कीर्तन जोशी ने उसे रोका नहीं। देर तक उसे देखता रहा। उसके दिमाग में उस अगली फिल्म की कहानी घूमने लगी जो किसी ग्राम की पृष्ठभूमि पर बनने वाली थी। लछिमा से मिलने, देखने के बाद उसे लगा था, जैसे यह सरलता और सहजता कोई बड़े नाम वाली हीरोइन उधार भले ले ले पर यों उसकी गांठ में नकद नहीं हो सकती थी, जैसी लछिमा के पास थी। फिर कीर्तन ने निर्णय लिया था, जो भी हो वह लछिमा को ही उस फिल्म की हीरोइन बनाएगा और फिर छल-प्रपंच की फिल्मी दुनिया का माहिर कीर्तन जोशी अल्हड़-अक्खड़ लछिमा को बम्बई खींच ले जाने का प्रयत्न करने लगा था। वह उसी शाम अपने असिस्टेंट को साथ लेकर शानदार फिएट में, गांव के फैले-छितरे टापरों पर, कच्चे रास्तों की धूल उड़ाता, पूछता-टटोलता लछिमा के घर पहुंच गया था।

"घरिया गोंड का टापरा यही है ?" कीर्तन जोशी ने कार से उतरकर धड़प्प की आवाज़ से फाटक बन्द करते हुए उन नंग-धड़ंग लड़कों में से एक से पूछा, जो शोर मचाते हुए कार के इर्द-गिर्द इकट्ठे हो गए थे।

"हां, हां।" एक लड़के ने उसे जानकारी दी, "वो बैठा है घरिया।"

कीर्तन जोशी ने देखा, एक बूढ़ा गोंड, जो आदमी कम, ढांचा अधिक दिखता था, टापरे के दरवाजे, ओटले पर बैठा चिलम के कश खींच रहा था। कीर्तन ने टापरे की ओर बढ़ने से पहले अपना ईवनिंग इन पेरिस में डूबा हुआ कीमती रूमाल रख लिया। घरिया के सामने पहुंचते ही, बेहद कड़क स्वर में सवाल कर दिया, "तेरा नाम घरिया है ?"

"जी, माई-बाप !" घरिया के हाथ में चिलम कांपी। उसने कीर्तन जोशी के चमकते कपड़े और सिर पर रखा खाकी टोप देखा तो लगा कि थानेदार आया है।

घरिया की स्थिति देखकर कीर्तन जोशी के चेहरे पर एक हल्की-सी मुसकान उभरी पर प्रकट नहीं होने दिया उसने। कार्य-सिद्धि के लिए उसे दबाव की भी जरूरत थी। सन्देह था, जंगली लोग हैं, जाने क्या कर बैठें। सो खुशामद नहीं करना चाहता था वह। वैसे ही भारी स्वर में बोला—"हम फिल्म वाले हैं।"

"फिल्म वाले !" घरिया समझ नहीं सका। इस गांव के बीस मील के इर्द-गिर्द में उसकी तमाम उम्र बीती थी। इस बीच उसने न फिल्म नाम की कोई चीज़ सुनी थी, न फिल्मवाले। "क्या होते हैं ये लोग ?"

कीर्तन जोशी ने फिल्म का सरलीकरण किया—"हम सिनेमा वाले हैं।"

"सिनेमा ?" घरिया ने समझा। फिर ये जानकर कि बड़े आदमी होते हैं सिनेमावाले, बोला—"ठीक है, महाराज, ठीक है।" फिर वह फुर्ती से टापरे के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भीतर जाकर चटाई ले आया। कीर्तन और उसके साथी जब चटाई पर बैठ गये तो घरिया दोनों हाथ बांधकर दीनतापूर्वक उनके सामने खड़ा हो गया। "क्या अपराध हुआ हजूर, जो मेरे यहां तक आये? मुझे ही बुलवा लेते सिरकार, डाक बंगले पे हाजिर हो जाता!"

कीर्तन मुसकराया, पर निहायत सफाई के साथ। पूछा—"तुम लछिमा के बाप हो?"

"जी, हजूर!" घरिया ने पूर्ववत् घबराये हुए स्वर में स्वीकार किया, जैसे लछिमा को पैदा कर उसने भूल कर दी हो कोई। बोला—"लछिमा को मैं समझा दूंगा, साब। बड़ी ऊधमी लड़की है।" घरिया यों एक कोट-पतलून वाले के मुंह से लछिमा का नाम सुनकर घबरा गया था। वह लछिमा का स्वभाव भली-भांति जानता था। बड़ी अक्खड़ है वह।

कीर्तन जोशी ने सफलता के हर्ष में डूबी आंखों से अपने साथी की ओर आंखों-ही-आंखों में कुछ संकेत किया। साथी ने जेब से नोटों की एक गड्डी निकालकर घरिया के आगे डाल दी।

घरिया आंखें फाड़े देखता रह गया—इतने रुपये? उसने सारे जीवन देखना तो दूर, कल्पना भी न की थी।

"ये सब तुम्हारे लिए हैं।" कीर्तन जोशी ने कहा, "तुम्हारी लछिमा को हम बम्बई ले जाएंगे और सिनेमा कम्पनी में भरती कर लेंगे। फिर वह यह एक ही क्या, ऐसी सैकड़ों गड्डियां कमाएगी और तुम इस गंदे टापरे में नहीं, किसी बड़े महल में रहना।"

घरिया अवाक्। मन होता था कि कुछ कहे पर बोल नहीं निकल रहा था। सब कुछ यों नाटकीय हुआ कि घरिया की तो बोलती ही बन्द हो गयी। सारे शब्द गले में जमकर रह गये हों जैसे।

कीर्तन जोशी कहता गया, "चिन्ता मत करो, सब कुछ मिल जाएगा तुम्हें। तुम्हें ताड़ी का शौक है न?"

"हूं," किसी अबोध बालक की तरह मासूमियत के साथ सिर हिलाकर घरिया ने स्वीकार किया।

"नाइस!" कीर्तन जोशी बोला—"ताड़ी क्या, अब तो अंग्रेजी मिलेगी तुम्हें। विलायती, समझे! ये रुपये उठा लो।" और इससे पूर्व कि घरिया को बोलने का कुछ मौका मिले, कीर्तन उठ खड़ा हुआ। वापस कार की ओर बढ़ते हुए बोला—"लछिमा को तैयार करके खुद भी तैयार रहना।"

कार में प्रवेश करते समय कीर्तन ने देखा, सामने से लछिमा चली आ रही थी। कोई गोंड युवक था उसके साथ—सांवले रंग का गठीले बदन वाला।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लछिमा ने पुनः एक तीखी और चुभने वाली दृष्टि कीर्तन पर फेंकी तो उसने झटपट गाड़ी स्टार्ट की और चला गया।

लछिमा घर में आयी। बूढ़े घरिया ने एक हंसी के साथ उसका स्वागत किया। हाथ के संकेत से पास बुलाकर बिठाया। बड़ा अचरज हुआ लछिमा को। पहले तो कभी घरिया यों हंसता-बोलता न था, ऐसे एकाएक ही ठूठ में पौधा कहां से फूट निकला!

लछिमा ने साथ के युवक को भी पास बुला लिया—"तू भी बैठ।"

"खेत से आ रही है?" घरिया ने पूछा।

"हां।" लछिमा ने उत्तर दिया, "आज मैंने और फगुआ ने मिल के सारी मेड़ें बांधी हैं, दाऊ।" वह घरिया को दाऊ ही कहती थी। "फगुआ ने बड़ी मेहनत की। इसने पहले अपने खेत की मेड़ें बांधीं, फिर हमारी बंधवायीं।" बात पूरी कर लछिमा ने युवक की ओर देखा, वह मुसकरा रहा था।

बूढ़े घरिया ने युवक की पीठ ठोंकी। "फगुआ मेहनती है। मैं खूब जानता हूं। पर अब तो खेत पर मेहनत की जरूरत ही नहीं।"

"क्यों?" लछिमा सोच में पड़ गयी। उसे लगा, जैसे हमेशा की तरह घरिया ने फिर ताकत से ज्यादा ताड़ी पी ली है।

"अब अपुन दूसर काम करेंगे।" घरिया पूर्णतः गम्भीर होकर बोला, "ऐसा काम कि महलों में रहेंगे, मोटरगाड़ी में सवार होकर घूमेंगे और सिलिक के कपड़े पहनेंगे। तू मनों सोने से लद जाएगी।"

लछिमा ने सुना तो बहुत थामने पर भी हंसी नहीं थाम सकी। खिलखिलाकर हंस पड़ी और देर तक हंसती रही। उसके पेट की नसें दुखी तो पेट थामकर हंसी। उसे लगा, घरिया आज कसके पी आया है सो आपे में नहीं है। वह जानती थी कि जब-जब घरिया पीता था, ऐसी ही हवाई बातें करता था। एक बार समाज की भरी पंचायत में पी आया था वह और आते ही बोला था—"मैं राजा हूं, तुम सब मेरे चाकर।" लोगों ने उसे खड़े से दबाकर बिठाल दिया था। यही सोचकर कह दिया लछिमा ने—"हां-हां, ठीक है। अब तू सो जा, दाऊ। सुबेरे तक उतर जाएगी।"

घरिया ने चिढ़कर कहा—"तू मुझे नसे में समझती है, क्यों?"

"नईं! नईं! तू तो पूरे होस में है!" मुसकराकर लछिमा ने उसका मन रखा।

"ठट्ठा समझती है क्या?" घरिया वैसे ही बोला—"अच्छा, देख!" और फिर उसने अपनी जांघ के नीचे दबी नोटों की गड्डी निकालकर लछिमा के सामने रख दी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लछिमा की सारी हंसी यों उड़ गयी, जैसे चेहरे पर हंसी नहीं, पेट्रोल फैल गया था, हवा लगी और उड़ गया। घबराकर उसने पूछा— "कहां से आये इत्ते रुपये ?"

"अपुन बम्बई जाएंग मूरख !" घरिया ने हंस-हंसकर रुपये-प्राप्ति की सारी कहानी कह सुनायी। सुनाते समय घरिया का हर शब्द हर्षावेग में डूबता चला गया और सुनते-सुनते हर क्षण लछिमा उदास होती गयी। घरिया सुनाने में इतना तन्मय था कि उसे लछिमा के किसी भाव की खबर ही न थी और लछिमा उदासी में इतनी डूब गयी कि उसे फगुआ उठकर चला गया है, इसकी खबर भी नहीं हुई।

घरिया ने कहानी समाप्त की और अपने विचार प्रकट करने प्रारम्भ कर दिए। "भगवान सबकी सुनता है, लछिमा। अब अपनी बेरा आयी है। तू सिनेमा में भरती हो जाएगी, बस आनन्द हो जाएंगे।"

पर लछिमा ने कुछ नहीं सुना। वह उठी और पुनः घर से बाहर चली गयी। उसे क्रोध था उन शहरियों पर, जिन्होंने नोट दिखाकर उससे उसकी सारी हंसी-खुशी छीन लेने का दुस्साहस किया था। वह लम्बे-लम्बे डग रखती हुई, निर्भय उस ओर जा रही थी, जिधर डाक-बंगले में कीर्तन अपने साथियों सहित ठहरा हुआ था। उसने निश्चय किया था, वह उन शहरियों को खूब डांटेगी। साफ-साफ कह देगी— 'तुम जी चाहे जितने नोट बरसाओ, फगुआ को छोड़कर मैं तुम्हारे साथ नहीं जाऊंगी। तुम घरिया को चाहे जितनी ताड़ी पिला दो, मैं खेत छोड़कर दूर देश नहीं जाऊंगी। फिर तुम नोटों के सिवाय दे ही क्या सकते हो मुझे ? फगुआ की-सी हंसी हंस सकते हो तुम ? मेड़ों पर उतना काम करवा सकते हो तुम ? फिर मैं तुम्हारे साथ क्यों जाऊं ? मैं अपने टापरे में भली हूं। मैं नहीं जाऊंगी।'

डाक बंगला आ गया था। लछिमा तेज चाल में बढ़ती गयी। एक कमरे के पास से गुजरते हुए वह ठिठककर रुकी। उसने झांककर देखा—वे शहरी एक टेबिल के इर्द-गिर्द कुरसियों पर बैठे हुए थे। टेबिल पर शराब की कुछ खाली शीशियां और गिलास रखे हुए थे। वे सफेद बीड़ी पी रहे थे और गपशप का दौर चल रहा था। लछिमा पांव आगे बढ़ाना चाहती थी, पर उनमें हो रही बातचीत सुनकर रुक गयी।

एकदम सामने की कुरसी पर बैठा हुआ कीर्तन जोशी लगभग झूम रहा था। उसकी आंखें चढ़ी-सी लग रही थीं। कह रहा था—"मेरी फिल्म में जान पड़ जाएगी। तुमने लछिमा की आंखें देखी हैं ? कैसी शराब भरी है उनमें ? कैसे चलती है ? यूं···यूं···" कीर्तन जोशी ने नशे की झोंक में कुरसी पर ही कमर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिलाकर बताया, "औरत क्या है, चलती-फिरती शराब है !"

लछिमा ने होंठ काट लिये—"मुए ऐसे ही हैं, तभी तो घूर-घूर के देखते थे मुझे।"

"लोगों को क्या चाहिए ?" जोशी कहे जा रहा था, "चेहरा-मोहरा, नागिन-सी चाल, गुस्से हो तो सुर्ख हो जाएं, हंसे तो बिजलियां गिरा दें। और लछिमा में क्या नहीं है ? जरा ढंग सिखाना पड़ेगा उसे, बाकी तो सब ठीक है। मैं जरूर ले जाऊंगा उसे, जरूर।"

"पर चिड़िया फंसे तभी तो ले जा पाओगे ?" किसी ने बीच ही में सवाल उठाया।

"फंसेगी कैसे नहीं ?" जोशी ने सिर कुरसी के पीछे की ओर ढुलका दिया। "उसका बाप ताड़ी का शौकीन है। वर्मा को भेजा है मैंने। अभी ताड़ी में डुबो देगा उसे। बात पक्की कर आएगा। कल ही ले जाना है उसे। देखना बाबू, पैसा कैसे बरसता है ?"

न जाने क्या हुआ कि लछिमा उन्हें डांटने-फटकारने के बजाय उलटे पैर लौट पड़ी घर की ओर। तमाम राह उसके कानों में कीर्तन जोशी के शब्द रह-रहकर गुजरते रहे। कोई उपकार नहीं कर रहा था वह, बल्कि उसे लछिमा के चेहरे-मोहरे, चाल-ढाल की जरूरत थी। न जाने क्या चाहता है वह ? पैसा कैसे बरसेगा ? जो भी हो, लछिमा उसके साथ नहीं जाएगी। लछिमा ने सोचा, कोई बुरा काम तो है ही, जिसकी खातिर वे लोग उसके बाप घरिया को नोटों और ताड़ी के जाल में फंसा रहे हैं। सोचकर लछिमा को घरिया पर क्रोध आया—मुआ ! बेटी तक को ताड़ी में घोलकर पी जाना चाहता है। सड़क का चक्कर न खाकर सीधी पगडंडी की राह टापरे पर आ गयी वह। सारे घरों में दीया-बत्ती हो गयी थी, एक उसी के घर में अंधेरा था। लछिमा ने देखा, चबूतरे पर औंधे मुंह घरिया पड़ा था। ताड़ी की दुर्गन्ध से मन मचल उठा लछिमा का। किवाड़ खोला उसने तो घरिया लेटे-ही-लेटे कह उठा—"आ गयी तू ? दीया मलका (जला) दे।"

लछिमा ने कुछ कहा तो नहीं, दांत पीस लिये। उसने भीतर जाकर दीया जलाया। घर का अंधेरा भले छंटा हो, मन का अंधेरा ज्यों-का-त्यों था।

बाहर से नशे में डूबे शब्दों में पुकार रहा था घरिया—"लछिमा, ओ लछिमा !"

लछिमा बाहर आ गयी—"बोल !"

"अपना सामान लगा लियो। सुबेरे तो बाबुओं के साथ बम्बई जाएंगे !"

तो बात हो गयी पक्की ! लछिमा के मन में कई-कई बार बिजलियां कौंध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गयीं। मन में एक विचार आया था, भाग जाए घर से। पर लछिमा ने स्वयं को बेहद लाचार अनुभव किया। घरिया कहीं का नहीं रहता, सारे समाज में भद्द हो जाती उसकी। लछिमा ने कड़वी दवा की तरह यह विचार त्याग दिया। देर तक खड़ी-खड़ी वह सोचती रही—'घरिया जिद का पक्का है।' वह जानती थी, तिस पर नोटों का जाल! उसे ताड़ी चाहिए, बाकी कुछ भी नहीं। लाख समझाती लछिमा, पर घरिया जरा नहीं मान सकता था। ताड़ी की खातिर उसने लछिमा की मां को भी बड़े-बड़े सरकारी अफसरों के यहां भेज दिया था, फिर लछिमा की क्या बिसात? इस बीच उसे अनेक बार फगुआ का ख़याल आया और हर बार वह पहले की अपेक्षा बेचैन होती गयी। सुबह वे सुआरथी आ जाएंगे और हर विरोध के बावजूद लछिमा को जाना पड़ जाएगा। एक बार मन हुआ था लछिमा का, उन शहरियों के पास जाए, उनके पांव पकड़ ले, कहे—'मुझे छोड़ दो। ये खेत, गांव, फगुआ—मैं किसी को नहीं छोड़ सकती।' पर यह विचार उसे व्यर्थ लगा। वे भला उसे क्यों छोड़ते? उन्हें उसकी चाल-ढाल और शराबी आंखों की जरूरत है। पैसा बरसेगा इनसे! लछिमा की पलक से पलक नहीं मिली। रात गुजरती जा रही थी।

सुबह ही कीर्तन जोशी गाड़ी लेकर पहुंच गया। घरिया अब तक ताड़ी की नींद में चबूतरे पर फैला हुआ था। कीर्तन जोशी ने दोनों कंधे पकड़कर उठाया उसे। आंखें मलते हुए उठा तो शक्ल ऐसी हो रही थी, जैसे रात-भर की मार खाकर सोया हो।

"तुम तैयार नहीं हुए अभी तक?" कीर्तन जोशी ने ऐसी कड़ाई से पूछा, जैसे घरिया एक अर्से से गुलाम रहा हो उसका।

"मैं तो तैयार हूं साब," घरिया खुमारी पर काबू रखकर बदन में फुर्ती भरते हुए बोला, "लछिमा तैयार हो गयी होगी, बुलाता हूं उसे।" फिर बगैर उत्तर की अपेक्षा किए वह उठा और टापरे में चला गया।

कीर्तन जोशी चबूतरे पर ही खड़ा हुआ इन्तजार में सिगरेट जलाने लगा। एकाएक भीतर टापरे में से घरिया की चीख सुनी उसने। सिगरेट फेंककर वह भीतर गया। उसने देखा, लछिमा धरती पर पड़ी हुई थी। उसके पास ही कुछ जले हुए कपड़े पड़े हुए थे। कीर्तन ने उसका चेहरा देखा तो घृणा से मुंह फेर लिया। उसके तमाम चेहरे पर फफोले पड़े हुए थे। भवें और आंखों के कोये करीब-करीब साफ हो गए थे। पीड़ा से वह सिर भी नहीं हिला पाती थी। रह-रहकर हाथ पटकती। कीर्तन जोशी को सामने देखा उसने, तो बड़ी मुश्किल से बोल पायी—"शहरी बाबू! अब तुम मुझे कैसे ले जाओगे? मेरा चेहरा-मोहरा ही न रहा, अब पैसे कैसे बरसेंगे?" वह आगे भी कुछ कहती किन्तु जलन और दर्द ने शब्दों को कराहों में बदल दिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घरिया रो भी नहीं पा रहा था। कीर्तन जोशी फुर्ती से पलटा और टापरे से बाहर हो गया। कार की ओर बढ़ते हुए उसकी भेंट फगुआ से हुई, जो लछिमा के टापरे की ओर जा रहा था।

कीर्तन ने बैठते ही कार स्टार्ट कर दी।

१९६२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भोली

"काजू ऽऽऽ ! मखाने ऽऽऽ !!"

दो तीखी-सी आवाजें देकर भोली ने सीने से खिसककर नीचे की ओर आ गया आंचल सम्हाला। ओढ़नी साटन की थी, सो कमबख्त थमती ही न थी। ढाल पर दोबारा पहुंची तो सरककर फिर नीचे आ गयी। भोली एक हाथ से सिर पर काजू-मखानों भरी पोटली सम्हाले थी। उसे थोड़ी खीझ-सी हुई। बेकार ही ये साटन वाली ओढ़नी पहनकर सौदे को निकली। अभी मुश्किल से बीस घर निकली होगी, चार घर सौदा किया होगा और मुई ओढ़नी चालीस बार सरक गयी।

"काजू ऽऽऽ ! मखाने ऽऽऽ !!" भोली ने दोबारा आवाज दी और चलते में एक मिनट रुककर फिर ओढ़नी सम्हाली। यह ओढ़नी सम्हालते, भोली ठीक से माल की आवाज भी न दे पायी थी। यही कारण था कि इतनी बड़ी गली के गसगसाए मोहल्ले से किसी ग्राहक ने उसे नहीं बुलाया था। भोली ने पूरा जोर लगाकर लगातार दो आवाजें दीं--"काजू ऽऽऽ ! मखाने ऽऽऽ !! काजू ऽऽऽ ! मखाने ऽऽऽ !!" पर कोई बुलावा नहीं। खीझकर भोली ने आधी गली से ही रुख बदल दिया। मन हुआ चिल्लाकर इन मोहल्ले वालों से कहे, 'सब-के-सब मुफलिस हो क्या ? काजू-मखाने नहीं खाओगे, तो औलाद सींक की नाई निकलेगी।' माल की पोटली का बोझ उठाए भोली इस गली में कम-से-कम दो सौ कदम आयी, और तकदीर देखो कि इन दो सौ कदमों में दो मखाने भी न बिके।

भोली ने गली पार की और नयी गली में चली आयी। उसी पुरानी टोन में तीखे मन से उसने आवाज दी।···इसे कहते हैं मोहल्ला। पहली आवाज पर ही मोड़ के घर का दरवाजा ऐसे खुला जैसे अलादीन ने 'खुल जा सिम-सिम' कहा हो और पत्थर की चट्टान हटती हुई एक बगल हो गयी हो।

खुले दरवाजे से लकदक सफेद कपड़े पहने एक सूखा-सा बदरंग चेहरा झांका। एक कठोर-सी आवाज आयी--"इधर आ, ए मखाने···।"

भोली उधर ही चल दी। उसने देहरी पर पोटली रखी, तो आंचल खर्र से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरककर फिर नीचे आ रहा। भोली उसे संवारने लगी, तो उसने देखा—वह बदरंग चेहरे वाला ग्राहक कुछ ऐसी भूखी नजरों से उसे देख रहा था, जैसे कोई तीन दिन से भूखा भिखारी हो और भोली का सीना ताजे रसगुल्लों से भरा थाल ! लजा गयी भोली। उसने फुर्ती से ओढ़नी सम्हाली और ग्राहक से सवाल किया—"काजू लोगे कि मखाने ?"

ग्राहक वैसे ही बुत की तरह खड़ा रहा तो भोली ने हंसकर उसका ध्यान तोड़ा—"ए बाबू ! का देखो हो ?···मखाने बताऊं कि काजू ?"

"ऐं ! हां···हां···" ग्राहक सम्हला, जैसे घंटों बाद होश आया हो। बोला—"दोनों बताओ, दोनों बताओ।"

"दोनों लोगे ?" भोली बड़े साधारण तरीके से बोली और फिर उसने पोटली खोलनी प्रारम्भ कर दी।

"वहां देहरी पर क्यों बैठी हो ?" ग्राहक ने भीगी-सी जबान से कहा—"इधर भीतर आ जाओ।"

पोटली खोलते भोली के हाथ थम गये। उसने सिर उठाकर ग्राहक की ओर कुछ ऐसी तीखी नजरों से देखा कि उसने उसे घूरना बन्द कर आंखें झुका लीं और कहने लगा—"वहां देहरी पर बैठना अच्छा नहीं लगता। कुछ भीतर आकर बैठो न !"

भोली ने कुछ कहा तो नहीं, पोटली उठाकर बड़ी सामान्य चाल में भीतर आ गयी। उसने पोटली खोली। भीतर दो पोटलियां और थीं। भोली ने उन्हें भी खोल डाला। एक में काजू थे, एक में मखाने। अब भोली ने दुकानदाराना बात प्रारम्भ की, "जे सब माल खास बलूचिस्तान का है बाबू। जरा देखो तो सही !"

उसने काजू के दो-चार दाने मुट्ठी में उठाकर ग्राहक की ओर किये—"काजू है कि मानो मक्खन, फल बनके झाड़ से निकला है। पन्द्रह दिन खाओगे तो चेहरा यों चमकने लगेगा, जैसे सलोलेट (सैल्यूलॉयड) का नया खिलौना कारखाने से ढलकर बाहर आया हो। बदन चम्पा की तरह महकेगा बाबू !" भोली एक क्षण रुककर बोली, "जरा दो दाने खाके तो देख लो। राजी पड़े तो लेना नहीं तो जमाना पड़ा है बेचने को।"

ग्राहक ने हाथ बढ़ाकर काजू के दोनों दाने लिये और मुंह में डालकर चबाते हुए बोला, "बड़े मजेदार काजू हैं तेरे। जैसी जुबान है तेरी, ठीक वैसे ही मीठे हैं ये। क्या भाव है ?"

"भाव-ताव क्या ?" भोली दुकानदाराना ढंग में बोली—"सारे शहर को छह रुपये दिए हैं, तुम्हारे लिए साढ़े पांच लगा दूंगी।" बात समाप्त कर भोली ने ग्राहक की ओर कुछ इस तरह मुसकराकर देखा कि उसे लगा, जैसे ऊनी कोट की भीतर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाली जेब से अपने आप नोट उड़कर अभी भोली की अंगिया में जा समाएगा। वह खड़े से बैठ गया। उसने एक नजर काजुओं के ढेर पर और दूसरी नजर भोली के सारे तन-बदन पर दौड़ायी। इस तरह गली-गली, द्वारे-द्वारे सब्जी-भाजी या ऐसे मेवे बेचने वाली जवान लड़कियों के प्रति उसकी धारणा कतई अच्छी न थी। मन में कुछ साहस संजोया। जुबान सूखे होंठों पर फिरायी, फिर बड़ी मीठी आवाज से पूछा, "कहां से आयी है तू ?"

"हम तो बाबू खानाबदोश हैं। कौन जगह से आये हैं, कोई खास ठिकाना नहीं ?" भोली ने जवाब दिया। उसने काम की बात की, "काजू पसन्द नहीं आये क्या ?"

"काजू ? हां-हां, काजू तो बहुत पसन्द आये हैं।" ग्राहक बोला, "क्या भाव बताया तूने ?"

"साढ़े पांच रुपए सेर। कितना तोलूं ?"

"ऐं !" ग्राहक चौंककर बोला—"तोल दे सेर भर।"

"बस, सेर भर ?" भोली ने उलाहने के ढंग से कहा, "सेर भर से तो आठ रोज का नाश्ता भी नहीं होगा।"

"ठीक कहती है, ठीक कहती है।" ग्राहक बोला—"तो दे दो सेर।"

भोली ने काजू तौलने प्रारम्भ किए, और जब तक तौलती रही, तब तक ग्राहक उसे पहले की तरह ही घूरता रहा। काजू तुल गए तो भोली ने पूछा—"मखाने नहीं लोगे, साहब ?"

ग्राहक ने कहा—"लूंगा क्यों नहीं ? पहले बता तेरा नाम क्या है ?"

भोली हंसकर बोली—"मखाने।"

"मखाने ?" अचरज से ग्राहक ने कहा, "मखाने भी कोई नाम होता है ?'

"सौदा तुम्हें मखाने का करना है कि मेरा ?" भोली ने निस्संकोच, निडर होकर उत्तर दिया।

ग्राहक कटकर रह गया। कहने लगा, "मैंने तो यों ही पूछा। खैर, छोड़ मखाने, मैं नहीं खरीदूंगा।"

"तुम्हारी राजी।" भोली ने पोटलियां बन्द कर दीं। ग्राहक से बोली—"एक दस का नोट और एक रुपया ऊपर से।"

ग्राहक कुछ कहता, पर भोली के एक उत्तर ने ही उसका विश्वास डगमगा दिया था। उसने चुपचाप जेब से ग्यारह रुपए निकालकर दे दिए। भोली ने उन्हें अंगिया के भीतर खोंसा, पोटलियां सिर पर रखीं और तेज चाल से गली में आ गयी। फिर एक आवाज दी—'काजू ऽऽऽ ! मखाने ऽऽऽ !!' इस गली से उस गली और उस गली से अगले बाजार भोली शाम तक घूमती रही। नियमित क्रम के अनुसार जब शाम को उसकी पोटलियां खाली हो गयीं तो उसने घर की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राह ली। घर क्या, शहर के छोर पर खुले मैदान में कबीला पड़ा हुआ था। कबीले में कई जवान लड़कियां थीं। उनके साथ कई धन्धे थे। कुछ चाकू-छुरियां बेचतीं, तो कुछ काजू-मखाने। पुरुष बाजार के चौक पर जड़ी-बूटियां बेचते और वृद्धाएं कबीले का खाना तैयार करतीं।

भोली राह चलते बहुत कुछ सोचती गयी। उसका कबीला शहरों-शहरों घूमता था और हर शहर वह काजू-मखाने बेच-बेचकर तंग आने लगी थी। यों काजू-मखाने बेचने का यह धन्धा बुरा नहीं था, पर इस धन्धे के साथ उसे जैसे अजीबोगरीब अनुभव होते थे, उनसे उसे घृणा थी। अभी हाल उसने उस शहरी बाबू से दो सेर काजुओं का सौदा किया तो उसे कितनी मानसिक पीड़ा उठानी पड़ी, इसे केवल वही अनुभव कर रही थी। इन दो सेर काजुओं के सौदे की खातिर उसने कितनी घृणित नजरों को बर्दाश्त किया था, कितने बेतुके प्रश्नों का उत्तर दिया था, यह अनुभव कर आत्म-ग्लानि से उसका मन भर आया। कई ग्राहकों के तो उसे बेहद गंदे अनुभव थे। सोचते-सोचते उसे उस दिन की घटना याद आयी जब एक ग्राहक ने सौदा लेते-लेते उसका बाजू पकड़ लिया था। जैसे-तैसे वह वहां से बच निकली थी और उसके बाद कई दिनों अपनी लाचारी पर भाग्य को कोसती रही थी। मन होता था, इस घृणित जीवन से दूर होने के लिए किसी कुएं में जा गिरे, आत्महत्या कर ले। पर यों एकाएक आत्महत्या का निर्णय आसान न था। अभी-अभी उसने वसंती उम्र में पांव रखा था। उसे जिन्दगी, दुनिया सभी से बहुत प्यार था। फिर एकाएक ऐसा कैसे सम्भव था कि वह आत्महत्या कर लेती। इन तमाम उमंगों का गला घोंट देती, जो उसके मन में अभी-अभी पैदा हुई थीं।

यों कबीले में उसी की तरह की कई औरतें थीं, जो वस्तुएं बेचने का धन्धा करती थीं। उन सभी को उसी जैसे अनुभव थे, पर वे सब उन अनुभवों का आनन्द लेती थीं। कई-कई तो ऐसे अनुभवों में खुद को डुबाकर ही खुश थीं। पर भोली को यह सब पसन्द न था। उसे सौदे के अलावा ग्राहक की कोई छानबीन पसन्द न थी। वह चाहती थी, सिर्फ चीज़ का सौदा हो, उसके बारे में प्रश्नोत्तर हों, वह बिके, इसके अलावा कोई बात उसे बिलकुल न भाती थी। किन्तु जो वह चाहती थी, वह न होकर उससे अलग ही सब कुछ होता था। होता यह था कि अकसर ग्राहक काजू देखने के बजाय, उसकी अंगिया घूरता, उसका चेहरा देखता, भाव पूछने के बजाय, उसके मुंह से आहें झरने लगतीं, बातचीत में एक नशे का-सा आभास होने लगता और वह अधिक-से-अधिक उसके नजदीक आने की चेष्टा करने लगता—इतना नजदीक कि भोली के बदन से उसका बदन छू जाए, और तब भोली की इच्छा होती, सामान उठाए और वहां से भाग निकले। पर पेट की लाचारी से भोली कुछ भी न कर पाती। बड़ी सहनशक्ति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के साथ वह ग्राहक की हर हरकत पी जाती, उसे उसकी हर गलत बात का उत्तर देना होता, हर नजर एक मुसकान के साथ झेल लेनी पड़ती और सौदा करके ही हटना पड़ता।

भोली सोचती रही और मन में ग्लानि और क्रोध के भाव आते-जाते रहे। उसे एक घटना याद आयी—जब वह ऐसे ही काजू-मखाने बेचने एक घर जा पहुंची थी। किसी पढ़े-लिखे, बड़े आदमी का घर था। सुन्दर-सुन्दर टेबिल-कुर्सियां पड़ी हुई थीं। दीवारों पर खूबसूरत तसवीरें और तमाम कमरे में बेतरतीबी से किताबें बिखरी पड़ी थीं। भोली ने पोटली खोलते ही जान लिया था, आज सौदा खूब होगा। यह अन्दाजा लगाया था उसने कमरे की भव्यता और ग्राहक को देखकर। ग्राहक की अच्छी-भली तन्दुरुस्ती थी, बाल तरतीब से संवरे हुए थे और आंखों से एक अजीब-सी शालीनता टपकती थी। भोली को उसका चेहरा और बदन देखकर लगा था, जैसे वह तमाम उम्र काजू-पिस्ते ही खाता रहा है। इससे खूब सौदा पटेगा। उस दिन की बात याद आयी भोली को, तो सारे बदन में खून की रफ्तार तेज हो गयी। पोटली खुलते ही उस ग्राहक ने एक विचित्र-सी मुसकान बिखेरकर भोली से कहा था—"तेरे सारे काजू पसन्द हैं। तोल दे।"

भोली अवाक् उसे देखती रह गयी।

"हां-हां, तोल दे।" वह बोला।

"पर भाव···?"

"भाव छोड़।" उसने उसी तरह मुसकराकर कहा—"तू तोल तो कर जल्दी से।"

भोली ने तोल प्रारम्भ कर दी। पोटली के कुल काजू चार सेर थे। भोली तोल पूरी करके बोली—"साब, चार सेर हैं।"

"दाम बोल !" साहब बोला।

भोली ने दाम बताए—"बीस ऊपर दो रुपये।"

साहब ने जेब से दस-दस के तीन नोट निकालकर उसकी ओर फेंक दिए।

भोली ने कहा—"मेरे पास छूटे नहीं हैं।"

"तो रहने दे," साहब बोला—"सारे ले जा तू।"

भोली आश्चर्यचकित रह गयी। एकाएक कुछ न कह सकी, फिर बोली—"मगर···?"

"मगर क्या ?" उसी रोब-दाब से उस पढ़े-लिखे साहब ने कहा—"ले जा।"

भोली की हिम्मत न हुई कि नोटों को अंगियां में खोंस ले। जब नोट वैसे ही धरती पर पड़े रहे तो साहब ने झुककर उन्हें उठाया और गुड़ीमुड़ी करके झट से उसकी अंगिया में खोंस दिया। ऐसा करते समय, भोली सम्हल भी न सकी। साहब के हाथ उसके उरोजों से टकराए तो भोली को यों लगा, जैसे सारे बदन में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हजार-हजार बिच्छुओं ने डंक मार दिये हों। मन हुआ, धरती पर लेट जाए और छटपटाने लगे। मर्द का हाथ पहली बार उसकी छाती से लगा था। भोली की तमाम उम्र ने उसे झकझोर डाला। घबराहट में वह कांपने लगी, कुछ कह भी न पायी। लज्जावश उसने गर्दन झुका ली थी।

साहब हंस पड़ा। उससे भोली की स्थिति छिपी न रही। बोला—"डर गयी तू! घबरा मत।" उसने कहा—"मैंने तो यों ही किया था, तू पैसे ले जा, छुट्टे मेरे पास भी नहीं हैं। कल दे जइयो।"

भोली ने बहुत हिचकते-हिचकते पूछा था—"मुझ पर भरोसा है?"

"भरोसा?" साहब ने हंसकर कुछ इस तरह उसे देखा कि वह शरमा गयी। "तेरी हर बात पर भरोसा है। जा।"

भोली उठी और चली आयी। उस दिन सारी रात वह उसी के बारे में सोचती रही थी। कैसा आदमी है? उसने अंगिया छुई तो भोली का मन हिला दिया पर उसके खुद के मन में जैसे जरा भी आग न लगी। नोट यों फेंक दिये और आठ रुपये का भरोसा कर लिया। नहीं तो इस जमाने में कोई आठ पैसे का भी भरोसा करता है? अनजाने ही भोली का मन उस साहब के प्रति श्रद्धा से भर आया था। और, दूसरे दिन ही वह आठ रुपये वापस करने पहुंच गयी।

साहब ने हंसकर कहा था—"बड़ी जल्दी ले आयी?"

भोली कुछ नहीं बोली।

"अच्छा, बैठ।"

भोली बैठ गयी।

"अब तोल दो सेर काजू।" साहब उसी तरह हंसकर बोला। उसने तीन रुपये और दिये और कहने लगा—"ग्यारह रुपये हुए न तेरे? ले।"

भोली ने काजू नहीं तोले। बड़ा भला आदमी है, गरीब जानकर, अकारथ ही काजू खरीद रहा है। बोली—"इतने काजुओं का करोगे क्या, सा'ब?"

"कुछ भी करूं," उसने कहा—"तुझे क्या। तू तोल दे, बस! तेरा काम है बेचना, मेरा काम है खरीदना।"

भोली आगे भी सलाह देती, 'ज्यादा मेवा पचा नहीं पाओगे।' पर हिम्मत न हुई। उसने काजू तोल दिए। जब जाने लगी तो साहब बोला—"तू यों गली-गली काजू बेचने लायक नहीं है।"

भोली ठगी-सी खड़ी रह गयी।

साहब बोला—"तू तो किसी बड़े घर की छत पर चमकने वाले सितारे की तरह है।" उसने गहरी पर ऐसी ठण्डी सांस लेकर कहा, जिसमें भोली से स्वयं के प्रति सहानुभूति अनुभव की। "भगवान भी न जाने कैसे-कैसे गलत काम कर जाता है।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भोली ने कोई उत्तर नहीं दिया। देहरी उतर गयी। जाते-जाते उसने कहा था—"कल जरूर आना। और काजू लेने हैं।"

उस तमाम दिन भोली के दिमाग में उस व्यक्ति की बातें हड़कम्प मचाती रही थीं। 'भोली किसी बड़े घर की छत पर चमकने वाले सितारे की तरह है। भगवान भी कैसे गलत काम कर जाता है?'···तो क्या वह आदमी भोली से प्यार करता है? कितनी मिठास है उसकी आवाज में? औरों की तरह उसने न तो कोई शरारत की थी, न ही कभी कोई गन्दा स्वार्थ साधना चाहा था। और, दूसरे दिन न जाने कैसे भोली के पांव उस घर की ओर अपने आप बढ़ गए थे। भोली वहां पहुंची थी। वह बाबू देर तक उससे बातें करता रहा था—कबीले की, कबीले वालों के रस्मोरिवाज की, और न जाने कहां-कहां की। उसने भोली से उसके मां-बाप के स्वभाव के बारे में भी पूछा था। हर बात के साथ वह भोली की ओर ऐसी मीठी नजर से देखता था कि भोली मन-ही-मन बेहद खुश होती थी। फिर यह क्रम रोज ही चलता रहा था। भोली वहां हर रोज जाती थी। वह साहब देर तक उससे बातें करता था। अजब-अजब शहरी बातें। उसने ढेरों ऐसी-ऐसी शहरी चीजें बतायी थीं कि भोली अचरज से भरी दंग रह गयी थी। अब वह निःसंकोच उसके घर में भीतर तक चली जाती थी। उसे जरा भय न लगता था। धीरे-धीरे उसने सपने बुनने प्रारम्भ कर दिए थे—इस घर और शहरी जीवन के, इस भव्यता और सौंदर्य के। और, फिर उन दोनों के बीच से संकोच हटने लगा था। कई बार वह शहरी उसे छेड़ता, गुदगुदा देता और भोली इसमें आनन्द अनुभव करती।

कबीला पास आने लगा था। भोली ने विचारों पर पूर्ण विराम दिया। वह कबीले में पहुंची तो आश्चर्यचकित रह गयी। सभी लोग सामान जमाने में लगे हुए थे। लगता था, कबीला दूसरे शहर जाने को है। एकाएक न जाने क्या हुआ उसे। भोली ने पीठ मोड़ी और पुनः शहर की ओर रवाना हो गयी। कबीला दूसरे शहर जा रहा है, भोली एक बार उस शहरी से मिल लेना चाहती थी। ऐसा कोई रिश्ता तो था नहीं उसका, पर न जाने क्यों मन नहीं माना। बड़ी तेज चाल से वह उस घर तक पहुंची। देहरी पर चढ़ी तो हांफने लगी थी।

"अरे! तू आज दौबारा कैसे आयी?" अचरज के साथ उस शहरी बाबू ने पूछा।

"कहीं बाहर जा रहे हो?" भोली ने सवाल पर सवाल किया और वहीं धरती पर बैठ गयी।

"बात क्या है?" शहरी को भोली का यों जल्दी में आना, हांफना—सब कुछ रहस्यपूर्ण लग रहा था।

"कुछ नहीं," भोली ने विचित्र-सी ढीली आवाज में कहा—"आज हमारा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कबीला दूसरे शहर जा रहा है !"

"ऐं !" कुछ विस्मय और दुख के स्वर में वह बोला—"यह तो बुरी खबर सुनाई तूने !"

भोली ने सहमति से सिर हिलाया। बोली—"हूं।"

"वही तो," शहरी ने कहा—"कुछ दिन साथ रहता अपना।"

भोली चौंक गयी, जैसे उसे इस संवाद की अपेक्षा नहीं थी, फिर भी बोल ही गयी, "तुम चाहो तो रुक जाऊं।"

"कैसे ?"

उत्तर में क्या कहे भोली ? लजा गयी। उसके गालों पर एक सुर्खी उभर आयी। बोली, "तुम मेरे बाप से बात कर लो।"

शहरी बाबू का चेहरा उतर गया। भोली की लजाहट और उसके गालों की सुर्खी का तात्पर्य समझते देर न लगी। वह कुछ उत्तर न दे सका।

भोली कुछ देर तो उत्तर की अपेक्षा किये रही पर दूसरी ओर से जब मौन ही मिला, तो उसे लाचार होकर कहना पड़ा, "मेरा बाप बहुत सीधा आदमी है, सा'ब। जरा इन्न-भिन्न नहीं करेगा। बस, एक बार चलकर बात कर लो।"

बाबू चुप रहा।

"तुम न जा सको, तो मैं बुला लाऊं उसे ?"

"···।"

भोली उसकी चुप्पी से उकता गयी। बोली—"कुछ बोलो तो सही। तुमने तो कहा था, तुम मुझे बहुत प्यार करते हो।" कहते-कहते उसकी आवाज हिलकने लगी—"पढ़ी-लिखी नहीं हूं, बाकी क्या कमी है मुझमें ?"

शहरी गम्भीर हो गया, भोली की ऊंची आवाज उसे पसन्द नहीं आयी।

"बोलो न !" भोली ने चिल्लाकर कहा। बाबू की चुप्पी से उसे भय-सा लगने लगा था।

"धीरे बोल।" इस बार शहरी बाबू बोल उठा, "तू तो बेवकूफ औरत है। अरे मूरख, ये जरूरी थोड़े होता है कि हर प्यार करने वाला ब्याह ही कर ले। फिर तुझ जैसी खानाबदोश लड़की का क्या ? सैकड़ों घर काजू-मखाने बेचती है, किस-किस से बचाव कर पायी होगी। यों चाहे जिसको गली से उठाके गले बांध लूंगा क्या ? मैं इज्जतदार आदमी हूं···।"

बाबू आगे भी कुछ कहता गया, पर भोली कुछ भी न सुन सकी। उसे लगा, जैसे किसी ने कानों में लावा उंड़ेल दिया हो, किसी ने उसके भीतर धड़कने वाली आवाजें चुरा ली हों। मन हुआ गालियां बके, कपड़े फाड़ फेंके, उस शहरी के चेहरे पर थूके, पर भोली कुछ न कर सकी। जाने क्यों वह बोल न सकी। चुपचाप उठी और देहरी उतरने लगी। उसके सारे शरीर में एक अजीब-सी खुमारी समा गयी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थी, जैसे रात शराब पी ली थी उसने, अब नशा उतरकर खुमारी बाकी बच गयी थी।

जब वह गली में आयी तो उसने अपने पीछे दरवाजा बन्द होने की एक स्पष्ट खड़खड़ाहट सुनी और तभी उसे लगा, जैसे उनके साथ ही एक स्वर गूंजा है—'काजू ऽऽऽ! मखाने ऽऽऽ!!' उसने अनुभव किया, जैसे तमाम बदन में एक आश्चर्यजनक फुर्ती समा गयी है। और तब लम्बे-लम्बे डग भरती हुई भोली अपने कबीले की ओर चल दी।

१९६३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चम्पा : एक प्रदर्शनी

इस बाजार की सबसे पहले खुलने वाली और सबसे बाद में बन्द होने वाली दुकान चम्पा की पान की दुकान है। इसके अलावा लोगों का यह भी कहना है कि इस बाजार की सबसे ज्यादा चलने वाली दुकान भी चम्पा की दुकान ही है।

भोर के साथ जब मोहल्ले-बाजार की भंगिन आकर सड़क पर कचरे की जगह सफाई फैलाना आरम्भ करती है तब फुटपाथ पर सोने वाले भिखारी अंगड़ाइयां लेकर उठ बैठते हैं। रामजीलाल कचौड़ी वाला घर से आकर ऊंघते-ऊंघते भट्ठी सुलगाता है। तभी चम्पा की दुकान भी झाड़-बुहार कर साफ हो जाती है। जब तक कचौड़ी वाले की भट्ठी सुलगकर जवानी पर आती है, चम्पा दुकान पर बैठी कई पान-बीड़े एडवांस में तैयार कर डालती है। पानों की कई क्वालिटियां हैं—पांच नये पैसे वाला, दस नये पैसे वाला, चार आने और सवा रुपये वाला। हर पान में पैसों के मुताबिक माल-मसाला पड़ता है, शोभा बनती है। मुसकराहट भी एक मसाला ही है, जो आंखों-ही-आंखों में स्वाद देता है और पान की हर किस्म के साथ उसी थोड़े-बहुत अनुपात में मिलता है। कई ग्राहकों का यह दावा है कि चम्पा के यहां का पांच नये पैसे वाला पान दुनिया के तमाम पान वालों के पान से ज्यादा जायकेदार है। वह देशी पान देती है तो ग्राहक अनुभव करता है, जैसे बंगला पान का जायका आ रहा है। बंगला पान देती है तो ग्राहकों को छप्पन भोग की डकार आती है। यह तो ग्राहकों के अनुभव की बात है पर मजा यह है कि जो ग्राहक चम्पा के नहीं हैं वे भी सड़क चलते चम्पा को देख लेने भर से अनुभव करते हैं, मानो उनके मुंह में पान है, उसका स्वाद जीभ पर है और इलायची की ठंडक उनकी आंखों से कलेजे तक 'डायरेक्ट' आ-जा रही है। ऐसी है चम्पा के पान की लीला ! लीला इसलिए कि जैसे श्रीकृष्ण भगवान सोलह कलाओं के माहिर थे, और चन्द्रमा की भी सोलह कलाएं हैं, ठीक उसी तरह चम्पा की भी अनेक कलाएं हैं। भगवान कृष्ण सोलह कलाओं तक ही सीमित रह गये पर चम्पा की कलाएं अब भी शोध का विषय हैं। वे अनगिनत हैं। हर रोज चम्पा एक नयी कला के साथ अपनी तिकोनी दुकान पर आ बैठती है। हर रोज ग्राहकों को नये-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नये जायके मिलते हैं। देखने वालों का कहना है कि उन्होंने चम्पा को सदा नये रंगों में देखा है। शहर के लोग जब दूसरे शहर जाते तो वहां वालों को बताते, 'हमारे शहर आकर किला देखो, बाड़ा देखो, टेकनपुर कोठी देखो, डकैत इलाका देखो, पर चम्पा की दुकान का पान खाना न भूलना, नहीं तो समझना ग्वालियर में कुछ नहीं देखा।' भूले-भटके जब कोई आदमी यहां आता भी है तो चम्पा की दुकान पर उसी कुतूहल से जाता है, जैसे ग्वालियर का किला देखने जा रहा है।

चम्पा एक साधारण औरत थी। तमाम औरतों जैसा शरीर उसने पाया था। वैसी ही उसकी आदतें थीं। वह शर्माना, मुसकराना और हंसी की फुलझड़ियां छोड़ना खूब जानती थी। उसकी आवाज महीन और आंखों में हल्का-सा गुलाबी नशा था। रंग उसका सांवला था, पर शरीर का गठन सुडौल। ऐसी कोई बात नहीं थी जिसके आधार पर उसे अजीब चीज़ समझा जाता, पर वह थी अजीब। मैं औरों की बात नहीं करता, मैंने स्वयं चम्पा को जब-जब देखा है उसमें कुछ नयापन, कुछ विशेषता पायी है। शायद तीन-चार साल पहले की बात है, जब मैंने उसे पहले-पहल देखा था। सुना तो बहुत पहले था, पर तब मैंने विशेष ध्यान नहीं दिया था। मेरा ख़याल था कि औरत या आदमी अजीब नहीं होते। इसीलिए मैंने सुनाने वाले महाशय से उसके अजीबपन की जानकारी करनी चाही थी।

"क्या वह आठ फुट की है?"

"नहीं।"

"उसके तीन पैर हैं?"

"नहीं।"

"क्या वह बेहद सुन्दर है?"

"नहीं।"

"तब वह बहुत बदसूरत होगी?"

"नहीं।"

ऐसा कुछ भी नहीं है? तब मेरे विचार से कोई विचित्रता उसमें नहीं। पर, उस दिन जब मैंने उसे देखा, तो एकाएक मेरा विश्वास ही बदल गया। वह सचमुच अजीब थी। उस दिन वह किसी से झगड़ रही थी। जोश में वह दुकान से नीचे तक उतर आयी थी और उस व्यक्ति के सामने सीना ताने किसी मर्द की तरह अड़ी हुई थी। उसका वाक्युद्ध चल रहा था। अनचाहे मेरे हाथों से साइकिल का ब्रेक दब गया। मैं एक किनारे खड़ा होकर उसका झगड़ा देखने लगा।

चम्पा कह रही थी—"नौकरी किए तुझे साल से उपर होने आया और तूने मेरी उधारी अब तक नहीं चुकाई?"

सामने वाले का सिर झुका हुआ था, जैसे चम्पा की पूरी दुकान का वजन उसके सिर पर रखा हो। वह कोई उत्तर न दे पा रहा था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चम्पा पूरी तरह हावी थी। वह उसे जोर-जोर से डांट रही थी—"इस दुकान पर बैठे-बैठे मुझे तिरलोक की खबर मिलती रहती है। तू शहर में पांच महीने से घूम रहा है, और कभी मुझे शक्ल भी नहीं दिखाई? उधर अलग ही अलग रास्ते से निकल जाता रहा।" उसने मरदों की तरह उसका गिरेबान पकड़ लिया और कहना जारी रखा—"तू समझता है कि मुझसे बच जायेगा, ऐं? खून पी जाऊंगी तेरा। मेरा पैसा हराम का नहीं कि कोई दबा जाये।"

आसपास भीड़ इकट्ठी थी।

चम्पा ने कहा—"अब पन्द्रह दिन के भीतर मुझे पैसा दे जाना, नहीं तो सड़क पर कपड़े उतरवाकर नंगा कर दूगी, हां?" वह अपने स्थान से पलटी और दुकान पर जा बैठी। इसके बाद उसने कुछ नहीं कहा। ग्राहकों को पान देने लगी और वह व्यक्ति ग्लानि का बोझ उठाये लौट गया।

"पैसे किस सिलसिले में दिये थे?" एक ने पूछा "पान तो तुम उधार देती नहीं!"

"हां, पान के पैसे नहीं हैं।" चम्पा ने उत्तर दिया, "बी. ए. पास लड़का है। किसी नौकरी में रिश्वत देने के लिए जरूरत थी। पैसे पास नहीं थे, सो मैंने उधार दिये थे।"

एक ग्राहक ने कहा, "अब वह तुम्हारी पकड़ में कभी नहीं आयेगा।"

"उसका तो बाप आयेगा!" चम्पा पान पर चूना रगड़ते हुए बोली।

"कितने थे?"

"डेढ़ सौ।"

मैं लौट आया। कमबख्त, अजीब औरत है! पान उधार नहीं देती, पैसे उधार देती है! उसके बाद अनेक बार मैंने उसे नये रंगों में देखा।

यह क्या कम विचित्र बात थी कि एक दिन वह पैंट और बुश्शर्ट पहने दुकान पर बैठी थी। ठंड के दिन थे। हमेशा की तरह उसकी दुकान पर ग्राहकों की भीड़ थी। वे तरह-तरह की बातें कर रहे थे, और चम्पा उन बातों में भाग ले रही थी। इधर कुछ दिनों से मैं भी वहीं पान खाया करता था। एक युवक कह रहा था, "चम्पाबाई, तुम पान बड़े प्यार से लगाती हो! तुम्हारे हाथ के पान में मुहब्बत की मिठास है।"

मुझे लगा, अब चम्पा शरमा जायेगी, पर ऐसा कुछ नहीं हुआ। वह उस युवक की इस बात पर खिलखिला उठी। बोली—"क्यों नहीं? मेरे पान में मुहब्बत नहीं तो क्या जहर होगा? अरे, मैं तुम्हारे लिए पान लगाती हूं तो अपने उस लड़के की याद आ जाती है जो शक्ल-सूरत में बिलकुल तुम्हारे जैसा ही बच्चा था। बिलकुल तुम जैसा शैतान!" भीड़ में एक जोर का ठहाका लगा और वह युवक इस तरह झेंपा, जैसे कई गज फुटपाथ में गड़ गया हो, या लड़कियों के झुण्ड के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सामने फिसलकर गिर पड़ा हो। कुछ ग्राहक चुपचाप खड़े हुए थे। वे केवल चम्पा के शरीर को नीचे-ऊपर घूर रहे थे, जिस पर पैंट-बुश्शर्ट का कसाव था। चम्पा उनकी आंखों की चुभन अनुभव कर रही थी, फिर भी उसके माथे पर एक शिकन तक न थी। मुझे लगा, जैसे वह ऐसी चुभन बरदाश्त करने की आदी हो गई है। सड़क पर दुकान करते-करते उसे ताने-फिकरों से चिढ़ न रह गई थी, बल्कि वह उनमें आनन्द का अनुभव करती थी। वह कई साल पहले ही विधवा हो चुकी थी। एक लड़का था, सो वह भी पति की मृत्यु के दो माह बाद मलेरिया का शिकार हो गया। चम्पा का जीवन हंसी-खुशी से रिक्त हो चुका था, किन्तु वह फिर भी हंसती थी, खूब हंसती, दूसरों को भी हंसाती थी। उसका स्वभाव साधारण स्त्रियों की अपेक्षा कुछ अलग, एक मौलिकता लिये हुए था। वह कब किस बात को कैसे पसन्द करे या नाराज हो जाये, कोई ठिकाना न था। कोई-कोई ग्राहक तो उसे अपनी ओर अधिक मेहरबान करने की दृष्टि से नये-नये तरीके खोजते रहते थे। चम्पा की दुकान के ठीक सामने वाले कपड़े के दुकानदार से चम्पा का मनमुटाव था। सुनते हैं, उस दुकानदार ने चम्पा से उधारखाता चलाना चाहा था। चम्पा ने कह दिया था— उधार का धन्धा नहीं करती। नकद लाओ, माल ले जाओ। दुकानदार को बुरा लगा और मनमुटाव हो गया। चम्पा के एक ग्राहक ने इस इतिहास का न जाने कहां से पता लगा लिया और बोला, "चम्पाबाई, ये तुम्हारे सामने वाला कपड़े का दुकानदार बड़ा बदमाश है।"

"क्यों?"

"ब्लैक करता है।"

"बुरी बात है।"

"वही तो! कमबख्त गज भी मारता है।"

चम्पा ने कुछ नहीं कहा।

ग्राहक ने और भी प्रभाव डालना चाहा। कहने लगा, "अभी हाल में इसने एक रांड से ब्याह कर लिया है, सिर्फ इसलिए कि उसकी गांठ में नकद है। इस मुर्दे को दुकान में स्टॉक भरने के लिए पैसे की जरूरत थी। इसकी पहली ब्याहता को बड़ी तकलीफ है।"

वह और भी कुछ कहता किन्तु चम्पा ने बीच ही में उसे फटकार दिया—"इस तरह तुम मेरी सहानुभूति लेना चाहते हो, क्यों? दूसरे की चुगलखोरी करके? वह कपड़े का ब्लैक करता है, उसने पैसे के लोभ में एक रांड से दूसरा ब्याह कर लिया है, पहली ब्याहता को बहुत तकलीफ है···इससे तुम्हें और मुझे क्या करना? तुम उसके बाप हो या मैं उसकी भाभी? क्यों उसके घरू मामले में टांग अड़ाओ? लुगाइयों की-सी बातें करते हो? खबरदार, जो आगे से मेरी दुकान पर ये परपंच

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बनाया ।"

"मगर···मैं···" उसने सफाई देने का असफल प्रयत्न किया। चम्पा ने उसे और भी डांटा। नाक सिकोड़कर बोली, "आगे से कभी ऐसी बातें मत करना। करनी है तो कहीं और जाकर करना।" गर्दन लटकाकर उसने सड़क की राह ली।

चम्पा की मुसकानों का अर्थ लोग अलग-अलग ढंग से लगाते। ए. जी. आफिस का एक क्लर्क इत्तफाक से एक बार पान खा गया था। फिर तो ऐसा दीवाना हुआ कि एक मील दूर आफिस से छः-सात बार पान खाने दुकान पर आया करता। चम्पा भी उससे घुल-मिलकर बातें करने लगी थी। कुछ दिनों में ही चम्पा और वह क्लर्क चर्चा के विषय बन गये। होते-होते नौबत यहां तक आयी कि इस क्लर्क ने आफिस जाते समय एक दिन रुककर पान खाते में ग्राहकों के सामने ही चम्पा से प्रस्ताव रखा—"साहब बीबी और गुलाम' अच्छी पिक्चर है, चलोगी?"

चम्पा ने उसे गौर से कुछ इस तरह देखा जैसे अजायबघर में देख रही हो। कुछ देर तक सोचती रही, फिर मुस्कराकर बोली, "हां, चली चलूंगी।"

क्लर्क ने साइकिल के पैडिल पर पांव रखा और बोला—"तो चम्पारानी, सेकण्ड शो चलेंगे। मैं ठीक वक्त पर यहीं दुकान पर आ जाऊंगा।"

"नहीं-नहीं," चम्पा बोली—"टाकिज पर ही मिलूंगी।"

रात को क्लर्क ठीक समय पर टाकीज पहुंचा तो उसने देखा, वायदे के मुताबिक चम्पा मौजूद थी। टिकट लेकर उसके पास पहुंचा, बोला—"चलो!"

चम्पा मुसकरायी। फिर पीछे मुड़कर उसने घूंघट में चेहरा छिपाये खड़ी एक बाला की ओर संकेत किया—"आओ, बाई!"

"ये कौन हैं?" अचरज से क्लर्क ने पूछा।

चम्पा खिलखिलाकर हंसी—"चार पान खाकर चम्पा को इतना पहचानने लगे बाबू, और सात फेरे लगाके आयी हुई घरवाली को नहीं पहचान सके? बड़े भोले हो!" कहते-कहते चम्पा उत्तेजित हो उठी। वह उसे और भी खरी-खोटी सुनाना चाहती थी पर उसने क्रोध पर काबू किया। बोली—"औरत इतनी सस्ती नहीं कि पान के बीड़े के साथ बिक जाए या सात फेरे खाकर जुल्म बरदाश्त करती रहे, बाबू!" चम्पा ने फड़कते होंठ दांतों में भींच लिये और टाकीज से बाहर निकल गई।

१९६३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बकुची

बकुची अब जवान हो गयी थी। उसके घर-बाहर सारे गांव को यह मालूम था। उसकी मां गोधा ने उसे कई मर्तबा डांटा था। कभी बकुची की हंसी पर वह झल्लायी थी, कभी उसकी दौड़ पर और कभी उसके नैन-मटक्के पर। बकुची पर गोधा की डांट का रत्ती-भर असर न पड़ता। वह तरह-तरह से सोचती, पर इस डांट का कारण समझ न आता। लगता, जैसे गोधा उसे व्यर्थ ही तंग करती है। हंसी, दौड़ और घूरा-घूरी में उसे डांट की कोई तुक न दीखती। हां, वह यह बात मानती थी कि अगर उसने दूसरे के खेत-बार से भुट्टे चुराये होते, बूंट काटे होते या गन्ना मार लायी होती, तो उसे डांटा जा सकता था। और डांटना ही क्या, गोधा उसे एक तमाचा भी मारती तो अनुचित न होता। पर हंसी, दौड़, इधर-उधर देखना, इसमें डांट की कोई बात न थी। बकुची को लगता, जैसे कुछ बात ही नयी है। गोधा उसे डांटना चाहती है इसलिए डांटती है। बकुची परायी चीज़ की चोरी पर डांट बर्दाश्त कर सकती थी, मार भी खाने को तैयार थी; मगर हंसी, दौड़, मटकती आंखें—ये सब तो उसकी अपनी चीज़ें थीं। किसी की चोरी नहीं थी। गोधा बेकार ही छाती पर चढ़ी आती थी। सोचकर बकुची को खीझ और झल्लाहट आती। तबीयत होती, जवाब में गोधा को डांट दे। हरदम यों ही डांटती रहती है। क्रोध करके अकारथ खून सुखाती है—अपना भी और उसका भी।

इधर बकुची यों सोचती और उधर उसकी मइया गोधा चिन्ता में घुली जा रही थी। एक ही लड़की है, सो भी ऐसी कि अपनी जवानी की खबर ही नहीं! वह देख रही थी कि कई मर्तबा डांट खाकर भी बकुची में रत्ती-भर हेर-फेर न होता था। वह बराबर अपनी उमर से बेखबर रही थी। बकुची के सामने मइया गोधा, बाप सपूरन, या गांव-भर के ऐरे-गैरे कोई भी हों, वह वैसे ही हंसती, वैसे ही देखती और पहले की तरह दौड़ती थी। गरज ये कि बकुची अपनी उम्र से बिलकुल अनजान रही—ऐसी उम्र से अनजान, जिसकी जानकारी औरों को चिन्तित कर देती थी। गोधा को डर खाये जा रहा था—बकुची

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कैसी बढ़ गयी है ! उसका अंग-प्रत्यंग कैसे भरी फसल की तरह हिलने, झूमने और गदराने लग गया है ! सांस लेकर हवा फेंकती है, तो सीने पर एक ज्वार-सा उठ आता है। चलती है तो हर कदम के साथ जाने कितनों के मन डोल जाते हैं। कमबख्त हंस देती है तो सामने वाले को लगता है, जैसे वह किसी गहरी नदी में डूबा जा रहा है डूब गया है। गोधा मन-ही-मन देवी से प्रार्थना करती— 'ऐसे न देखा करे। आंखों में जरा लाज लाये तो भला। ऐसी आंखों से सामने वाले को भूख का अहसास हो ही जाता है।' पर बकुची बराबर अनजान थी। गोधा को अपना बखत याद आता, जब् बकुची की ही तरह उसने उमर का लबादा ओढ़ा था। भूले से दायीं आंख की पलक तहसीलदार के आगे गिर गयी थी। वह दौरे पर भीलों के इस गांव में आया था। बात की बात में गोधा के बाप का बारह साल पुराना खेत का झगड़ा यों निबट गया था, जैसे कभी सरकारी कागजों में मामला आया ही नहीं था। वह उस समय को खूब पहचानती थी। यों बकुची की तरह अनजान न थी। जब सरसों की खड़ी फसल के खेत में चलती थी तो पौधे उसके बदन को छू-छू जाते थे, और गोधा नीचे से ऊपर तक गुदगुदा जाती थी। उसे पौधों से डर लगता था। कैसे लिपटे-लिपटे जाते हैं ? सोचकर गोधा शरमा जाती। यों वह अपनी उम्र के प्रति बेहद सजग थी। पर बकुची ? गोधा उसका क्या करे ? मरी ऐसी लापरवाह है कि इसके बदन से कोई कपड़ा खींच ले, तो भी खड़ी रहेगी, खिलखिला देगी और देखेगी ऐसे कि सामने वाला नीचे से ऊपर तक गरम हो उठे; मानो बारिश की रसभीगी हवा चांदनी में जल उठी हो। गोधा ने बकुची के बाप सपूरन को एक नहीं, अनेक बार झकझोरा, बकुची की तरफ से सावधान किया—'तेरे कुल में आग लगाएगी ये, जरा नसा फेंक के देख ! कैसी मोगरे की नाई खिली जाती है ! कोई सहरी पे धरम लुटाके यों ही खिलखिलाती चली आएगी।' काफी सोच-विचार के बाद गोधा ने निर्णय लिया था कि वही बकुची को डांट देगी। उसे साफ-साफ बता देगी कि अब वह वैसी बकुची नहीं रही जो खेत-हाट में कुलाचें भरती थी, जो ताड़ी पीने की जिद करती थी, जो मां की गोद में बैठने को रूठा करती थी या और बचपने की हरकतें करती थी।

शाम को बकुची आयी। गोधा ने देखा वह अल्हड़ हरकतें कर रही थी। आते ही वह गोधा के गले में बांहें डालकर झूल गयी। एक खीझ हुई गोधा को। जवान छोकरी की ये धींगामस्ती उसे पसन्द नहीं। उसने एक बार बकुची को घूरकर देखा, फिर अपने हाथों से गले में लिपटी बांहें एक झटके के साथ निकाल दीं। गुर्राकर बोली—"मुझे ये बेशरमी अच्छी नहीं लगती। परे होके सीधी खड़ी रह !" बकुची को बुरा लगा। चेहरा खराब किए खड़ी रही। गोधा फिर बोली, "अब तू जवान हो गयी है।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बात बकुची की समझ में न आयी। जवान हो गयी है तो वह क्या करे? कुछ बोली नहीं।

गोधा ने कहा—"यों घुड़निया की तरह कूदना तुझे नहीं सोहता, औरतों की तरह रहा कर। आंखों में जरा सरम-लाज ला और मर्दों का लिहाज करना सीख।"

मगर बकुची तो ज्यों की त्यों अनजान! उसे अपनी मां की सीख पर क्रोध आने लगा। 'कैसी मुर्दा औरत है जिसे हंसना-खेलना नहीं सुहाता। आंखे छोटी-सी हैं, लाज ढेर-सी। ऐसे कैसे लाज समा जाएगी इन आंखों में? मर्दों का क्या लिहाज करे? जैसी जान उसमें है, वैसी मर्दों में। फिर काहे का लिहाज? मर्द तो उसका लिहाज करते ही नहीं। बकुची क्यों करे?' बकुची को लगा, उसकी मां जबरन डांट रही है। इच्छा हुई खूब जोर से रो पड़े, गालियां दे, जितनी उसका बाप ताड़ी पीकर देता है। पर न जाने क्या हुआ कि बकुची न तो रो पायी, न गालियां दे सकी। यहां तक कि गोधा की बात का उत्तर तक देते न बना।

गोधा ने फिर कहा—"अब तू जवान हो गयी है।"

बकुची का मन हुआ, चिल्लाकर कहे—'हां, सुन लिया, मैं जवान हो गयी हूं। एक बार नहीं, हजार बार जवान हो गयी हूं, पर जवान हो गयी हूं, तो क्या करूं?' लेकिन बकुची चुप ही रही।

गोधा कह रही थी—"यों ठिल-ठिल करके हंसती है। मर्द क्या समझते होंगे? यों चाहे जहां कूदती है। बदन पर नजर लगती होगी। जग-भर के सिरकारी अफसरों का गांव में आना-जाना होता है। कल को किसी की नजर चढ़ गयी तो हमारी आबरू माटी हो जाएगी।"

बकुची को गोधा की एक भी बात समझ में नहीं आयी। 'अरे, सरकारी अफसर आते हैं, तो बकुची क्या करे? उन्हें कह दे कि गांव में नहीं आया करें? और उनकी नजर बकुची चढ़ेगी कैसे? नजर कोई नसैनी तो है नहीं, जो पहली सीढ़ी पर पांव रखा और दनदना के ऊपर चढ़ गये! और मान लो, नजर चढ़ गयी तो गोधा की आबरू कैसे माटी हो जाएगी?' सोचकर बकुची ने मुंह और भी बिगाड़ लिया।

गोधा को लग रहा था कि बकुची को उसकी बात समझ में आ रही है। कैसे चुपचाप खड़ी सारी डांट निगले जा रही है और कड़वाहट की हांक तक बाहर नहीं निकल रही! उसे लगा, जैसे मरीज रोग की गम्भीरता समझ गया हो। उसने पहले की अपेक्षा स्वर में जरा उतार पैदा कर बकुची के प्रति सहानुभूति का पुट दिया और कहने लगी—"बकुची! तेरे सीने की गांठ हमारी आबरू की गांठ है। कल को कुछ ऊंच-नीच कर बैठी तो समाज में हमारी आबरू गयी समझियो। सच जान बकुची, ये सहरी बड़े दांवबाज होते हैं। दो बोल खजूर-जैसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मीठे बोलेंगे और हमारी आबरू उतार लेंगे।"

बकुची को फिर क्रोध आया—गोधा बेकार ही सहरियों को कोस रही है। उन्हें क्या पड़ी है कि आबरू उतारेंगे ? उसे मेजर बाबू का ख़याल आया। वह भी तो सहरी है ! उस दिन जीवा की मां बीमार थी तो कैसे झट जेब से उसके इलाज के लिए पैसे दे दिये थे !

गोधा और भी देर तक तरह-तरह उसे समझाती रही पर बकुची ने कोई उत्तर नहीं दिया। गोधा ने मान लिया था कि वह समझ गयी है, पर थोड़े दिनों में उसका विचार बेकार साबित हुआ। बकुची में जरा भी हेर-फेर नहीं हुआ और वह पहले की तरह गिलहरी-जैसी कुलाचें भरती, हांफने तक हंसती, और चाहे जिससे खुली-खुली बातें करती। गोधा का माथा फिर भारी हो गया था। उसे फिर खीझ आयी थी और एक बार फिर कड़ी डांट देने को उसका मन हुआ था, किन्तु न जाने क्यों वह ऐसा नहीं कर सकी थी। वह यों चुप्पी साध गयी, जैसे बकुची उसकी कोई थी ही नहीं, जैसे बकुची के सीने वाले कपड़े की गांठ का उसकी आबरू की पोटली में कोई अस्तित्व नहीं था। गांव-घर की औरतें यदि कभी बकुची की चाल, उसकी हंसी और बेशरमी की बात कहतीं तो गोधा मुंह बिगाड़कर रह जाती। ग्लानि की अग्नि में जलकर जवाब दे देती—"मैंने तो हजार बार उससे कह देखा, नहीं मानती है तो जाए आग में ! भाड़ में जाएं उसके दीदे। हमें उस मुंहजली से कोई सरोकार नहीं। उसका भला-बुरा उसके आगू आएगा।"

बकुची को घाट-पाट पर जानती-पहचानतियों से खबर मिली—गोधा उसे घर-घर गाली देती डोलती है। वह और भी जोर से खिलखिलायी, ताली पीट-पीटकर झूमी और खिलकर बोली—"मेरी मइया बावरी हो गयी है !" पर, उसकी आदतें ज्यों की त्यों रहीं। उनमें कोई हेर-फेर नहीं। उलटे उसे गोधा को चिढ़ाने में आनन्द आया। उसने पहले की अपेक्षा चाल में और भी मस्ती पैदा कर दी, मर्दों से और भी खुली-खुली बातें करने लगी। एक दिन तो उसने यहां तक किया कि सांझ हुए ताड़ीखाने से एक कुल्हड़ ताड़ी पी आयी। घर पहुंचकर भारी कलेस मचाया। गोधा ने उसे इस हाल में देखा तो पुरानी गालियां खोद-खोदकर सुनायीं। सपूरन घर में नहीं था, उसे ताड़ी की आदत थी, सो खूब रात घर लौटा था। जब हर रात की तरह वह घर लौटा तो उसने बकुची को बहकते, मुंहजोरी करते पाया। उसने आव देखा न ताव, बकुची पर ताबड़-तोड़ हाथ छोड़ दिये। बकुची ने भी नशे की हालत में काफी विरोध किया, पर कुछ हुआ नहीं। सपूरन शराबी जरूर था पर उसके हाथ-पांव करें थे। बकुची का हर विरोध बेकार गया। उलटे उसे अधिक हानि पहुंची। छीना-झपटी में उसका लहंगा फट गया, थप्पड़ों से गाल सुर्ख हो गये, हाथ-पांवों में दिखते, गैर-दिखते हिस्सों पर नाखूनों से चमड़ी छिल गयी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बड़ी देर बाद जब पिटते-पिटते बकुची हांफने लगी तब उसने हाथ-पांव ढीले किये और पसरकर धरती पर बैठ गयी। तब कहीं सपूरन का क्रोध कम हुआ।

सुबह बकुची उठी। उसकी मइया और बाप दोनों खेत चले गये थे। बकुची ने सपाटे से हाथ-मुंह धोया, ढोरों की जगह साफ की और एक लोटा चाय बनायी। मक्के की दो रोटियां सेंकीं, जल्दी-जल्दी कलेवा किया और गांव की तरफ निकल गयी। रात की पिटाई से बदन में कसक हो रही थी। छिली चमड़ी पर उभरी खून की लकीरें सूख गयी थीं। बकुची ने जरा परवाह न की। रात की पिटाई का उसके मन में बिलकुल मलाल न था। उसने सारी बीती बिसार दी। सपूरन के करें-करें तमाचे, उसकी कड़वी गालियां, ताड़ी की दुर्गन्ध, सब कुछ बकुची यों भूल गयी, जैसे रात कुछ हुआ ही नहीं था। मार की कसक में उसे पीड़ा से कहीं अधिक आनन्द की अनुभूति हो रही थी। हाथ-पांव के जोड़ों पर उठी ऐंठन ने उसके सारे बदन को गुदगुदा दिया था। मन होता था, कोई करें हाथों वाला मर्द उसके दुख रहे बदन को दबाए, उसे पीटे। इतना पीटे कि बकुची बेहाल होकर पैरों में जा गिरे। ये विचार थे तो विचित्र किन्तु बकुची को इनमें आनन्द की अनुभूति हो रही थी। पिटाई में आनन्द की कल्पना, बकुची के अल्हड़पन की सूझ थी।

रात बकुची बहुत पिटी थी। यह खबर सारे गांव की हवा में घुल गयी। जो मिला, उसी ने बकुची को गौर से देखा। एक-दो ने बात भी की तो बकुची ने हंसकर स्वीकार किया —"हां, मैंने मार खायी।"

कहने वालों ने कहा —"सपूरन शराबी है। उसने तुम्हें मारा! उसके कीड़े पड़ेंगे।"

बकुची बिगड़ गयी —"सपूरन शराबी है तो क्या हुआ? मेरा बाप है। मार सकता है।" पाप-पुण्य की फिलासफी वह नहीं जानती। ऊपरी महत्त्व उसे छू नहीं गया। अनजान होकर उसने फिर कहा—"काहे को कीड़े पड़ेंगे? मूरत का बाप उसे कितना मारता है? मइया-बाप अपने मोड़ा-मोड़ियों को मारते हैं, तो क्या उनके कीड़े पड़ जाते हैं?"

एक ने उसे समझाया—"मूरत की बात अलग है। वह लड़के की जात है। उसकी उमर भी कम है। पर तू लड़की की जात, सो भी जवान हो गयी है। तुझे नहीं मारना चाहिए।"

लड़की की जात है! जवान हो गयी है! यह दलील बकुची की समझ में न आयी। पहले की तरह ही अनजान, नासमझ-सी उसने उत्तर दिया—"मैं जवान हो गयी हूं, इससे क्या? सपूरन मेरा बाप है, मुझे जान से मार सकता है।" उसे लगा, वे उलटा समझा रहे हैं। उसने मुंह बिगाड़ा और समझाने वालों को एक फटकार लगायी—"आज कही सो कही, आगे से कभी ये उलटी पट्टी मत पढ़ाना।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कीड़े मेरे क्यों, तुम्हारे बाप के न पड़ें ?"

बकुची से सहानुभूति जताने वालों को ऐसे ही जवाब मिले। वे चुप हो गये। वह पूर्ववत् अक्खड़ रही। जवानी की मर्यादा को उसने नहीं माना। कोई बंधन उसने स्वीकार नहीं किया। वह पहले की ही तरह हवा के साथ झूमती रही, बेरोकटोक यहां-वहां हिरनी-सी दौड़ती रही। सुबहों ने उसे उदास नहीं किया, शामों ने उसके पांवों पर रोक नहीं लगायी। हर क्षण, हर जगह वह निस्संकोच जाती-आती, बेधड़क बात करती। गोधा और सपूरन ने माथा पीट लिया—कमबख्त बकुची को कैसे समझायें कि वह जवान हो गयी है, लड़की की जात है! यों छुट्टी घूमना नहीं सोहता। पचास बार कह दिया, यों खुलकर मत हंसा कर। सैंकड़ों बार याद दिलायी, तेरा बदन फटा जाता है। मार-पीट भी लिया, हर कोशिश कर ली पर बकुची ठिकाने नहीं आयी सो नहीं आयी। गोधा और सपूरन हताश हो गये, हथियार डाल बैठे। बकुची का ब्याह कर देने के सिवा और कोई चारा न था। सपूरन ने आसपास के दस गांव घूम-टहल की, लड़का देखा और चटपट दिन भी निश्चित कर दिया।

थोड़े दिन बाद बकुची के गांव पाहुने उतरे। बकुची तमाम गांव झूमती-नाचती घूमी। उसका ब्याह हो रहा है। वह नया लहंगा पहनेगी, सलमा-सितारे टंका, कोने लगी रंग-बिरंगी चोली आएगी। गांव वाले ताड़ी पीकर झूमेंगे। उसके आंगन में करमा होगा, आदि-आदि। बकुची ने बहुत कुछ सोचा, बेहद खुश हुई। रीति-रिवाज के मुताबिक ब्याह हुआ। बकुची ने अपने हाथों अपने पति के मुंह में हिरन के मांस का टुकड़ा दिया। टुकड़ा जरा बड़ा था, सो उसके मुह में समाया नहीं। उसका मुंह भर गया, सो बकुची खुलकर हंस पड़ी, लड़का शरमा गया। सपूरन ने क्रोध में दांत भींच लिये—'मुई बकुची एकदम बावरी हैं। समाज में नाक कटवाएगी।' विदा का समय आया। जब बकुची का सिंगार कर उसे लड़के के साथ जाने को कहा गया, तो वह उबल पड़ी। बोली—"मैं नहीं जाऊंगी।" सपूरन, गोधा और गांव के कई बड़े-बूढ़ों ने उसे समझाया, पर बकुची थी कि जिद पर अड़ी रही। उसने कई बार चिल्लाकर कहा—"मैं नहीं जाऊंगी, नहीं जाऊंगी!"

घंटों उसे समझाया गया, तब कहीं वह थोड़ा मानी। बोली—"अभी नहीं जाऊंगी, थोड़े दिन बाद चली जाऊंगी।" सपूरन की इच्छा हुई कि एक बार उसे फिर पीटे, पर खुद लड़के वालों ने ही बकुची की शर्त मान ली थी। लड़के के बाप ने उसके सिर पर प्यार से हाथ फिराया और मिठास-भरे स्वर में आत्म-समर्पण किया—"तेरी मरजी। जब नहीं चलना है, तो रहने दे, फिर ले जाएंगे।"

पाहुने जैसे आये थे, लौट गये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बकुची ने दूसरे दिन से वही पुराना क्रम चालू कर दिया। अल्हड़ बकुची का ब्याह करके गोधा और सपूरन निश्चित हुए थे पर पूरी तरह नहीं। जैसे-जैसे बकुची का बदन बढ़ा, उम्र तनी, वैसे-वैसे उन दोनों ने एक बड़े दायित्व का भार अनुभव किया। बकुची का विवाह कर देने पर यह भार हलका तो हुआ था पर ऐसा नहीं कि वे उसकी तरफ से आंखें मूंद लें। वे दोनों एक ओर बकुची को देखते तो दूसरी ओर उन लोगों की पलकों पर भी नजर रखते जो बकुची के डोलने, झूमने, मुसकराने, देखने या चलने के साथ उठती-गिरती थीं। उन्होंने अनुभव किया कि उन नजरों में एक व्याकुलता, एक भूख है जो बकुची की शारीरिक चेष्टाओं के साथ निरन्तर बढ़ती जाती है। सोचकर बकुची के बूढ़े माता-पिता को भय लगता था। वे उन नजरों की अपेक्षा बकुची से अधिक डरते थे, जो एक आजाद हवा की तरह लापरवाही से इधर-उधर रात-बिरात गांव-भर में बह रही थी। इधर-उधर के लोगों के बदन में सिहरन उभार रही थी, या देखने वालों की भूख बढ़ा रही थी। पर करते क्या? बकुची ऐसी हवा थी कि नसीहत को रास्ते में आयी सूखी पत्ती की नाई उड़ाती, बराबर बहे जा रही थी।

जब से देश आजाद हुआ था, योजनाओं के नये-नये पौधे गांव-गांव में रोपे जा रहे थे। सरकारी अफसरों की हर तरफ भीड़ नजर आती थी। सपूरन ने गांव की बदली हवा समझी थी और बकुची का ध्यान भी इस ओर बंटाया पर उसने एक नहीं सुनी। उलटे और जोर से बह उठी।

गांव के जवानों की नजरें ही कम न थीं, बाहर से आये साहब लोगों ने तो सपूरन का कलेजा ही बिठा दिया। वह जब भी अकेला होता, उसके विचारों में अनजाने ही बकुची एक प्रश्नचिह्न की तरह आ खड़ी होती। इसी क्रम में उसे सरकारी और सामाजिक मामलों में मिल रही रिआयतों का ख़याल आता। उस दफा उसकी जरा-सी मांग पर ही गांव के पटेल ने नहर से पानी दिलवा दिया था—उस पटेल ने, जो कभी किसी से सीधे मुंह बात नहीं करता था। कई साल पुराना उसका कुआं दूसरे के कब्जे में था और तहसीलदार किसी शर्त पर उसके वश में नहीं था, पर जब उसे यह मालूम हुआ कि बकुची सपूरन की बेटी है तो उसने जो फैसला दिया वह इसी के पक्ष में था। गांव का युवा थानेदार एक दिन स्वयं उसके घर आ बैठा था, वर्ना थानेदार जैसे अफसर को क्या पड़ी थी कि सपूरन भील के टापरे पर आता? यह सब सोचकर सपूरन का दिमाग भन्ना जाता। बकुची, सिर्फ बकुची ही इन सब रिआयतों की कुंजी थी। हर आदमी उस पर एक न एक अहसान का बोझ डालकर बदले में केवल एक चीज़ चाहता था—बकुची! बकुची की तीखी आंखें, भरा शरीर और बेतकल्लुफ हंसी देखने-सुनने वालों पर शराब का असर करती थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नये आये रेंजर आसाराम ने बकुची को एक बार देखा। यों वह जवान नहीं था, पर बूढ़ा भी नहीं था। उसका दुबला-पतला बदन और चेहरा दूर से प्लास्टिक के किसी ऐसे खिलौने की तरह दिखता था, जिसे शैतान बच्चे ने मुंह में डालकर नोंच डाला हो। ऐसे ऊबड़-खाबड़ चेहरे के रेंजर ने बकुची को पहली बार तब देखा था जब वह ताड़ीखाने की तरफ आधी रात सपूरन को ढूंढ़ने गयी थी। उस दिन सपूरन ने ज्यादा पी ली थी, और घर लौटते वक्त रास्ते में भी पसर गया था। बड़ी रात गये वह नहीं आया तो बकुची उसे ढूढ़ने गयी थी। संपूरन को ढूंढ़कर जब वह उसका हाथ अपने गले में डाले और उसका वजन कंधे पर सम्हाले घर को लौट रही थी तो रेंजर आसाराम ने उसे पहली बार देखा था। वह भी शराब की आधी बोतल गले उतारकर जंगल की ओर गश्त पर जा रहा था। बन्दूक उसके कंधे पर लटकी थी और कमर में उसने कारतूसी पट्टा बांध रखा था। टार्च की रोशनी जब उसने रास्ते पर फेंकी तो सामने सपूरन को सम्हाले आ रही बकुची दिखी। उधर इस रोशनी से बकुची ठिठकी तो इधर आसाराम चकाचौंध होकर रह गया। उसने रोशनी बंद की और फिर रोशनी फेंकी। बकुची उसकी ओर किसी जंगली बिल्ली की तरह घूर रही थी। न जाने क्या हुआ कि आसाराम कदम आगे बढ़ाकर ठीक उसके सामने जा खड़ा हुआ। उसने टार्च जलाए रखी और लगातार बकुची को देखे गया। उसे यों देखते बकुची को अचरज नहीं हुआ। वे ही आंखें पहली नहीं थीं। इससे पहले भी उसने सैकड़ों लोगों को अपनी ओर इसी तरह देखते हुए देखा था। वे ऐसा क्यों करते हैं, यह बकुची की समझ से बाहर था। आसाराम के हटने की उसने थोड़ी प्रतीक्षा की, फिर कड़े स्वर में कहा—"जरा परे हो जा!"

आसाराम नहीं हटा। केवल एक गहरी श्वास खींचकर छोड़ दी।

बकुची को अचरज हुआ। उसकी समझ में नहीं आ रहा था, आसाराम क्यों नहीं हट रहा है!

"परे हो जा!" बकुची ने पहले से और भी ऊंचे स्वर में कहा।

आसाराम ज्यों का त्यों खड़ा रहा। उसने टार्च की रोशनी भी बन्द नहीं की।

बकुची को क्रोध चढ़ आया—"ओ सा'ब! बहरा है क्या? जरा परे हो जा न!"

आसाराम पूर्ववत् ही बना रहा। उसने रोशनी बकुची के शरीर पर नीचे से ऊपर तक फिरायी। फिर एक बार दाएं-बाएं देखा। चारों ओर सुनसान था। उसने देखा, बकुची के सहारे लगभग लटका हुआ सपूरन यदि बेहोश न था, तो ऐसा होश में भी न था। मन-ही-मन एक निश्चय किया आसाराम ने।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बकुची को लगा, सामने वाला कुछ जिद्दी है। इससे पूर्व कि वह उसे डांटे या एक किनारे से निकल जाए, टार्च की रोशनी बन्द करके आसाराम उसकी ओर बढ़ा। बकुची की समझ में नहीं आया।

आसाराम उसके बिलकुल पास आ गया।

बकुची एक कदम पीछे हट गयी। उसे लगा, सामने वाला जिद्दी ही नहीं, पागल भी है।

आसाराम ने लपककर बकुची के दोनों बाजू पकड़ लिये। बकुची ने विरोध किया—"क्या करता है ?" वह आगे भी कुछ कहती किन्तु सपूरन लुढ़ककर वहीं गिर गया। आसाराम की पकड़ कुछ कड़ी हुई। बकुची ने महसूस किया, जैसे उसके पास कोई धन है। आसाराम ने उसे झकझोरकर अपने सीने की ओर खींचा। बकुची को सारे शरीर में एक विचित्र अनुभव हुआ। आसाराम की हरकत से उसे पहली बार ऐसा लगा, जैसे भीतर कोई ऐसी चीज़ है, जो उसके मन में लज्जा ला रही है। एकाएक न जाने क्या हुआ कि आसाराम के प्रति उसके मन में ग्लानि भर गयी। आसाराम ने उसे भींचा। बकुची को लगा, जैसे उसके पास कोई ऐसी कीमती चीज़ है, जिसे आसाराम चुराना चाहता है। प्रत्युत्तर के लिए बकुची तैयार होने लगी।

आसाराम अजीब हरकतें करने लगा। बकुची न तो चीखी, न मन में कोई भय आने दिया। वह सम्पूर्ण शक्ति से आसाराम की चेष्टाओं के प्रतिकार में लग गयी। देर तक छीना-झपटी और झूमा-झपटी चलती रही। एक-दूसरे से उलझे हुए वे दोनों धरती पर आ गिरे। आसाराम के कन्धे से बन्दूक निकलकर एक ओर जा पड़ी। वह अपनी सम्पूर्ण शक्ति से बकुची को काबू करने का प्रयत्न कर रहा था, पर बकुची के प्रतिकार ने उसका प्रत्येक प्रयत्न व्यर्थ साबित कर दिया। एकाएक बकुची उसकी पकड़ से छूट गयी। उसने पास धरती पर पड़ी बन्दूक उठायी और इससे पूर्व कि आसाराम उठे या बचाव में भागे, बकुची ने घोड़ा दबा दिया। आसाराम एक चीख मारकर धराशायी हो गया। बकुची ने बन्दूक एक ओर फेंक दी, सपूरन को उसी तरह सम्हाला और घर चली आयी।

तमाम रात वह परेशान सोचती रही। अजब-अजब ख़याल आये, विचित्र अनुभूतियां होती रहीं। आसाराम उसका अपना कोई नहीं था। उसने जब उसे हाथ लगाया तो शरीर पर क्या प्रतिक्रिया हुई थी ? पहली बार उसके मन में संकोच जन्मा था। दीये की मन्दी रोशनी में दीवार पर उभरी अपनी परछाईं में शरीर का उतार-चढ़ाव देखकर उसे स्वयं ही लाज आ गयी।

दूसरे दिन जब सपूरन का नशा उतरा, तो गोधा ने कहा—"बकुची को उसके घर भेज आओ। वह आज रात-भर जगती रही। सवेरे से ससुराल जाने की रट लगाये है।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"बकुची ससुराल जाएगी ?" अचरज से सपूरन की आंखें फैल गयीं ।

"हां," गोधा ने उत्तर दिया, "रात-भर में जाने क्या हुआ कि सवेरे से ही वह जाने को कह रही है !"

सपूरन ने कोई उत्तर नहीं दिया । दरवाजे पर खड़खड़ाहट हुई तो उसने देखा, बकुची ब्याह के नये कपड़े पहने सजी-सजायी खड़ी थी । सपूरन को अपनी ओर देखते ही उसकी आंखें झुक गयीं । नीचे का होंठ उसने दांतों से दबा लिया और किवाड़ के पीछे हो गयी ।

१९६३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कानून की बात

घीसू बड़ी रात गए करीब साढ़े तीन बजे मरा था। उसके बाप बालमसिंह के पास घड़ी नहीं थी, फिर भी उसे घीसू की मौत का बखत आसानी से मालूम हो गया था। ऐसा भी नहीं था कि जैसे ही घीसू मरा हो, बालमसिंह पड़ोस के किसी बंगले से घड़ी में समय देख आया हो। ये तो तब भी नहीं हो सका था, जब घीसू पैदा हुआ था, क्योंकि बालमसिंह के घर के चौतरफा एक वर्गमील में न कोई साहब था, न कोई बंगला, न कोई टेबिल घड़ी और न कोई रिस्टवाच।

घीसू जब पैदा हुआ, बालमसिंह के पड़ोस वाले घर से चीख-चिल्लाहट के स्वर आ रहे थे। पड़ोस में चंदनसिंह ड्राइवर का घर था। वह रोज बारह-एक के करीब, रात चढ़े घर लौटता था, और फिर जब उसकी घरवाली से बातचीत होती, तो किसी-न-किसी मामले को लेकर दोनों में झगड़ा हो जाता। चंदनसिंह मौलिक देशी गालियां सूक्तियों की तरह उच्चारता हुआ अपनी औरत की पिटाई प्रारंभ कर देता और उसकी औरत सप्तस्वरों में रुदन करती हुई, आग लगे, ठठरी बंधे, धुआं लगे, आदि अनेकानेक जनानी गालियां देती हुई विरोध जाहिर करती।

करीब आधा घंटा यह क्रम चलता। फिर दोनों में सुलह हो जाती। थोड़ी देर बाद ही उस घर से प्यार बहने लगता।

अंधेरे के बीच चंदनसिंह अपनी घरवाली के मन में प्यार का दीया जलाता—तेरा बदन बड़ा चिकना है ?

एक फुसफुसी हंसी गूंजती—हट्। तू तो ऐसा ही है।

चंदनसिंह के घर की कच्ची दीवार और बालमसिंह के घर की कच्ची दीवार एक ही थी। चंदनसिंह के घर की सारी लड़ाई और प्यार उस दीवार से रिस-रिसकर बालमसिंह की कोठरी में गिजगिजापन फैला देता। सील पैदा करता। हर रोज ये सील पैदा होती। हर रोज ही प्यार दीवार से रिसता था, और चूंकि दीवार एक ही थी, और वह भी कच्ची, इसलिए बामलसिंह और उसकी घरवाली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिन्नो इस सील में रंग जाते, गिजगिजेपन में डूब जाते। परिणामस्वरूप बहुत कम अरसे में ही उन्होंने तीन डिप्लोमे हासिल किए थे।

घीसू, जो आज मर गया है, बिन्नो और बालमसिंह का पहला डिप्लोमा था।

उसके जन्म के बखत चंदनसिंह के घर लड़ाई चल रही थी। ये लड़ाई का बखत बारह से एक के बीच ही होता था। लिहाजा, बिना किसी घड़ी, साहब या बंगले के, बालमसिंह ने उसके जन्म का टाइम न बारह माना, न एक। साढ़े बारह मान लिया। उसी तरह जैसे सब्जी का सौदा करते समय बिन्नो छह पैसा किलो भाव तै करती है, सब्जीवाली आठ पैसा किलो। और थोड़ी-सी झिक-झिक के बाद दोनों समझौता करती हैं—न तेरी, न मेरी। चल, सात पैसा किलो। सब्जी बिक जाती है। सब्जी की खरीद हो जाती है।

···और घीसू इस तरह साढ़े बारह बजे पैदा हुआ था।

आज रात जब घीसू मरा तो रोज की तरह पड़ोस वाले चंदनसिंह के घर में लड़ाई समाप्त होकर कच्ची दीवार से प्यार रिस रहा था। प्यार के इस बखत पर हर रोज दो-तीन बजते थे। लिहाजा, जिस तकनीक से बालमसिंह ने घीसू का जन्म समय निश्चित किया था, मृत्यु समय भी निश्चित कर दिया—न दो, न तीन, ढाई बजे।

घीसू जब जन्मा, तब भी वह खुशी से सुन्न रह गया था, और अब जब घीसू मर गया है, वह दुःख से सुन्न रह गया है।

घीसू की पैदाइश बालमसिंह के लिए जितना हर्ष का विषय थी, उसी तरह हर्ष से कहीं अधिक चिन्ता की चीज़ थी।

उस समय बालमसिंह एक फूल-सी औलाद देखकर खुश हुआ था, किन्तु उसके बाद उसने जो कुछ सोचा था, उससे बेहद चिन्तित हो उठा था। उसने सोचा था, यह बच्चा कितना प्यारा है! रंग, रूप, चेहरा—सभी कुछ कितना आनंददायक है! कुछ दिनों बाद यह बाढ़ पर आयेगा, और गली के तमाम छोकरों के साथ नंगा घूमेगा। बालमसिंह उसे नंगा ही घूमने देगा, क्योंकि उसका बदन ढांकने के लिए वह कपड़े नहीं जुटा सकता। सोचते-सोचते बालमसिंह चौंक पड़ा था। ईश्वर न करे अगर वह कहीं बीमार पड़ गया तो बालमसिंह क्या करेगा? वह दवा भी नहीं जुटा सकता। बीमारियां और डॉक्टर, दोनों ही बालमसिंह के लिए बराबर हैं। बीमारी बदन चाटती है, डॉक्टर, पैसा! लगातार बीमारी आदमी का शरीर तोड़ डालती है, कमजोरी पैदा करती है। लगातार डॉक्टर आदमी का आर्थिक ढांचा तोड़ देता है, पैसे से कमजोर कर देता है। बालमसिंह जानता था, बीमारी और डॉक्टर दोनों ही उसके लिए खतरनाक हैं। घीसू बीमार हुआ तो उसे डॉक्टर लाना ही पड़ेगा, और डॉक्टर आया तो बालमसिंह खुद बीमार पड़

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जायेगा।

और एक दिन ऐसा आ भी गया था। घीसू बाहर से खेल-खालकर लौटा तो उसे तेज बुखार था। दिन डूबे, जब बालमसिंह कचहरी से आया, तो बिन्नो उसके सिर पर एक गंदी चिन्दी पानी में डुबो-डुबोकर रख रही थी। यों उस दिन बालमसिंह स्वयं भी काफी थकान महसूस कर रहा था, पर जब उसने घीसू के बदन पर हाथ रखा तो थकान-वकान एक क्षण में हवा हो गई। घीसू का बदन कैसे जल रहा था? बालमसिंह को लगा, जैसे किसी अंगारे पर हथेली रख दी हो उसने। जैसा आया था, वैसे ही उल्टे कदम बालमसिंह भागा-भागा डॉक्टर मालपानी के पास गया। डॉक्टर आया, उसने घीसू को उलट-पुलटकर देखा। एक अंग्रेजी गोली बाजार से मंगवाने परची पर नुस्खा लिखा। एक इंजेक्शन ठोका, और नौ रुपए लेकर लौट गया। घीसू के इलाज में बालमसिंह ने क्या नहीं किया? बिन्नो के कान के इकलौते फूल थे, सो भी गला दिए। पर करम लेखा कौन मेटे? घीसू को बुलावा आ गया था, सो बालमसिंह रोक नहीं पाया।

बालमसिंह सूखी बेआंसू आंखों से घीसू का मृत बदन देखे गया। कमबख्त बहुत ऊधमी था। बालमसिंह एक दफा उसके लिए साटन की एक चमकीली चड्डी खरीदकर लाया था। बालमसिंह ने अपने साहब के बच्चों को चड्डी पहने देखा तो उसे घीसू को चड्डी पहनाने की धुन सवार हुई थी। तनख्वाह मिलते ही उसने उसके लिए चड्डी खरीदी थी। पर भाग का मारा घीसू उसे कभी नहीं पहन सका। बालमसिंह जब-जब उसे चड्डी पहनाना चाहता वह घर से बाहर भाग जाता था। कमबख्त को नंगा घूमना ही अच्छा लगता था। बिन्नो ने बालमसिंह को समझाया था, 'बेकार चड्डी में काहे को पैसे डाल आए। अभी घासू इत्ता बड़ा ही कहां हुआ है?'

'क्या कहती है?' बालमसिंह को साहब के बच्चों की याद हो आयी। साहब का गोदवाला बच्चा दिन में कम-से-कम पचास बार पेशाब और पाखाना करता था। पर मेम साहब उसे भी चड्डी पहनाए रखती थी। बालमसिंह ने जरा ऊंचे स्वर में कहा था, 'अब घीसू छोटा थोड़े ही है? मेरे साहब के मौंड़ा-मौंड़ियों को देख, घीसू के आधे भी नहीं हैं, मगर चड्डी बगैर मइया के सामने नहीं आते?'

हंस गई थी बिन्नो। बालमसिंह ने बात ही ऐसी कह दी थी। पर, दूसरे ही क्षण एकदम उदास हो गई थी वह। जैसे उसे अपने किसी लाजिमी दुःख का अहसास हो आया हो, 'अपुनी शक्ति इत्ती थोड़े ही है कि दिन में सौ चड्डी बदलें? उनकी बात और है। वे ठहरे बड़े आदमी, हज्जार-हज्जार पगार पाने वाले!'

जवाब सुनकर बालमसिंह सकपका गया था। बिन्नो ठीक ही तो कह रही थी। कहां बड़े साहब, कहां बालमसिंह? फिर भी उसने अपनी बात लादनी चाही थी, 'अरे! बड़े साहब के मौंड़ा-मौंड़ी दिन में सौ चड्डी बदल सकते हैं, तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपुन एक तो पहना ही सकते हैं ?'

बिन्नो ने विषय बदल दिया था। उसने कहा, 'तुम जो भी कहो घीसू की उम्र अभी इतनी कहां है ? अच्छा तुम्हीं बताओ, इस उम्र में तुमने कभी चड्डी पहनी थी ?'

बालमसिंह शरमा गया, जैसी किसी नयी दुल्हन ने पहली बार सुहागरात वाले कमरे में कदम रखा हो। बिन्नो ठीक ही कहती है, खुद बालमसिंह ने घीसू की उम्र तक चड्डी नहीं पहनी थी। और उसने ही क्या, शायद उसकी सारी पुश्तों ने उस उम्र में बदन नहीं ढांका था।

चड्डी सामने अरगनी पर लटक रही थी।

सोचकर बालमसिंह की इच्छा हुई, घीसू की लाश को चड्डी पहना दे। कमबख्त जीते-जी कभी चड्डी नहीं पहन पाया।

घीसू का बेजान बदन धरती पर पड़ा हुआ था और बिन्नो छाती पीट-पीटकर दहाड़ें मार-मारकर रो रही थी। उसकी देखा-देखी घीसू के छोटे भाई-बहन भी रो रहे थे।

बालमसिंह की मरजी हुई, घीसू की लाश उठाकर कहीं ले जाय। बिन्नो की दहाड़ों और चीख-चिल्लाहटों ने उसका मर्द-मन भी डगमगा दिया था। पर, दूसरे ही क्षण मन मसोसकर रह गया। बाहर आस-पड़ोस वाले इकट्ठा हो रहे थे। दो-चार महिलाएं भी भीतर आ गई थीं। वे बिन्नो को चुप करवाने का प्रयत्न कर रही थीं। बाहर एकत्र लोगों ने बालमसिंह को बाहर बुलाया।

'अब क्या देर है ?' एक ने पूछा।

बालमसिंह चुप खड़ा रहा।

उसने कहा, 'जब तक मिट्टी नहीं हटेगी, उसकी मइया यों ही बेहाल होती रहेगी !'

बालमसिंह को यह बात पसन्द आयी, पर चाहकर भी न कह सका कि मिट्टी उठाए चलते हैं। एक आदमी ने उसे फिर कोंचा, 'अब क्या देर है ?'

बालमसिंह कुछ नहीं बोल सका। घीसू मर गया, पर मरते-मरते बालमसिंह की आर्थिक रूप से हत्या कर गया और आज जब घीसू की मिट्टी उसके सामने पड़ी थी, तो उसके पास उसे मरघट ले जाकर गड़वाने तक के लिए पैसा नहीं था। एक बार बालमसिंह की इच्छा हुई, किसी से उधार मांगे, पर यह विचार एक क्षण में ही उसके मन में उठा और गायब हो गया। लोग क्या सोचते कि बालमसिंह के पास मिट्टी उठाने तक के लिए पैसे नहीं हैं ? छि ! जैसे कोई कड़वी चीज़ उगल दी हो ? घीसू की मिट्टी अब भी उसके सामने प्रश्नवाचक चिह्न थी।

एक वृद्ध आदमी ने प्रश्न किया, 'अब क्या देर है ? मिट्टी उठवाओ, मइया जान दिए दे रही है !'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'हां ?' बालमसिंह जैसे सोते से जागा, ठीक तो है। उसे जल्दी घीसू को ठिकाने लगाना चाहिए। भीतर बिन्नो सिर पटक रही थी। औरतें उसे बलपूर्वक रोकने का प्रयत्न कर रही थीं।

यंत्रवत् बालमसिंह भीतर चला गया। उसने कुछ सामान खोजा-तलाशा, फिर बाहर आया। अब बाजार तो खुल गया होगा ? बाहर एकत्र आदमियों को उसने 'अभी आया' कहा और लम्बे कदम मारता चला गया।

करीब पन्द्रह मिनट बाद वह लौटा। घीसू की मिट्टी उठाई गई। मोहल्ले के दस-पांच व्यक्ति भी साथ हो लिये। मरघट पहुंचकर घीसू की लाश गाड़ी गई। पत्थर की किसी बेजान मूरत की तरह बालमसिंह सब कुछ देखता गया। न जाने ऐसी कौन-सी बात थी कि लौटते में रास्ते-भर बालमसिंह गहरी पीड़ा और दुःख से दबा होने के बावजूद स्वयं को काफी हल्का-हल्का महसूस करता आया।

बालमसिंह लौटा। सांत्वना देनेवाले सारे आस-पड़ोसी, हेती-नातेदार आए-गए हो गए। बिन्नो अब भी वहीं, जहां घीसू की मिट्टी रखी थी, बैठी हिचकियां भरकर रो रही थी। देर से लगातार रोते रहने के कारण उसकी आवाज अब भारी पड़ गई थी। पास खड़े-खड़े बालमसिंह को लगा, जैसे हर चीज़ की अधिकता आदमी को थका देती है। अधिक आर्थिक कमजोरी से भी आदमी थक जाता है। अधिक हंसना भी उसमें थकान लाता है, अधिक रोना भी। बिन्नो का रोना भी ऐसी ही थकान लिये हुए था। किसी को सांत्वना देना बालमसिंह को नहीं आता था। सोचता रहा, कमबख्त घीसू जिन्दा था, तब भी शांति नहीं रही और अब, जब मर गया है, तब भी एक स्थायी अशांति वसीयत कर गया है। साहस कर बालमसिंह वहीं, बिन्नो के पास धरती पर बैठ गया। उसे सांत्वना देने लगा। उसने बिन्नो के सिर पर हाथ फेरा। दो-एक बोल मुंह से उगलकर उसने मनुष्य शरीर के अस्थायित्व का दर्शन समझाया पर यह कितनी विचित्र बात थी कि जैसे-जैसे बालमसिंह ने उसे समझाया, सांत्वना दी, बिन्नो और अधिक तेजी से रोने लगी। अत्यधिक वेग से उसके आंसू बहने लगे और बार-बार सिर धुनना उसने प्रारंभ कर दिया। इससे भी अधिक विचित्र बात यह हुई कि समझाते-समझाते बालमसिंह खुद रो पड़ा। जोर से उफान खा गया और फिर देर तक रोता ही रहा। जैसे युगों से पेट में लावा और गरमी दबाए रहा कोई ज्वालामुखी एकाएक ही फूट पड़े और उसके अंतर का सारा लावा भलभलाकर धरती पर बह चले। बालमसिंह के भीतर का लावा इसी तरह उबल गया और अंतर की सारी पीड़ा और प्यार वातावरण में बहने लगे।

उस सारे दिन और सारी रात यही क्रम चला। कभी रोते-रोते बालमसिंह थक जाता और कभी बिन्नो। दोनों एक-दूसरे को समझायश देते रहे और रोते रहे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनके बाकी बच्चों ने उस दिन उपवास मनाया। गोद का बच्चा भूख से रो-रोकर सो गया।

दूसरी सुबह हुई। बालमसिंह और बिन्नो कुछ हल्के थे। उन्होंने रोना बंद कर दिया था। भीतर का लावा बह गया और ज्वालामुखी कुछ ठंडा हुआ था।

'बालमसिंह यहीं रहता है ?' कोई बाहर पूछताछ कर रहा था।

बालमसिंह बाहर निकल आया। 'क्या बात है ?' उसने पूछा।

'बालमसिंह यहीं रहता है ?' उस अधेड़ उम्र के आदमी ने दोबारा सवाल किया, 'वह, जो कचहरी में चपरासी है ?'

'हां, मैं ही हूं।' बोलो !

'अच्छा !' वह व्यक्ति बालमसिंह के पास आ गया, 'तुम्हारे यहां कोई मर गया है ?'

'हां', बालमसिंह ने बताया, 'मेरा लड़का मर गया है।'

'कब मर गया ?'

'गए दिन की रात !' बालमसिंह को कुछ खीझ-सी आयी।

'गए दिन की रात तुम्हारा लड़का मरा और अब तक तुमने कारपोरेशन में खबर नहीं दी ? कानून-खिलाफी करते हो ?'

अजब झमेले में पड़ गया बालमसिंह। मौत और कारपोरेशन से क्या सम्बन्ध ?

'मैं कारपोरेशन से आया हूं।' उस अधेड़ ने बताया, 'सरकारी कानून है, आदमी के मरने या पैदा होने की रिपोर्ट दो दिन में कारपोरेशन में पहुंचनी चाहिए ! समझे !'

बालमसिंह चुपचाप खड़ा रहा।

उस व्यक्ति ने कहा, 'खैर ! कोई बात नहीं। आगे से ख़याल रखना !'

कारपोरेशन का आदमी लौट गया, तो बालमसिंह चबूतरे पर गुमसुम बैठा रहा। यह सोचकर उसे शांति और खुशी मिली कि कारपोरेशन के आदमी ने जुरमाना नहीं किया।

१९६३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्लियोपैट्रा और बदसूरत औरत

ऑफिस से अपने घर लौटने के बाद मिस झरना देर तक कमरे का दरवाजा बन्द कर रोती रही। आज न तो उसने नियमानुसार शाम की चाय ली और न ही कपड़े बदले। वह तब तक रोती रही, जब तक दुपट्टा गीला न हो गया और आंखों की कोंपलों में जलन न होने लगी। जब वह हिम्मत कर उठी, तब भी भीतर कोई चुभन थी, जो तमाम आंसू बहाने और दुपट्टा गीला करने के बावजूद ज्यों की त्यों मौजूद थी।

मिस झरना उठी। मेकअप टेबिल पर जाकर खड़ी हो गई। आंसुओं से चेहरे पर लिपा पाउडर धुल गया था। दुपट्टे से लगातार मुंह रगड़ते रहने के कारण लिपस्टिक होंठों पर बेतरतीबी से फैल गई थी। चेहरे पर लाख न चाहते हुए भी एक ऐसी उदासी उभर आयी थी, जैसे एक खूबसूरत कागज पर बेढंगे हैंडराइटिंग में कोई बदसूरत पत्र लिख दिया गया हो।

घूरकर मिस झरना ने सामने शीशे में उतरे अपने अक्श को देखा। समझने की चेष्टा की कि वह किस प्रकार ऑफिस की हमपेशा टाइपिस्ट मिस डाली से कम थी। देर तक वह अपनी और डाली की तुलना करती रही। डाली, जिसे सारा ऑफिस 'क्लियोपैट्रा' कहता था, और डाली जो क्लियोपैट्रा होने के अलावा मिस भी मानी जाती थी। ऑफिस के सभी पुरुषों की आंखें उसकी ओर उठतीं और ठहर जातीं। डाली का रंग साफ था। उसके कटे बालों में कुछ ऊंची-नीची घाटियां थीं, जो कुदरतन बिलकुल नहीं थीं। डाली ने उन्हें निश्चय ही फुग्गे पैदा कर बनाया था। उसकी आंखों में चंचलता थी और सारे शरीर में कसाव। कुल मिलाकर डाली हल्के गुलाबी रंग के प्लास्टिक वाली किसी सुडौल गुड़िया-सी दीखती थी, जिसे चटकदार रंगों वाले कपड़े पहना दिए गए हों। इसके विपरीत एक स्वयं मिस झरना थी। न तो उसे चटकदार रंगों वाले कपड़ों का ही शौक था, न ही उसकी आंखों में किसी तरह की कोई शरारत थी। उसका रंग भी सांवला था और बालों में फुग्गे पैदा कर घाटियां बनाने का उसे शौक नहीं था। कुल मिलाकर मिस झरना पुरातत्व विभाग के नुमायशी कमरे में सजाकर रखी गई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुराने युग की कोई ऐसी मूरत लगती थी, जिसे खुदाई में पाया गया था। शीशे के सामने खड़े-खड़े मिस झरना ने महसूस किया— निस्सन्देह ही ऊपरी दिखावे के मामले में वह मिस डाली से कई फुट छोटी और कई सीढ़ियां कम थी। इस सबके बावजूद मिस झरना को लगता, जैसे वह हमेशा, हर मामले में मिस डाली से उठी हुई है। वह यों पराजय स्वीकार करने को कभी तैयार नहीं थी। यह ठीक हैं कि डाली चेहरे-मोहरे, बनाव-श्रृंगार, देह की गठन और हर मामले में उससे कहीं अधिक बढ़ी हुई है। उसकी आंखों में शराब है, पर इस सबके बावजूद मिस झरना डाली से भारी है; क्योंकि उसके पास वह मन नहीं, जिसे ईश्वर ने लापरवाही के साथ झरना की झोली में डाल दिया है। न उसके पास वह हृदय है, जहां से ममता का अजस्र रस-स्रोत बहता है, जिसके बल पर औरत क्लियोपैट्रा नहीं, औरत कहलाती है। सोच-सोचकर मिस झरना के दिल की धड़कन तेज होती गई, किन्तु दूसरे ही क्षण यह सोचकर उसका हर्ष फिर जहां की तहां हवा निकल गए गुब्बारे की तरह सिकुड़ गया कि डाली और उसके बीच के इस जबरदस्त फर्क को लाल नहीं समझ पा रहा है। उसकी इच्छा हुई, मेकअप-टेबिल के शीशे को तोड़ डाले। कितना बेईमान है यह? ठीक लाल की तरह। जैसे लाल ऊपरी बातें आंकता है। औरत में 'क्लियोपैट्रा' देखता है। चेहरों के अन्तर पर औरत के मन का अन्दाजा करता है, उसी तरह यह शीशा भी सिर्फ चेहरों में अन्तर कर पाता है। लाल की तरह यह शीशा भी धोखा है।

विचारों की दौड़ में मिस झरना के विचार वेगपूर्वक दौड़ते गए। उसे एक दिन की घटना याद आयी—जब दोपहर लंच के समय ऑफिस के सामने वाले पार्क में टिफिन खोलते ही उसने लाल को, जो पास ही डाली के साथ बैठा किसी अंग्रेजी फिल्म के रोमांटिक दृश्यों का बखान कर रहा था, नाश्ते के लिए आमंत्रण दिया था।

लाल ने बात बन्द कर दी। वह बैठे-बैठे ही सरकता हुआ डाली के साथ झरना के पास आ गया। नजदीक आकर एक व्यंग्यपूर्ण मुसकान के साथ उसने पूछा—"क्या-क्या है?"

झरना ने टिफिन का नंगा डिब्बा उसके सामने कर दिया। आलू की थोड़ी सूखी सब्जी और पूड़ियां थीं।

लाल ने सब्जी की ओर संकेत किया, बड़े अर्थपूर्ण ढंग से टूटी अंग्रेजी बोला —"ओह मिस झरना! सब्जी तुमने किस तबीयत के साथ बनाई है। बिलकुल अपनी तरह सांवली-सांवली। रियली पिटी।"

बात का व्यंग्य नहीं समझी थी मिस झरना। इसलिए मुसकरा दी। फिर उसने पास आ गई डाली की ओर थोड़ा घूरकर देखा था। कमबख्त! लाल से गोंद की तरह चिपकी जाती है। मन की कुढ़न दबाकर उसने डाली को भी खाने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में शरीक होने का आमंत्रण दे दिया था।

बड़ी बेशर्मी के साथ डाली बैठ गई। लाल उठकर उसका टिफिन भी वहीं ले आया। झरना के खुले टिफिन से पूड़ी का एक ग्रास लेकर लाल ने आलू के दो टुकड़े मुंह में डाले। झरना को बेहद खुशी हुई, पर यह खुशी स्थायी नहीं रही। लाल ने दूसरा ग्रास नहीं लिया। बोला—"मिस झरना, तुम सब्जी भी अपने कलर की ही बनाती हो?"

झरना ने दुःख से भारी होकर उसे देखा था।

लाल व्यंग्य किए गया—"ये आलू एकदम तुम्हारी तरह हैं, मिस झरना! इनमें नमक कम है···और फीकापन है, बिलकुल तुम्हारी तरह।···" लाल की बात पूरी होते न होते डाली खिलखिलाकर हंस दी थी।

झरना चुप थी, पर उसके मन में कोई चीज़ थी, जो हड़कम्प मचाने लगी। अनचाहे आंखें भर आयीं उसकी। इच्छा हुई, लाल को नहीं, डाली को दो गन्दी गालियां देकर एक तमाचा मारे।

पूड़ी खाने तक वह एकदम उदास रही। डाली ने उसके आलू और पूड़ियों में से एक बड़ा हिस्सा साफ कर दिया था। उन दोनों के बीच ठिठोली के कई दौर-दौरे होते रहे।

उस सारे दिन किसी काम में मन न लगा था उसका। एक बार इच्छा हुई थी कि लाल का विचार मन से निकाल दे, पर चाहकर भी ऐसा न कर सकी थी वह। उसे अपमान और अपमान के बाद लगातार अपमान बरदाश्त करने की आदत-सी पड़ती जा रही थी। अपमानों की लगातार मार के बावजूद वह कभी न रोयी थी, पर आज तो बात सीमा से कहीं आगे बढ़ गई। आज वह लाल से साफ-साफ बात करने का निश्चय कर ऑफिस पहुंची थी। हमेशा की तरह डाली के साथ लाल लंच में गपशप कर रहा था। झरना ने उन दोनों के पास पहुंचकर लाल से कहा—"मिस्टर लाल! एक मिनट।"

लाल तनिक आश्चर्य के साथ उसे घूरता हुआ उसके साथ के लिए उठ खड़ा हुआ। डाली ने भी उठने की चेष्टा की किन्तु झरना ने काफी शिष्टाचारपूर्वक उसे रोक दिया—"सॉरी, मिस डाली! एकदम प्राईवेट मामला है।" अध-उठी डाली झेंपकर बैठ गई। फिर झरना, लाल को पार्क के एकांत कोने की ओर ले जाने लगी। बीच में वह कुछ नहीं बोली। जब पार्क का वह एकांत हिस्सा आ गया तब झरना ने अपनी बात कुछ सकुचाहट के बाद प्रारम्भ कर दी—"मैं बड़ी जरूरी बात तुमसे करना चाहती हूं।"

"कहो!" लाल निःसंकोच बोला।

एकदम कैसे कह दे? झरना को नारी-सुलभ लज्जा ने आ घेरा। पर दूसरे ही क्षण उसने स्वयं को सम्हाल लिया। बोली—"कभी तुमने मेरे बारे में सोचा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है ?"

"क्या ?" लाल ने प्रश्न की गम्भीरता समझी। वह जान-बूझकर अनजान बन गया था।

झरना के मन में फिर संकोच हुआ—क्या कहे ? वह फैशनपरस्त शहर में रहते हुए भी इस हद तक बदल नहीं सकी थी। बोली—"तुम्हीं सोचो। डाली के यहां आने के पहले तुम कभी ऐसे नहीं थे।" उसके स्वर में पीड़ा का भाव था।

लाल या तो समझा नहीं, या उसने समझने की आवश्यकता ही नहीं समझी। वैसी ही उतावली के साथ बोला—"जल्दी कहो, तुम क्या कहना चाहती हो ? लंच का वक्त खत्म हो रहा है, और मैंने अब तक थोड़ा भी नहीं खाया।"

झरना ने साहसपूर्वक, गम्भीरता के साथ कह ही दिया—"तुम मुझसे शादी करोगे ?"

लाल पर कोई विशेष प्रतिक्रिया नहीं हुई। एक क्षण वह चुप रहा, फिर बड़े औपचारिक ढंग से उसने उत्तर दे दिया—"सॉरी, झरना ! मैंने डाली से शादी का वायदा कर दिया है। तुम्हें पहले कहना चाहिए था।"

झरना को ऐसी बेरुखी की आशा नहीं थी। उसे लगा, जैसे जिस धरती पर वह खड़ी है, वह हिलने लगी है। और सिर्फ हिल नहीं रही है, डोल रही है—कभी दाएं, कभी बाएं। बड़ी मुश्किल से वह स्वयं को सम्हाल पायी। कुछ कह न सकी। इच्छा हुई, झपटकर लाल के बाल खींच ले। उसका मुंह कुछ इस तरह नोंचे कि चेहरे की तमाम मुसकराहटें हमेशा के लिए बदसूरती के बीच मुरझा जाएं।

लाल बोला—"झरना ! तुम्हें तो लाइफ को 'एन्जॉय' करना चाहिए।" उसके चेहरे पर मुसकराहट थी। झरना को लगा, जैसे मुसकान एक जहर में बुझी छुरी है; जिसका कोई कोना भूल से उसके सीने में चुभ गया है, और उसके सारे शरीर में वह जहर व्याप गया है। वह कुछ कहना भी चाहती थी किन्तु लाल की बात पूरी नहीं हुई। वह लापरवाही से कहे जा रहा था—"झरना, बुरा मत मानना। तुम शादी की चीज़ नहीं हो। तुम्हें तो सिर्फ 'एन्जॉय' किया जा सकता है। मेरी तो सलाह यही है, तुम इस तरफ दिलचस्पी लो। फिर तुम्हारी मरजी। अच्छा, डोली मेरा इन्तजार करती होगी, मैं चलता हूं···" और फिर वह चला गया।

झरना खड़ी-खड़ी देर तक आंसू रोकने का प्रयत्न करती रही, पर जब बेबस हो गई तो ऑफिस से घर लौट आयी।

शीशे के सामने खड़े-खड़े उसे काफी देर हो गई थी। घर आकर उसने बहुत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रो लिया था, सो स्वयं को बहुत हल्का-हल्का महसूस कर रही थी। इस हल्केपन के साथ उसने एक निर्णय भी लिया था। न जाने क्या हुआ था कि इस दिन के बाद से झरना में एक जबरदस्त परिवर्तन हुआ। हमेशा गम्भीर रहने वाली झरना हर बात पर हंसती जाती, हंसती जाती। चपरासी से लेकर साहब तक सभी से वह अधिक बोलने लगी। लोग जब उसके चेहरे-मोहरे, या काम-काज की आलोचना करते तो वह उस आलोचना में दिलचस्पी लेती और सब कुछ एक हंसी के साथ घोलकर पीती जाती। लाल को लगा, जैसे झरना ने उसकी सलाह मानकर लाइफ को एन्जॉय करना प्रारम्भ कर दिया है। लाल का क्रम ज्यों का त्यों था। वह डाली के साथ लंच मनाता, उसके साथ हंसी-मजाक करता, हर तनख्वाह पर फिल्म दिखाता; या साड़ियां भेंट करता। उन दोनों के बीच रूठने-मनाने के दौर चलते। सारा ऑफिस जानता था, लाल और डाली विवाह-सूत्र में आबद्ध होने जा रहे थे।

उस दिन झरना पहुंची तो ऑफिस का सारा क्रम ज्यों का त्यों था। केवल लाल उदास-सा अपनी टेबिल पर दोनों हाथों के बीच सिर थामे हुए बैठा था। डाली ने तीन दिन की छुट्टी ले रखी थी। झरना की इच्छा हुई, लाल के पास पहुंचकर पूछे—'क्या बात है?' पर न जाने क्यों उसने वैसा नहीं किया।

लंच के समय लाल उसके पास आया। फीकी-सी मुसकान के साथ उसने उदास स्वर में कहा—"हलो, मिस झरना!"

"हैलो!" उतनी ही फीकी मुसकान के साथ झरना ने उत्तर दिया।

थोड़ी देर तक लाल यह सोचकर खड़ा रहा कि वह उससे बैठने को कहेगी, पर जब झरना ने कुछ नहीं कहा तो वह स्वयं ही बैठ गया।

झरना ने उससे खाने के लिए भी नहीं पूछा।

कुछ देर दोनों चुप रहे। फिर लाल ने स्वयं ही बात प्रारम्भ की—"मिस झरना! मैं बहुत बदकिस्मत आदमी हूं। उस दिन जब तुमने मुझे शादी का 'आफर' दिया था, तो मैंने मना कर दिया।" थम-थमकर जैसे गले में कुछ अटका हुआ हो, वह कहता गया—"आज मैं स्वयं तुम्हारे पास आया हूं।"

झरना कुछ नहीं बोली।

लाल फिर कहने लगा—"मैं सचमुच बेवकूफ था। मैंने उस दिन तुम्हारी हंसी उड़ाई, मुझे दुःख है।" उसने कुछ रुककर बात एक सांस में ही उगल दी—"मैं तुम से शादी करना चाहता हूं।"

झरना ने सवाल पर सवाल कर दिया—"डाली वाले 'प्रॉमिस' (वायदा) का क्या हुआ?"

एकाएक लाल का चेहरा तमतमा गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसने डाली के नाम पर एक निहायत गंदी गाली हवा में उछाली—"उस नामुराद···"

"क्यों ?" झरना ने लाल की प्रतिक्रिया की बगैर परवाह किए पूछ लिया—"तुमने उससे प्रॉमिस किया था !"

"हां।" लाल भारी-से स्वर में बोला—"बेशक, मैंने उससे प्रॉमिस किया था। उसने भी मुझसे वायदा किया था, पर वह धोखेबाज निकली। वह शादीशुदा है और यह शादी उसकी पहली नहीं, तीसरी है।" बोलते-बोलते लाल उत्तेजित होता चला गया—"वह मुझसे नहीं, मेरी गिफ्ट्स से प्रेम करती थी। वह फ्रॉड थी।"

झरना पर लाल के स्पष्टीकरण का कोई असर नहीं हुआ। वह पूर्ववत् मुसकराती रही, जैसे उसे लाल की पीड़ा, उसका आत्मसमर्पण, उसकी उत्तेजना सबमें आनन्द आ रहा हो।

लाल ने फिर याचना की—"अब मैं भटकने से बच गया हूं, मिस झरना !" उसने पंचम से स्वर नीचे उतारा—"तुम्हारा क्या ख़याल है ?"

झरना ने कोई उत्तर नहीं दिया—कंधे पर लटके बैग के भीतर से एक वेडिंग कार्ड (विवाह का निमन्त्रण-पत्र) निकाला और लाल की ओर बढ़ा दिया।

लाल ने कार्ड खोला। झरना की शादी का मजमून था।

ऐसे जैसे कहीं दूर कुएं में निचाई से आवाज आ रही हो, लाल ने पूछा—"तुम शादी कर रही हो ?"

"हां !" झरना बोली। उसके स्वर में न संकोच था, न लज्जा। "मैं शादी कर रही हूं, क्योंकि मैं औरत हूं, 'क्लियोपैट्रा' नहीं।"

"अपने हमपेशा उस बदसूरत टाइपिस्ट से ?" लाल ने अचरज के साथ पूछा।

"हां, मिस्टर लाल !" झरना की मुसकान और अधिक स्पष्ट हो गई, "वह भी लाइफ एन्जॉय करना चाहता है, और मैं भी।" बात समाप्त कर झरना अपनी जगह से उठ खड़ी हुई—"अच्छा लाल, लंच टाइम खतम हो रहा है···" और फिर वह ऑफिस की ओर बढ़ गई।

लाल खड़ा रहा—शायद वह अपने ही प्रश्नों का समाधान खोजना चाहता था। जाती हुई झरना को देखकर उसे लगा, जैसे वह बहुत खूबसूरत है। बेहद खूबसूरत—क्लियोपैट्रा से भी कहीं अधिक।

१९६३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पच्चीस मिनट

बालेश्वर चाहकर भी झूठ नहीं बोल सका। कभी-कभी झूठ इतना अपच होता है कि उसे हजार कोशिशों के बावजूद पचाया नहीं जा सकता। बालेश्वर ने बहुत कोशिश की, वह पचाए रहे पर नहीं पचा सका। न जाने कैसे, कब और क्यों वह उसके मुंह के बाहर आ गया और क्यू में उससे कम-से-कम तीसवें-बत्तीसवें नम्बर पर खड़ी सुरेखा का चेहरा थर्मामीटर के पारे की तरह उतर गया।

बिना धक्का-मुक्की किए बालेश्वर बस में आ गया था, पर उससे पहले भी इतने लोग इस बस में समा चुके थे कि उसे बैठने की जगह नहीं मिली। उसने छत पर लटके हुए डण्डे को उसी की तरह की कई सवारियों की भांति थामा और खड़ा हो गया। वह बीच-बीच में सवारियों की भीड़ में गसा हुआ, घुटन से बचने के लिए यहां-वहां मुंह देकर, खुली जगह ढूंढ़ता हुआ सांस खींच लेता। बीच में उसने कोशिश भी की थी, खिड़की से झांककर देखे, क्या सुरेखा अब भी वहीं खड़ी है ? पर बस में इतनी भीड़ थी कि वह बमुश्किल हिल-डुल पाता था, झुकना तो बहुत बड़ी बात थी।

"भाई, कितनी देर है इसकी रवानगी में ?" गसे हुए लोगों में से कोई व्यक्ति शायद कण्डक्टर तक अपनी बेचैनी पहुंचा रहा था।

"उफ ! किस कदर गर्मी है !" किसी और सवारी ने भी अपनी कठिनाई पेश की।

"अभी पांच मिनट और हैं," बालेश्वर के ठीक पास खड़े हुए व्यक्ति ने घड़ी देखी, "पांच चालीस पर डिपार्चर है इसका।"

और बालेश्वर को लगा, वह बहुत जल्दी घर जा रहा है। उसका ऑफिस छह बजे खत्म होता है और वह छह बजने में पांच मिनट पहले उठकर मोटर-स्टैण्ड की ओर रवाना हो जाता है। उसके ऑफ़िस से सिर्फ़ तीन मिनट का रास्ता है इस स्टैण्ड तक। यहां आकर वह छह बजे की बस पकड़ लेता है। सुरेखा को भी यही बस मिलती है। उसका ऑफ़िस भी शायद स्टैण्ड के नज़दीक ही है। सुरेखा का ख़याल आया तो बालेश्वर का मन एक बार फिर हुआ, किसी भी तरह हो, थोड़ा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

झुके और बाहर देख ले ।

सुरेखा अब भी शायद क्यू में ही होगी । बालेश्वर जानता है, जब तक यह बस नहीं हटेगी, दूसरी बस यहां नहीं आ सकेगी । उसने कन्धे कुछ उचकाए, पीठ मोड़ने की कोशिश की, पर वह लौट भी नहीं सका । उफ ! कितनी भीड़ है । सामने, उससे करीब-करीब चिपकी हुई एक बच्चे वाली पंजाबिन महिला खड़ी हुई थी और बालेश्वर को हर क्षण खुद को बहुत संभालना पड़ रहा था । उसके शरीर का हर हिस्सा उस महिला को छू रहा है, बालेश्वर जरा मुड़ेगा कि वह महिला पूछेगी, "क्या है ?" बड़ी नाजुक जगह आ फंसा है वह, उसने सोचा और चुपचाप खड़ा रहा ।

पसीने से उसकी बनियान भीग चुकी थी और कमर पर खुजली महसूस कर रहा था वह । बीच में उसने हाथ उठाना भी चाहा था पर कुछ नहीं कर सका । उसका एक हाथ ऊपर से डंडा पकड़े हुए है और दूसरा पंजों में लंच बॉक्स थामे भीड़ में नीचे की तरफ उलझा-फंसा रह गया है । आह ! कितनी परेशानी है ! एक बार तो और कई सवारियों की तरह बालेश्वर का भी मन हुआ कि कण्डक्टर से पूछ ले, "बस की रवानगी में कितनी देर और है ?" पर, उसने नहीं पूछा । उसके कहने से तो बस रवाना हो नहीं जाएगी ?···वह अपने वक़्त से ही चलाई जाएगी ।

जो भी हो, उसने वह सच कहकर कोई अच्छी हरकत नहीं की है । बालेश्वर फिर पुराने खयाल पर आ गया । क्या सोचा होगा उसने ? बालेश्वर को सुरेखा का चेहरा याद आने लगा । उस सच के साथ ही वह कितनी उदास हो गई थी । बालेश्वर इस बस की सीढ़ियों तक आ पहुंचा था पर उसने चढ़ते-चढ़ते देख लिया, सुरेखा इस तरह शांत, अपलक उसी की ओर देख रही थी जैसे एक बुत हो वह । जो भी हो, उसे नहीं कहना चाहिए था । बहुत होता तो कन्नी काट लेता । धीरे-धीरे उससे बातचीत कम कर देता और बात आयी-गई हो जाती ।

कण्डक्टर आ गया था । उसने शायद पहले अपेक्षा की थी बालेश्वर से कि वह खुद बतलाएगा उसे कहां तक का टिकट चाहिए । पर जब वह नहीं बोला तो उसने पूछकर उसका मौन तोड़ दिया, "कहां का दूं आपको ?"

"हैं ?···हां, हां ।" बालेश्वर चौंका । फिर उसने टिकट मांग लिया, "वेस्ट पटेलनगर ।"

कण्डक्टर ने पंच कर टिकट थमा दिया उसे और पैसे लेकर आगे बढ़ गया ।

उसे नहीं कहना चाहिए था, बालेश्वर ने दोबारा सोचा । कितनी शॉकिंग बात रही होगी । उसे खयाल आया, सुरेखा ने जरा बात की थी और वह दन से सच उगल बैठा । तब न जाने क्या हो गया था उसे ? बालेश्वर को खुद पर आश्चर्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुआ। वह अपने चाहे कुछ नहीं बोला था, एकाएक ही कह गया। कैसे कह गया, यह वह खुद भी नहीं जानता।

कितनी गर्मी है। उसने तमाम जिस्म में तपन महसूस की। इच्छा हुई, इस बस से बाहर निकल जाए। उसे घबराहट होने लगी थी और मितलियां आ रही थीं। उसे लगा, जैसे आज कुछ लेट चलने वाली है यह बस। मुमकिन है, कोई खराबी हो गई हो और ड्राइवर इंजन से उलझा हुआ हो। असल में, बालेश्वर के इर्द-गिर्द इतनी गसी हुई भीड़ है कि वह खुद के बाद तीसरे आदमी का भी चेहरा ढंग से नहीं देख पा रहा है।

उसने इस बस में आकर ग़लती की। सिर्फ दस मिनट के फ़र्क के लिए वह इस भीड़ में आ समाया है वरना रोज़ की तरह छह बजे की बस ठीक रहती है। आराम से वह सीट पा जाता है।

कण्डक्टर ने घंटी की रस्सी खींच दी। बालेश्वर ने सन्तोष की सांस ली। एक हल्का-सा धक्का लगा और बस रवाना हो गई। खिड़कियों से हवा भीतर आने लगी और भीतर वाली सवारियों ने ईश्वर को धन्यवाद दिया।

बस के हिलने से थोड़ी-बहुत जगह भी होने लगी थी। बालेश्वर का मन पुनः हुआ, झुके और ओडियन स्टैण्ड को एक बार देख ले। निश्चित ही, सुरेखा अब भी वहीं खड़ी होगी।

थोड़ी ही देर में वह ऊबने लगा। कोई और दिन होता तो शायद वह नहीं ऊबता पर आज वह ऊबने लगा। और दिनों उसे अच्छी जगह मिल जाया करती थी और वह खिड़की से शहर को दौड़ता हुआ देखकर खुश होता था, वक़्त काट लिया करता था। वह बोर्ड पढ़ता, अजीबो-ग़रीब विज्ञापन देखता या सड़क पर इधर-उधर चलती हुई मत्स्य कन्याओं-जैसी औरतें देखता। यह नयी वेशभूषा लड़कियां पहनती हैं तो देखने वालों को लगता है, शरीर कपड़े फाड़कर बाहर निकल आएगा।

इधर कुछ दिनों से उसका रास्ता बहुत अच्छी तरह कटने लगा था। वह समय काटने के लिए किसी विज्ञापन, किसी बोर्ड या फुटपाथों पर घूमती हुई लड़कियों का मोहताज नहीं रहा था। स्टैण्ड पर सुरेखा मिल जाती थी और वह सारे रास्ते मखमली सपनों की गुदगुदी महसूस करता हुआ कनॉट प्लेस से वेस्ट पटेलनगर तक का पच्चीस मिनट का रास्ता तय कर लेता था। ये पच्चीस मिनट इस तरह बीत जाते थे, जैसे कांटा इन पच्चीस मिनटों को छलांग लगाकर पार कर जाता हो, जैसे दिन की गिनती में ही न हों ये मिनट। और अनचाहे ही बालेश्वर के दिमाग़ में वह दिन उभर आया जब सुरेखा से उसकी पहली मुलाकात हुई थी, ओडियन स्टैण्ड पर।

बालेश्वर यों तो शहर में नया-नया होने के कारण जहां से बस मिल जाया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करती थी, वहीं से सवार हो जाता था। फिर एक दिन उसे यह मालूम हो गया था कि ओडियन स्टैण्ड से दो नम्बर बस तैयार होती है और ठीक वेस्ट पटेलनगर के उस स्टैण्ड पर छोड़ती है जहां से बालेश्वर का घर बहुत नज़दीक है। और वह हर रोज़, नियमित रूप से अपने ऑफ़िस के खत्म होते ही ओडियन पहुंच जाया करता था और उस क्यू में शरीक हो जाता था, जो दो नम्बर के लिए लगती है।

इसी क्यू में उसने सुरेखा को सबसे पहली बार देखा था। वह ठीक उसके सामने खड़ी हुई थी। गोरा, छरहरा बदन, डूबी हुई नीली आंखें और करीने से संवारे गए बाल। वह फ़ैशनेबिल है···उसने बालों को घोंसलेनुमा नये फैशन में संवार रखा था। भौंहें काले रंग से तीखी और चुभने वाली बनाई थीं। आंखों की कोरें पुराने मिस्री फैशन की तरह मुड़ी हुई पतली-सी थीं। होंठों पर हल्की, बहुत हल्की लिपस्टिक लगाई थी। बालेश्वर ने उसे देखा तो देर तक देखता रहा था। उसने कई-कई बार गले का थूक निगला था, अपनी उखड़ती हुई सांसें संभाली थीं। कितनी ख़ूबसूरत है वह—बालेश्वर ने सोचा था। उसने उसे देखते-देखते समय काट दिया था। यों बालेश्वर का स्वभाव है, वह बहुत फैशनबिल लड़कियां पसन्द नहीं कर पाता। कई बार तो फैशन उसे अपच लगता है पर सुरेखा उसे बहुत पसन्द आयी थी। शायद इसलिए कि हर फ़ैशन के बावजूद वह कपड़े करीने के पहनती है। वह मत्स्य कन्याओं-जैसी वेशभूषा नहीं पहनती। साड़ी अगर ढंग से पहनी जाए तो जिस्म कसी हुई कुरती या सलवार से कहीं अधिक सौम्य ढंग से उभरता है।

सुरेखा साड़ी पहने हुए थी। वह साड़ी ही पहनती है और चेहरे के हर किस्मी मेकअप के बावजूद उसका सौन्दर्य अश्लील नहीं, सौम्य प्रभाव छोड़ता है।

हां, तो बालेश्वर ने वहीं देखा था उसे पहली बार और प्रभावित हो गया था। फिर इस बस पर आने का उसने दृढ़ निश्चय कर लिया था। वह रोज़ इसी बस पर, इसी क्यू के ज़रिए सवार हुआ करता था और सुरेखा उसे रोज़ मिलती थी। वह साउथ पटेलनगर स्टैण्ड पर उतरा करती थी और उसके एक फर्लांग बाद ही बालेश्वर उतरता था। इस तरह सारा रास्ता वह बड़ी आसानी से काट लेता था। शुरू-शुरू में वह उसे देखता रहता था, देखता रहता था और बस कई चक्कर खाती, रुकती, मंजिल तक आ पहुंचती थी।

सुरेखा ने थोड़े ही दिनों में जान लिया था, यह रोज़ आने वाला आदमी चुपचाप उसे देखता रहता है। वह चोर नज़रों से अकसर बालेश्वर को देख लेती, कपड़े संवारती। कुछ ही दिनों में उसके देखने में फ़र्क आ गया था। अब वह सिर्फ़ देखती नहीं थी बल्कि शायद लजा जाती थी। उसकी गहरी नीली आंखों से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बालेश्वर की आंखें मिलतीं तो लाज के कई-कई परदे उसकी पुतलियों पर झिलमिलाकर आ गिरते। ऐसे हर मौके पर कुछ सकुचाकर बालेश्वर भी नज़र झुका लेता था।

फिर एक दिन बात हो गई थी उससे। बस में खड़े बालेश्वर को जैसे किसी टीस ने घेर लिया। उसने सारे जिस्म में टूटन महसूस की।

उस दिन सुरेखा शायद कुछ लेट हो गई थी और क्यू में काफी बाद नम्बर लगा था उसका। सुरेखा के बस में आते-आते तक सीटें भर चुकी थीं। बालेश्वर चूंकि बहुत आगे था इसलिए जगह पा गया था। उसने देखा, सुरेखा उसके पास ही सहारा लेकर आ खड़ी हुई थी। एक बार तो मन हुआ था बालेश्वर का, उठे और अपनी जगह उसे दे दे। फिर उसने इरादा घोंट दिया था, वही क्यों करे ऐसा? उसकी तरह बहुत से मर्द, जो खड़े हुए हैं या बैठे हुए हैं। बहुत-सी औरतें हैं, जो बैठी या खड़ी हुई हैं, और कोई किसी पर जगह का उपकार नहीं कर रहा है। फिर बालेश्वर ही यह क्यों करे? वह बैठा रहा था, हालांकि काफी संकोच में घिरा हुआ था। बहुत-सी औरतें हैं, जो धक्के खाती, शरीर संभालती इस बस में खड़ी हुई हैं। जब बालेश्वर इस शहर में नया-नया आया तो अकसर किसी औरत के लिए अपनी जगह छोड़ दिया करता था। पर धीरे-धीरे उसने अपनी यह आदत बदल दी। ऐसे उपकार कब तक करेगा?···यह शहर अजीब है। मर्द-औरत सब एक-से, कोई किसी का लिहाज नहीं करता। फिर बालेश्वर ही क्यों करे?

बालेश्वर बैठा रहा, हालांकि सुरेखा की स्थिति देखकर उसे इस तरह बैठे रहना कुछ असह्य होने लगा था।

सुरेखा खड़ी हुई थी। भीड़ बढ़ती जा रही थी और वह बमुश्किल खड़ी रह पाती थी। एक बार तो बालेश्वर ने देखा, वह आगे-पीछे करीब-करीब भिंची जा रही है। उसका चेहरा उतर गया था और काफी संकोचपूर्ण नज़रों से वह बालेश्वर की ओर देख रही थी। इस तरह, जैसे कह रही हो, "क्या देख नहीं रहे आप, कितनी भीड़ है? कुछ जगह दीजिए न मुझे!"

बालेश्वर को याद है, उस दिन न जाने कैसे वह उठ खड़ा हुआ था।··· "बैठिए।"

सुरेखा ने बड़ी आभारी नज़रों से उसे देखा, बैठ गई।

बालेश्वर भीड़ में भिंच गया पर वह खुश था। एक अनजान-सी तसल्ली वह अनुभव कर रहा था।

कुछ ही मिनटों बाद सुरेखा बोल पड़ी थी। "आप भी बैठ जाइए।"

उसने खुद कुछ भिंचकर बालेश्वर के लिए जगह बना दी थी। बहुत थोड़ी जगह—इतनी कि बालेश्वर सिर्फ आधे हिस्से का सहारा बनाकर ही उस पर बैठ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकता था।

"रहने दीजिए।" वह बोला था।

"बैठ जाइए।" सुरेखा ने दोबारा कहा और बालेश्वर बैठ गया। उसके तमाम अंग सुरेखा की बगल से भिड़ गए। एक विचित्र-सी सनसनी हुई उसके जिस्म में। लगा, उसके बाजू में कोई करण्ट दौड़ गया है, और वह क्षण के सौवें हिस्से में ही सारे शरीर को झनझना गया है।

उस दिन का ख़याल आता है बालेश्वर को तो वह आज भी सारे शरीर में वैसी ही झनझनी अनुभव करता है।

उसने बस में खड़े-खड़े वही झनझनी महसूस की। उसने नज़र फिराई, वह! ...इस प्रवेशद्वार की वह बिलकुल सामने वाली सीट। बालेश्वर और सुरेखा के जिस्म कपड़ों के बावजूद जैसे नंगे होकर बीस मिनट सटे रहे थे। बालेश्वर ने एक गहरा श्वास लिया और ख़यालों की अगली कड़ी जोड़ने लगा।

उस दिन परिचय का पहला और कीमती क्षण आया था।

"आप यहां किस ऑफ़िस में हैं?" सुरेखा ने पूछा था।

"मैं?" बालेश्वर ने झनझनी का अस्तित्व पूरी तरह अनुभव करते हुए उत्तर दिया, "मैं हिन्दुस्तान टाइम्स के हिन्दी सेक्शन में हूं।"

"मैं भी पासवाली इमारत की एक फॉरेन फर्म में काम करती हूं।"

बालेश्वर ने गर्दन हिलाई, स्वीकारात्मक ढंग से। बात टूट गई।

वे दोनों कुछ क्षणों तक चुप रहे। सुरेखा खिड़की से बाहर की ओर निरुद्देश्य देखती रही और बालेश्वर जैसे-तैसे पंजों पर ज़ोर देता हुआ सीट के कोने पर जमे रहने की कोशिश करता रहा। बात फिर शुरू हुई। इस बार भी सुरेखा ने पहल की थी। बालेश्वर लड़कियों से, खासतौर से इस तरह की लड़कियों से बहुत घबराता है। वह देर तक यह तय ही नहीं कर सका था कि उसे क्या बात करनी चाहिए।

"कभी-कभी इस बस में बहुत रश हो जाता है।"

"हैं? हां, हां।" बालेश्वर बोला।

"मैं ऑफिस से छह बजने में ठीक पांच मिनट पहले उठ जाती हूं। तीन मिनट स्टैण्ड तक आनें में खर्च करती हूं, बाकी दो मिनट मुझे क्यू में इंतज़ार करना पड़ता है।"

"मैं भी यही करता हूं।" बालेश्वर ने बहुत संक्षिप्त-सा उत्तर दिया। बात दोबारा टूट गई।

यह टूटी हुई बात उस दिन आगे नहीं जुड़ सकी थी, बालेश्वर को ख़याल आया। एक झटके के साथ बस रुकी और कुछ सवारियां उतरीं तो बालेश्वर फुर्ती से एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सीट पर जम गया। कुछ देर चुपचाप अपने आस-पास देखता रहा, और जैसे ही बस चली वह फिर टूटी हुई कड़ियों को जोड़ने लगा। उस दिन के बाद वे दोनों बातचीत करने लगे थे। क्यू में खड़े हुए दो मिनट वह सुरेखा से इधर-उधर की गपशप करते हुए बिता देता। परिचय क्रमशः घना होता चला गया था। बस में भी वे तमाम वक्त गप्पें लगाते रहते थे और रास्ता इस तरह कट जाता था जैसे एक खूबसूरत ख़याल।

सुरेखा कुंवारी है। एक दिन बातों ही बातों में बात निकल आयी थी। बालेश्वर उस दिन कुछ चौंका भी था, कहीं पूछ न ले वह कि क्या बालेश्वर भी कुंवारा है?···पर, सुरेखा ने इस ओर तवज्जुह नहीं दी। उसने तनख्वाह बतलाई थी—ढाई सौ मिलते हैं। बालेश्वर ने अपनी तनख्वाह बतला दी थी—साढ़े चार सौ।

सुरेखा हंसी। "साढ़े चार सौ के आगे ढाई सौ किस तरह शर्माते हैं?"

बालेश्वर ने शरारत की, "साढ़े चार सौ में ढाई सौ जोड़ दिए जाएं तो सात सौ हो जाते हैं।"

सुरेखा की नीली आंखों में एक चमक पैदा हुई और होंठों के किनारे कुछ खास तरह से फैले। कुछ देर दोनों के बीच चुप्पी रही। ज़ाहिर था, अपरोक्ष रूप से वे किसी समझौते में गिरफ्तार होते जा रहे हैं। उस दिन बालेश्वर को लगा था, वह अपराध कर रहा है। कहीं सुरेखा किसी ग़लत उलझन में तो नहीं उलझ रही? उसने ख़तरा महसूस किया था, फिर उस ओर से उपेक्षा बरत गया था वह। उंह! कहीं ऐसा होता है?···बस का सफर सारी ज़िन्दगी का सफर बन जाए, यह सस्ती किताबों या फ़िल्मी कहानियों में ही सम्भव है। फिर बालेश्वर इस सफर में इससे अधिक रुचि भी नहीं रखता कि ऑफ़िस से घर तक पहुंचने का वक्त ढंग से कट जाया करे। सुरेखा में इसके अतिरिक्त उसकी कोई रुचि नहीं है कि वह हर शाम उसके साथ मीठी बातें कर सफर काट लेता है।

पर बालेश्वर ने कुछ ही दिनों में अनुभव किया कि कुछ गड़बड़ हो रही है। बालेश्वर सफर काटता है और सुरेखा भविष्य। यह तो अच्छी बात नहीं है। और फिर बालेश्वर को लगा था, वह कोई चोरी कर रहा है। उसे साफ-साफ कह देना चाहिए। सुरेखा की हर ग़लतफ़हमी साफ कर देनी चाहिए। उसे बतला देना चाहिए कि बालेश्वर शादीशुदा है, उसके तीन बच्चे हैं और वह उसका बस के साथी के अतिरिक्त और कुछ नहीं हो सकता। कई बार तो बात होंठों तक आकर अटक गई थी। बालेश्वर कोशिश करने के बावजूद नहीं उगल पाया था।···कैसे कहे?···वह समझ नहीं पाता था।

कई दिनों यही स्थिति रही थी। सुरेखा ने जैसे महसूस किया था, बालेश्वर किसी चिन्ता में उलझा हुआ है। एक दिन पूछ भी लिया उसने, "तुम आजकल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहुत परेशान रहते हो ?"

वे इन कुछ दिनों में 'आप' से 'तुम' तक आ पहुंचे थे। बालेश्वर ने स्वयं इस परिवर्तन को गम्भीरता से अनुभव किया था।

"नहीं, ऐसी कोई बात नहीं। बस यों ही ज़रा···" वह कतरा गया था। क्या जवाब दे ?···इच्छा हुई थी, कह दे, "तुम्हें ग़लतफ़हमी हो रही है, सुरेखा !··· मैं···मैं शादीशुदा हूं।" पर, फिर वही बात। बालेश्वर शब्द होंठों तक ले आने के बावजूद उगल नहीं पाता था।

"कल रविवार है। कहीं घूमने का प्रोग्राम रखें। क्यों ?" सुरेखा बोली।

बालेश्वर तैयार हो जाता। यह खूबसूरत···मिठास भरी लड़की···बालेश्वर की छुट्टी बड़ी हल्की-हल्की कट जाएगी। किन्तु बालेश्वर कतरा गया।···"नहीं, नहीं।" उसने कहा, "मैंने एक और फ्रैंड को बुला लिया है। किसी और दिन अपना प्रोग्राम रखेंगे।"

सुरेखा चुप हो गई थी। वे उसी तरह चुप्पी में डूबे हुए बस पर सवार थे और सफर ख़त्म कर दिया था। उस दिन दोनों में कोई बात नहीं हुई थी। बालेश्वर ने निर्णय कर लिया था, "अब चुप नहीं रहेगा। कल स्टैण्ड पर आते ही वह सुरेखा को क्यू से निकाल लेगा। कहेगा, कहीं घूमकर घर चलेंगे। उसने जगह भी चुन ली थी।···कर्जन रोड ! कर्जन रोड कुछ सूनसान रहती है। बालेश्वर सुरेखा को उधर ही ले जाएगा। फुटपाथ पर चलते-चलते वह सारी सच्चाई उगल देगा। ···वह शादीशुदा है···उसके तीन बच्चे हैं···सुरेखा को कोई ग़लतफ़हमी हो गई है उसके बारे में।

वह योजनानुसार दूसरे दिन सुरेखा को घुमाने ले गया था। बालेश्वर ने बस में बैठे-बैठे याद किया—कर्जन रोड, फिर बाराखम्बा रोड···फिर बाराखम्बा लेन···वे हर सड़क को अधूरी छोड़ते हुए यहां-वहां घूमते रहे थे। सुरेखा ने कितनी ही बार प्रस्ताव किया था, "आओ, किसी होटल में बैठ जाएं।···इस तरह बिना वजह घूमने से तो हम थक जाएंगे।···आज ऑफिस में भी काम ज़्यादा था···" और बालेश्वर हूं-हां करता उसे घुमाता ही रहा था। उसने कई बार सूखे हुए होंठों को थूक से तर किया था पर नहीं कह पाया···नहीं कह पाया।

वे उसी तरह निरुद्देश्य घूमते रहने के बाद दोबारा ओडियन के स्टैण्ड पर दो नम्बर के इन्तजार में आ खड़े हुए। सुरेखा खीझ गई थी। "अजीब आदमी हो तुम !"···वह झुंझलाई भी थी, और बालेश्वर चुपचाप उसकी झुंझलाहट बर्दाश्त कर गया था।

सुरेखा ने संदेह भी व्यक्त किया था, "तुम किसी उलझन में हो ?"

"नहीं, नहीं।" बालेश्वर बात चुरा गया।

बालेश्वर को याद है, उस दिन उसने सुरेखा से बचाव का एक नया तरीका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सोच लिया था। वह उससे बातें कम कर देगा। धीरे-धीरे एक स्थिति आएगी, जब बातें समाप्त हो जाएंगी।

उसने यह तरीका अपनाया भी था पर जब-जब सुरेखा से भेंट हुई, वह जैसे अनचाहे ही बोलता गया। समस्या ज्यों की त्यों रही।

"ईस्ट !···" बस-कण्डक्टर ने आवाज़ दी, "ईस्ट पटेलनगर !···"

बालेश्वर ने तसल्ली अनुभव की। अब मंज़िल मुश्किल से तीन-चार मिनट की है।

वह नहीं चाहता था, सुरेखा दोबारा उसके ख़यालों पर छा जाए, पर वह छा गई। अब तो बस मिल चुकी होगी उसे।··· बालेश्वर ने सोचा, फिर उसे कुछ खीझ भी हुई और हंसी भी आयी। आज कैसे अनचाहे-अनजाने ही सच्चाई उगल गया वह।

आज वह ओडियन पर जल्दी पहुंच गया था।···छह वाली बस के बजाय पांच चालीस की बस की क्यू में खड़ा हो गया था वह। सुरेखा भी इसी क्यू में आ खड़ी हुई थी। उसने उसे आगे, बहुत आगे खड़ा देखकर कहा था, "आइए, छह की बस लेंगे।"

"नहीं, नहीं। आज मुझे जल्दी पहुंचना है।"

"पांच मिनट में क्या होता है?" सुरेखा ने उससे जैसे अनुरोध किया था।

"नहीं, नहीं।" बालेश्वर बस के पायदान तक पहुंच गया था बिलकुल। "बच्चे इन्तज़ार कर रहे होंगे। आज मैं उनसे जल्दी पहुंचने के लिए कह आया था।"··· वह पायदान पर हक्का-बक्का कुछ परेशान-सा चढ़ गया। बीच में उसने मुड़कर देखा था—सुरेखा का चेहरा कैसे उतर गया है, थर्मामीटर के पारे की तरह। वह अब भी हैरान है। कैसे सच्चाई उगल गया वह।···

"वेस्ट पटेलनगर !" कण्डक्टर चिल्लाया तो बालेश्वर हर ख़याल छोड़कर फ़ुर्ती से बस से बाहर आ गया। उसे लगा, जैसे घुटन ख़त्म हो गई है।

घर तक आते-आते उसने शरीर में ताज़गी महसूस की। वह अनुभव कर रहा था जैसे कोई बोझ उतर गया है उसका। उसे अब इस बात का कोई अफसोस नहीं था कि अब शायद ऑफ़िस से लौटते समय यह पच्चीस मिनट काटने में उसे फिर बोर्ड पढ़ने होंगे, निरुद्देश्य सड़कें ताकनी होंगी।

१९६४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बेटियां

हवलदार बिहारीसिंह ने अलस्सुबह ही टापरोंवाली बस्ती में प्रवेश किया और जान-बूझकर जोर-जोर से खांसी के ठसके लिये ताकि टापरों के भीतर सवेरा हो जाये और कार्पोरेशन के नल पर पानी भर रही औरतें उसकी ओर देखें, अस्त-व्यस्त कपड़ों को सम्हालें और उनके अलसाये चेहरों और गदराये शरीरों को वह अपने दिल की हाथी-डुब्बा गहराइयों तक उतार ले।

बिहारी हवलदार आया है। टापरों की सारी बस्ती में पूरब से पश्चिम और उत्तर से दक्षिण तक सवेरा हो गया। टापरों के भीतर आठ-दस फुटी वर्गाकार जगहों में सिकुड़े-सिमटे मर्द-औरत जाग गये—वे भी जो रात देर तक जागने के बाद सोये थे, वे भी जो सही-संझा सो गये थे, वे भी जो अभी-अभी सवेरे काम से लौटकर सोये थे।

बिहारी हवलदार कई झोंपड़ों के सामने से गुजरता 'मालिक राम-राम ! हुजूर सलाम !' लेता हुआ—हाथ के इशारों से वापस फेंकता हुआ, बस्ती के बीचों-बीच आ गया। वहां से चौतरफा ऐसा लगता था, जैसे वह नागपुर शहर में नहीं, बिहार के किसी बाढ़ग्रस्त गांव में खड़ा हो।

रात काफी तेज बारिश हुई थी और टापरे जो एकदम बेसिलसिलेवार एक-दूसरे के आसपास बने हुए थे, भीगकर पहले से कहीं अधिक उघर आये थे—जैसे शहर की संगमरमरी छाती पर बड़े-बड़े फोड़े उठ आये हों और हर घाव धुलाई के कारण पूर्वापेक्षा कहीं ज्यादा स्पष्ट हो गया हो। पर लाख सफाई-धुलाई के बावजूद घाव, घाव ही रहता है। इसलिए बिहारी हवलदार को बस्ती के बीचों-बीच आकर यों लगा, जैसे उसका दम घुटने लगा है। कई टापरे घास-फूस के थे, कइयों का निर्माण एक-के-ऊपर-एक कपड़े की परतें जोड़कर किया गया था और बारिश में भीग जाने से उनमें से विचित्र-सी तीखी दुर्गंध निकलने लगी थी—जिस पर गंदगी ऐसी कि हर झोंपड़ा और झोंपड़े का बाहरी हिस्सा शहर का सबसे गंदा घूरा बना हुआ था। बस्ती के दक्षिण में शहर के गंदे पानी का खुला नाला बहता था और उसी के किनारे सारी गंदी बस्ती के वारिस-लावारिस बच्चे और मर्द-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

औरतें संडास करते थे। बिहारीसिंह हवलदार ने घृणा से नाक सिकोड़ ली। उसके माथे पर सिलवटें उभर आयीं और आंखों में विचित्र-सी अकुलाहट झांकने लगी। मन हुआ, भाग जाये यहां से, इस तरह कि फिर कभी न लौटे, पर हर बार आदमी मन का गुलाम नहीं होता और उसे वही करना होता है, जो मन नहीं चाहता। हवलदार बिहारीसिंह भी मनचाहा नहीं कर सका। जरूरतें भी खूब ताकतवर होती हैं। बिहारीसिंह ने सोचा और एक गहरी, पर ठंडी श्वास खींचकर भाग जाने का बोदा ख़याल छोड़ दिया। सरकार अगर पूरा पड़ने लायक दे देती, तो शायद उसके जैसे हजारों-लाखों बिहारीसिंहों को ये जिन्दगियां न कुरेदनी पड़तीं।

सूरज निकल आया था, पर वह बस्ती अब भी उसकी मुसकान से वंचित थी। छह-छह मंजिल ऊंची इमारतों से कुछ बचे, तब कहीं इन टापरों के पल्ले कुछ पड़े। भूले-भटके इमारतों के बीच की दरारों से सूर्य उगने के साथ ही यहां-वहां मुसकान के दो-चार फूल फेंक देता था और सारी बस्ती के लोग यों खिल उठते थे, जैसे सूखी धरती में मुरझा रहे पौधों को पानी मिला हो।

अब जब बरसात की नम हवाओं ने हर झोंपड़े में जनवरी की सर्दी पैदा कर दी थी, तब सूरज द्वारा फेंकी गयी किरणों के फूल बेहद कीमती हो गये थे। आज भी रोज की तरह कुछ फूल इस बस्ती के भाग में आये थे, पर हवलदार बिहारीसिंह का बस्ती-प्रवेश ! ··यों जैसे हर पौधा फिर मुरझा गया हो, या जैसे रात पानी बरसा था और भोर से अंगारे बरसने लगे थे। टापरों के बाहर आ गये लोगों के चेहरे उदास और सूखे हुए, इस तरह थे जैसे सब दिन की रिक्शा खिंचाई या सामान ढुलाई के बावजूद 'टॉनिक' पीने के लिए पैसे न बचे हों या दिन-भर कोढ़ का मेकअप बनाकर गिड़गिड़ाने, भीख मांगने के बावजूद, सूखे गले दो रुपये भी न कमा सके हों।

बिहारी हवलदार आया है !

टापरों के भीतर जागे मर्द-औरतों ने भयातुर एक-दूसरे के चेहरे देखे। लगा, जैसे रात भूखे ही सो गये थे। कार्पोरेशन के नल पर पानी भरते जवान चेहरों पर परेशानी घिर आयी। उन्होंने अनुभव किया, जैसे बदन के कई वे हिस्से नंगे हो गये हैं, जिन्हें ढंके रहना चाहिए था। सवेरे-सवेरे टापरों के बीच हवलदार···? और फिर बिहारी हवलदार !···आतंक और उलझन की बात ही थी।

हवलदार बिहारीसिंह बीच बस्ती में आ चुका था और नजर के सामने आये बस्ती के हर घर, हर मर्द-औरत को उसने यों घूरकर देखा था, जैसे किसी जुर्म के लिए दफा ढूंढ़ रहा हो। जिस जगह वह एक क्षण रुका, वहीं बन्द टापरों के भीतर-बाहर के मर्द-औरतों ने उस पर राम-राम के फूल फेंके। कई बच्चों ने भी उसे सलाम किये।

बिहारीसिंह ने गंभीरतापूर्वक थोड़ा-बहुत सिर हिलाकर उनके अभिवादन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वीकार कर लिये। और जब हवाखोरी की चाल में वह और आगे बढ़ गया, तो उन लोगों की जान में जान आयी, जिनके घर के सामने वह आ रुका था। एक आश्वस्ति की श्वास खींचकर वे यहां-वहां अपने काम में उलझ गये; जैसे उन्होंने किसी बड़ी परेशानी को हल कर लिया था और वे निश्चिन्त थे।

हवलदार एक टापरे के सामने जा रुका।

एक ओर खड़ी महिला ने महाराष्ट्रीयन साड़ी का पल्लू खींचकर उससे पर्दा किया। यों पर्दा खींचने लायक उसकी उम्र नहीं थी, पर इस बस्ती के लोगों का विश्वास है, पुलिस की नजर एक होती है और उसमें हर उम्र समान है।

"रामाजी कुनबी यहीं रहता है?" बिहारीसिंह ने कठोर स्वर में सवाल किया, जैसे मुलजिम को बेंत मारा हो।

"बाजू वाले टापरे में!" खिचे पर्दे में से जवाब मिला।

बिहारीसिंह ने बाजू वाला टापरा देखा, फिर पर्दे वाली औरत पर पुतलियां फिरायीं, ज्यादा से ज्यादा तीस-बत्तीस की होगी। महाराष्ट्रीयन साड़ी के कसे हिस्सों पर उसने अन्दाजा लगाया। बदन बोलता है।

औरत पास वाले टापरे में जा समायी तो बिहारीसिंह बाजू वाले टापरे में आ खड़ा हुआ। दरवाजे पर गीली साड़ी का पर्दा पड़ा हुआ था। बिहारीसिंह की इच्छा हुई थी, रामाजी कुनबी को पुकारे, पर न जाने उसे क्या सूझी कि ऐसा न कर उसने हाथ के बेंत से गीली साड़ी एक ओर हटायी और गर्दन टापरे में डालकर झांका।

ओह! जैसे कई दिन का भूखा रहा हो बिहारीसिंह। उसके मुंह से एक सांस खिंची और दिल की गहराइयों तक समाती चली गयी। दाएं हाथ के बेंत से साड़ी का पर्दा एक ओर किये, वह टापरे में झांकता ही रहा।

मुश्किल से आठ-दस फुट की वर्गाकार जगह रही होगी। टापरे में एक ओर गंदे घड़े और पुराने डिब्बे रखे हुए थे और उन्हीं की बगल से सिर-पैर इधर-उधर किये रामाजी कुनबी, एक बच्चा और कोई जवान लड़की बेखबर सोये हुए थे। बिहारीसिंह ने गले का थूक निगला। उसे आश्चर्य था, कई बार रामाजी के पास आया होगा, पर ये छोकरी? कमबख्त रामाजी! साला न जाने किस डिबिया में बन्द किये हुए था? बिहारीसिंह देखे गया, जैसे विज्ञान के किसी चमत्कार को देख रहा हो, या बंगाल का जादू। लड़की के बदन पर कपड़ों के नाम पर कुछ चिथड़े थे और उन चिथड़ों के बीच से न जाने कितनी जगह शरीर झांकने लगा था। बिहारीसिंह को यह देखकर खुशी हुई कि उसने ऐसी खूबसूरत लड़की को उस समय देखा था, जब वह गहरी नींद में अस्त-व्यस्त सोयी पड़ी थी। हवलदार बिहारीसिंह ने पुनः गले का थूक निगला, होंठों पर जीभ फिरायी और निचला होंठ दांतों के बीच लाकर बेबसी से चबा लिया। जिधर रामाजी के पांव थे, लड़की ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिर कर रखा था और जिधर से बिहारीसिंह झांक रहा था, वह लड़की के सिर की तरफ का हिस्सा था। बिहारीसिंह ने आंखें फैलाकर देखा, इस तरह जैसे वह उस सारे दृश्य को आंखों में कैद कर लेना चाहता था। न जाने क्या हुआ कि बिहारीसिंह देखते-देखते झुकता ही चला गया उस तरफ, जिधर लड़की का सिर रखा हुआ था। वह चित्त लेटी हुई थी और सीने से पल्लू बगावत कर बैठा था। उस पर नाम मात्र के लिए तंग चोली कसी हुई थी, जैसे किसी मुलजिम को भागते हवलदार ने बांहों में कस लिया हो। सीने से नीचे पेट नंगा था और उसके भी नीचे पैर-पिंडलियां सभी कुछ थिगरे लगी साड़ी के कसाव ने ढंके होने के बावजूद इतने स्पष्ट कर दिये थे कि बिहारीसिंह उनका एक्सरे देख सके। बदन, बिहारीसिंह ने सोचा, इतना सुडौल ! उसे रामाजी कुनबी पर क्रोध आया—हरामी कहीं का ! मैं सैकड़ों बार इसके यहां आया-गया हूं, पर न जाने किधर छिपाये रहा। वह सिर झुकाये गया···झुकाये गया···! उसने होंठों पर बेसबरी से कई बार जीभ फिरायी, उसकी धड़कन बढ़ आयी थी और सांस आवाज करती हुई, बाहर फिंकने लगी थी।

लड़की को चेहरे पर कुछ रेंगने का अनुभव हुआ। वे बिहारीसिंह की गर्म-गर्म सांसें ही थीं। फिर एकदम चौंककर, उसने आंखें खोल दीं। बिहारीसिंह ने हड़बड़ाकर चेहरा ऊंचा कर लिया। एक समझदार और चैतन्यबुद्धि सिपाही की तरह उसने आवाज लगा दी—"अबे ! ऐ रामाजी !"

लड़की घबराकर उठ बैठी—इस तरह जैसे कहीं बिजली छू गयी। उसने फुर्ती से पल्लू सम्हाला, तंग और कसी हुई साड़ी की लांग बैठे-ही-बैठे खींचकर उसे पैरों की ओर और नीचा किया।

बिहारीसिंह ने भी मौके का नाजुकपन भली-भांति समझा था, पर बरस गुजर गये पुलिस में नौकरी करते। धैर्य और हिम्मत दुस्साहस बन चुके थे। इसी भरोसे उसने फिर आवाज लगायी—"ऐ रामाजी ! साले, सुनता है कि नहीं !"

कुनमुनाकर रामाजी ने आंखें खोलीं और जैसे ही बिहारीसिंह को सामने देखा, उसका आलस काफूर हो गया। फुर्ती से हाथ जोड़कर उठा—"हुकुम, हवलदारजी !" फिर उसने एक तीखी नजर से सिकुड़ी-सिमटी बैठी लड़की को देखा और बाद में बिहारीसिंह को। किसी अज्ञात आशंका से रामाजी कुनबी कांप उठा। वह हवलदार बिहारीसिंह की हर आदत से वाकिफ था। "आओ, साब ! बाहर चलें !"

बिना कुछ कहे बिहारीसिंह ने भीतर किया हुआ आधा शरीर बाहर खींच लिया। पीछे-पीछे रामाजी कुनबी आया—इस तरह चिन्तित और परेशान, जैसे बुढ़ापा दुगुना हो गया हो। बिहारीसिंह पिंडली पर बेंत ठोंक रहा था। किसी गंभीर मसले पर अक्सर वह इसी तरह सोचा करता था।

CC-0.In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिहारीसिंह कुछ नहीं बोला, तो रामाजी ने गंदे सलूके की जेब से बीड़ियों का एक बण्डल निकालकर उसमें से दो बीड़ियां जलायीं, एक बीड़ी बिहारीसिंह के लिए और दूसरी स्वयं के लिए।

बिहारीसिंह ने बीड़ी उसके हाथ से लेकर चुपचाप कश खींचने शुरू कर दिये। पिंडली पर बेंत अब भी बजा रहा था और पास ही खड़े रामाजी का दिल तरह-तरह की आशंकाओं में डूबा जाता था। पुलिसवाले और फिर बिहारीसिंह-जैसे पढ़े-लिखे पुलिसवाले बहुत खतरनाक होते हैं। रामाजी जो धंधा करता था, उसमें सारी जिन्दगी उसका पुलिसवालों से ही सम्बन्ध पड़ता रहा था। वह जानता है, ये खाकिये आदमी की हर नस में दफा घोल सकते हैं और हर दफा के साथ चमड़ी की पर्त उतार सकते हैं। इसी बस्ती में न जाने कितने घर ऐसे होंगे, जिनमें इन लोगों ने दफाएं घुसा दी हैं और हर दफा के साथ ये खुद भीतर तक चले गये हैं। उसने मन-ही-मन पुलिसवालों के लिए एक गंदी गाली सोची, फिर बीड़ी का कश गहराई तक खींचकर बिहारीसिंह का चेहरा देखा, इस आशा से कि बात में वह पहल करे।

बिहारीसिंह ने पिंडली पर बजता बेंत थामा, उसने सवाल किया, "रामाजी ! यार, मौसम बड़ा ढीला है, चल ! एक सिंगल चाय हो जाये।"

रामाजी कुनबी तो अवाक् उसका चेहरा देखता ही रह गया। बिहारीसिंह को क्या हो गया है ? ये रामाजी को चाय पिलायेगा ? रसम टूट जाएगी इसकी जात की। इस शहर में ? और इसी जाति के लोगों में रामाजी का बचपन, जवानी और अब बुढ़ापा गुजरा है, गुजरता रहेगा ! अब तक ऐसा तो कहीं देखा नहीं कि किसी पुलिसवाले ने रामाजी को चाय पिलायी हो ? नहीं-नहीं ! रामाजी को लगा, जैसे या तो बिहारीसिंह ने चाय का प्रस्ताव नहीं रखा, या फिर सामने खड़ा आदमी पुलिस हवलदार नहीं है।

"आ !" बिहारीसिंह ने रामाजी के गले में हाथ डाल दिया और जब आगे को चला तो रामाजी पूर्ववत् अचरज और असमंजस में उसके साथ-साथ खिंचा चला गया। उसे लग रहा था, जैसे जमीन आसमान तक ऊंची हो गयी है और आसमान नीचे उतर आया है।

जब बीच बस्ती से बिहारीसिंह रामाजी के गले में बांह डाले गुजरा तो मर्द-औरतों ने हैरानी से उन दोनों को देखा। अजीब बात थी, पुलिस का हवलदार और बिहारीसिंह-जैसा हवलदार रामाजी के गले में हाथ डाले हुए जा रहा था ! कुछ लोग फुसफुसाये—क्या बात है ? कुछ ने शंका की—कोई बड़ी बात है ! बस्ती में कोई नयी दफा आयेगी। किसी का कहना था—या तो रामाजी कोई बड़ा काम करने वाला है, या फिर बिहारीसिंह। पर, बिहारीसिंह को इस प्रतिक्रिया की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोई चिन्ता नहीं थी। वह निहायत बेतकल्लुफी से रामाजी के गले में हाथ डाले जा रहा था और रामाजी ने भी संकोच का बुर्का उतार फेंका था। वह बस्तीवालों की ओर गौरवभरी नजरों से देखता, जिनमें उनके प्रति उपेक्षा का भी भाव था, फिर बेहद हलके-हलके कदम आगे बढ़ता जाता। गौरव की बात ही थी, हवलदार उसका यार है, सब बस्ती आंखों देख रही थी, वह हवलदार जिसके पैरों की ध्वनि के साथ बस्ती के हर घर की जिन्दगी और दिल की धड़कनों का सीधा ताल्लुक है।

बस्ती से गुजरकर जब दोनों सड़क के किनारे, खोमचे की तरह रखे, गंदे होटल के पास आ गये तो बिहारीसिंह ने रामाजी के गले में पड़ा हाथ खींच लिया। एक लम्बी श्वास खींची और होटलवाले की ओर आर्डर फेंका, "अबे, दो सिंगल दे !" फिर वह रामाजी की ओर मुड़ा—"हां, तो रामाजी !" वह कुछ क्षण रुका। रामाजी पुनः उसका चेहरा पहले जैसी ही उत्कंठा और परेशानी के साथ देख रहा था। बिहारीसिंह ने कहा, "मैं तेरे पास सुबह-सुबह इसलिए आया था कि मेरा तबादला हो गया है !"

"तबादला हो गया है ?" रामाजी ने परेशानी से सवाल किया, "कौन-सी जगह ?"

"तिलक चौक से बर्डी के चौगड्डे पर।" बिहारीसिंह ने बताया "तू चाहे तो तिलक चौक से बर्डी पर आ जा ! काम दुगुना हो जायेगा !"

रामाजी खुशी नहीं थाम पा रहा था। बिहारीसिंह हवलदार को जोरदार इलाका मिल गया है और वहां काम बढ़ जायेगा। वह भीख मांगने का धंधा करता था और जब से बिहारीसिंह की तिलक चौक पर ड्यूटी थी, वह अपना काम उसी जगह फैलाये हुए था। इसके लिए उसे बिहारीसिंह को कमीशन देना पड़ता था। और भी कई लोग थे, जिन्हें तिलक चौक पर काम करने की छूट थी, पर वे काम उसी हालत में कर सकते थे, जब बिहारीसिंह को नियमित कमीशन देते जायें, क्योंकि बिहारीसिंह के सिर पर भी अफसर थे और उनका कमीशन बिहारीसिंह को देना पड़ता था। हर काम कानून के मुताबिक और सिलसिलेवार होता है। अब बिहारीसिंह बर्डी चौक पर आ रहा है, यह जानकर रामाजी बेहद खुश था। शाम के वक्त तिलक चौक से दस गुनी भीड़ होती है वहां—और जहां ज्यादा भीड़ होती है, वहीं भीख का काम बढ़ जाता है। एक समझदार और अनुभवी काम करने वाले की तरह रामाजी कुनबी ने सवाल किया, "हवलदार ! जे बड़ी खुशी की खबर सुनायी तुमने, अब जल्दी से कमीशन बोलो !"

होटल का छोकरा चाय ले आया था। बिहारीसिंह और रामाजी ने कप-प्लेट पकड़े।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"कमीशन की क्या बात है ?" बिहारीसिंह ने आवाज में मिठास घोलकर कहा, "ये पराये जैसी बात क्यों करता है तू ?"

रामाजी ने पुनः अवाक् उसका मुंह देखा। आज हो क्या गया है इसे ? पहले तो कभी ऐसी सन्तों-जैसी बातें नहीं करता था। उसे सब कुछ एक जादू-सा महसूस हुआ।

बिहारीसिंह ने तीन घूंट में सिंगल कप खाली कर दिया, "अबे ओ छोकरे, ले जा इसे !" उसने होटल के बैरे को आवाज दी, फिर रामाजी से बोला, "तूने महीनों कमीशन दिया है हमें ! हमारे देश में कहावत है, बारह साल में कचराघर के भी भाग बदलते हैं। अब तेरा बखत आ गया है, रामाजी ! अब तो वह बखत आया है कि हम तुझे कमीशन देंगे !"

रामाजी की समझ में कुछ नहीं आया। उसे लगा, बिहारीसिंह पागल हो गया है। जब जिन्दगी भीख का काम करते गुजर गयी, अब तक ये भी कभी नहीं देखा कि हवलदार भिखारी को चाय पिलाये, उसे कमीशन दे, उसके गले में बांह डाले जैसे बचपन का संग खेला हो। रामाजी पर एकाएक कुछ कहते नहीं बना।

बिहारीसिंह उसकी उलझन समझ रहा था और उसके चेहरे पर विचित्र-सी रहस्यपूर्ण मुसकान थी। उसकी आंखें किसी स्वार्थ में भीगी-भरी हुई थीं, जिसे जानना चाहकर भी रामाजी नहीं समझ पा रहा था और जब एक जिज्ञासु बच्चे की तरह रामाजी ने उससे पूछा, "क्या बात है, हवलदारजी ?" तो उन आंखों में स्वार्थ का रंग और गहरा गया।

रामाजी ने फिर सवाल किया, "माफी देना, हवलदारजी ! मेरे को तुम्हारी बात समझ में नहीं बैठ रही है !"

बिहारीसिंह मुसकराया। बोला, "धीरज धर ! सब समझ जायेगा। सब समझ जायेगा !"

रामाजी बिहारीसिंह की बात समझने के लिए उतावला हो उठा था, पर बिहारीसिंह ने उसे पूछताछ का मौका ही नहीं दिया। बोला, "अच्छा बता ! रात को तू कौन जगह मिलेगा ?"

"क्यों ?'

"मेरी तबीयत है तुझे ताड़ी पिलवाऊं···" बिहारसिंह ने पुलिस की टोपी सिर से उतारकर सिर खुजलाया और फिर रामाजी का अचरज यह कहकर समाप्त कर दिया, "तूने मुझे बहुत बार पिलायी है, एक बार मेरी भी मरजी है, तुझे पिलाऊं।" क्षण-भर रुककर उसने कहा, "मेरा भी तो कुछ फरज हो जाता है, यार !"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रामाजी पहने मे सौ गुना आश्चर्य और सोचने की हालत में था। बिहारीसिंह को एकाएक ही अपने फर्ज की चिन्ता कैसे हो गयी और फिर यह तो बिलकुल ही नयी बात हो गयी ! बरसों हो गये हैं—इसी जिन्दगी को जीये जाते। रामाजी कुनबी ने इस सारे वक्त में सिर्फ अपने फर्ज के बारे में ही सोचा-देखा है। यह उसे पहली ही बार मालूम हुआ था कि पुलिस का भी कुछ फर्ज होता है ? वह पूछता भी, पर बिहारीसिंह ने पहला सवाल दोहरा दिया—"बोल ! रात को कहां मिल रहा है ?"

"तुम जहां हुकुम करो !" रामाजी ने जवाब दिया।

बिहारीसिंह ने कुछ देर सोचा, फिर बोला, "अच्छा, तू टापरे पर ही मिलना, मैं आऊंगा !"

रामाजी ने सिर स्वीकारात्मक ढंग से हिलाकर 'हां' भरी तो बिहारीसिंह ने उससे विदा ली। बिहारीसिंह खुश था और उसके प्रौढ़ चेहरे पर जवानी की चमक पैदा हो गयी थी। कितने दिन से दरोगाजी मांग कर रहे थे—हवलदार ! कंधे पर ओहदे के स्टार जरूर चिपके हैं, पर पब्लिक में तुम्हारा डंका बजता है। तुम चाहो तो क्या नहीं हो सकता ? लड़की से लेकर शराब तक, सब कुछ तुम्हारे हाथ में है। हम जैसे अफसर तो तुम्हारे नाम पर ही चलते हैं। कुछ करो ना ! और हर बार बिहारीसिंह हंसकर उन्हें दम-दिलासा देता गया था--सब होगा, दरोगाजी ! सब होगा ! आपका हुकुम बजाने के लिए ही हम लोग पैदा हुए हैं।···बहुत दिन हुए थे, पर बिहारीसिंह दरोगाजी के लिए शराब के सिवाय कुछ नहीं कर सका था। कभी-कभी वह अपनी लाचारी पर खीझता भी था, उसे भय भी लगता था—दरोगा ठहरा अफसर ! उसकी नाराजी घाटे की दलदल बन सकती थी और बिहारीसिंह उसमें फंसकर बरबाद हो जाता। किसी तरह एक बार बात बन जाती, वह दरोगा को खुश कर देता, तो फिर नीचे की जमीन सूखी और मजबूत रहती, जिस पर चारों तरफ हाथ उठाये-फैलाये बिहारीसिंह दौड़ता रहता। बिहारीसिंह ने बहुत तलाश की थी—बड़ी कोशिश की थी, पर हर बार स्वयं को लाचार और पहले से कहीं अधिक लाचार पाया था, और अब जब बिहारीसिंह इस ओर से लगभग लाचार हो चुका था, अचानक ही टापरों में उसके भाग्य का सूर्य चमक गया था। वह आया था, रामाजी कुनबी से रोजाना कमीशन वसूलने और बात हुई गाड़ी पर नाव जैसी ! वह लड़की ? बिहारीसिंह खयालों में हरिया गया। हद से हद उम्र होगी —अठारस-बीस साल की ! "दरोगाजी ! तुम भी क्या याद करोगे।" बिहारीसिंह होंठों ही होंठों में बुदबुदाया, "रामाजी कुनबी के भी बड़े भाग हैं !"

बिहारीसिंह की इच्छा थी कि थाने पर पहुंचते ही दरोगा को समझा दे, पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन-की-मन में रह गयी। दरोगा किसी जरूरी मामले में बाहर चला गया था। बिहारीसिंह को जैसे-तैसे अपनी बहादुरी की कहानी उस समय तक मन में थामनी पड़ी, जब तक कि दरोगा वापस न लौटा। खुशी या सफलता रबर की बॉल की तरह मन में उछलते हैं और अकसर व्यक्ति उन्हें अधिक गोपनीय नहीं रख सकता। पर बिहारीसिंह आदी हो गया था। पुलिस की नौकरी में सारे जीवन उसने खुशियों और सफलताओं की न जाने कितनी बातें केवल थामी ही नहीं, करीब-करीब हजम ही कर ली थीं। शाम हुए जब दरोगा थाने आया, तो एकांत में ले जाकर बिहारीसिंह ने सुबह की सारी घटना सुना दी और फिर वायदे लिये-दिये।

"मैं आज ही बन्दोबस्त कर दूंगा, साब !"

"तुम काबिल आदमी हो, बिहारीसिंह ! जरूर तुम स्टार हासिल कर लोगे !"

"ये तो आपकी मेहरबानी है साब ! अब पेंशन के दिन नजदीक आये। स्टार मिल गये तो, उधर पेंशन में बढ़ोत्तरी रहेगी। हजार खर्चे लगे हैं, मालिक !"

"मैं जानता हूं, भाई ! चिन्ता मत करो। भगवान तुम्हारे साथ है।"

"आपकी बड़ी कृपा है, हजूर !" कहकर बिहारीसिंह पुनः रामाजी कुनबी के टापरे की ओर चल दिया था। बस्ती में पुनः वही आतंक बरसा था और जब रामाजी के गले में बांहें डाले हवलदार बस्ती से बाहर हो गया, तो जीवन फिर सामान्य गति से चलने लगा था।

रास्ते में बिहारीसिंह ने रामाजी को बताया—"दरोगा साहब तुझ पर खुश हैं।"

"हें-हें-हें !" निहायत बेशर्मी की हंसी हंसकर रामाजी ने पान से पीले बगैर मंजे दांत निकाल दिये। बोला, "गरीबपरवर आदमी हैं साब !"

"अबे साले, खुश ही नहीं हैं, बहुत खुश हैं !"

रामाजी पुनः उसी गन्दी हंसी में हंसा।

एक गन्दे और बूढ़े रेस्तरां के फेमिली केबिन में दोनों जा बैठे। बगैर मांगे थोड़ी ही देर में उनके सामने ताड़ी के दो गिलास आ गये। बिहारीसिंह ने पहल की—"रामाजी ! शुरू कर !"

रामाजी फिर हंसा। उसने गिलास उठाकर पहली बार मुंह से लगाया और फिर खाली करने के बाद ही बात शुरू की—"हवलदारजी, साहब क्यों खुश हैं ?"

बिहारीसिंह मुसकराया, "अबे ! खुश होने की कोई वजह थोड़े लगती है ? यों, समझ कि तेरे ग्रह अच्छे आ गये हैं !"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रामाजी फिर हंस दिया। पर इस हंसी में, हंसी मे ज्यादा ताड़ी थी।

बिहारीसिंह ने तसल्ली से गिलास खाली किया और जब देखा रामाजी की आंखों में ताड़ी मुसकराने लगी है, तो काम की बात शुरू कर दी, "रामाजी !"

"हां !" रामाजी खाली गिलास की ओर एकटक देखते हुए बोला।

"तेरे बच्चे कितने हैं, यार ?" बिहारीसिंह ने ताड़ी-डूबा सवाल किया।

"दो !" रामाजी ने सिर टेबिल की ओर झुकाते हुए और फिर ऊपर की ओर उठाते हुए जवाब दिया।

"यार रामाजी !" बिहारीसिंह ने गर्दन हिलायी, "कभी तूने अपने बच्चे दिखाये नहीं, यार ! पराया समझता है मुझे !

"अरे नहीं, मालिक !" रामाजी उठ खड़ा हुआ। उसने नशे की हालत में अस्वाभाविक-सी हरकतें प्रारम्भ कर दीं। दोनों कान पकड़कर हिलाये—"नहीं, नहीं ! साब ! आपको पराया क्यों समझूंगा ! आपने देखे तो हैं, साब ! सवेरे टापरे में ही पड़े थे।"

"अबे, सवेरे दूसरा मूड था।" बिहारीसिंह बोला, फिर उठ खड़ा हुआ। "अच्छा चल ! अब घर चलें।"

दोनों डगमगाते कदमों बाहर आ गये। रामाजी के पांव ज्यादा हिल रहे थे, पर बिहारीसिंह ! बरसों हो गये पुलिस में नौकरी करते। काफी सम्हल-सम्हल-कर चल रहा था।

"रामाजी !"

"हां।"

"आज तू अपने बच्चे दिखा।"

रामाजी हंसा। "चाहे जब देख लो, मालिक ! अभी चलो, घर पर दिखाता हूं।"

"नहीं-नहीं ! तेरे घर पर नहीं।" बिहारीसिंह बोला, "उन्हें मेरे क्वार्टर पर ले आ।"

रामाजी का मन हुआ था, पूछे, "अजीब जिद करते हो, हवलदार ! बच्चे देखने हैं, तो कभी भी देख लेना।" पर ताड़ी ने उसके जीवन की हर गति मंद कर दी। उसने बड़ा संक्षिप्त-सा उत्तर दिया—"जैसी आपकी मरजी, हवलदार !"

बरसात के उदास बादल आसमान पर छाये हुए थे और मौसम में उमस पैदा हो गयी थी। बिहारीसिंह को यह उमस पसन्द नहीं थी। जब तक बादल बरसते नहीं, उमस यों ही आदमी को कुढ़ाती और परेशान करती है। उसने मन-ही-मन मनौती की—ईश्वर ! पानी गिरा ! फिर रामाजी से प्रस्ताव किया, "मैं बस्ती के बाहरवाली सड़क से सीधा थाने चला जाऊंगा, तू अपने बच्चों को लेकर मेरे क्वार्टर पर आ जाना।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"हां, साब !" झूमते हुए रामाजी ने बिहारीसिंह की आज्ञा स्वीकार कर ली। नशे में विचार तो विचार, दिमाग भी लड़खड़ा जाता है। रामाजी अनुभव कर रहा था। शंकाग्रस्त अनेक प्रश्न उसके नशे-डूबे दिमाग में उठे थे—भला बिहारीसिंह को ऐसा क्या लगाव हो गया है उससे ? पर हर बार ऐसे ख़यालों को ताड़ी ने घोंट दिया था। कितना अच्छा आदमी है बिहारीसिंह ! उसने उसे चाय पिलायी है, उसके गले में बांह डाली हैं, उसे ताड़ी पिलायी है और अब उसके बच्चों से प्यार करना चाहता है ! पुलिसवाला है तो क्या हुआ, आखिर को आदमी ही है !

बिहारीसिंह ने कहा, "यार रामाजी ! कभी-कभी मुझे अपने बच्चों का ख़याल आता है, तो सब बच्चों से प्यार करने की तबीयत होती है !"

"ममता ऐसी ही चीज़ है, हवलदार !" नशे के बावजूद रामाजी ममता समझता है।

बस्ती के पासवाली सड़क पर जब दोनों आ गये तो बिहारीसिंह बोला, "अच्छा, रामाजी ! तो मैं चलता हूं, मैं क्वार्टर पर तेरी राह देखूंगा !"

"जरूर ! जरूर !" रामाजी डगमगाते कदमों बस्ती की ओर बढ़ने लगा, "मैं अभी आता हूं, हवलदार ! तुम्हें अपने बच्चों की याद आती है न ! मेरे बच्चे भी तुम्हारे ही बच्चे हैं। तुम उन्हें प्यार करो ! ममता बुरी चीज़ बनायी है भगवान ने।"

हवलदार बिहारीसिंह जाना चाहता था, पर न जाने क्यों वहीं ठहरा रह गया। उसने जाते हुए रामाजी को देखा, उसके डगमगाते पैर देखे और थाने लौटने का इरादा छोड़ दिया। उसके कानों में रामाजी के विश्वास भरे शब्द जैसे शोर मचाने लगे थे और दिमाग भारी हो रहा था—"मेरे बच्चे भी तुम्हारे ही बच्चे हैं, हवलदार ! तुम उन्हें प्यार करो ! ममता बुरी चीज़ बनायी है भगवान ने !"

थोड़ी ही देर बाद जब रामाजी अपनी लड़की और लड़के के साथ सड़क पर आया तो वह आश्चर्यचकित रह गया। हवलदार बिहारीसिंह अब भी वहीं खड़ा हुआ था। रामाजी ने एकदम सामने पहुंचकर सवाल कर दिया, "अरे ! आप तो थाने जाने वाले थे न, हवलदार ! अभी यहीं खड़े हो ?"

बिहारीसिंह ने भारी स्वर में जवाब दिया, "हां !" फिर उसने रामाजी की लड़की की ओर देखा—वही सुबह वाले चिथड़े, मासूमियत, यौवन !

"यह मेरी लड़की है, हवलदार !" रामाजी नशे में, हर्ष डूबे स्वर में बोला, "और यह मेरा लड़का।"

लड़की की गर्दन झुकी हुई थी। हवलदार बिहारीसिंह एकटक देखता रह गया—अगर ये साड़ी पहन ले, तो इसमें और उसकी बेटी में फर्क ही क्या रह जायेगा ? उसने सोचा—बिलकुल इतनी ही बड़ी होगी, ऐसी ही मासूम, सुन्दर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और लजीली···बिहारीसिंह सोचे गया, और हर ख़याल के साथ रामाजी की लड़की बिहारीसिंह की अपनी बेटी बनती गयी—क्योंकि वह बिलकुल वैसी ही थी, जैसी रामाजी की बेटी ! सब कुछ वही ! बिलकुल वही !

"देख क्या रहे हो, हवलदारजी ?" रामाजी कहने लगा—"अठारह साल की हुई जाती है, अब इसकी फिकर में डूबा हूं !" वह आगे भी कुछ कहता, पर बिहारीसिंह बुदबुदा उठा—"हां-हां, रामाजी ! वह भी अठारह साल की ही होगी ! मुझे भी उसकी चिन्ता है !"

"किसकी ?" रामाजी ने अचरज से सवाल किया।

"हां ?" बिहारीसिंह चौंका, फिर एक उदास हंसी हंसा—"मैं अपनी बेटी की याद कर रहा हूं, रामाजी ! वह भी···"

"सही बात है, हवलदार !" रामाजी नशे के बावजूद भावुकता में डूब गया—"सबके बेटियां हैं हवलदारजी और सबको उनकी फिकर है ! सबको फिकर है ! क्या भिखारी, क्या राजा···?"

बिहारीसिंह ने एक गहरी श्वास खींची, फिर बोला—"रामाजी ! मैंने तेरे बच्चे देख लिये। ईश्वर इन्हें खुश रखे।" और फिर दो कदम आगे बढ़कर उसने कांपते हाथों लड़की का सिर दुलरा दिया, जैसे चोरी कर रहा हो। "अच्छा ! अब मैं चलूं ?"

"इन्हें क्वार्टर नहीं ले जाओगे, हवलदारजी ?" रामाजी ने सवाल किया।

"फिर किसी दिन ले जाऊंगा !" कांपते स्वर में हवलदार बिहारीसिंह ने जवाब दिया, "इन्हें देख लिया। बस !" वह सड़क पर लगभग दौड़ने की चाल में चलने लगा।

रामाजी आश्चर्य से बिहारीसिंह को देखता ही रह गया। वह तेज कदमों चला जा रहा था, जैसे कोई चोर भागता है, और जब वह सड़क पर गुम हो गया, तो रामाजी ने लड़की के कंधे पर हाथ रखा, लड़के को साथ लिया और टापरे की ओर लौट पड़ा।

१९६४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सबसे सच्चा तमाशा

सारा बदन टूट रहा था, और रत्ना को सब कुछ याद आ रहा था। एक बार नहीं, कई-कई बार।

अपनी तरफ से कावेरीबाई ने सब कुछ समझा दिया था। स्टेज पर पहला कदम गिरे तो फर्श की ओर नहीं, सीधे दर्शकों की ओर देखना। जब आंखें तेरा चेहरा घूरें, तो बिजली की तरह कौंधकर मुसकरा देना। लोग जब गहरी सांसें खींचें तो दाएं पैर का घुंघरू झनकाकर आंखें उधर से हटा लेना और धोती की लांग सम्हालती हुई लता के पास जा खड़ी होना। फिर एक नजर फेंकना, मुसकराना और आंखें हटा लेना। खयाल रहे—लोगों की आखें, आहें देखकर डरना-शरमाना नहीं। पर रत्ना सब कुछ सुनने-समझने के बावजूद कुछ नहीं कर पायी। जाने क्यों उसका वह सारा साहस, जो उसने स्टेज पर उतरने से पूर्व मन में संजोकर धड़कन थामी थी, स्टेज पर आते ही कपूर की तरह हवा हो गया। उसने स्टेज पर पांव रखा तो एकदम फर्श की ओर देख रही थी, मुसकराना-लजाना तो दूर उसने दर्शकों की तरफ देखा तक नहीं। धम्-धम्-धम् दौड़ती हुई वह लता के पास जा खड़ी हुई और लगातार फर्श की ओर देखे गयी। लता ने कोहनी मारी, "जरा लोगों की तरफ तो देख!" स्टेज के दायीं तरफ वाले परदे के पीछे छिपी कावेरीबाई ने दांत पीस, फुसफुसाकर कहा—"आंख उठा, मरी!" बायीं ओर स्टेज पर हारमोनियम बजा रहे वामनराव ने घूरा, चिमनराव कामेडियन ने पास जाकर जनता की ओर भोंड़े ऐक्शन किये, धीरे से रत्ना के कान के पास मुंह लाकर मिनमिना गया—"जरा नजर उठाकर देख। लोग कैसे जान दिए देते हैं। देख तो सही, हिम्मत कर!" पर रत्ना का साहस टूट गया था। कैसे नजर उठे? इतने लोग? उसने पलकें बेइन्तहा साहस के साथ उठायीं तो देखा सामने ढेरों लोग बैठे हुए हैं। इतने कि स्टेज पर हो रही रोशनी के कारण रत्ना को अंधेरे में सामने बैठी भीड़ अनन्त, छोर-सी लगी। जाने क्यों अनजाने ही उसके पांव कांप गये। सुनहरी गोटे के काम वाली अंगिया के अगल-बगल के तंग हिस्सों में पसीना बह निकला। पांव तो ऐसे बेकाबू होकर हिले थे कि घुंघरू हंस पड़े। बड़ी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुश्किल से सम्हाल सकी वह स्वयं को। लगता था, अभी गश आ जाएगा। वह शायद गिर भी पड़ती, तभी उसकी नजर बायीं तरफ परदे में से घूरती हुई कावेरीबाई की आंखों पर जा पड़ी। एक सिहरन-सी पैदा हुई रत्ना के बदन में और लाचार होकर उसे अपनी अचेतनता पर काबू करना पड़ा।

कामेडियन चिमनराव तरह-तरह के गन्दे और भोंड़े मजाक कर लोगों को हंसाने-साधने की चेष्टा कर रहा था। चिमनराव की उंगलियां तेजी से हारमोनियम के सुरों पर दौड़ रही थीं। और लता तरह-तरह से दर्शकों की ओर नाजोअदा की फुलझड़ियां छोड़ रही थी। वह एक ट्रेंड तमाशा नर्तकी थी और बम्बई शहर से पूना और उधर सतारा जिले के गांवों में उसने लोगों के मन जीते थे। कावेरीबाई की तमाशा कम्पनी की जान थी वह। स्टेज पर आती तो लोग यों देखते रह जाते, जैसे अजन्ता के पत्थरों पर मूर्तियां तराश दी गयी हों। उसके घुंघरू की पहली झनझनाहट वातावरण में उभरती और सामने धरती पर बैठे दर्शकों में जिन्दगी का तेज झोंका छू जाता। वे एक-दूसरे की ओर देखते, मुसकराते, कभी खिलखिलाते हुए एक-दूसरे की बगलों में हाथ डालकर झूल जाते, या एक-दूसरे को भींच लेते। पहला दूसरे का साफा उछाल देता, दूसरा एक गन्दा रिमार्क स्टेज पर फेंकता।

आज भी यही बात थी पर भीड़ में जोश ज्यादा नहीं दीखता था। लता के पल्ले बहुत थोड़ी आहें-नजरें आयीं, बाकी रत्ना ने खींच लीं। लोगों ने लता को तो कई बार देखा था, पर रत्ना! वह नया चेहरा!

हारमोनियम ने स्पीड पकड़ी। कामेडियम चिमनराव ने लता की ओर देखा, सीने पर हाथ ठोंका और चिल्लाकर कहा—"मर गया!"

लता ने उसे एक बेशर्म नजर से देखा, और फिर बिना कोई सम्वाद उगले, जनता की ओर मुसकराती हुई सीने के ऊबड़-खाबड़ रास्ते पर कपड़े सम्हालने लगी।

"अरे, ओ भाई! शुरू कर दो। यों तरसते-तरसते तो मर जाएंगे हम।" सामने की पंक्ति में बैठे एक बूढ़े व्यक्ति ने चिल्लाकर कहा और बीड़ी सुलगाने लगा।

रत्ना ने एक बार फिर सिर उठाया। बाप रे! फिर पांव हिले, धड़कन बढ़ी, पर पहले जैसी नहीं। उसने दूसरी बार देखा, फिर तीसरी बार, और मुसकरा दी।

आगे-पीछे से कई सीटियां उभरीं। रिमार्क आये—"जियो, कावेरीबाई!"

कामेडियन चिमनराव ने जनता की ओर चेहरा घुमाकर पीछे की ओर हाथ किया—"ओ लताबाई!"

लताबाई घुंघरू झनझनाते, लचकती पास आ गयी—"क्या है रे?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"अरे इती दूर ?" चिमनराव ने फिर चिल्लाकर कहा, क्योंकि माइक की सुविधा नहीं थी। "और पास आ मेरे !"

लता और भी पास आ गयी--"ले।"

"और आ !"

"ले।"

"और !"

"हूं।"

लता इतने पास आ गयी कि उसके शरीर के कई हिस्से चिमनराव से आ टिके। चिमनराव फुर्ती से किसी खरगोश की तरह उछलकर दूर जा खड़ा हुआ—"अगा बाई रे ! तेरा बदन कितना गर्म है !"

जनता में शोर हो गया। तमाशे का मजाक बड़ा ऊंचा चल रहा है। 'वाह भाई रे। हुइश्श-हुइश्श ! हुइश्श !' लोग भीड़ में गन्दे-गन्दे रिमार्क उछाल रहे थे। बूढ़े-जवान सभी बेकाबू होकर बकवास किये जाते थे। रत्ना को तो हजार आदमियों के बराबर हिम्मत बांधे खड़े रहना पड़ रहा था। पर लता पर कोई प्रभाव न था। वह तरह-तरह से लोगों के सामने हंसती थी, कपड़े सम्हालती थी। शायद वह अभ्यस्त थी इस वातावरण की।

कामेडियन चिमनराव बोला—"लोग सुख रहे हैं, लताबाई ! जरा पानी डाल इन पर। एक लावनी सुना दे।"

लता ने कोई उत्तर नहीं दिया। एक बार हारमोनियम वाले बामनराव की ओर देखा, फिर दर्शकों पर एक दृष्टि फेरी और महाराष्ट्रीयन साड़ी का पल्लू पीछे से दोनों हाथों में किसी नाव के पाल की तरह ऊपर तानकर नाचना प्रारम्भ कर दिया। स्टेज के एक छोर से दूसरे छोर तक उछलती चली गयी। पल्लू छोड़ा और दर्शकों की ओर उंगली से संकेत कर एक फड़कती हुई लावनी प्रारम्भ कर दी—

यो यो रे पाहुणा, बरा दिसेता।
चश्मेवाला पाहुणा, बरा दिसेता।
बर्तुन मला खुणवितो···।
यो यो रे पाहुणा, बरा दिसेता।
फेटेवाला पाहुणा, बरा दिसेता।
ओ !
टोपीवाला पाहुणा, बरा दिसेता।

रिमार्क वैसे ही हो रहे थे। लोग दाएं-बाएं झूम रहे थे। लता ने सुरीली आवाज में गाया क्या, लगता था जैसे सामने बैठे लोगों के गलों में पाव-पाव भर देशी ठर्रा उड़ेल दिया है। उनमें चश्मे वाले बड़े भी थे, फेटे वाले अधेड़ भी और टोपी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाले जवान भी। सभी ने अपने आपमें महसूस कर लिया—जैसे लता उन्हीं से कह रही है—'ओ, तू बड़ा अच्छा लगता है !' पूरी लावनी में वातावरण शोर, आहों और हंसी से भरा रहा। इस बीच रत्ना ने लता और दर्शकों की ओर कई बार देखा था और हर बार लाजों भर गयी थी। यह सोचकर कांप उठी थी वह कि उसे भी यही सब करना है। जब लता ने लावनी गाते-नाचते दर्शकों की ओर पलकें झपकायीं तो कैसी चिल्लाहट हुई थी ? कितनी गन्दी फब्तियां उस पर फिकी थीं ? सब कुछ सोचकर रत्ना के तमाम बदन में फुरहरी हो आयी। यह सब कैसे कर पाएगी वह ? नाचते में लता का सीना कपड़े होते हुए भी कैसा नंगा-नंगा दीखता है ? इतने मर्दों के सामने चिमनराव ने उससे भद्दी बात कर दी और लता ने गुस्से के बजाय कितने प्यार से उसे हंसकर टाल दिया ? उसकी जगह वह होती, तो न जाने क्या कर बैठती ? चिमनराव के गाल पर तमाचा जमाती और खुद स्टेज से दौड़ती हुई किसी कुएं में जा कूदती। ओह ! कितना गन्दा खेल है यह !

लता ने दूसरा गीत प्रारम्भ कर दिया था। कोई फिल्मी गीत था, जिसमें राधा-कृष्ण के प्रेम की चर्चा थी, पर लता ने इस बीच भी वही इशारे किये, सस्ती हंसी की, और भी न जाने क्या-क्या किया ? जिसे करना तो दूर, रत्ना सोच भी नहीं सकती। लता ने जान-बूझकर अपना पल्लू कुछ इस तरह छोड़ा कि पेट से ऊपर···सोचते-सोचते रत्ना को उस दिन के अपने पहले नाच की बात याद हो आयी थी। घृणा से मन भर आया था उसका। जाने कौन-सा अभागा दिन था, जिस दिन वह अपनी सारी लज्जा गिरवी रखकर स्टेज पर आयी थी। नाची क्या, नचवायी गयी थी। लता का नाच खत्म होते ही उसकी बारी आयी थी। भीड़ में से लोग चिल्लाये थे—"अरे, इस पतली गर्दन वाली को तो लाओ !"

"ओ पाहुणे वाली !" अगली पंक्ति से कुछ लोगों के बोल रत्ना के सीने पर आ गिरे थे और रत्ना को लगा था, जैसे जलते हुए अंगारे फिके हों उसके तन पर।

एकाएक रत्ना को अपनी जगह छोड़ते न बना था।

देर तक नाचने के बाद सांस लेने रुकी तो लता ने रत्ना को आश्वासन दिया था—"एक गीत गा आ, फिर मैं सम्हाल लूंगी।"

रत्ना ने साहस बटोरा।

"वो गोरी वाली को लाओ भाई। उस पतली गर्दन वाली हंसनी को। हुइश्श ! हुइश्श !"

"अरे, जल्दी कर," लता ने कोहनी मारी, "तमाशा बिगड़ जाएगा।"

चिमनराव ने भी कह दिया—"जल्दी कर।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रत्ना ने अवाक् उसे देखा था। कैसे बताये वह कि लता की तरह गन्दी हरकतें नहीं कर सकती।

चिमनराव फुसफुसाकर धमकी देने लगा—"वो परदे के पीछे कावेरीबाई खड़ी गुस्सा हो रही है?"

रत्ना की नजर परदे के कोने में जा टिकी। सचमुच कावेरीबाई उसे ऐसे घूर रही थी, जैसे कोई खाने की चीज़ हो। कैसी औरत है कावेरीबाई? आज भी ख़याल आता है तो रत्ना कांप उठती है।···और रत्ना को नाचना पड़ा था। कांपते पैरों वह कुछ देर स्टेज पर उछलती-कूदती रही थी। इस बीच उसने न तो दर्शकों की ओर आंखें उठायी थीं और न अपनी बेशरमी के बारे में सोचा था। यन्त्रचालित-सी बेबस-लाचार नाचती गयी थी। उसे याद है, लोगों ने ढेर से बोल उस पर फेंके थे। "ओ पतली गर्दन वाली! ओ सोने की मूरत!" और भी जाने क्या-क्या?

बीच-बीच में कामेडियन चिमरराव ने दर्शकों की ओर रत्ना को लेकर ऐसे-ऐसे गन्दे इशारे किये थे, जिनकी याद से रत्ना का जी जल उठता है। उसे याद नहीं कि उस दिन अपने पहले नाच में उसने क्या भूलें की थीं? पर जब प्रोग्राम समाप्त हो गया तब कावेरीबाई ने उसे डांटा था। उसने अपनी कंजी आंखें किसी शैतान बिल्ली की तरह फैलायी थीं और गुर्राकर कहा था—"तुझे महीनों सिखाने के बाद ये नाचना आया है? सारी कम्पनी की आबरू बेच दी साली ने!" कावेरीबाई क्रोध में पुरुषों की तरह गाली बकने लगी थी—"मेरी कोख लजा दी। वो तो लोग चेहरा देख के रह गये, नहीं तो सारा तमाशा उखाड़ फेंकते। पूरे नाच में एक बार पल्लू नहीं उछाला मरी ने! पलक दबाना तो दूर, लोगों की ओर आंख उठाकर देखा तक नहीं। ऐसे कहीं तमाशा होता है?"

रत्ना सिर झुकाये चुपचाप सुनती रही। कावेरीबाई ने रह-रहकर उसे कोसा। ऐसी अश्लील गालियां सुनायीं, जिन्हें सुनकर रत्ना को लगा था कि कावेरीबाई औरत नहीं है।

जब कावेरीबाई उसे डांटकर चली गई तो रत्ना बड़ी रात तक बिस्तर पर औंधी लेटी रोती रही थी। उसके मन में बुरे-बुरे विचार आये थे। ऐसी लानत-भरी जिन्दगी से तो···। उसे अचरज हुआ था कि वह कावेरीबाई के गर्भ से पैदा हुई, फिर भी स्टेज पर नाच नहीं सकती।

ऐसे मौके पर अकसर उसे विनायक राव का ख़याल आता था। इसी कम्पनी में तबला बजाने का काम करता था वह। जवान था, हंसमुख भी। लता उसे छेड़ती थी। तरह-तरह के वे गन्दे तरीके जो दर्शकों के लिए अपनाया करती थी, विनायकराव के साथ भी आजमाती, पर वह चुप रह जाता। रत्ना ने पहचाना था, सारी तमाशा पार्टी में एकमात्र वही था, जिसका कुछ दबा-छिपा था, वरना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारे मर्द-औरत स्टेज के अलावा व्यक्तिगत जिन्दगी में भी एक नंगेपन का बोझ ढो रहे थे। जब सभी लोग रत्ना की आलोचना करते तब केवल विनायकराव ही ऐसा आदमी था जो उसके प्रति सहानुभूति का रुख अपनाता। उस दिन जब कावेरीबाई ने उसके नाच से अप्रसन्न होकर उसे डांटने के साथ-साथ पीट भी दिया था, तब अकेला विनायकराव ही उसे धीरज बंधाने आया था। उस दिन रत्ना गांव के बाहर, शिव मन्दिर में, एकान्त में देर तक रोती रही थी। न जाने कहां से विनायकराव उसके पास आ पहुंचा था। उसने रत्ना के पास बैठकर उससे सहानुभूति प्रकट की थी—"बड़ा अन्याय हो रहा है तेरे साथ।"

रत्ना और जोर-जोर से रो पड़ी तो विनायकराव ने दोनों हाथों के बीच उसका चेहरा पकड़ा और मीठे स्वर में बोला—"दुखी मत हो। भगवान चाहेगा तो तू जल्दी इस संकट से मुक्त हो जाएगी।"

इस धीरज ने जैसे रत्ना के पुराने सारे घाव कुरेद डाले। वह पहले की अपेक्षा अधिक तेजी से रो उठी।

"कावेरीबाई औरत नहीं, डाकिन है।" विनायकराव के स्वर में घृणा थी। वह अपनी जगह से कुछ इस तरह रत्ना की ओर खिसका कि दोनों के शरीर एक-दूसरे को छूने लगे। रत्ना दुखी थी। कावेरीबाई ने उसे छड़ी से मारा था और बदन पर लगी चोटों से कसक उठ रही थी। इसके बावजूद न जाने क्यों जैसे उसकी सारी पीड़ा गायब हो गई थी। विनायक के स्पर्श ने उसका सारा बदन एक विचित्र-सी कसमसाहट से भर दिया था।

विनायकराव उसे समझाता रहा था। उसने तरह-तरह से उसे दिलासा दी थी, कावेरीबाई के प्रति घृणा व्यक्त की थी और उसके सम्पूर्ण व्यवहार को अमानुषिक बताया था। उसकी बातों ने जैसे रत्ना में नवजीवन फूंक दिया था। जीवन के वे तमाम रंगीन फूल, जो अभाग्य की आंधी ने आशाओं की टहनियों से झाड़ दिये थे, पुनः जनम आये थे। उसके मन में जीने की ललक पैदा हुई थी और मन साधकर वह पुनः नयी कठिनाइयों से लड़ने को तैयार हो गयी थी।

कावेरीबाई का व्यवहार ज्यों का त्यों था। रत्ना भोर से रात तक अकसर डांट-फटकार और गालियां सहती। कभी-कभी उसे मार भी बर्दाश्त करनी होती। इसके बावजूद निराशा का कोई अंधेरा उस पर नहीं छा सका। अकसर विनायकराव के साथ गुजरा एकांत उसमें स्फूर्ति और आशा की ज्योति जलाये रखता। जैसे-जैसे कावेरीबाई के व्यवहार में कटुता और शैतानियत बढ़ी, वैसे ही वैसे विनायकराव की सहानुभूति और प्रेम बढ़ता चला गया। और अब सहानुभूति और प्रेम का यह छोटा-सा दायरा जीवन के बड़े दायरे में सुनहरे सपनों और समझौतों में फैल गया था।

रत्ना को तमाशा स्टेज पर नाचने की चीजें हो गये, पर न जाने क्यों डांट-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फटकार और मार के बावजूद वह स्वयं में कावेरीबाई का अपेक्षित परिवतन न ला सकी। वह कई बार स्टेज पर उतरी थी और हर बार किसी मशीन की तरह नाची। उसके हाव-भाव, तौर-तरीके सब वही थे, जो पहली बार स्टेज पर उतरते समय रहे थे। यहां तक कि कावेरीबाई भी स्वयं को बहुत लाचार अनुभव करने लगी थी। वह अकसर लोगों के सामने अपना माथा ठोंकती, कहती—"मैं क्या करूं? सब कुछ तो कर लिया, पर इस अभागिन में तो जैसे जान ही नहीं है। राम भला करे, हीरे-सा चेहरा पाया है, फूल-सा बदन, गले में खुद सरसुती आन बैठी है, पर जब तक आंख न घूमे, होंठ न फड़कें, सब माटी है। मुझे तो खुद अचरज होता है, कैसी बेटी जनी मैंने? हजार चेहरा-मोहरा पाया हो, पर जब तक आरट नहीं, कुछ नहीं।"

उस दिन पास के गांव में ताल्लुकेदार की लड़की के ब्याह पर खास जलसे में कावेरीबाई की तमाशा पार्टी प्रोग्राम देने पहुंची। रात-भर जश्न रहा। लता ने भांति-भांति के इतने राग, गीत सुनाये कि गला बैठने लगा उसका। रत्ना भी नाची। कावेरीबाई ने अपनी समझ से बहुत समझा दिया था, पर बात ज्यों की त्यों रही। हर बार की तरह इस बार भी रत्ना 'आरट' नहीं दिखला सकी। आधी रात को जब कार्यक्रम समाप्त हुआ तो रत्ना यह सोचकर भयभीत थी कि शायद आज कावेरीबाई की गहरी डांट-मार सहनी पड़ेगी। पर यह देखकर उसे आश्चर्य हुआ कि कावेरीबाई ने उससे कुछ नहीं कहा, उलटे उसकी सराहना की। घंटे-भर पास बैठी उसे दुलारती रही, जैसे पिछले सत्रह साल का सारा मातृ-प्रेम एक साथ ही उंड़ेल दे रही हो। रात को रत्ना बिस्तर पर पड़ी-पड़ी सोचती रही। उसे भरोसा ही न होता कि कावेरीबाई का वह दुलार सच्चा था। पर वह अविश्वास भी न कर पाती थी। वह जाग रही थी और जो कुछ उसने देखा था, वह सपना निश्चय ही न था।

कमरे में अंधकार था। असमंजस की स्थिति में पड़ी रत्ना को नींद नहीं आ रही थी। दरवाजे पर ही कावेरीबाई लेटी हुई थी। चिमनराव उससे गपशप कर रहा था। रत्ना सुनती रही, वे दोनों इधर-उधर की ढेर-सी बातें करते रहने के बाद उसी के बारे में बातें करने लगे थे। शायद उनका अनुमान था कि रत्ना सो गयी है।

"गिन के बीस प्रोग्राम हो गये। हर बार बहुत समझा-बुझा के लोगों के सामने लाती हूं, पर न जाने कौन-सा भूत लगा है इसे, एक बार भी गत काम नहीं कर पायी है।"

"सांची कहती है, ताई!" चिमनराव कामेडियन ने बड़े नाटकीय ढंग से कावेरीबाई का समर्थन किया। सारी पार्टी में वह ताई के नाम से ही जानी जाती थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"अब तू ही देख रे।" कावेरीबाई ने पुन: शिकायत पेश की—"कल कितनी मेहनत करवायी थी, कितना समझाया था—जरा मत डरना-शरमाना, पर फिर वही बात ! मदान में आयी तो सब भूल गयी। जाने कौन ऋषि-मुनि का खून समा गया है मरी के बदन में।" कावेरीबाई ने अन्तिम टिप्पणी कुछ ऐसे घृणा-भरे स्वर में की कि अंधेरे कमरे में सब कुछ सुनती हुई रत्ना का मन ग्लानि से भर उठा। उसे लगा, जैसे कावेरीबाई औरत नहीं, तमाम औरतजात के माथे पर कोढ़ के घिनौने दाग की तरह है।

उसे चिमनराव पर क्रोध आया। घृणा हुई। एक पेशेवर दलाल की तरह वह कावेरीबाई की हर अनुचित बात में हां में हां मिलाये जा रहा था। इन सारी प्रतिक्रियाओं के अलावा भी वह एक विचित्र-सी उलझन में पड़ी हुई थी। उसे यह जानकर आश्चर्य हो रहा था कि हमेशा की तरह इस बार भी कावेरीबाई उसके रोल से खुश नहीं थी। इसके बावजूद उसने उसकी पीठ ठोंकी थी, दुलार किया था। पहले तो ऐसा कभी होता न था। कावेरीबाई ने उसे सदा ही निर्देशानुसार कार्य न करने पर डांटा-फटकारा था। यह पहला मौका था, जब काम पसन्द न आने के बावजूद कावेरीबाई ने जरा भौं टेढ़ी न की थी। अजीब-सी गुत्थी में उलझकर रह गयी रत्ना। उसे लगता था, जैसे इस व्यवहार में कोई असाधारण रहस्य समाया हुआ है।

कावेरी और चिमनराव बातें कर रहे थे।

"ताई," चिमनराव कह रहा था—"आज तूने खेल के बखत देखा था, वो ताल्लुकेदार का लड़का चिम्माजी रत्ना को कैसे देख रहा था?"

"हां," कावेरीबाई ने गम्भीर स्वर में उत्तर दिया—"तू क्या समझता है रे? सोलह बरस की उमर से तमाशा करती रही हूं, अब पचास की होने को आयी, आदमी भी नहीं पहचानती हूं क्या?"

"यह बात नहीं है, ताई!" चिमनराव घिघियाकर बोला, "मैं तो यों ही कह रहा था, वैसे मैं क्या जानता नहीं हूं! तू हम सबकी दाता-माता है। तेरे अनुभवों के आगे हमारी क्या बिसात?"

"रत्ना चिम्माजी को अच्छी लगी है," कावेरीबाई बोली, "उसने अपने वामनया के हाथ सौ रुपये भिजवाये थे, मैंने वापस करवा दिये। कह दिया—जा के कह दे चिम्माजी से कि इतने में तो घोड़ी के लिए घास भी नहीं पुराती, रत्ना तो कावेरीबाई के संच (तमाशा) का हीरा है। सोते-जागते हर बखत उजाला करता है। पाजी कहीं का, मेरे को सौ की हरियाली चराने आया था।"

रत्ना ने सुना तो यों लगा, जैसे अनजाने में ऐसा जहर पी लिया है उसने जो उसके तमाम शरीर और आत्मा को ऐंठ दे रहा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चिमनराव वेशर्मी से समर्थन कर रहा था—"ठीक किया, ताई, ठीक किया। मैं जानता हूं, वो चिम्माजी ऐसा ही है।"

"और क्या," कावेरीबाई के स्वर में ऐसी स्फूर्ति आ गई, जैसे उसने कोई महत्त्वपूर्ण काम किया था, "पूरे पांच सौ गिनाऊंगी, तब मेरा हीरा उस चिम्मे की देहरी चढ़ेगा। समझा रे। मैं जब तमाशे में काम करती थी, तो इसी चिम्मा के बाप ने पूरे पांच सौ रुपये न्यौछावर किये थे!"

"सही बात है, ताई, सही बात है।" एक कापुरुष की तरह चिमनराव पुनः घिघियाया।

रत्ना का मन हुआ, सिर पीट ले। उसकी मां उसका सौदा कर रही है। सराहना के अर्थ अब समझ पायी थी वह। अनचाहे ही उसकी आंखें बह निकलीं। उसने तकिये में मुंह दिया और रुलाई के स्वर घोंट दिये। अपने सारे जीवन में पहली बार उसने स्वयं को इतना असहाय और लाचार अनुभव किया था। पतन के खड्ड इतने गहरे होंगे, सोच भी न सकती थी वह।

कावेरीबाई और चिमनराव की गपशप बन्द हो गयी थी। सम्भवतः चिमनराव सोने चला गया था। सारी रात रत्ना वैसे ही तकिये में मुंह दिये सुबकती रही। उसे लगता था, जैसे कमरे के अंधेरे में, हर कोने में उसकी मां कावेरीबाई किसी शैतान की तरह प्रकट होती है और उसका मांस नोंच लेती है।

सुबह जब वह उठी तो लगातार रोते रहने के कारण उसकी पलकें सूज गयी थीं, उन पर नींद का भी भारीपन था। चेहरा यों मुरझाया हुआ था, जैसे रात किसी ने खून निकाल लिया हो उसके बदन का। वह चारपाई पर पड़ी पिछली सारी घटनाएं सोचती रही थी। रह-रहकर उसके घाव कसके थे, वे जो कावेरीबाई की मार के कारण पड़े थे। तमाम सोच-विचार के बाद समस्या सुलझने का उसे एक ही रास्ता सूझा था—विनायकराव की मदद।

उसने विनायकराव की तलाश प्रारम्भ कर दी थी। वह बड़ी सुबह से ही बरगद के एक बड़े पेड़ की छाया में बैठा, तबला कसने में लगा हुआ था। रत्ना ने जब एकान्त देखा तो उसके पास जा पहुंची।

एक मुसकान के साथ विनायक ने उसका स्वागत किया। पर स्वागत की यह मुसकान जल्द ही उसके चेहरे पर से उतर गयी—जब उसने देखा कि रत्ना का चेहरा किसी फूल की तरह नहीं, एक बीमार आदमी की तरह बेरौनक था। इससे पूर्व कि रत्ना कुछ कहे, विनायकराव ही बोल उठा—"क्यों? बड़ी उदास लग रही है तू?"

"हूं," बड़े अनमने स्वर में रत्ना ने उत्तर दिया। आसपास गरदन घुमायी-फिरायी, कोई नजर नहीं आया तो बोली—"बात ही ऐसी है।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"क्या बात है ?" विनायकराव ने रत्ना के चिन्तापूर्ण स्वर से और अधिक परेशान होकर पूछा।

"इस सारी पार्टी में एक तू ही ऐसा आदमी है, जिसे अपना दुःख सुनाकर कुछ मदद मांग सकती हूं।" रत्ना ने कहा।

विनायकराव और परेशान हुआ। उसने पुनः उसी घबराहट के साथ अपना प्रश्न दोहराया—"क्या हुआ ?

"तू चाहे तो मेरी जान बच सकती है।"

"बताएगी तभी तो ?" विनायकराव की बेचैनी खीझ के स्वर तक आ पहुंची।

"तुझसे कुछ छिपा नहीं है," कहते-कहते रत्ना का गला भर आया, "छोटे ताल्लुकेदार को मुझे बेचा जा रहा है। ताई ने पूरे पांच सौ लेने की बात सोच रखी है।"

विनायक चौंका, पर बोला कुछ नहीं।

"भला सोच तो सही, यह कितनी बुरी बात है," "रत्ना वैसे ही टूटे स्वर में कहती गयी, "मैं मर जाऊंगी, पर ताई मुझे बेच नहीं सकती।"

विनायकराव ने तबले पर धीमी-सी थाप कसी, फिर उसे घुमा-फिराकर देखने लगा।

रत्ना कह रही थी—"तू मुझे कहीं ले चल। दो रूखी-सूखी रोटियां खाएंगे और इज्जत की जिन्दगी बसर करेंगे।"

"तू पागल है," विनायकराव ने समझाने के स्वर में कहा, "रूखी-सूखी खाने की बात करना और बात है, खाना और बात।" कहते-कहते वह एक क्षण को रुका, जैसे अगली बात सोच रहा हो। फिर कहने लगा—"और इसमें बिगड़ा भी क्या है, रत्ना ! ताई पांच सौ हड़पना चाहती है, तू डाइरेक्ट चिम्माजी से पांच सौ वसूल ले।"

रत्ना के माथे पर पसीना उभर आया। वह उसे आंखें फाड़ देखती ही रह गयी।

विनायकराव ने अपनी बात कहते समय रत्ना के चेहरे की ओर जरा भी ध्यान नहीं दिया। नदी के तेज बहाव की तरह उसके शब्द बह गये—"पांच सौ में तबला-पेटी आ सकती है। फिर अपना नया संच शुरू कर देंगे। कावेरी ताई का साथ छूटा तो मेरे तमाम जंजाल छूट जाएंगे।"

रत्ना ने आवेश में दांत पीस लिये। उसकी मुट्ठियां भिच गयीं। विनायकराव उसे तीखे ढंग से देख रहा था, जैसे उसकी आंख आदमी की नहीं, गिद्ध की हो। रत्ना का मन हुआ था, किसी तेज नुकीले हथियार से उसकी आंखें खींच ले। लगातार धोखों ने जैसे उसे तोड़ डाला था। इच्छा हुई थी, बिलख-बिलखकर रो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उठे। पर न जाने क्यों ऐसा नहीं हुआ। उसकी आंखें सूनी रहीं। वह चुपचाप उठी और अपने कमरे की ओर लौट पड़ी। विनायकराव ने उसे पुकारा भी, पर उसने कुछ नहीं सुना। शायद उसमें सुनने की भी शक्ति शेष न थी।

उस तमाम दिन वह अपने कमरे से बाहर न निकली। रात जब पुनः स्टेज़ पर धूम-धड़ाका हुआ तो रत्ना लोगों के सामने आयी। उसने पहला कदम रखते ही दर्शकों की ओर देखा। यों मुसकरायी कि देर तक वातावरण आहों और चिल्लाहटों से गूंजता रहा। कावेरीबाई ने देखा तो आश्चर्य से देखती ही रह गयी। रत्ना नाच रही थी, कुछ इस ढंग से कि जिसकी कल्पना भी कावेरीबाई नहीं कर सकती थी। उसने एक नहीं अनेक बार पल्लू उछाला, पलकें झपकायीं।

यो यो रे पाहुणा···
फेटेवाला पाहुणा···
चश्मेवाला पाहुणा
बरा दिसेता।

लोग चिल्लाये, जैसे बादल गरजे हों। तालियां बजीं, जैसे झरझराकर पानी बरसा हो। स्टेज पर इतने नोट फिंके थे कि कामेडियन चिमनराव अपने तमाम भोंडे मजाक बन्द कर पूरे खेल में इधर-उधर स्टेज पर दौड़ते हुए नोट एकत्र करता रहा।

प्रोग्राम समाप्त हुआ तो कावेरीबाई ने रत्ना को छाती से लगा लिया। हर्ष-डूबे स्वर में वह चिल्ला उठी—"मेरा मनोरथ पूरा हुआ। अब देखती हूं, कौन संच मेरे सामने टिकता है।"

रत्ना ने कोई उत्तर नहीं दिया। वह सीधी अपने कमरे में चली गयी।

थोड़ी देर बाद जब कावेरीबाई, चिम्माजी और दो-एक लोगों के साथ रत्ना के कमरे में पहुंची तो उसने देखा—रत्ना शीशे के सामने बैठी अपना चेहरा देख रही थी।

"रत्ना," बड़े मीठे स्वर में कावेरीबाई बोली, "तू बड़े भागवाली है। देख तो सही!" उसने चिम्माजी की ओर संकेत किया, "छोटे तल्लुकेदार तेरा आरट देखकर खुश हुए हैं और तुझसे मिलने आये हैं।"

रत्ना ने पलटकर देखा। सिर पर बेतरतीब-सा साफा बांधे, चिम्माजी अपनी छोटी-छोटी मूंछों में हंस रहा था। एक क्षण टकटकी बांधे रत्ना उसे देखती रही, फिर एकाएक ही अपनी जगह से उठकर उसने चिम्माजी का स्वागत किया -- "आओ, सा'ब!"

चिम्माजी आगे बढ़कर हंसता हुआ चारपाई पर जा बैठा। कावेरीबाई के चेहरे पर हर्ष और सफलता की हलकी-सी मुसकान फैल गयी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रत्ना एकटक चिम्माजी को देखे जा रही थी। चिम्माजी पहले तो हंसा पर अब उसे कुछ अजीब-सा लगने लगा था, इसलिए उसने बात प्रारम्भ कर दी—"तुम बड़ी आरटिस्ट हो।"

रत्ना खिलखिलाकर हंस पड़ी—"मैं बड़ी आरटिस्ट हूं!" उसने हर्ष से बच्चों की तरह तालियां पीटीं, "मैं बड़ी आरटिस्ट हूं।"

चिम्माजी, कावेरीबाई और सभी ने आश्चर्य से उसका चेहरा देखा। रत्ना के व्यवहार में असाधारण विचित्रता थी।

हंसती हुई रत्ना एकाएक उदास हो गई और जैसे स्विच ऑन करते ही रोशनी हो जाती है, वह पुनः हंस पड़ी।

कावेरीबाई ने घबराहट के साथ चिल्लाकर कहा—"रत्ना, तुझे क्या हो गया है? देखती नहीं, ये छोटे ताल्लुकेदार हैं!"

रत्ना लापरवाही से सारे कमरे में तालियां पीटती हुई नाचने लगी। उसकी साड़ी का पल्लू जमीन से घिसटने लगा। वह हंस रही थी—"मैं बड़ी आरटिस्ट हूं।" उसने चिम्माजी की ओर संकेत किया—"तुमने ताई को पांच सौ रुपये दिये हैं न? तुम मेरा क्या करोगे?" बोलते-बोलते वह चीते की तरह गुर्राने लगी—"लो।" उसने भयभीत चिम्माजी के ठीक सामने अपना शरीर फैला दिया। ब्लाउज चीर डाला। "लो। तुम मेरा मांस नोंचो। तुम्हें मेरा आरट पसंद है न!"

"रत्ना!" कावेरीबाई चीखी।

रत्ना ने कमरे का सामान इधर-उधर फेंकना प्रारम्भ कर दिया। कावेरीबाई, चिम्माजी और उसके साथी चीखते-चिल्लाते कमरे से भाग निकले।

रत्ना ने दौड़कर भीतर से किवाड़ बन्द कर लिये। उसने दरवाजे से सिर ठोंका, ठहाकों के साथ हंसी और बिलखकर रोयी। बीच-बीच में उसने गाया भी—

यो यो रे पाहुणा···
फेटेवाला···

१९६४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने-पराये का फर्क

"जुगनी···!" जहरसिंह ने गली के नुक्कड़ से ही एक जोरदार आवाज खींच दी। सारी गली में जैसे ये तीनों अक्षर ताड़ी का नशा फैला गये।

गरमियों की रात। सारी बस्ती सड़क-गली इर्द-गिर्द खाली धरती पर सस्ती वाली चारपाइयां डाले बेहोश सोयी रहती है। होश में वे सोयें, जिनके घर में होश में रखने जैसी चीज़ें हों। घर के नाम पर इस सारी बस्ती में आदमी, औरतें और बच्चे हैं। खाने के नाम पर उस दिन की मजदूरी और जिन्दगी के नाम पर उनका जिन्दा रहना। जहरसिंह भी इसी बस्ती का आदमी है। सब-जैसा। जहरसिंह ने आवाज खींची, तो कुछ चारपाइयों पर करवटें बदलीं, कुछ बच्चे कुनमुनाये और फिर सब कुछ खामोश हो गया।

"जुगनी···!' जहरसिंह दोबारा चिल्लाया। वह धरती पर पांव ऐसे रखता था, जैसे नदी की बीच धार में तैर रहा हो। उसके गले में चमेली की माला थी, हाथ में गजरा। ताड़ी के गहरे नशे में भी वह चमेली वाले गजरे की महक नहीं भूला था। वह बायां हाथ किसी नर्तक के हाथ की तरह हिलाता-डुलाता उठाता और गजरा नाक तक ले जाता। सूं··सूं···की आवाज के साथ नथुनों में चमेली की महक भर लेता और ऐसी तसल्ली की सांस लेता, जैसे ताड़ी का एक पौवा और गले के नीचे उतार गया हो।

"मरा आ गया है!···कुत्ता!" एक चारपाई पर बुदबुदाहट हुई। कुछ चारपाइयों पर पुनः करवटें बदलीं और फिर खामोशी फैल गयी।

जहरसिंह और दिनों की अपेक्षा आज अधिक गहरे नशे में था। इतने नशे में कि उसने अपनी घरवाली जुगनी को उसका असल नाम लेकर पुकारा, "जुगनी···!' उसकी घरवाली का यही नाम था और जहरसिंह को उसके इस असल नाम से चिढ़ थी। अकसर होश के समय, जब ताड़ी की जगह उसके गले में सरसुती बिराजी होती थी, वह जुगनी को जोगन कहकर बुलाया करता था। बस्ती के कई लोगों ने उसे टोका भी था— "जो नहीं है, वह नाम क्यों लेता है?" तो जहरसिंह ने जवाब दे दिया था, "जुगनी! अरे, भला सारे जमाने में किसी औरत का ये नाम सुना है? इसका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्या अर्थ ? जिस नाम का कोई अर्थ न हो, वह नाम कैसा ? ये तो जोगन है, जोगन···!"

कहने वाले चुप हो गये थे। जहरसिंह ठीक ही तो कहता है, जुगनी सचमुच जोगन है। जोगन न होती तो जहरसिंह से उसका निर्वाह कैसे होता ? जहरसिंह, जिसने सारी जिन्दगी परायी औरतों और उधारी की ताड़ी में बिता दी, उससे जुगनी निर्वाह कर रही है। बरस हो गये, कोई दिन ऐसा नहीं गया जब जहरसिंह ने ताड़ी पीकर जुगनी की सात पुश्तें न तार दी हों और कोई दिन ऐसा नहीं गया जिस दिन जहरसिंह ने उसे दिमागी तकलीफ न दी हो। पड़ोस की ही एक औरत के फेर में पड़ गया था जहरसिंह और जुगनी की आंखों के सामने ही प्रेम-व्यापार कर उसे सौतिया डाह में जला रहा था, पर जुगनी थी कि सब कुछ यों लापरवाही से बर्दाश्त किये जा रही थी, जैसे वह कोई औरत ही नहीं थी, जिसके पास जहरसिंह जाता था। मोहल्ले के मर्द-औरत सोचते, उन्हें जुगनी से सहानुभूति होती। एक लम्बा समय हो गया था और अब उनकी सहानुभूति जुगनी के प्रति विचित्र-सी खीझ और घृणा के भाव में परिणत होती जाती थी। वह भला क्योंकर जहरसिंह को नहीं टोकती ! अपना जी और उसका जी एक कर डाले ! घर में न सही, पड़ोस में ही सही—जहरसिंह जुगनी की छाती पर मौत को बिठाले हुए है—और जुगनी है कि ऐसे चुप है, जैसे कुछ समझती ही न हो। बारह बरस की बाली उमरिया वाली राजकुमारी-जैसी अबोध !

"जुगनी !" जहरसिंह फिर चिल्लाया। गली के नुक्कड़ से नहीं, बिलकुल अपने टापरे के दरवाजे आकर।

जुगनी बाहर नहीं सोयी थी। जब तक जहरसिंह नहीं आ जाता, वह बाहर नहीं सोती है। सारे दिन की आग बरसाती धूप में भी वह टापरे में समायी रहती थी—रात को भी जब तक जहरसिंह नहीं आ जाता था, वह उसी जलते टापरे में बन्द रहती थी। शुरू-शुरू के दिनों उसे यों घुटना अखरा भी था, पर धीरे-धीरे वह आग बर्दाश्त करने की आदी हो गयी थी।

जुगनी ! जहरसिंह शायद फिर चिल्लाता, पर टापरे की किवाड़ चरमराती खुली। एक डूबा-सा स्वर आया—"आ जा !

"मैं नई आता !" जहरसिंह ने जवाब दिया—"तू बाहर आ जा !" वह हिल रहा था, यों जैसे मर्द पठ्ठा नहीं, ज्वार का पौधा हो।

"सारी बस्ती सो रही है।" अंधेरे टापरे में से जुगनी का स्वर फूटा, "आधी रात काहे को कलेस रोपता है। भीतर आ जा !"

"नई ! मैं नई आता।" जहरसिंह ने जिद्द की—"तू ही बाहर आ जा न !" वह बोलते-बोलते हकलाया, "आ जा ! आ जा !" उसने बच्चों की तरह हाथ से उसे बाहर आने के इशारे किये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जुगनी बाहर आ गयी। जहरसिंह उसका घरवाला है, फिर भी जुगनी डरी हुई थी। उसने भयातुर सड़क पर और आस-पास फैली चारपाइयों पर नजरें दौड़ायीं। करवटें बदली जा रही थीं। बच्चे कुनमुना रहे थे। गली के नुक्कड़ पर कुत्ता इतनी जोर से रोया था कि सारी खामोशी रेशम के कमजोर धागे की तरह टूट गयी थी। न जाने क्यों जुगनी ने महसूस किया, जैसे वह चोरी कर रही है। जहरसिंह से, अपने घरवाले से बातचीत कर वह चोरी कर रही है।

जहरसिंह पहले की ही तरह हिल-डुल रहा था। जुगनी उसके पास आ गयी —"चल, भीतर चल!" उसने कहा।

जहरसिंह ने कोई उत्तर नहीं दिया। जुगनी उसके करीब आयी तो उसका जी मिचलाने लगा। ताड़ी की बू में डूबा हुआ था जहरसिंह। जैसे-तैसे मन साधा जुगनी ने। जहरसिंह एक बार तो इतनी जोर से डोला कि जुगनी को बमुश्किल अपने सहारे उसे गिरते से सम्हालना पड़ा।

"तू मुझे सहारा देती है! ऐं···! तू औरत की जात होके मुझे सहारा देती है? ऐं?" जहरसिंह नशे में बड़बड़ाने लगा —"तू समझती क्या है मुझे? ऐं?" उसने एक हिचकी ली और बात तोड़ दी।

"तू भीतर चल!" जुगनी ने फुसफुसाकर कहा—"मोहल्ला जग जायेगा···।" फिर उसने जैसे-तैसे उसे धक्का देते हुए, कभी खींचते हुए, टापरे के भीतर कर लिया। जहरसिंह बराबर बड़बडाये जा रहा था, "तू औरत की जात! मुझे क्या सहारा देगी? ऐं···?" जुगनी बगैर कुछ कहे-सुने उसे भीतर तक ले आयी। किवाड़ फुर्ती से बन्द कर दिये।

टापरे में अंधेरा था और इस अंधेरे में किसी कोने में दीया टिमटिमा रहा था। जहरसिंह धम् से धरती पर जा बैठा। जुगनी ने दीये की बाती ऊंची की। प्रकाश में जहरसिंह को उसने गौर से देखा, जैसे ताड़ी पीकर वह कोई और आदमी बन जाता था। जुगली ने उसे यों देखा, जैसे वह कोई अजनबी है। जहरसिंह धरती पर कुछ अजीब ढंग से पसरा-सा बैठा हुआ था—बिलकुल बच्चों की तरह। उसके गले में चमेली की माला और हाथ में गजरा था। पाजामे पर कई जगह मिट्टी लगी हुई थी। जरूर वह घर आते-आते में एक-दो जगह सड़क पर गिरा था। जुगनी किसी अनजानी पीड़ा में भर गयी। लगातार नशे-पत्ते ने जहरसिंह को तीस बरस की उम्र में ही कैसे पचाससाला कर दिया है! वह बमुश्किल पलकें उठा पाता था, जैसे पलकें उठाना एक बोरा उठाना हो। जुगनी को उस पर दया आती, जैसे जहरसिंह एक अपाहिज आदमी हो।

जहरसिंह उसी तरह बैठा हुआ था। यकायक ही बड़बड़ा उठा, "तू मुझे सहारा देती है, ऐं···? तू औरत की जात! मुझे सहारा देती है, ऐं?"

जुगनी ने उसे किसी अबोध बच्चे की तरह समझाया—"नई तो! मैं तुझे क्या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सहारा दूंगी ? मैं तो तुझसे प्यार कर रही थी।"

"तू मुझसे प्यार क्यों कर रही थी ?" जहरसिंह ने पहले से कहीं अधिक झूमते हुए एक अजीब-सा सवाल कर दिया—"तू क्यों करती है मुझसे प्यार ?"···उसने दोबारा वही पागलपन से भरा सवाल किया।

जुगनी क्या कहे ? उसे जहरसिंह पर क्रोध भी आया, उसके प्रति विचित्र-सी खीझ भी हुई। अपने हाथ-पांव और दिमाग की ताकत से ज्यादा क्यों पी लेता है ?

"बोल न !" जहरसिंह चिल्ला उठा। उसके चेहरे पर पड़ी सिकुड़नें गहरा गयीं। जुगनी ने समझा—जहरसिंह का सवाल बेहूदा है, फिर भी वह अपने सवाल के प्रति बहुत गंभीर था। जुगनी जानती है, जवाब न होते हुए भी उसे जवाब देना होगा, इसीलिए कह दिया—"तू मेरा घरवाला है न ! तुझसे मेरे सात फेरे पड़े हैं, इसीलिए तुझे प्यार करती हूं।"

"हट !" जहरसिंह ने दुत्कार की तेजी के साथ दायां हाथ हवा में घुमाया, यों जैसे उसके मुंह पर मक्खी आ बैठी थी। "ब्याह होने से थोड़े प्यार होता है !" उसने कहा—"तू मूर्ख है ! अपने पड़ोस वाली चम्पा को देख, उसका भी तो भरोसी से ब्याह हुआ है, पर वो भरोसी को प्यार नहीं करती ! वो मेरे से प्यार करती है।" कहती है—"जहरसिंह ! तेरे बिना मैं मर जाऊंगी !"

जुगनी के मुंह में पानी भर आया। उसने अनुभव किया, जैसे चम्पा जहरसिंह से प्यार नहीं कर रही थी—कोई मीठी रसीली चीज़ खा रही थी और जुगनी कहीं दूर कोने में खड़ी-खड़ी उस चीज़ को ललचायी आंखों ताक रही थी। उसके मुंह में पानी आ रहा था—जहरसिंह के मीठे प्यार के लिए। जुगनी ने लाचारी में एक ठंडी सांस खींची और पानी गले के नीचे उतार लिया। जी साधा, बोली—"अब तू सो जा।"

जहरसिंह ने सिर दाएं-बाएं हिलाया—"ऊंह ! मैं नई सो सकता ! पैले तू जे बता कि मेरे को प्यार क्यों करती है ?"

जुगनी कोई उत्तर तो नहीं दे सकी। उसने चूनरी का पल्लू अपनी आंखों के किनारे रखा और उन गर्म-गर्म आंसुओं को पोंछ लिया, जो लाख रोकने की कोशिश करते हुए भी पलकों में कैद नहीं रह सके थे। वह जहरसिंह का ताड़ी या शराब पीना बर्दाश्त कर सकती थी, उसका समय-बेसमय घर लौटना बर्दाश्त कर सकती थी, अपने हाथ के कंगन गिरवी होना बर्दाश्त कर सकती थी, पर चम्पा···? उसे बर्दाश्त कर सकना जुगनी के लिए असम्भव था। एक अर्सा हुआ वह उसे बर्दाश्त नहीं कर पा रही थी और जब-जब उसे बर्दाश्त नहीं हुआ था—ये गर्म-गर्म आंसू ऐसे ही उसकी पलकों से बागी हो गये थे।

जिद्दी जहरसिंह बराबर उसे कुरेदे गया—"तुझे मां की कसम ! बता ! तू मेरे को प्यार क्यों करती है···?" उसकी आवाज हिलकी, दो हिचकियां आयीं, "जे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोई जरूरी थोड़े है कि जिसके साथ सात फेरे पड़ें, तू उसी से प्यार करे, तू चाहे तो प्यार और कोई से करे, ब्याह और कोई से करे !"

"तू सो जा !" जुगनी ने फिर सलाह दी। वह उसकी जिद्द और नशे में डूबे सवालों से खीझने लगी थी। जब-जब जहरसिंह शराब पीता है, वह ऐसे ही ऊलजलूल सवाल करता है और वह शराब हर रोज पीता है और ऊलजलूल सवाल हर रोज होते हैं।

"मैं नहीं सोऊंगा ! पैले तू मेरी बात का जवाब दे !"

"क्या दूं ?" जुगनी ने ऊंची आवाज में कहा।

"मेरी बात का जवाब दे !" जहरसिंह बोला, "बता कि मेरी बात ठीक है कि नहीं। मेरे साथ तेरे सात फेरे पड़े हैं, तो ब्याह हुआ है और ब्याह हुआ है तो कोई जरूरी थोड़े है कि तू मेरे से प्यार भी करे ! तू चाहे तो किसी से भी प्यार करे !"

जुगनी चुप रही। पलकों में फिर कुछ गड़ने लगा। शायद वे गर्म-गर्म आंसू फिर बागी हो जाएंगे···उसने सोचा।

"बोल ?"

"..."

"बोलती क्यों नई ?" जहरसिंह गुस्सा हुआ।

"जे काम रंडियों का है, ब्याह कोई से करे—प्यार कोई से करे !" जुगनी चिढ़कर बोली।

"तो चम्पा रंडी है !" जहरसिंह चिल्लाया। चम्पा उसकी प्रेमिका, जुगनी उससे जलती है। जहरसिंह इतना नशे में नहीं है कि बात में बात न समझ सके। जुगनी उसे साफ-साफ रंडी कह रही है। जहरसिंह बर्दाश्त नहीं करेगा। जुगनी चुप रही तो उसने पुन: चिल्लाकर सवाल किया, "तू चम्पा को रंडी कह रही है, क्यों ?"

जुगनी कुछ नहीं बोली। उसने जी कड़ा किया। वह जगह आ गयी है, जहां हर रोज जहरसिंह साबित कर देता है कि वह नशे में है। कोई बात न हो, फिर भी बात निकल आती है। जुगनी जानती है, जहरसिंह उठेगा, और सिर्फ उठेगा ही नहीं, उस पर लातें-घूंसे भी बरसायेगा ! मन हुआ था—कहे, चीख-चीखकर कहे—हां, चम्पा रंडी है ! वह हर औरत रंडी है, जो फेरे किसी और से डालती है और प्यार किसी और से करती है ! तू ये दरद नहीं समझेगा, न माने तो भरोसी से पूछ देख चम्पा क्या है ? उसके घरवाले की नजर में चम्पा क्या है ?···पर चाहकर भी जुगनी कुछ नहीं कह सकेगी—वह नहीं चाहती, जहरसिंह उठे और साबित कर दे कि वह नशे में है।

जहरसिंह उसी तरह झूम रहा था और पूछे जा रहा था—"बता, चम्पा रंडी है ? तूने उसे रंडी कहा ?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जुगनी फिर भी चुप रही।

जहरसिंह झूमता हुआ उठकर खड़ा हो गया। "बता, चम्पा रंडी है?"

जुगनी ने स्वयं को तैयार किया। वह जानती है, जहरसिंह पूछेगा और फिर एकदम उसकी ओर झपट पड़ेगा। जुगनी जानती है, जहरसिंह सबसे पहले तमाचे कसता है, लगातार तमाचे, फिर बाल पकड़ता है और जब जुगनी रोती-बिलखती धरती पर बैठ जाती है, तब वह उसकी पीठ पर घूंसे मारता है। हर घूंसे के साथ सवाल करता है, ऐसा सवाल—जिसकी कोई तुक नहीं होती। जुगनी ने शरीर में चुस्ती भरी—खुद को मार खाने को तैयार कर लिया।

जहरसिंह पूछ रहा था—"क्यों, तू मेरे से प्यार क्यों करती है?"

जुगनी क्या बताये?

"तू चम्पा को रंडी कहती है?" जहरसिंह ने एकदम अलग सवाल पूछा।

जुगनी चुप रही।

"साली! जवाब नहीं देती!" जहरसिंह झपटा। उसने जुगनी के चेहरे पर लगातार कई तमाचे कसे, उसके बालों का झोंटा पकड़कर उसे धरती पर बिठा दिया, फिर कई घूंसे मारे! हर प्रहार के साथ एक सवाल—तू मेरे से प्यार क्यों करती है?···साली जवाब नहीं देती!···तू चम्पा को रंडी कहती है?···क्यों कहती है? जुगनी रोती-सिसकती रही, उसके पास कोई उत्तर नहीं था। वह चुप रही। जहरसिंह मारता गया, एक के बाद एक घूंसा···पर थोड़ी ही देर में वह थक गया। उसने अजीब-सी नफरत के साथ जुगनी को छोड़ दिया, "मर स्साली!" और फिर झूमता हुआ अपनी जगह पर आकर पसर गया। वह नशे में बड़बड़ा रहा था—"एक तो मेरे से प्यार करती है? क्यों करती है, स्साली को पता नहीं। फिर चम्पा को रंडी बोलती है!"

जुगनी सिसक रही थी—वह तब तक सिसकती रही, जब तक कि जहरसिंह की बड़बड़ाहट नींद के गहरे खर्राटों में न बदल गयी। जुगनी उठी, उसने एक गहरी सांस खींची, बिखर गये बालों को संवारा। चेहरे पर बह आये गर्म-गर्म आंसू अब ठंडे हो गये थे—उसने उन्हें पोंछा···आज का दिन कट गया था।

जहरसिंह चित पड़ा हुआ था। जुगनी ने उसके लिए दरी बिछा रखी थी, पर वह धरती पर लेट गया था। उसके हाथों में अब भी फूलों का गजरा था—जुगनी ने भूखी-सी नजरों से उस गजरे को देखा, फिर धीरे से वह गजरा निकालकर वेणी में लगा लिया। उसे याद आया, जब जुगनी और जहरसिंह के बीच चम्पा नहीं आयी थी, तब जहरसिंह उसे हर रोज एक गजरा लाकर देता था—कई बार तो वह खुद उसे जुगनी की वेणी में सजा देता था। न जाने क्यों जुगनी की आंखों ने फिर बगावत कर दी—दो गर्म-गर्म आंसू फिर ढुलक आये। उसने जहरसिंह को देखा। उसे लगा, जैसे वह एक गजरे को देख रही है—ऐसे गजरे को, जो किसी नाली में गिर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गया है। वह उस गजरे को नाली से निकाल लेना चाहती है, पर निकाल नहीं सकती। उसने पुनः एक गहरी सांस खींची और आत्मा की गहराइयों तक जज्ब कर ली। कितनी ही बार उसने बिरादरी की औरतों से समझायशें सुनी थीं—ऐसे मर्द को छोड़ दे! अपनी बिरादरी में तो सब चलता है!···अभी तेरी उम्र ही क्या है? हाल खिली जैसी कली है तू, तुझे तो कोई भी सिर-आंखों धर लेगा! ···छोड़ दे जहरसिंह को! जुगनी चुपचाप सभी की सलाहें सुनती रही थी और हर बार हवा में उड़ाती गयी थी यह कहकर कि अभी तो बहुत उम्र है, बहुत सोच सकती हूं। उसे भरोसा था, जहरसिंह एक न एक दिन बदल जायेगा। जरूर बदल जायेगा। परायी औरत और शराब, दोनों छलावे हैं। जितनी जल्दी मुंह चढ़ते हैं, उतनी ही जल्दी उतर भी जाते हैं। जुगनी ने माह नहीं, साल इस आस में काट दिये थे कि जहरसिंह एक न एक दिन दोनों को छोड़ देगा, जरूर छोड़ देगा, पर ऐसा कुछ नहीं हुआ था। जहरसिंह नहीं बदल सका। माह हुए, फिर साल और जहरसिंह डूबता चला गया, पहले से कहीं अधिक गहरे, खूब गहरे।

इधर कुछ दिनों से जुगनी का इस कहावत से विश्वास उठने लगा था—पराई औरत और शराब दोनों छलावे हैं। जितनी जल्दी मुंह चढ़ते हैं, उतनी ही जल्दी उतर भी जाते हैं। झूठ बात है! जुगनी ने सोचा, परायी औरत और शराब, दोनों सच्चे हैं—एक बार मुंह चढ़े, फिर उतरते नहीं! जब-जब जुगनी ने इस विषय पर सोचा था, उसे बेदरिया की याद हो आयी थी। ठीक उसके पड़ोस में रहता है वह। जहरसिंह के साथ ही मिल में नौकर है वह। कुंवारा नहीं, ब्याह हुआ था। गयी साल हैजे का दौर चला तो औरत मर गयी, तब से अकेला है। जाने कितनी बार उसने जुगनी से सहानुभूति दर्शायी है। कई बार तो वह जुगनी से जिद्द ही करने लगा था—तू क्यों उमर का गला घोंट रही है, बेरहम! छोड़ जहरसिंह को! बालाजी की किरपा से मैं भी खूब कमाता हूं! शराब भी नहीं पीता, सिर्फ बीड़ी का नशा है, तू कहेगी तो वह भी छोड़ दूंगा! और जुगनी ने उसे हर बार दुत्कार दिया था—दूर हट! परायी औरतों से लुच्चों जैसी बात करते तुझे सरम नहीं आती!···और बेदरिया हर एकांत को तोड़ता हुआ उसके रास्ते से हट गया था, यह कहकर कि—तू परायी कहां है? तू जब जहरसिंह की अपनी नहीं है, तो तू दूसरों की बिरानी कैसे हुई?···जुगनी को लगा था, बेदरिया ठीक ही तो कहता है—सचमुच वह जहरसिंह की अपनी नहीं है! दूसरों के लिए परायी कैसे हुई? ··पर फिर वही आस। जहरसिंह के मुंह से एक न एक दिन जरूर शराब और परायी औरत उतर जायेंगी! पर यह आस अब तक आस ही रही थी—और जुगनी कभी जहरसिंह की अपनी नहीं हो सकी—और जब तक जुगनी जहरसिंह की अपनी नहीं थी, तब तक वह दूसरों के लिए परायी नहीं हो सकती थी। आज फिर जुगनी को बेदरिया याद हो आया था। उसका भरा-पूरा बदन, बड़ी-बड़ी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आंखें और करीने से सजे हुए बाल !···जुगनी के दिमाग में अनचाहे ही बेदरिया की तसवीर बन गयी थी। शायद इसलिए कि जहरसिंह ने कभी कोशिश ही नहीं की थी कि जुगनी उसकी तसवीर अपने दिमाग में बनाये। बेदरिया ने कोशिश की थी—न जाने उसे मालूम था या न था कि वह अपनी कोशिश में कामयाब हो गया है। उसने जुगनी के दिमाग में अपनी तसवीर उतार दी है। जुगनी याद कर रही थी—जहरसिंह सामने पड़ा हुआ था, फिर भी वह बेदरिया को याद कर रही थी। उसे उस दिन की घटना याद हो आयी थी जब जहरसिंह ने हमेशा की अपेक्षा जुगनी को बहुत पीटा था। इतना कि उस दिन जुगनी की हिम्मत जवाब दे गयी थी। वह किसी तरह जहरसिंह के हाथ से छूटकर कमरे से बाहर गलियारे में भाग आयी थी और जहरसिंह एक क्रोधित चीते की तरह दौड़ता, गालियां बकता हुआ, पीछे झपट पड़ा था। उसने जात, समाज, बिरादरी और मोहल्ले की तनिक भी परवाह न करते हुए गलियारे में ही जुगनी को पीटना जारी कर दिया था।

सारा मोहल्ला इकट्ठा हो गया—औरत, मर्द और बच्चे। पर किसी की हिम्मत न हुई थी, जो जुगनी को जहरसिंह के कठोर हाथों से बचा सकता। जहरसिंह··· अपनी औरत के मामले में जितना निर्दयी है, दूसरों के लिए भी वैसा ही कठोर है। जुगनी चीख रही थी, उसके कपड़े और बाल अस्त-व्यस्त हो गये थे—यहां तक कि गालों पर जहरसिंह के साथ छीना-झपटी में कई जगह से खून बह आया था। वह गंदी-गंदी गालियां बक रहा था और जुगनी पर लगातार लातें-घूंसे बरसा रहा था। सब पत्थर की तरह खड़े, आंखें फाड़े, जुगनी की निर्मम पिटाई देखते रहे थे, तभी बेदरिया आ गया था। वह जरा भी रुके बगैर एकदम जहरसिंह के पास आ गया। "छोड़ इसे !" उसने गुर्राकर जहरसिंह का उठा हुआ हाथ ऊंचाई पर ही थाम लिया।

जहरसिंह चिल्लाया—"हट जा, बेदरिया ! इस हरामजादी को नहीं छोड़ूंगा ! इसने मुझे नामर्द कहा है !"

"और क्या कहेगी ?" बेदरिया ने भी उतने ही ऊंचे और कठोर स्वर में जवाब दिया—"औरत पर हाथ उठाने वाला मर्द होता है कभी ?"

"स्साले ! तू कौन होता है हमारे बीच में ?" जहरसिंह बेदरिया के उत्तर से तिलमिलाकर पागलों की तरह चीख उठा, "तू कौन होता है ?"

बेदरिया ने उसे धक्का देकर जुगनी को बचा लिया—"मैं ?" वह छाती फैलाकर बोला—"मैं तेरा बाप ! मार के तो देख इसे ! गुंडा कहीं का ! शराबी ! स्साला सारे मोहल्ले में नंगापन मचाये हुए है ! मार के देख इसे !"

जहरसिंह झल्लाकर रह गया। उसने दांत पीस लिये, किन्तु कोई जवाब न दिया—न ही जुगनी को पीटने की हिम्मत की। वह जानता था—सवा सेर से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उलझना ठीक नहीं। उसने गर्दन जमीन की ओर झुकायी और फिर गुस्से से पैर पटकता हुआ चुपचाप अपने टापरे में चला गया। बेदरिया ने जुगनी के कंधे पकड़कर उठाया और सहारा देकर टापरे के दरवाजे तक छोड़ आया। जुगनी टापरे में घुसी—कराहती हुई, खिसकती हुई और जहरसिंह जूते पांव में डालकर टापरे के बाहर चला गया।

जुगनी को याद आयी थी उस दिन की घटना और बेदरिया के प्रति उसके मन में अजीब-सी श्रद्धा उमड़ आयी थी। उसने जहरसिंह की ओर देखा, फिर बेदरिया की तसवीर याद की—एक बार नहीं, कई-कई बार और हर बार उसे लगा, जैसे जहरसिंह उसका अपना नहीं है और बेदरिया पराया नहीं है। जुगनी ने वेणी से गजरा उतारकर फिर जहरसिंह के हाथ में डाल दिया। उसने निर्णय लिया—कल वह इस नर्क को छोड़ देगी! बेदरिया से बात कर लेगी, वह कहेगी—तू ठीक कहता था, बेदरिया! मैं जहरसिंह की अपनी नहीं हूं, फिर तेरी परायी कैसे हो सकती हूं?···इस टापरे की देहरी कल यों पार करूंगी कि फिर कभी मुझे इसमें नहीं आना पड़ेगा!

दूसरे दिन ही उसने निश्चय कार्यरूप में परिणत करना प्रारम्भ कर दिया। भोर होते ही जब जहरसिंह काम पर चला गया तो उसने बेदरिया से बात की। वह दोपहर की पाली में जाया करता था। जुगनी ने पास-पड़ोस को सावधानी से देखा-भाला, फिर उंगली का संकेत कर बेदरिया को भीतर बुला लिया। बेदरिया आया, सहमा हुआ। इस सहम में घबराहट भी छिपी हुई थी। पहले तो कभी जुगनी से ऐसा व्यवहार नहीं मिला था, फिर एकाएक उसने उसे कैसे बुलाया है? बेदरिया के मन में कई आशंकाएं जन्मी थीं। कहीं अकारथ को ही न पिटवा दे ··तिरिया को बड़े-बड़े ऋषि-मुनि न समझ सके, तो बेदरिया काहे में है? बेदरिया ने बहुत कुछ सोचा था, एक मन हुआ था—न जाय, पर वह इशारा? बेदरिया अनचाहे ही खिंचा चला गया—यों जैसे पतंग में खींच हुई हो।

बेदरिया ने जहरसिंह के टापरे में पहला पांव रखा, यों डरते हुए जैसे सामने सांप का बिल रहा हो।

जुगनी को उसकी घबराहट समझते देर न लगी। "डर मत!" उसने निहायत बेफिकरी से कहा—"आ जा!"

बेदरिया ने आश्वस्ति की एक लम्बी उसांस भरी, दोनों पांव भीतर कर लिये—फुर्ती से पीछे लौटकर किवाड़ बन्द कर दिये। बोला—"जल्दी बोल, कैसे बुलाया है?"

"घबरा मत!" जुगनी मुसकरायी। बोली—"मैंने तुझे मार पड़वाने नहीं बुलाया। मेरे मन में कोई पाप नहीं है।"

"सो तो समझता हूं।" बेदरिया ने हिम्मत साधकर उत्तर दिया—"मेर मन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में भी पाप नहीं, तो फिर काहे का डर ? तू जल्दी से बता, काहे लिए बुलाया है ?"

जुगनी का मन हुआ था, सीधे कह दे--मैं तेरे संग रहना चाहती हूं···पर न जाने क्यों वह यों नहीं कह सकी। मन में कोई ऐसी चीज़ थी, जो गले पर ऐसी सीधी बात में बंधन लगाती है। उसने बात कही – "बेदरिया, तू ठीक कहता था, मैं जहरसिंह की अपनी नहीं तो किसी की परायी कैसे हो सकती हूं।"

बेदरिया ने अवाक् आंखें फैलाकर विस्मय से जुगनी का चेहरा देखा। जुगनी उसे देख रही थी, किन्तु जब बेदरिया को लगातार अपनी ओर देखते पाया तो पलकें अपने-आप आधी आंखों तक झप गयीं और नजर अपने पांव के अंगूठे पर आ टिकी, जो अनचाहे ही बगल की अंगुली से खेलने लगा था।

बेदरिया की ओर से कोई बात न पाकर जुगनी ने कुछ सकुचाते हुए बात और स्पष्ट की— "मैं किसी की हो जाऊं, तभी सब गांव जमाने की परायी हो सकती हूं।" वह बात और साफ करती, किन्तु उसे बेदरिया के दिमाग पर भरोसा था···जरूर उसमें जहरसिंह से ज्यादा समझ है और उसकी बात समझ लेगा। उसने आंखें उठायीं, बेदरिया ज्यों का त्यों देख रहा था, यों जैसे दुनिया के सबसे बड़े अचरज को देख रहा हो।

जुगनी ने कहा—"मैं सच्ची कहती हूं, तू आज रात अपने टापरे की किवाड़ खोलके रखियो। जहरसिंह के सामने आऊंगी, उससे कहके आऊंगी, कोई चोरी नहीं है !"

बेदरिया कुछ नहीं बोला, सिर्फ सिर स्वीकारात्मक ढंग से हिलाया और फुर्ती से किवाड़ खोलकर बाहर चला गया। जुगनी का जी धक्क से रह गया ! जल्दी में उसने यह भी ख़याल नहीं किया था कि बाहर गली में कोई हो सकता है। फिर यह सोचकर उसे हंसी आयी कि वह जिस डर से डर रही है, वह उसके निर्णय में पैदा ही नहीं होता।

उस सारे दिन जुगनी कोई काम-काज ढंग से नहीं कर सकी। उसने बीतने वाला हर क्षण कई विचारों के बीच काटा। आधी रात गये, हर रोज की तरह जहरसिंह ताड़ी या शराब में डूबा हुआ आयेगा, वह कोई फिल्मी गीत गुनगुनायेगा, चमेली का गजरा सूंघेगा, शराब में लिपटी बकवास करेगा, वह जुगनी से तरह-तरह के सवाल भी करेगा और जुगनी उसे सीधे-सीधे जवाब देगी। अब उसे डर नहीं है···बिलकुल डर नहीं है···! जहरसिंह शायद हमेशा की तरह मारपीट भी करना चाहेगा, पर जुगनी उसे डांट देगी···'दूर हट ! कुत्ता कहीं का ! मैंने तुझे छोड़ दिया ! मैं बेदरिया के पास जा रही हूं ! तेरे-मेरे फेरे टूट गये ! पंडित ने सूत कच्चा बांधा था !···' और भी जुगनी ने न जाने कितना कुछ सोच डाला। उसने यह भी सोचा, मुमकिन है जहरसिंह यह सुनकर किसी शिकारी कुत्ते की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तरह उसे मारने झपट पड़े, पर जुगनी उसके हाथ नहीं आयेगी। वह दौड़कर बेदरिया के टापरे में जा घुसेगी, इस तरह कि कभी नहीं निकलेगी ! बैठा रहे जहरसिंह ! ज़िन्दगी भर हाथ मले ! औरत रखने का भी सलीका होता है। जहरसिंह समझता क्या है उसे ? कोई खरीद ली है उसने ?···

दिन बीता। सांझ हुई, तो रोजमर्रा की आदत के मुताबिक किसी मशीन की तरह उठकर जुगनी ने दीया-बाती की। फिर उसे पछतावा हुआ, अब इस घर से रिश्ता क्या, जो यों चिन्ता से दीया-बाती कर रही है···दो-चार घंटे और हैं, जहरसिंह आयेगा और ताजिन्दगी की छुट्टी ! जुगनी सोचे जा रही थी—एक जहरसिंह है, जिसने ताजिन्दगी उसे रुलाया, उसे तकलीफें दीं, कभी प्यार से उसकी वेणी में गजरा नहीं सजाया। परायी औरतों पर सब जनम बुरी नजर फेरी···गुंडा कहीं का ! घृणा से जुगनी ने दाढ़ें दबा लीं···जबड़े कड़े हो गये, फिर उसने बेदरिया के बारे में सोचा···कैसे उसकी चिन्ता करता रहा है ? एक दिन कह रहा था—'जहरसिंह तुझ पर हाथ उठाता है जुगनी, तो मेरा मन होता है, उसकी नरघसी से लगके खून पी जाऊं ! तू क्यों उसकी मार सहती है, बावली ! मेरा टापरा देख, सूना है ! जब जी आये, आ जइयो !' और जुगनी ने उसे हमेशा डांटा था—'तू होता कौन है रे मेरा ? जहरसिंह मेरा धनी है। सात फेरे पड़े हैं उससे, मारता है तो प्यार भी करता है !' जुगनी सरासर झूठ बोल गयी थी। शुरू के कुछ समय ही उसने प्यार पाया था, और फिर लगातार रूखी और घुटन-भरी जिन्दगी बरदाश्त करती आयी थी, जिसमें कहीं किसी जगह न अपनापन था, न प्यार का कोई झरना ! उपेक्षा, उपेक्षा और लगातार ठुकराहट ! जुगनी को अफसोस हुआ था, व्यर्थ ही वह एक लम्बे समय तक ये ठुकराहट सहती रही। बेदरिया तो उसे न जाने कब से न्यौता दिये बैठा था। वह बेदरिया, जिसे जुगनी ने कभी कोई परायी औरत के बारे में चर्चा का विषय बनते न देखा था, न सुना था। जुगनी को पछतावा हुआ, जो निर्णय आज लिया, उसे काफी समय पहले ले लेना था। जुगनी सोचे गयी···अभी जहरसिंह के आने में बहुत समय था।

"जुगनी !"

जुगनी के सारे विचार यों छार-छार हो गये, जैसे ऊंचे से मिट्टी का खिलौना गिरकर टूट गया हो। उसने अचरज से सिर उठाकर देखा, जहरसिंह सामने खड़ा हुआ था। जुगनी का अचरज उस समय तो दुगुना हो गया, जब उसने देखा कि जहरसिंह के खड़े होने में मजबूती थी। उसके पांव स्थिर थे, चेहरा सामान्य था ! उसने शराब या ताड़ी नहीं पी थी। पर ये भूली जाने जैसी चीज़ तो नहीं है ? जुगनी ने सोचा। उसे लगा, जैसे सामने वाला जहरसिंह नहीं है !

वह जहरसिंह ही था। जुगनी को विश्वास करना पड़ा। आज वह ताड़ी या शराब की कैद से आजाद था। उसने पांव बड़े विश्वासपूर्वक उठाये और कपड़े

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उतारने लगा।

जुगनी अचरज से उसे देखे जा रही थी। जहरसिंह में बहुत बदल थी। आज उसके हाथ में चमेली का गजरा भी नहीं था। ऐसा कैसे हो सकता है? जुगनी ने सोचा।

"एक गिलास पानी ला!" जहरसिंह ने बात भी सामान्य ढंग से की। जुगनी ने सोच रखा था, आज वह जहरसिंह की हर बात का ऐसा उत्तर देगी, जो उसके प्रति स्पष्ट विद्रोह होगा, पर चाहकर भी जुगनी ऐसा नहीं कर सकी। वह फिर किसी मशीन की तरह उठी। जहरसिंह को पानी लाकर दिया।

जहरसिंह ने गिलास होंठों से लगाया और एक ही बार में खाली कर दिया।

जुगनी का मन नहीं था, जहरसिंह से बात करे, पर जाने कैसे सवाल हो गया—"आज बड़ी जल्दी की?"

"हां! अब मैं हमेशा बखत पे आऊंगा!" जहरसिंह ने बहुत संक्षिप्त-सा जवाब दिया।

क्यों? जुगनी को कुढ़न हुई, जहरसिंह हमेशा ऐसे ही झूठे दिलासे देकर उसका मन जलाता है। आज से नहीं, एक जुग हो गया। "क्यों, चम्पा के यहां नहीं गये?" व्यंग्यपूर्वक उसने दूसरा सवाल कर दिया।

"उस हरामजादी की बात मत कर!" एकाएक ही चिल्ला पड़ा जहरसिंह। इतने जोर से कि जुगनी तो भय से कांप ही उठी। "स्साली!" जहरसिंह बड़बड़ाया। वह दांत चबा रहा था—"प्यार का नाटक मेरे से रचती थी और सनीमा बेदरिया के साथ देखती थी। हरामजादी! कुतिया!"

"क्या?" जुगनी ने सुना। भरोसा नहीं हुआ। उसने टूटते शब्दों में पूछ ही लिया—"कौन के साथ?"

"बेदरिया के साथ।" जहरसिंह उसी तरह नफरत के साथ बोला, "जाने कब से मेल है उससे? आज मैंने अपनी आंखों से देखा।" उसने पुनः दांत भींचे। बोला—"आखिर को परायी औरत है न!" फिर जहरसिंह ने आश्चर्यपूर्वक जुगनी को देखा, कहने लगा—"पर तू काहे को खाली गिलास का बोझ उठाये खड़ी है? जा, गिलास धर आ।"

"अं?" जुगनी जैसे होश में आयी, उसने हाथ के खाली गिलास को देखा और एक गहरी सांस खींचकर उसे धरो चली गयी।

"रोटी बना सपाटे से!" जहरसिंह ने उसे आदेश दिया।

"हां-हां!" जुगनी ने कहा, और फिर काम में उलझ गयी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुंवारी बेटी

पिछली तमाम बार की तरह इस बार फिर हीराशाह लौट आया था। एक-दो लोगों ने पूछा—शाह जी, लड़का तो पसंद आया होगा? तो हीराशाह ने हमेशा की तरह एक बयान दोहरा दिया। उसने थोड़ा नाक-भौं चढ़ायी, मुंह एक खास तरीके से टेढ़ा किया और बोला—क्या लड़का पसंद करें? शानो से एक फुट छोटा पड़ता है। शकल-सूरत भी बिस्मिल्लाह समझो! तिस पर खानदान भी कोई खास नहीं है! मैंने रिश्ते की बात चलायी तो लड़के का बाप बोला—इसकी पढ़ाई में पांच हजार खर्च हुए हैं। खाना-कपड़ा अलग। हीराशाह ने लड़के के बाप की बात पर सम्पादकीय टिप्पणी लगायी—ऐसे घर में लड़की ब्याहूगा? इससे तो जीते-जी गला न घोंट दूंगा इसका! उंह! और फिर वह अपने घर में चला गया।

यह पहला मौका नहीं था जब हीराशाह अपनी बेटी शानो के लिए लड़का देखने गया था और खाली हाथ वापस लौट आया था।

शानो जब सोलहवें साल में लगी तो हीराशाह ने लड़के की खोज प्रारंभ की थी। वह हर दूसरे-तीसरे माह आस-पास के शहर-गांव में लड़के की खोज पर निकल जाता। जाने से पहले जिससे भी बातचीत होती उसे बताता कि वह लड़का देखने जा रहा है। पर, शानो अब चौबीसवां साल पूरा कर रही थी और हीराशाह लड़का अब तक नहीं खोज सका था। इन आठ सालों की खोज के शुरू वाले दो साल सारा मोहल्ला हीराशाह की तारीफ करता रहा। बाप हो तो हीराशाह जैसा कि लड़की के लिए पचास तरह सोचता है। जरा भी किसी तरफ कोर-कसर दिखी कि लड़की को ब्याहने तैयार नहीं है। लड़की के सुख-दुःख की कितनी चिन्ता है? अब तक पचासों लड़के देख चुका। सैकड़ों दरवाजे नाप लिये। पर लड़की के लायक घर नहीं ढूंढ़ सका। हीराशाह ये टिप्पणियां सुनता। गर्व से सीना फुला लेता। कहता, "एक ही तो लड़की है, ऐसे कैसे आंख मूंदकर किसी भी कानी हौज में भेज दूं?"

शानो ने अठारह पूरे किये। हीराशाह की खोज जारी रही। शानो के शरीर का हर कोना देखनेवालों के मन में एक खिंचाव पैदा करता। उसे फिट कपड़े पसंद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आने लगे और आंखों की पुतलियां खास तरीके से हरकतें करने लगीं। पर, हीराशाह अब भी उसे किसी कानी हौज में भेजने को तैयार नहीं था। क्या कारण है ? मोहल्ले की मठाधीश औरतों ने उसे कोसा—ऐसे कब तक खोज करेगा ? लड़की का बदन कैसे फटा पड़ता है ? पुट्ठे कैसे भारी हो गए हैं ? कैसे ठिल्-ठिल् करके हंसती है ? और हीराशाह है कि लड़का ही नहीं मिल रहा इसे ? हीराशाह खीझकर उत्तर देता — लड़की का बदन फटा पड़ता है तो मैं क्या करूं ?

शानो ने बीस साल पूरे किये। हीराशाह अब भी लड़का खोज रहा था। पर लड़का और घर थे कि उसके मन-माफिक नहीं मिले। शानो किसी गलत जगह चली जाय, यह मुमकिन नहीं। हीराशाह ने मेल-मुलाकातियों, शुभचिन्तकों, रिश्तेदारों सबको साफ-साफ कह दिया — शानो घुट-घुटकर भले मर जाय, पर अपने हाथों उसे नरक में नहीं ढकेलूंगा ! और हुआ भी यही। शानो अपने आप में घुलने लगी। टूटने लगी। उसका अंग-प्रत्यंग दर्द करने लगा, पर हीराशाह था कि नहीं पिघला तो नहीं ही पिघला। साल, दो साल, पूरे तीन साल गुजरे। शानो पूरे चौबीस साल में शुरू हो गई, पर हीराशाह की खोज ज्यों की त्यों चालू रही। मोहल्ले में तरह-तरह की टीका-टिप्पणियां होने लगी थीं। हीराशाह के बारे में हर आदमी ने अलग-अलग धारणाएं बना ली थीं। भूले-भटके इन चर्चाओं की भनक हीराशाह के कानों में भी आती। एक दिन उसने मुझसे कहा था—"अब आप ही सोचिए, भरमर सा'ब ! कैसे लड़की को भैंस जैसी हकाल दूं ? बाप हूं, कोई कसाई नहीं ! मेरे कलेजे का खून है शानो !" बोलते-बोलते उसकी आवाज ऐसे भर आयी थी, जैसे उसके गले में कुछ अटका हुआ हो। "मेरी घरवाली शानो को डेढ़ साल की छोड़कर मरी थी। तब से मैंने उसे मां और बाप दोनों का ही प्यार दिया है। इसकी खातिर मैंने दूसरी शादी नहीं की। और तमाम जवानी लापरवाही से गुजार दी। यह जरा उदास हुई है तो मेरा रंग पीला पड़ गया है। ऐसे कैसे बिना समझे-बूझे पराए घर भेज दी जाय ?"

मैंने उसे सांत्वना दी थी और हीराशाह इस सांत्वना से और भारी हो गया था, जैसे देर तक रोता रहा हो। "इन मोहल्लेवालों का क्या ? साले ! जी चाहा बकते हैं ! उस परमानन्द ने अपनी छोकरी एक बार की तलाश से ही, एक के घर ले जाकर बांध दी, और अब जब वह लड़का शराबी-कबाबी निकल गया है तो साला परमानन्द सिर पीटता है !" कुछ रुककर हीराशाह ने निश्चयात्मक स्वर में कहा था—"मगर मैं ऐसा नहीं कर सकता। शानो को जिस घर में भेजूंगा, वह घर स्वर्ग होगा, स्वर्ग।" फिर वह चला गया था।

शानो अब सचमुच ही बहुत परेशान रहने लगी थी। उसके चेहरे से क्रमशः चमक उड़ने लगी और उसके स्थान पर एक ऐसा फीकापन उभरने लगा था, जिसमें गहन गंभीरता छिपी हुई थी। लगता था, जैसे कोई पीड़ा है जो भीतर-ही-भीतर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घनी होती जा रही है, और जिसमें शानो डूब गयी है। हीराशाह स्वयं शानो के इस परिवर्तन पर आश्चर्य प्रकट करता। वह बहुत चिन्तित था, किन्तु न जाने ऐसी कौन-सी लाचारी थी जो हमेशा ही लड़के की पसंद में आड़े आ जाती।

एक दिन हीराशाह को भगत जी ने समझाया। कहने लगे—"शाह जी! शानो को अब अधिक मत सताओ। उसके हाथ पीले कर दो, उमर चढ़ती जा रही है।"

उत्तर में हीराशाह ने वही पुराना रोना रोया—"ऐसे कैसे लड़की को कुएं में धकेल दूं? कानी हौज में भेज दूं? बाप हूं, कोई कसाई नहीं! मेरे कलेजे का टुकड़ा है शानो!"

"ये तो सब ठीक है।" भगत जी बोले, "पर शानो की उमर का भी तो कुछ ख़याल करो। अभी नहीं ब्याही तो बुढ़ापे में ब्याहोगे क्या, जब वह तुम्हारी उमर पर आ जायेगी?"

हीराशाह निरुत्तर हुआ।

भगत जी पूरी तरह उपदेश देने के मूड में आ गए थे। कहने लगे—"शाहजी, उमर बुरी चीज़ है! शानो की तरफ से यों ही टाल-मटोल करते रहे तो चरका देके उड़ जायेगी किसी दिन?"

हीराशाह, खानदानी आदमी! बिजली की तरह तड़पकर उठ खड़ा हुआ। गरजकर बोला—"भगत! उड़े तेरी मां-बहन! तेरी बेटी! शानो मेरा खून है, किसी ऐरे-गैरे का नहीं!"

हीराशाह के गरजने से भगत जी सहम गए। हीराशाह बोला—"तुम होते कौन हो मुझे सलाह देने वाले? सारे जमाने का ठका ले रखा है क्या तुमने?" फिर उसने स्वर पंचम से नीचे उतारा, "आज कहा सो कहा, ठीक है। आगे से कभी ऐसी हिम्मत की तो ठीक नहीं होगा, हां!" फिर वह चला गया।

किन्तु यह घटना नयी नहीं थी। हीराशाह से आए दिन यही घटनाएं होतीं। हीराशाह गरजता। अल्टीमेटम देता। पर लोग थे कि मानते ही नहीं। वे अकसर उसे उकसाते। वह शोर मचाता। मुसकराकर चुप हो जाते। हीराशाह बड़बड़ाता हुआ चला जाता।

इधर कुछ दिनों से हीराशाह के स्वभाव में चिड़चिड़ाहट आ गयी थी। वह जरा-जरा-सी बात पर झल्ला उठता। गालियां बकने लगता। एक दफा पड़ोस के दो-तीन व्यक्ति किसी डेलीगेशन की शक्ल में मेरे यहां आए। वे सभी हीराशाह को लेकर तरह-तरह की बातें करने लगे। हरचरण जोशी का, जो मेरे और हीराशाह के मकान के बीचोंबीच रहते थे, कहना था कि हीराशाह शानो को पीटता भी है। उन्होंने कहा—"ये पिटाई एक दिन नहीं, तमाम दिनों से चल रही है। मेरे मकान और हीराशाह के मकान की दीवार एक ही है। रात को जब सोने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का समय होता है, हीराशाह और शानो झगड़ा शुरू करते हैं। शानो दबी-दबी आवाज में रो-रोकर हीराशाह के प्रति विरोध प्रकट करती है और हीराशाह उसे पीटता है। गालियां बकता है।" जोशी ने बात में मोड़ डाला—"भई भरमर सा'ब ! अब तो बहुत हो चुका। इच्छा होती है, हीराशाह को सरेआम खड़ा कर जूते लगाए जायें ! लड़की पर इतना अत्याचार कर रहा है कि सारा मोहल्ला आतंकित हो गया है।"

"मगर वह लड़का भी तो ढूढ़ रहा है, उसके लिए ?" मैंने कहा।

जोशी ने फौरन विरोध किया—"ढूंढ़ चुका लड़का ! आठ साल से तो देख रहे हैं ! वह लड़का ढूंढ़ रहा है। पर अब तक एक भी लड़का नहीं मिला उसे ? समझ में नहीं आता साला ऐसा कैसा लड़का ढूंढ़ रहा है ?"

मैं चुप हो गया।

जोशी बोला—"मुझे तो ऐसा लगता है, वह लड़की की शादी ही नहीं करना चाहता। लड़कों की कोई कमी है हिन्दुस्तान में ? चालीस करोड़ आदमी हैं ! सारे के सारे शादीशुदा थोड़े हैं ?"

यह बात जोशी ने काफी गंभीरतापूर्वक कही, किन्तु मुझे हंसी आ गई।

वह कह रहा था—"अब तक हीराशाह कम-से-कम डेढ़ हजार घर देख चुका। पर उसको कोई लड़का ही नहीं समझ में आया ! कभी कहता है, लड़का शानो के रंग से मेल नहीं खाता, कभी कहता है वह ठिगना है। कभी लड़का बेहद ऊंचा निकल जाता है तो कभी उसका खानदान हल्का होता है। मेरी समझ में नहीं आता···" खीझकर जोशी बोला—"···हीराशाह लड़की के लिए लड़का ढूंढ़ रहा है या मिलिटरी के लिए सिपाही भरती कर रहा है ?"

"शानो को मारने का कारण मेरी समझ में नहीं आता ?" मैंने कहा तो जोशी ने फौरन उत्तर दिया—"देखिए, सा'ब ! शानो जवान है, खूबसूरत है। उसकी उमर भी चढ़ रही है। तमाम शहर के लौंडे चक्कर लगाते हैं। हीराशाह ने कोई गड़बड़ देखी होगी तो मारपीट कर दी। बाहरवालों पर तो बस चलता नहीं, लड़की पर जुल्म करता है।"

मैं चुप रहा तो जोशी ने विचार प्रकट किया—"उसका क्या कुसूर ? इसके लिए तो खुद हीराशाह जिम्मेदार है। उसे खुद समझना चाहिए कि लड़की बहुत जवान हो गई है। एकाध अच्छा छोकरा देखे और उसके हाथ पीले कर दे। अपनी इज्जत बचाए। लीजिए, हो गया झगड़ा खतम !" जोशी ने यह बात कुछ इस ढंग से कही, और समस्या यों जल्दी से सुलझायी जैसे साबुन से हाथ धो लिये हों !

एक घटना तो मुझे भी ऐसी सुनने में आयी कि मुझे भी यों लगने लगा, जैसे हीराशाह का सचमुच दिमाग खराब हो गया है।

जोशी ने बताया—"अभी पिछले साल हीराशाह इलाहाबाद में एक लड़का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देख आया था। लड़केवाले, उनका खानदान, लड़का सभी कुछ हीराशाह को पसंद आए थे, पर लड़के को उसने इस बात पर रिजेक्ट कर दिया कि उसके दांत बहुत पीले थे। कहने लगा—'जो लड़का दांतों की फिकर नहीं रखता वह शानो की फिकर क्या रखेगा?' और चला आया। मुझे भी लगा, जैसे हीराशाह पागल हो गया है।

कुछ लोगों का ख़याल था कि हीराशाह बेहद कंजूस है, और वह शानो का ब्याह सिर्फ खर्च के भय से नहीं करना चाहता। कुछ लोग अब तक हीराशाह के बारे में मेरी तरह अपना मत निश्चित नहीं कर सके थे; जबकि कुछ लोग हीराशाह और शानो के चरित्र को लेकर गंदे-गंदे विचार प्रकट करते हुए पाए जाते थे। पर हीराशाह जिस तरह पिछले आठ सालों से शानो के लिए दौड़-धूप करता रहा था, यह सोचकर किसी भी मत पर विश्वास नहीं किया जा सकता था।

जोशी के कथन के बाद यह बात मैंने अनेक लोगों के मुंह से सुनी कि हीराशाह अपनी जवान लड़की को बहुत पीटता है। यह विचार भी अजीब-सा लगता था। एक दिन स्वयं हीराशाह ने ही मुझे बताया था कि वह, यदि शानो का चेहरा जरा उदास हो तो, खुद पीला पड़ जाता है। ऐसा हीराशाह अपनी लड़की को कैसे मार सकता है? विश्वास भी नहीं होता था। जो भी हो, हीराशाह और उसके क्रिया-कलाप एकदम अजूबा थे और वह केवल मेरे लिए नहीं तमाम लोगों के लिए प्रश्नवाचक चिह्न की तरह एक अनसुलझा सवाल बना हुआ था।

इस गुत्थी ने जो एक रहस्य बनी हुई थी, हीराशाह के सामाजिक जीवन में भी एक कटुता घोल दी थी। लोग उससे घृणा करते। यों नमस्कार-चमत्कार तो होती रहती थी पर विशेष बातचीत न होती। यदि किसी तरह बातचीत बढ़ भी जाती तो उसमें रस न होता। इसके विपरीत तमाम संवादों पर एक अजीब-सी गंभीरता लिपटी रहती। बात करनेवालों को लगता, जैसे हीराशाह कुछ छिपा रहा है और हीराशाह अनुभव करता, जैसे सामनेवाले के मन में बहुत कुछ भरा हुआ है जो उसने छिपा रखा है।

शानो ने भी कोई बात नहीं उगली। कुछ औरतों ने उससे भेद निकालना भी चाहा किंतु दो-चार तरह की बात कर वे जब मुद्दे तक चर्चा खींच लायीं तो शानो साफ बात चुरा गई। उसने टालमटोल कर दी।

हीराशाह अब भी प्रश्नवाचक था।

उस दिन बड़ी विचित्र घटना हुई। गर्मियों के दिन थे। रात के करीब सवा या साढ़े नौ का समय हुआ होगा। विष्णु मन्दिर का पुजारी गणेशराम भगवान को शयन कराकर घर की ओर लौट रहा था, और मैं एक-दो मित्रों के साथ सेकंड शो देखने की तैयारी कर बरामदे में निकला ही था कि सामने से शानो बेतहाशा दौड़ती आयी—"बचाओ! बचाओ!" वह चीख रही थी, "ये मुझे मार डालेगा!"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हम लोग स्तब्ध रह गए। रास्ते पर जा रहा गणेशराम चौंककर पलटा और हमारे पास आ गया। अब शानो बरामदे में आ गयी थी। उसी तरह अपने घर की ओर संकेत करती हुई, वह चीख रही थी—"मुझे उससे बचाओ···वह मुझे मार डालेगा!" और फिर उसने हिचकियां भर-भरकर रोना प्रारंभ कर दिया। धरती पर बैठ गयी।

यह सारी घटना ऐसे एकाएक घटी कि हम लोग कुछ कहना तो दूर, सोच भी नहीं पा रहे थे।

"क्या बात है?" गणेशराम ने पूछा।

शानो ने रोते हुए अपना सिर उठाया और सामने की ओर देखते ही पहले की तरह चीख उठी—"मुझे उससे बचाओ!"

हमने लौटकर देखा, सामने से हीराशाह इसी ओर दौड़ता आ रहा था। उसके हाथ में छड़ी थी शायद।

मामला समझ में नहीं आया था, फिर भी शानो की रुलाई और हीराशाह के हाथवाली छड़ी ने एक बात तो स्पष्ट की ही—हीराशाह उसे मार रहा था और शानो बचाव के लिए घर से भाग निकली थी।

हीराशाह पास आ गया।

हम लोग उसके और शानो के बीच यों तनकर खड़े हो गए जैसे हीराशाह को शानो के पास तक पहुंचने के लिए एक पहाड़ लांघना होगा। गणेशराम ने जिसका शरीर देखने में काफी शक्तिशाली लगता था, कड़कती आवाज में पूछा—"क्या बात है?"

हीराशाह ने जलती दृष्टि से उसे और फिर हम सभी को घूरा। जाहिर था, उसे शानो और उसके बीच में हमारी यह दखलन्दाजी पसंद नहीं आयी थी। कठोर स्वर में बोला—"तुम अलग रहो।" उसने सीधे शानो को आवाज दी—"घर चल!"

"मैं नहीं जाऊंगी!" रोते हुए शानो ने कह दिया।

"क्या मामला है?" गणेशराम फिर बोला। उसने हीराशाह की डांट की परवाह नहीं की, "तू इसे क्यों मार रहा है?"

हीराशाह ने उसे फिर घूरा, इस तरह जैसे वह अभी ही उसका खून कर देगा। गणेशराम के प्रश्न की उपेक्षा कर उसने फिर शानो को आज्ञा दी—"सीधी घर चल!"

शानो रोती रही। हीराशाह के आदेश ने उसकी रुलाई का स्वर और बढ़ा दिया, किन्तु वह वहां से नहीं हटी।

गणेशराम से नहीं रहा गया। वह एक कदम आगे बढ़ा और हीराशाह के अधिक पास पहुंच गया। बोला—"तू क्यों मार रहा है इसे?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"तुम्हें मतलब ?" हीराशाह गुर्राया और इससे पूर्व कि वह और कुछ कहे, पीछे से शानो बोलने लगी—"मैं बताती हूं, पुजारी महाराज ! अब तक बहुत चुप रही पर अब नहीं सहा जाता।" बोलते-बोलते शानो ने कुछ हिचकियां लीं, तो हीराशाह चिल्लाया—'चुप रह !"

"नहीं रहूंगी !" गरजकर शानो बोली—"आठ साल चुप रही हूं, अब नहीं रहूंगी, भले तू मुझे मार डालना !" रुलाई संभालने का असफल प्रयत्न करते हुए वह कहे गई—"पुजारी महाराज ! ये मुझे हर तरह परेशान करता है। मुझे रंगबिरंगी साड़ियां पहनाता है, जो कभी मां पहनती रही होगी। ये मुझ कुंवारी से मांग भरवाता है। टिकी-बेंदी करवाकर घंटों सामने बैठी रहने को कहता है !"

हम लोग अब भी उलझन में थे। हीराशाह का चेहरा इस तरह सूखकर खून से खाली दीखने लगा, जैसे वह बहुत बीमार रहा हो।

शानो कह रही थी—"अब मुझसे नहीं सहा जाता !" उसने हीराशाह की ओर संकेत किया—"मेरा तरह-तरह से शृंगार करवाकर ये मुझे देखता है ! घंटों देखता रहता है !" उसने रोते हुए ही अपनी बात पूरी की—"तुम ही सोचो, पुजारी महाराज ! मेरा चेहरा एकदम मेरी मां जैसा है, ये मेरा कसूर है क्या ?"

हीराशाह ने गर्दन झुका ली। उसके हाथ से छड़ी छूटकर गिर पड़ी। वह बगैर कुछ कहे वापस लौट पड़ा। मैंने देखा, उसकी चाल में ऐसा ढीलापन था, जैसे जीवन नाम की कोई चीज़ शेष नहीं हो उसमें।

१९६४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बोझ

घर में चौतरफा शोर था। भागवती की बिटिया की बारात आयी थी। एक के बाद एक रस्म-अदायगी हो रही थी।

दरवाजे की कुंडी चढ़ाकर भागवती ने एक गहरी और बोझिल-सी सांस ली। कमरे में दो-तीन बार नजरें घुमा लीं, और जब उसे पूर्ण विश्वास हो गया कि कोई नहीं है, तब कहीं उसने ट्रंक खोला।

ट्रंक ही क्या, कमरे का हर सामान और कमरा हालांकि भागवती का ही था, फिर भी वह इस कमरे में किसी चोर की तरह घुसी। ट्रंक खोलते ही उसके हाथ कांपे। तमाम बदन में कुछ कंपकंपाहट-सी हुई, जैसे वह कोई चोरी कर रही हो। फिर जब उसने सामान निकालकर हाथ में लिया, तब तो उसके सीनें में जोर-जोर से धड़कन होने लगी, ठीक कुछ वैसे ही जैसे किसी ट्रेन के प्लेटफार्म पर पहुंचने पर होती है।

भागवती ने उस सामान को धरती पर रखा—चमचमाती सलमा-सितारे टंकी ओढ़नी, साटन का फूलों टंका लहंगा, गोटे की पट्टी टंकी अंगिया और कुछ गहने थे।

धरती पर कुल सामान बिखराकर एक क्षण तक भागवती उसे देखती रही। सुहाग-जोड़े से उसकी नजर कंगनों पर फिसली, कंगनों से पायलों पर और फिर पायलों से बिछुओं पर···देर तक भागवती की भूखी-सी आंखें, अदल-बदलकर एक-एक चीज़ पर टिकती-फिसलती रहीं। और फिर एकाएक ही उसके अन्तर में कोई हूक-सी उठी—ये गहने, सुहाग-जोड़ा, बिछुए—सब कुछ तेरा है!···और भागवती का मन हुआ कि सब कुछ पहनकर सज जाए!

भागवती ने एक बार फिर कमरे में चौतरफा दृष्टि घुमा-फिरा ली। बाहर शोर उठ रहा था। पर यहां कोई न था। उसकी फिर इच्छा हुई कि पहन डाले!

उसके मन में आया कि पुरानी धोती उतार दे, जिस पर सिकुड़नें पड़ी थीं और गंदगी की पर्तें चढ़ी हुई थीं। बिखरे बालों को संवारे, जो कई दिनों से तेल न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पड़ने के कारण रूखे-रूखे, मिल से छूटे मजदूरों के चेहरे की तरह उदास-उदास दीखने लगे थे, और किसी पुरानी पगडंडी की तरह ऊबड़-खाबड़ पड़ी मांग में सिन्दूर भरकर सामने टंगे शीशे को जी भरकर चिढ़ाए, जो पिछले सोलह सालों से उसे देख-देखकर हंसता रहा था।

फिर न जाने क्या हुआ कि सोचते-सोचते भागवती की आंख से एक आंसू ढुलककर नीचे रखे बिछुए पर जा गिरा। जल्दी से भागवती ने अपनी गंदी धोती के पल्लू को आंखों तक ले जाकर दर्द की बंद पोटली के फटे स्थान पर एक जोड़ लगा दिया। पर मन का क्या करे भागवती, जो गए सोलह सालों की यादों ने गला-गलाकर फौलाद से मोम बना दिया था और अब पानी की तरह वह निकलना चाहता था! भागवती की एक बार फिर इच्छा हुई—वह जोड़ा पहने, बिछुए उंगलियों में डाले और उन्हें झनझनाती हुई सारे कमरे में घूम ले, उसी तरह, जैसे सोलह साल पहले वह तमाम घर, गांव और पनघट तक पायल झनझनाती घूमती थी। यह सोचकर भागवती को लगा, जैसे कमरे के हर कोने से वह झनझनाहट उभर रही है।

उधर--जहां कमरे का दरवाजा बन्द है, एक चरमराहट-सी होती है, बड़ी चिरपरिचित-सी ···जीवा आ रहा है। ऊंचा पूरा शरीर, गोल-गोल टकऊए-सी आंखें, और बदन जैसे किसी सांचे से गढ़ी मूरत हाल भट्ठी से बाहर हो आयी हो।

हर रोज जीवा को यों आते देखकर भागवती की इच्छा होती थी, एक मुट्ठी मिर्च उसके सिर के चारों ओर घुमाए और उन्हें घर-चूल्हे में झोंक दे। वह दिन भर घर से बाहर डोलता रहता था। हारू खेत, कुआं, बावड़ी—न जाने कहां-कहां? राम जाने कौन जोग-जोगनी की नजर लगी हो? किस अभागिन की हाय लगे?··· पर सोच-सोचकर रह जाती भागवती--यह सब न कर पाती वह। और तो और, उसने महीनों अपनी यह इच्छा जीवा पर प्रकट तक न होने दी थी। वह जानती थी, जीवा ऐसा ही धुर्री आदमी है, सुनकर हंस देगा और कहेगा, 'तू तो जों ही है!'···पर भागवती का मन नहीं माना था, और एक दिन उसने कह ही डाला था -"तुम तो कुआं, खेत और बावड़ी, न जाने कहां-कहां घूमते हो ···नजर उतरवा लिया करो!"

जीवा हंस दिया था, जैसे किसी ढोलक को बच्चे ने मिसमिसाकर पीट डाला हो। उसने कहा था—"तू तो जों ही है। कोई बारा-क्वांरा हूं के नजर लगेगी मुझे? चल! सिरिन!"

"ए सच्ची जानो," यह सुन भागवती बोली थी। उसे अचरज होता कि उस का घरवाला जीवा कैसा नास्तिक है, जो वह पुरखों की बताई बातें नहीं मानता? वह फिर दोहराती—"कुएं और बावड़ियों में भूत-प्रेत रहते हैं। इस गांव की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लुगाइयां कौन चुड़ैलों से कम हैं? तमाम तिरलोक की दौड़ी-घूमी हैं। इनकी अभागी आंख कौन बचाए?"

जीवा और जोर से हंसता, जैसे खूब जोर से झरझराकर खेतों में पानी गिरा हो।···भागवती यों शरमा जाती, जैसे फसलों को एक तीखी हवा चूमती हुई निकली हो। "हाय राम! तुम तो मानते ही नहीं?" वह जिद करती।

जीवा की हंसी बंद होती। वह कुछ घूरकर टकटकी बांधे भागवती को देखने लगता, ऐसे कि भागवती लजा जाती। उसे लगता—जीवा की आंखें उसके तमाम शरीर पर रेंग रही हैं, और कपड़ों के भीतर भी बदन का हर कोना गुदगुदा उठा है।

जीवा शरारत के साथ कहता—"हां! मुझे नजर लगी है।" भागवती घबरा कर गर्दन उठाए ऊपर देखती, जैसे पूछ रही हो—"कौन अभागन की?"···जीवा कह देता—"तेरी।"

"हट!" भागवती नयी-नवेली दुलहन की तरह लजा जाती, हालांकि उसका ब्याह हुए बरस बीत गया था।

दर्द की पुरानी पोटली में फिर कहीं से छेद हो गया है। पल्लू फिर आंखों की कोरों पर घूमता है। एक जोड़ और···

गहनों की बड़ी मोहिन है भागवती। कभी रीते बदन नहीं घूमती। जीवा कहता था—"जाने तू सोने में मढ़ी पैदा हुई थी कि पीछले जनम तुझे दरसन को जेवर नहीं मिले। हरदम बदन पर गहने लादे रहती है, तुझे बोझ नहीं लगता?"

भागवती को जीवा के तानों से दुःख होता, पर ये गहने वह कैसे न पहना करे? ये कंगन कितने भले हैं? पायल कैसे हंसती है?···क्यों उतार दे इन्हें? भागवती जीवा की हर बात बर्दाश्त कर लेती है। पर गहने उतारने को उसका मन नहीं करता।

फिर एक दिन उसे ये गहने उतारने पड़े थे।···सोचते-सोचते सिहर गई भागवती। उसके मन पर एक बिजली-सी कौंध गई। वैसी ही कौंध, जैसी अब से पहले, पूरे सोलह साल पहले कौंधी थी।

यह कमरा, हर रोज की तरह भागवती गहने लादे मौजूद। अभी दरवाजे पर चरमराहट होगी और फिर चमरौधी पन्हइयां (जूते) डाटे जीवा आएगा!··· वह कहेगा—'तू सोने में मढ़ी पैदा हुई थी कि पीछले जनम तुझे दरसन को जेवर नहीं मिले, जो हरदम बदन पर लादे रहती है। तुझे बोझ नहीं लगता?'

बस! भागवती हर जगह जीवा की नाराजगी का खयाल रखती है, पर गहनों की बात ऐसी है, जहां वह अकसर बर्दाश्त नहीं कर पाती। ये कंगन, हर कदम के साथ गीतों-सी बहने वाली पायल···यह माथे का झूमर···गले की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हंसली···? बोझ लगता है तो भागवती को, जीवा यों ही चिड़चिड़ाता है ! रात को खेतों की फसल में कोई परगांव का जनावर घुसा होगा, और गुस्सा औरत के जेवरों पर उतरेगा !···वह जेवर नहीं उतारेगी ! जीवा जो चाहे कर ले !

भागवती के कान चमरौधे जूते की चरमराहट सुनने को हर पल व्याकुल हैं —आज बड़ी देर करी जीवा ने ! कहीं आल्हा सुनने लगा होगा, इस बरसात में गांव के हर मुहल्ले-चबूतरे पर आल्हा चलता है। और हर घर औरत जगती है। भागवती को लगता है, जैसे आल्हा सुहाग के शृंगार और गहनों का भारी दुश्मन है। सांप से भी बुरा।

नीचे कहीं से शोर उठ रहा है। भागवती दांत पीस लेती है। उसे जीवा पर क्रोध आ रहा है—ऐसे मर्द से भी धाए ! आल्हा से जोश खाकर कहीं दस-पांच मर्द चीख रहे होंगे ! जीवा भी कमबख्त उन्हीं में जा ठंसा।

शोर उठ रहा है, जोर से उठ रहा है।

भागवती मन-ही-मन कहती है—'देखूं तो सही, लगता है चौधरी के यहां भांग छनी है। जे नसे-पत्ते की भी हद करते हैं मरद लोग !'

भागवती चबूतरे पर आ गई।

उसने देखा, कुछ लोग उसके दरवाजे ही आ रहे हैं। वह सोचती है—आज कोई ननद-जिठानी होती तो यों बे-लाज होकर उसे काहे को सबके सामने आना पड़ता ?

"का है ?" तुनुककर भागवती भीड़ के सामने पहुंच जाती है। धुंधलका है सो कुछ खास सूझता नहीं। भीड़ पास आ गई। कोई पुरुष है, जिसे बहुत-से लोग अधर उठाए ला रहे हैं। भागवती चीखती है—"का हुआ उसे ?"

"सांप ने खा लिया !"

जीवा धरती पर शांत पड़ा है। उसके कपड़े, चरमराने वाली चमरौधी पन्हइयां···सब कीच से लिपटे हुए हैं। मुंह से फेन निकलकर शांत हो गया है। घबराहट में भागवती रो भी नहीं पा रही। वह भाग-दौड़कर जीवा के बदन पर चौतरफा हाथ फेरती है—मुंह, आंख, नाक और कान···जे हिलता-डुलता क्यों नहीं···

"अभी हाट जाते मुझे गेल (रास्ते) में मिला था !" भीड़ में चर्चा उठ रही है—"सवेरे तो मेरे झां से चिलम पी गया था ! कहता था—अब लौट के रात को पीऊंगा !"

जीवा मर गया !

देर से जी थामे रही भागवती फफक-फफककर रो उठी। न जाने कितनी बार उसने जीवा के मृत शरीर पर सिर पटका !

धीरे-धीरे भीड़ कम हुई। गांव और पास-पड़ोस की औरतें आयीं। वे भागवती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को भीतर कमरे में ले गईं। उन्होंने तरह-तरह से उसे सांत्वना दी। फिर धरती पर उसकी कलाइयां धरकर, पत्थर से उसकी चूड़ियां फोड़ी गईं। कंगन उतारे गए। हमेशा हंसने वाली पायलें, माथे का झूमर···गले की हंसली···बिछुए··· और वह सब कुछ जिन्हें उतारने की रट लगाए रहता था जीवा। जिन गहनों को पहनती भागवती थी और बोझ जीवा को लगता था।

उसके बदन से गहने उतार दिए गए। इसके बावजूद जाने क्यों वह हल्की नहीं हो पा रही थी! कोई अनजान-सा बोझ उसके मन, दिमाग और शरीर पर चढ़ गया था। और तब से यह बोझ जो गहनों से न जाने कितना भारी था, उस पर अब तक चढ़ा रहा था।

अब जब भागवती ने इन गहनों को देखा, सुहाग-जोड़े पर दृष्टि डाली, तब उसके मन का बोझ कई सौ गुना बढ़ गया।

न जाने कहां-कहां से यादें आ-आकर उसकी स्मृतियों के सूखे पौधे को हरियाने लगीं। धरती पर रखा माथे का झूमर देखकर उसे यों लगा, जैसे वह उसके सूने माथे को चिढ़ा रहा है। एक क्षण को उसने यहां तक महसूस किया, जैसे झूमर उसके माथे पर झूलने लगा है···और सिलसिले में उसे फिर जीवा की याद हो आयी। यों लगा, जैसे वह सामने खड़ा हुआ भागवती के चेहरे को ऊपर उठाकर झूमर और हिला देता है। सामने वाली खाली दीवार देखी भागवती ने। उसे लगा, जैसे एक स्त्री और पुरुष की परछाइयां उभर आयी हैं। सोचते-सोचते भागवती को उस दिन की घटना याद हो आयी।

जीवा उस दिन हाट से थका-मांदा लौटा था, और भागवती पड़ोस के घर में हो रही शादी के बुलावे से गीत गाकर सजी-धजी लौटी थी। जीवा के सामने से इसी जगह होकर जब वह गुजरी तब चारपाई पर आराम से सुस्ता रहे जीवा ने थकान पुराने कपड़े की तरह उतारकर एक ओर फेंकी, फुर्ती से उसके सामने आया और अगल-बगल, खिड़की-दरवाजों की चिन्ता किए बगैर भागवती का चेहरा, ठोड़ी पर हाथ लगाकर उठाते हुए बोला--"आज तू और दिन से अधिक जंच रही है!"

यों जीवा उसका घरवाला था, सब कुछ था। मन से शरीर तक उसका अधिकार था, किन्तु लोक-लाज, मान-मरजाद भी तो कोई चीज़ होती है? भागवती को उसकी ढिठाई अच्छी नहीं लगी थी। उसने रूठने के-से स्वर में कह दिया था—"परे हो! तुम्हें बड़े-बूढ़ों की मान-मरजादा की फिकर नहीं! यह ठिठोली मुझे नहीं सुहाती!"

जीवा पर उसकी बात का जरा भी असर नहीं हुआ था। वह ज्यों का त्यों अड़ा रहा था। भागवती के माथे पर हिलते झूमर को उसने और हिला दिया था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भागवती कहने को तो कह गई, पर भीतर से उसे जीवा की यह हरकत अच्छी लगी थी। उसके बदन में अजीब-सी स्फूर्ति और रोओं में सिरहन भर गई थी। मन हुआ था, कैसा अच्छा रहे अगले सात जनम जीवा यों ही उसकी ठोड़ी उठाए हंसता हुआ उसे शरमाता रहे। अनुभूति के इन मादक क्षणों में भी भागवती ने जीवा से रूठने का अभिनय किया था। वह लोक-लाज की चिन्ता रखती थी। बड़े फुसफुसाते स्वर में बोली थी—"छोड़ो भी।"···उसने अपनी शक्ति से बदन हिलाया था कि जीवा से छूट जाए···उसके मुंह से शब्द बहे थे, जैसे लाज में डूबे वे उस कमरे में कहीं आड़ ढूंढ रहे हों। बोली—"दूर-दूर के पाहुने गांव में आए हैं, और तुम घरघुसे बन रहे हो, बाहर चौपाल पर जाओ ! बिरादरी की पंचायत जुड़ी है।"

जीवा टस-से-मस न हुआ। उसने भागवती की बात हवा में उड़ा दी। वह कहने लगा—"तूने बांधके बिठाल लिया है। अब सारा गांव-बिरादरी घर-घुसा कहके हंसी उडाए, तो भी कौन फिकर पड़ी है मुझे ?"···उसने भागवती का चेहरा ज्यों-का-त्यों उठाए रखा। भागवती की हिम्मत न हुई, जीवा की आंख से आंख मिलाए। जाने कौन-सा चोर समा गया था मन में कि जी धक्-धक् कर उठा। यों ही संकोच में डूबी भागवती ने एक बार और प्रयत्न किया कि छूट जाए तो सामने की खाली दीवार पर उसकी आंखें जा टिकीं। दीए की मंदी रोशनी में उस पर दो परछाइयां उभर आयी थीं पास-पास।

"अरे, छोड़ो !" भागवती ने फिर जिद की थी।

जीवा बोला—"तू तो राई गांव की गूजरी है। छूट जा मेरे हाथ से !" उस के चेहरे पर मुसकान थी। भागवती ने एक बार साहस किया, आंख-से-आंख मिलाई तो लगा, जैसे जीवा की यह पकड़ शारीरिक ही नहीं, आत्मा की पकड़ है। एक कैद है, जिससे भागवती कभी नहीं छूट सकी। जीवा ने उसे मन में कैद कर लिया है, उसकी आंखें और बलिष्ठ भुजाएं उसके इर्द-गिर्द एक सींखचे की तरह रखी हुई हैं। वह इस कैद से कभी नहीं छूट पाएगी !···कभी नहीं !···और आज ···? वह सींखचा टूट गया है···! जीवा की आंखों और बलिष्ठ हाथों ने उसका साथ छोड़ दिया है। कितनी ही बार मन होता है भागवती का कि वे भारी-भारी रोओं वाले शक्तिशाली हाथ एक बार···सिर्फ एक बार उसे कस लें। उसकी ठोड़ी ऊपर उठाकर जीवा की आंखें फिर शरारत से हंसें···उसके दाएं हाथ की उंगली उठे और माथे का झूमर नाच उठे। एक बार फिर सामने वाली नंगी दीवार पर कुछ परछाइयां उभर आयीं—वैसी ही नजदीक।

पर यह सब बीत गया है। एक अर्सा हुआ, खाली दीवार की वे परछाइयां गायब हो गई हैं, यह सब सोचते-सोचते भागवती ने एक ठंडी-गहरी उसांस भरी और व्यथा का एक अदृश्य धुआं बाहर छोड़ दिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संदूक से निकाले गए गहने और कपड़े धरती पर रखे हुए थे। ज्यों-ज्यों भागवती उस ओर देखती, बोझ बढ़ता, यादें घनी होतीं। भागवती ने बड़े निर्मोह से वह तमाम सामान एक पोटली में बांधा, सुहाग-जोड़ा हाथ में लिया और बन्द दरवाजे की कुंडी खोलकर कमरे से बाहर आयी। वह उस कमरे में गई, जहां दुल्हन का सिंगार हो रहा था। गहनों की पोटली और सुहाग का जोड़ा सिंगार करने वाली औरतों की ओर फेंककर वह वापस चली गई। बाहर काम बहुत हो रहा था और हर बात पर उसी के लिए टेर होती थी।

मंडप के किनारे आकर अनचाहे ही रुक गई वह। एक याद फिर उभरी। ऐसे ही किसी मंडप में एक दफा जीवा आ बैठा था। फिर थोड़ी देर बाद ही सुहाग-जोड़ा और गहने पहने भागवती को लाया गया था। वह बहुत सकुचाती-सकुचाती वेदी की ओर बढ़ी थी। नये कपड़ों में संकोच का बोझ भी शामिल था। वेदी की ओर बढ़ते हुए उसके पांव लटपटाए थे।

भागवती ने बगल वाले कमरे के दरवाजे की ओर देखा—उसकी बिटिया आ रही थी। सुहाग-जोड़े और गहनों के साथ लज्जा का बोझ उठाए···! रह-रह कर उसके भी पांव लटपटाते थे। चौतरफा से गांव की सुहागन औरतें और अल्हड़ कन्याएं उसके साथ आ रही थीं।

भागवती ने जी भरकर देखा। वही सुहाग-जोड़ा, पायल, झूमर, कंगन··· सब कुछ वही। न जाने क्या बात थी कि जब-जब वह उस ओर देखती, उसे लगता जैसे वह बोझ जो पिछले सोलह सालों से उस पर लगातार चढ़ा जा रहा था, धीरे-धीरे उतरता जा रहा है·····वह हल्की होती जा रही है, बहुत हल्की।

फेरे पड़े। भागवती का बोझ उतर गया। उसका मन हुआ—हंसे, रोए··· और फिर हंसे, फिर रोए।

१९६४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नया कर्ज

यों दिखने में बदन कमजोर नहीं था रुकमिन का। पर रोज के दस-बारह कंडे थापने में ही उसके हाथ-पांव भर आते। उम्र भी ऐसी खास नहीं थी। गई पूनो ही उसने पैंतीस पार किए थे, पर भर जवानी के वैधव्य ने उसे बुढ़ापे की उम्र से बहुत पहले ही, बुढ़ापे की देहरी चढ़ा दिया और यह बुढ़ापा बहुत थकान और खीझ से भरा हुआ था। कई बार ऐसा होता था कि रुकमिन बगैर कोई काम किए ही थकने लगती थी, उसके सारे हाथ-पैर दर्द कर उठते, और उसे सांस के हर क्षण में घुटन महसूस होती। ऐसे उदास क्षणों में, जिन्दा रहने की तमाम इच्छाएं टूट जातीं— उसे हर तरफ अंधेरा नजर आता। तब वह अकसर उन दो चीज़ों के बारे में सोचने लगती, जो गए बीस बरस से उसे जिन्दा रखे हुए थीं। उसका बेटा— फौजदार सिंह ! और वह बन्दूक, जो भीतर वाले कमरे में टंगी हुई रुकमिन के खानदान के प्रति वफादारी दिखाने का मौका देख रही थी।

बीस बरस हुए थे। उसे न तो गर्मी में भूले-भटके पड़ गई बरसात की बूंदें अच्छी लगी थीं, न बीहड़ों की ऊबड़-खाबड़ छाती पर लहराती फसलों की हरी चुनरिया भली लगी थी। उसने हर बरसात में पहले से कई गुनी तपन अनुभव की थी, और हर फसल उसके मन में बिजली की तरह कौंधकर एक पुरानी याद ताजा करती रही थी। ऐसी याद, जो रुकमिन को झकझोर डालती थी, और जिसकी अनुभूति के अंधेरे में वह केवल दो चीज़ों के बारे में सोच पाती थी— फौजदार सिंह के मजबूत हाथ, और वह बन्दूक, जिसकी नली एक ऐसी आग उगलने वाली थी, जिसे रुकमिन ने बीस साल अपने कलेजे में सुलगते अनुभव किया था। कभी-कभी वह एकांत में बन्दूक उठाए कमरे में देर तक बैठी रहती। वह बन्दूक देखती, और उसे लगता जैसे फौजदार के मजबूत हाथों ने उसे कंधे से चिपका लिया है··· गोली गरजती है···और उसी के साथ रुकमिन के झुलसते हुए हृदय की आग ठंडी हो जाती है···बर्फ की तरह !

रुकमिन सोचती रही थी, और फिर वह दिन आ गया था, जब सचमुच ही फौजदार सिंह के मजबूत हाथ बन्दूक उठाकर कंधे से साधने वाले थे और रुकमिन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के मन की आग ठंडी होने वाली थी, बर्फ की तरह !

रुकमिन ने बन्दूक खूंटी से उतारी तो उसके बदन में न तो वह निराशाजन्य बुढ़ापा था और न किसी तरह की शारीरिक कमजोरी। बीस बरस तक वह इस बन्दूक की हर माह उसी प्यार से झाड़-पोंछ और सफाई करती रही थी, जिस प्यार से उसने फौजदार सिंह को पाला था, पर आज बन्दूक उसने सफाई करने के लिए नहीं उतारी थी, आज उसने बन्दूक उतारी थी फौजदार के हाथों में थमाने के लिए। जब उसने बन्दूक उसके हाथों में थमा दी तब विचित्र-सा हिंस्र भाव उसकी आंखों में तैरने लगा।

फौजदार ने बन्दूक कंधे पर लटका ली।

रुकमिन फुर्ती से भीतर जाकर कारतूस-पेटी उठा लायी। फौजदार ने जब उसे जनेऊ की तरह छाती पर पहन लिया, तब रुकमिन के चेहरे पर एक गौरवपूर्ण मुसकान उभरी। उसे बरबस ही उस दिन की याद हो आयी, जब फौजदार इस बन्दूक से बालिश्त भर छोटा रहा होगा। रुकमिन उसे पहली बार बन्दूक चलाना सिखाने गांव के बाहर चम्बल के किनारे ले गई थी। और जब फौजदार को उसने बन्दूक कंधे पर साधने, निशाना लगाने और सावधानी बरतने का पहला-पहला सबक देना प्रारम्भ किया था, तब फौजदार ने बड़ी जिज्ञासापूर्वक ढेर से बारीक सवाल कर डाले थे—'मइयो !' फौजदार ने बन्दूक की नली के मुंह की तरफ झांकते हुए पूछा था—'इसमें क्या होता है ?'

रुकमिन ने मुसकराकर नली पर हाथ फिराया था और कहा था—'इसमें गोली होती है, बेटा ! जब खटका होता है, तब धमाके के साथ निकल पड़ती है।'

'और गोली से क्या होता है, मइयो ?' फौजदार ने बाल-सुलभ जिज्ञासा से फिर पूछ लिया था।

'गोली से कोई का जी जल जाता है, और कोई का जी ठंडा हो जाता है।' रुकमिन ने जवाब दिया था।

'तो तू मुझे काहे को गोली निकालना सिखा रही है, मइयो ? कहीं गोली निकली और कोई का जी जल गया तो ?'

'तो क्या होता है ? गोली से तेरा और मेरा तो जी ठंडा होगा ही,' रुकमिन ने अजीब-सी कठोरता से जवाब दे दिया था।

फौजदार सिंह की जिज्ञासा का समाधान हो गया था। वह बन्दूक चलाना सीख रहा था, ताकि गोली निकले तो किसी का जी जलेगा, किसी का जी ठंडा होगा। उसने निश्चय किया था, वह जल्दी ही बन्दूक चलाना, गोली निकालना सीख लेगा, ताकि उसका और उसकी मइयो का जी ठंडा हो जाए।

रुकमिन ने एक गहरी श्वास खींची। स्मृति में जैसे वह तो भूल ही गई कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बन्दूक लादे फौजदार सामने खड़ा है। वही फौजदार नहीं था, जिसने बन्दूक सीखते समय कई बेतुके सवाल किए थे, जिसका कद बन्दूक से बालिश्त भर छोटा था, और जो उस समय गोली नहीं निकालना चाहता था, इस भय से, कि कहीं किसी का जी जल न जाए। यह वह फौजदार सिंह था, जिसके निशाने की सारे जिले में धूम मचती थी, जिसके लिए बन्दूक और मौत दोनों अंटा चटकाने की तरह सरल और सहज हो गई थी।

रुकमिन ने फौजदार सिंह के चौड़े सीने पर वजन से पड़ी सलवटें सुधारीं, फिर वह बोली —"जा ! अपने बाप का कर्ज उतारकर आ ! तुझे इसी दिन के लिए पाल-पोसकर बड़ा किया था !"

फौजदार सिंह ने कोई उत्तर नहीं दिया, उसने झुककर रुकमिन के पैरों की धूल माथे चढ़ाई, कारतूस-पेटी और बन्दूक संभाली और बाहर चला गया।

रुकमिन उसे पौर (बरामदा) के दरवाजे तक देखने आयी। जब फौजदार सिंह बीहड़ों की तराई में उतरकर आंखों से ओझल हो गया तब वह बड़े स्वाभाविक ढंग से, रोज की तरह काम में जुट गई।

थोड़ी देर बाद जब सांझ का धुंधलका हुआ और हार-खेतों से बीहड़ों की भकभुंदरी माटी उड़ाते ढोर-चौपाए लौटने लगे तब रुकमिन ने दीवटों से दीये उतारे और आंगन में आकर बातियां बंटने बैठ गई। उसने बातियां तीन बड़े दीयों में धरीं, चौके में से मीठे तेल की मटकी लायी, और जब धार बांधकर दीयों में तेल डाला तब न जाने कौन देश से पुरानी यादें बेबुलाए मेहमान की तरह, दिमाग में आयीं, और क्षण-भर में रूप धरकर आंखों के सामने यों उभरने लगीं, जैसे बात को बीस बरस नहीं, बीस क्षण हुए थे।

ऐसा ही दीया-बाती की बेला थी। पास-पड़ोस की औरतें सातवें महीने के बधाए गाने आयी थीं। उसका घरवाला किसुन सिंह मुरैना शहर से गैस की लालटेन किराए पर लाया था और मिलकाकर आंगन में टांग दी थी। ऐसी झक-झक रोशनी में, तुलसी धरुए के पास, लिपे आंगन में रुकमिन की गोद में मंत्र-श्लोक पढ़ा हुआ हरा नारियल छोड़ा गया था। गांव की बूढ़ी-पुरानियों ने आंचल भर असीस दिए थे—"पूत जनमियों ठकुराइन ! ऐसा जो आसफेर गांव जिला पुरखों का नाम उजागर करे, और सोलह गांव जिसका डंका बाजे, जिसके ठौरे-ठौरे कीरत गीत गाए जाएं !"

रुकमिन ने लजाकर गर्दन झुका ली थी।

गांव की औरतें देर तक हंसी-ठिठोली करती रही थीं, गाना-बजाना चलता रहा था। थोड़ी देर बाद जब वे चली गईं, तब बाहर के चबूतरे पर बैठा किसुन सिंह भीतर आ पाया था। भीतर आया, तब रुकमिन हरा नारियल, आले में किसुनमुरारी की तसवीर के पास रख रही थी। उसका ध्यान सिर्फ तसवीर पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था। किसुन सिंह के आने की आहट भी न सुनी थी उसने। श्रद्धापूर्वक नारियल रख कर दो पल हाथ जोड़े, उसने मनौती की थी—"भगवान ! पूत जनमूं, ऐसा जो आसफेर पुरखों का नाम उजागर करे, और सोलह गांव जिसका डंका बाजे, जिसके ठौरे-ठौरे कीरत गीत गाए जाएं।"

"मनौती कर रही है, रुकमिन ?" पीछे से किसुन सिंह का भारी स्वर हर्ष में डूबा-डूबा आया था। रुकमिन पलटी, उसने गर्दन झुका ली और लजा गई।

किसुन सिंह सामने खड़ा था— बज्जुर छाती। लम्बी-लम्बी बांहें, जिन पर सन के बटे-बटाए मोटे रस्से जैसी मांस की गठानें पड़ी थीं। उसके भरे चेहरे पर मोटी-मोटी मूंछें थीं, जिसके कोने ऐसे तने हुए थे, जैसे राजा पिरथीराज के आल्हा में मलखान सिंह की मूंछें बताई गई हैं। रुकमिन ने एक बार धीमे से पलक उठा कर उसका चेहरा देखा, असल छतरी का चेहरा पुरखों के परताप से ऐसे ही दमकता है, जैसे नंगी तलवार धूप में हिला दी गई हो।

"तू निश्चिंत रह ! तेरे पूत ही जनमेगा, ऐसा जिस के ठौरे-ठौरे कीरत गीत गाए जाएं···" किसुन सिंह गरब के बोल बोला था। उसकी बानी में सदा गरब का भाव रहता था, और ठीक भी है, रुकमिन ने सोचा था—छतरी की बानी में भला गरब क्यों न झलके !

रुकमिन ने किसुन सिंह की गरबीली बानी का कोई उत्तर नहीं दिया था। उसने आंचल संभाला था। गोटे की पट्टी टकी नयी चूनर का घूंघट और नीचा कर लिया था।

जोर से किसुन सिंह हंस दिया—ऐसे ठठाकर, जैसे बधाए के गीतों के साथ ढोलक पर लगातार थापें पड़ती चली गई हों। उसने कहा था—"तू कितनी सरमा रही है ? इतनी तो ब्याह पर भी नहीं सरमाई होगी ?"

रुकमिन कुछ नहीं बोल पायी तो किसुन सिंह ने आगे बढ़कर उसे बांहों में कस लिया था। किसुन सिंह की फौलादी बांहों की यह कैद उसे बहुत अच्छी लगी थी। उसने अपना तमाम बदन चुनरी और घूंघट की बगैर परवाह किए, किसुन सिंह की बज्जुर छाती पर निढाल छोड़ दिया था। दोनों एक अनजाने आनन्द में डूबते चले गए थे, पर अधिक देर तक सुख के ये पल नहीं रह सके थे। बाहर से किसुन सिंह को बुलावा आ गया था।

"ठाकुर !" आवाज लगाने वाला व्यक्ति भीतर आ गया—"बाहर चौपाल पर आल्हखंड चल रहा है, और तुम···" आगंतुक ने एक तीखी दृष्टि से घूंघट में ढ की रुकमिन और पास खड़े किसुनसिंह को देखा, मुसकराकर बोला—"तुम··· जनानियों की तरह घर में दुबके हो ?"

किसुन सिंह एक झेंप की हंसी हंसा—"चलो! चलो !" उसने कहा, और फिर उस व्यक्ति के साथ बाहर चला गया। रुकमिन पौर के दरवाजे उढ़ककर कोरे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कपड़े बदलने लगी थी। बाहर से आल्हखंड के बोल यों सुन पड़ रहे थे, जैसे भिरकों (बीहड़ों) में गोलियां चल रही हों।

रुकमिन ने बोल सुने, जैसे चम्बल की माटी ने भीतर की लजीली औरत कुरेद डाली हो, वह खुद भी आल्हखंद के बोल गुनगुनाती रही।

एकाएक पौर के उढ़के किवाड़ एक आवाज के साथ खुले। रुकमिन कपड़े बदल चुकी थी, घबराकर पौर की तरफ आयी। किसुन सिंह तेजी से भीतर चला आ रहा था। रुकमिन ठिठक गई, किसुन सिंह के चेहरे पर क्रोध और घृणा के मिश्रित भाव थे। वह तेज चाल में भीतर वाले कमरे में चला गया और क्षणभर में ही वापस बाहर की ओर जाने लगा। रुकमिन ने घबराकर पूछा—"क्या बात है ?·· क्या हुआ ?"

"साफा लेने आया था !" किसुन सिंह बाहर के दरवाजे की ओर बढ़ा। रुकमिन ने दूसरा सवाल कर दिया—"कहां जा रहे हो ?"

"खेत तक जा रहा हूं। जुहार ठाकुर ने अपनी नयी बनी मेढ़ तोड़ डाली है !"

"क्यों ?"

"कहता है, हमने उसके खेत की कुछ बिसे धरती मेढ़ में दबा ली थी।"

"झूठ बकता है नासपीटा !" रुकमिन ने घृणापूर्वक कहा।

"वही तो," किसुन सिंह ने गुर्राहट की—"देखता हूं स्साले को !" और फिर वह पौर के बाहर हो गया।

रुकमिन का मन हुआ था, रोके। कहे, बगैर बन्दूक लिये मती जाओ। कहीं बात बढ़ गई, तब ? पर, किसुन सिंह इतनी जल्दी गया था कि रुकमिन को कुछ कहने-सुनने का मौका ही न मिला।

किसुन सिंह को गए अधिक देर नहीं हुई थी, रुकमिन ने किवाड़ बन्द कर सांकल चढ़ा ली थी। वह बेचैन रही थी। यों कई बार किसुन सिंह गुस्सा करता था, गांव में झगड़ा पड़ता था, पर किसी बार रुकमिन को भय नहीं लगा था, किन्तु आज न जाने क्यों किसी अज्ञात आशंका से उसे भय लगा।

थोड़ी ही देर बाद गांव के लोगों ने दरवाजा भड़भड़ाना प्रारम्भ कर दिया था···'किवाड़ खोल !···रुकमिन भौजी···काकी···!' गांव के सारे मुंहबोले नाते-रिश्तों की दस्तकें पड़ी थीं।

रुकमिन ने घबराकर, जल्दी से किवाड़ खोल दिए थे।

सामने चार-छह आदमियों से घिरा किसुन सिंह चित पड़ा हुआ था। खून से भीगा ! धाड़ मारकर रुकमिन उसके बदन पर गिर पड़ी थी। उसने सिर से पांव तक उसके खून से भीगे बदन और कपड़ों पर हाथ फिराए थे···उसके खुद के कपड़े भी लहू से भीग गए थे। वह बिलख रही थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"रो मती !" अधमुंदी आंखों से बदहवास रुकमिन को देखते हुए किसुन सिंह ने बाकी जीवन की सारी शक्ति लगाकर दो-चार बोल बोले थे—"तू निश्चिन्त रह !···तेरे पूत ही जनमेगा, और वो···वो मेरे कतल का बदला जरूर लेगा। उसके ठौर-ठौर कीरत गीत गाए जाएंगे।" और किसुन सिंह की आंखें झप गई थीं, आवाज डूब गई।

रुकमिन रात-भर रोती, सिर धुनती रही थी। वे औरतें, जो अभी-अभी बधाए गाकर गई थीं, उसे सांत्वना देन पर आ जुटीं। उन्होंने रुकमिन की चूड़ियां फोड़नी चाही थीं, पर न जाने क्या सनक छूटी थी रुकमिन को, उसने कहा था, "मैं चूड़ियां नहीं फुड़वाऊंगी।"

"कैसी लुगाई है ?" एक बूढ़ी महिला ने नाराजगी प्रकट की थी—"रांड़-बेवा चूड़ी पहने रह सकती है कभी ?"

"हां !" रुकमिन ने रुलाई बन्द कर कहा था—"मैं रहूंगी। उस बखत तक चूड़ियां पहने रहूंगी, जब तक मेरी कूख का पूत मेरे धनी के कतल का वैर नहीं चुकाएगा। जिस दिन वेरी मरेगा, मैं चूड़ियां फोड़ लूंगी।"

औरतों में सन्नाटा-सा फैल गया था। उन्होंने रुकमिन को समझाने की भी चेष्टा की थी। अपने धरम में रांडें चूड़ियां नहीं पहन सकतीं, पर रुकमिन नहीं मानी थी। उसने चूड़ियां नहीं फुड़वाई थीं। अजीब प्रण कर लिया था उसने !

रुकमिन ने एक गहरी श्वास ली। सामने रखे दीयों में तेल भरा हुआ था। बाती पड़ी थी, पर यादों के घनेपन में जैसे सारा वर्तमान कुछ क्षणों के लिए अदृश्य हो गया था। चूड़ियां रुकमिन के हाथों में थीं, धुधलके के गहरेपन में भी उसने उन्हें देखा। उनका अस्तित्व अनुभव किया। प्रण पुनः याद आया। रुकमिन ने फिर वैसी ही गहरी श्वांस खींची, दीये जलाए। उसे हाथों में चूड़ियों का बोझ अनुभव हो रहा था, और दिमाग में अजीब-सा भारीपन था, मन म चिन्ता। किसुन सिंह का कर्ज था, जिसे चुकाने अभी-अभी फौजदार सिंह को उसने भेज दिया है।

रुकमिन ने एक दीया तुलसीघर पर और दूसरा पौर में रखा, पर जब तीसरा दीया लेकर चौके में धरने आयी तब अनचाहे ही उसकी आंखें किसुनमुरारी की तसवीर पर जा ठहरीं। एक याद फिर हरी हो गई। दीवट पर दीया धरते, उसके हाथों की चूड़ियां खनकीं और प्रण फिर याद हो आया। यों गए बीस बरसों में उसने प्रण को इतनी बेचैनी से कभी याद नहीं किया था, हालांकि फौजदार सिंह के जन्म के साथ ही जुहार ठाकुर से बैर की बात वह उसके नन्हे मन में रोपती आयी थी। वह उसे सुलाते-जगाते बदले का अंकुर जमाती रही थी। दूध भरी बिलिया (कटोरी) उसके मुंह लगाती और कहती—"बस, एक घूंट और पी ले, मेरे लाल···! जल्दी से बड़ा हो जा···! तेरे हाथ-पांवों में मांस की गठानें पड़ जाए,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और मुंह पर मूंछ की पहली रेख निकले, सोई अपने बैरी से बदला भंजाकर मेरी छाती ठंढी कर दीजो !"

गांव की औरतों ने उसे समझाया भी था—"औलाद में जनम से ही बैर भर रही है बावरी ? बागी हो गया, तो कौन के भरोसे बुढ़ापा काटेगी ?"

रुकमिन अजीब से क्रूर ढंग से हंस दी थी। बोली—"बाई ! चामल (चम्बल) का रिवाज मेट दूं क्या ? कित्ती बड़ी गोद है उसकी ? मान सिंह दाऊ ने छब्बीस बरस गुजारे थे। फौजदार कम-से-कम बीस बरस तो निकाल ही लेगा।" वह फौजदार के माथे पर हाथ फिराकर कहती—"मैंने पूत नहीं जनमा, बाई ! बन्दूक जनी है ! तोमर छतरी का खून है, बाप के कतल का बैर नहीं चुकाया, तो कौन काम की इसकी जिन्दगी ?" बोलते-बोलते उसका स्वर विचित्र-सी घृणा में भर जाता—"जुहार ठाकुर की लोथ जिस दिन मेरे चबूतरे पर गिराएगा, उस दिन इसका जीवन सुफल हो जाएगा। उस दिन मैं चूड़िया फोड़ूंगी। उस दिन रांड होऊंगी !"

रुकमिन का स्वर सुनने वालों के दिमाग पर मौत के गहरे सन्नाटे की तरह छा जाता। आतंक से उनके चेहरे सूख जाते, और रुकमिन फौजदार की पीठ ठोंकती—"जिस दिन बाप का करज चुका देगा, उस दिन इसके ठौर-ठौर कीरत गीत गाए जाएंगे।"

उड़ती-उड़ती खबरें जुहार सिंह तक पहुंची थीं। वह हंस दिया था। सुनाने वालों से उसने कहा था—"मैं भी कोई माटी का ढेला नहीं हूं भाई ! जो यों ही लुढ़क जाऊंगा। फौजदार ने बन्दूक उठाई भी तो मेरे पास भी बारा फैर की है। भगवती की किरपा से मेरी ठकुरानी ने भी पांच पूत जने हैं, कोई-न-कोई हिसाब चुका ही लेगा।"

सुनाने वाले हर्फ-बहर्फ रुकमिन को भी आ सुनाते। रुकमिन हंस देती। बहुत होता तो कह भी डालती—"ज्यादा बखत नहीं है, भइया ! बरस-खांड़ ठहरो। अपनी आंखों से देखना, कौन ने पूत जनमे हैं और कौन ने माटी के ढेले। असल छतरी का खून होएगा फौजदार, तो अपनी माटी की बात जरूर निभाएगा।"

बात जुहार ठाकुर के कानों पर फिर जा पड़ी थी। क्रोध से तिलमिलाकर उसने कह दिया था—"कुतिया की नांई सारे गांम में कुछ-कुछ बकती फिरती है। अभी धरके नांई पुल्हस में रपोट करवा दूं, तो सारा छतरी धरम धरा रह जाएगा।"

रुकमिन ने सुना, जुहार ने उसे गाली दी है। चाहते हुए भी वह मन पर काबू नहीं कर सकी थी और सर्पिणी की तरह फुंकारती जुहार की हवेली पर जा पहुंची थी। जुहार चबूतरे पर दो-चार लोगों में बैठा चिलम फूंक रहा था। रुकमिन ने पहुंचते ही गरजना प्रारम्भ कर दिया था—"जुहार ठाकुर ! लुगाइयों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को गाली देता है। तू मरद ठाकुर है···फौजदार के बदन में गठानें पड़ जाने दे, फिर दियो गाली !"

जुहार ने हक्के-बक्के उसका चेहरा देखा था। कुछ बोल नहीं पाया था।

रुकमिन गरजती गई थी—"तू भी तो छतरी है ! फिर पुल्हस की ओट लेने की बात क्यों करता है ? ठाकुर की मूंछ तो तब, जब इकल्ला दुसमनी भुगतै-भुगताय।"

जुहार तिलमिला गया था। रुकमिन ने उसकी ठकुरास को दुत्कारा था। चार जनों के सामने पुलिस की मदद वाली बात कहकर सब कुल की हेटी कर दी थी। ऊंचे घर का छत्री ? बैरी से डरकर पुलिस की मदद ले ? चम्बल की माटी का रिवाज नहीं है।···अनजाने में पुलिस का नाम लेकर कितनी बड़ी भूल कर बैठा था जुहार सिंह। उसे पछतावा हुआ था। किन्तु उसी समय उसने बात संभाल ली थी, शान्तिपूर्वक वह बोला था—"तू जनानी की जात है, रुकमिन ! मैं मरद ठाकुर ! किरोध में भूल से गाली दे गया होऊं तो तू मुझे माफ कर दे।··· रही हमारे-तिहारे बैर की बात, सो सच्ची जान, तुझसे नहीं भंजाएंगे। भगवती करै तेरा पूत बड़ा हो जाय ! उसके बदन में गठानें पड़ जाएं, तब उससे बैर की बात सोच-समझ लेंगे। सही जान, पुल्हस बीच में नहीं आएगी।"

रुकमिन ने कोई उत्तर नहीं दिया था। जुहार ठाकुर ने उससे मरदों-जैसा व्यवहार किया था, तब रुकमिन भला कैसे औरत की लाज-धरम छोड़ देती। उसने घूंघट खींच लिया था। लौट आयी थी।

होते-होते बरस बीतते गए थे। जुहार के पांच पूत और रुकमिन का एक पूत।

फौजदार ने इस बीच अनेक बार रुकमिन से कहा भी था—"मइयो ! ऐसे कब तक अकारथ जलाती रहेगी ? हुकुम कर दे, दादा का करज चुका आऊं···!" पर, रुकमिन ने उसे हुक्म नहीं दिया था। न जाने क्यों वह रुकी रही थी ? और आज जब फौजदार अड़ ही गया कि— 'अब मैं तेरा हुकुम लिये बिना ही चला जाऊंगा ! अब मुझ पर नहीं रहा जाता ! चामल मुझे टेरती है···!' तब रुकमिन ने हर्षित होकर हुक्म दे दिया था। बोली थी—"बस, मैं बीस बरस से तेरे ये ही बोल सुनने को तरसती थी। अब मुझ भरोसा हो गया है, तू जरूर अपने बाप का करज उतार देगा···।" और रुकमिन ने बन्दूक हाथ में थमाकर फौजदार को छोड़ दिया था।

आज फौजदार नहीं लौटने वाला था, और अगर लौटता भी तो रुकमिन की देहरी जुहार की लोथ लाता, और फिर लौट जाता। चामल ने उसे टेर लिया था, और चामल जिसे टेर ले, वह कभी वापस नहीं आता। उसके सब गांव-जिले कीरत गीत सुने जाते हैं !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रुकमिन की आंखों में प्रतीक्षा का भाव था, और यह प्रतीक्षा असाधारण थी। रात गहराती जा रही थी, और गांव पीछे बहने वाली चम्बल के कर्कश स्वरों के साथ ही झांई के बोल भी गहरा रहे थे।

रुकमिन चारपाई पर आ लेटी। जाने क्यों वह अधिक देर तक शांतिपूर्वक लेटी न रह सकी। वह उठी, उसने एक गिलास पानी पिया। दोबारा उठी और पानी पिया। हर बार लेटने से पहले उसने किवाड़ खोलकर सूना रास्ता देखा। अंधेरा बढ़ रहा था, और उसके साथ-ही-साथ रुकमिन का संशय भी बढ़ता जा रहा था। दोपहर के पंचफैरा बन्दूक लटकाए गए फौजदार की अब तक कोई खबर नहीं आयी थी। कहीं बाप का बैर अधूरा तो नहीं छोड़ देगा···? कहीं कतल के भय से भाग तो नहीं गया···? रुकमिन के मन का सन्देह विचारों की कई ऊंची-नीची हदों तक पहुंचा। पर दूसरे ही क्षण उसने ऐसे हर विचार को झटक दिया। छिः! कैसी घिनौनी बात है? तोमर ठाकुर का लहू बगैर बैर चुकाए नहीं मिटेगा!

किवाड़ खटके। एक कांपता-सा स्वर सुनाई दिया।

रुकमिन फुर्ती से उठी। शायद फौजदार ने बाप का करज चुका दिया है! इसी क्षण के लिए तो वह बीस वर्ष से जिन्दा है!

उसने किवाड़ खोल दिए। जुहार ठाकुर की घरवाली थी। भय और आतंक से बदहवास! उसके सिर का पल्लू कंधे तक झूल आया था और माथे पर बाल बिखरे हुए थे।

रुकमिन ने भौं चढ़ाकर कहा—"सिर ढांक, ठकुराइन! हजार विपद टूटें, माथे की लाज नहीं जानी चाहिए!"

ठकुराइन ने सिर ढांका।···रुकमिन! वह एकाएक ही उसके पैरों पर गिर पड़ी···"मेरे पांच पूत!···अपने पूत को रोक ले रुकमिन···वह हार से पंचफेरा लिया सीधा मेरी हवेली की तरफ आ रहा है!···तेरे पांव पड़ूं, ठकुराइन!···उसे रोक ले।"

रुकमिन सब कुछ समझी तो जोर से हंस पड़ी। फौजदार बाप का करज उतार रहा है! मय ब्याज-बट्टे के! बोली—"यों निढाल काहे को होती है, ठकुराइन? तू पांच पूत वाली है। तेरे घर बारह फेर की बन्दूक है। मेरे है एक पूत, एक पंचफेरा!"

जुहार की घर वाली वैसे ही पांव पकड़े रही। सिर कई बार पटका। बिलख उठी। उसकी आवाज हिलक गई। अब कहां रहे मेरे पांच पूत?·· तेरे पूत ने सब मिटा दिए। अब···? बस, मेरा सुहाग है, रुकमिन! उसे बचा ले···। रोक ले अपने फौजदार को।"

रुकमिन पत्थर के बुत की तरह अडिग-अविचलित खड़ी रही। जुहार की घर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाली की लगातार चीख-पुकार का उस पर तनिक असर न हुआ। उसने पूर्ववत् कठोरता के साथ व्यंग्य करते हुए कहा—"जा-जा, ठकुराइन! अपनी हवेली पर जा और जुहार ठाकुर के हाथ में बारा फेरा देकर रोक ले मेरे फौजदार को। जब जुहार ठाकुर ने फौजदार के बाप का कतल किया तो मैं थोड़े तेरे पांव पड़ने गई थी? दूर हट!" कहते हुए रुकमिन ने उससे अपने पैर छुड़ाए, और शैतानी ताकत से जुहार की घरवाली को घसीटकर देहरी से बाहर कर दिया। किवाड़ बन्द कर भीतर से सांकल चढ़ा ली। चारपाई पर आ लेटी।

थोड़ी देर तक बाहर से जुहार की घरवाली के रोने-पीटने के स्वर आते रहे, फिर वह निराश होकर लौट गई।

रुकमिन खुश थी—बेहद खुश! फौजदार ने जुहार सिंह के पांचों पूत गोली से उड़ा दिए। रुकमिन को लग रहा था, जैसे बोझ हल्का हो गया है—बेहद हल्का।

"मइयो!" एक स्वर आया। किवाड़ खटके।

रुकमिन दरवाजे की ओर दौड़ पड़ी। उसने कुंडी खोली।

फौजदार सिंह सामने था। उसका माथा लहू से भीगा हुआ था, और कपड़े कई जगह से फटे हुए थे। लहू की कई धाराएं कनपटियों और माथे से बहती हुई कंधे पर आ गिरी थीं, और कमीज खून से नहा गई थी। किवाड़ खुले तो उसने गर्दन उठाकर देखा—"मइयो!" उसने आंखों की पलकें कई बार झपकाईं, पैर लड़खड़ाए, और वह किवाड़ के सहारे टिक गया। शायद वह बेहद कमजोरी अनुभव कर रहा था।

रुकमिन उसे आंखें फाड़े देखती रही। किन्तु उसने उसके लहूलुहान हो जाने के सम्बन्ध में न तो किसी प्रकार की चिन्ता ही प्रकट की और न कोई सवाल ही किया। वह बोली—"जुहार ठाकुर की लोथ वहीं छोड़ आया क्या?"

फौजदार सिंह ने स्वयं को संभाला। कांपते हाथों बन्दूक कंधे से उतारकर रुकमिन के हाथ में दी—"मैंने उसे जिन्दा ही छोड़ दिया।"

"केओ?" चिल्लाकर रुकमिन ने सवाल किया, यों जैसे फौजदार सिंह को छूत की बीमारी रही हो। वह उससे दूर हटकर खड़ी हो गई।

रुकमिन की चिल्लाहट ने फौजदार को चैतन्य किया, उसने उत्तर में शीघ्रता बरती—"तू मेरी बात तो सुन ले···मैंने जुहार के पांचों लड़के मार दिए··· तू नहीं जानती मइयो, मैंने उन्हें कैसे मारा है?···" फौजदार बयान करता गया—"पांचों ही हार में गंज्जपा (ताश) खेल रहे थे। मैं उनके सामने पहुंचा, और आवाज दे के तीन को वहीं गोली से उड़ा दिया, दो, भगा दिए···उधर चामल की तरफ···मैं उनके पीछे गया। पर वे बीहड़ों में कहीं दुबक गए थे। मैं जैसे ही एक भिरका में घुसा, वैसे ही दोनों ने पीछे से मुझ पर लाठियां बरसाईं। तू नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जानती मइयो, मुझे कितनी चोटें लगी हैं, फिर मैंने पंचफेरा नहीं छोड़ा था। गुत्थम-गुत्था में एक तो वहीं चटकाय दिया, बाकी रहा सो वह फिर भगा दिया। मैं उसके पीछे भागता गया···और आखिर में चामल के पाट पे मैंने उसे भी ढेर कर दिया।···तू सही जान मइयो···मइयो !" फौजदार सिंह ने फिर पलकें झपकाईं, उसके पांव कांपे, आवाज हिलकी, पर उसने कहना जारी रखा—"मैंने दादा का करज उतारने में कोई कोर-कसर नहीं छोड़ी है।"

"मुझे कुछ नहीं सुनना !" रुकमिन गुर्राई—"जुहार के पांच पूतों की लोथें मेरे किस काम कीं ? तू तो ये बता कि तूने मेरे धनी का कतली कैसे जिन्दा छोड़ दिया ?"

"मइयो !"···फौजदार सिंह ने खड़े रहने का बहुत प्रयत्न किया, किन्तु वह खड़ा न रह सका। वहीं धरती पर बैठ गया। "···मैं हवेली की तरफ जा तो रहा था।" फौजदार सिंह घबराकर बोला—"तू···बन्दूक देख ! देख उसमें मैंने फिर कारतूस भरे हैं ··मैं हवेली की तरफ जा रहा था ··"

"फिर ?"

"जुहार की घरवाली ने गैल (रास्ता) में ही मेरे पांव पकड़ लिये, मइयो ! उसने मुझसे सुहाग की भीख मांगी थी। उसने मेरे आगे आंचल पसार दिया था, मइयो···!"

"उससे क्या होता है ?" रुकमिन ने चिल्लाकर कहा।

फौजदार कांपा—कमजोरी से नहीं, भय से। बीस वर्ष में शायद पहली बार वह रुकमिन की ऐसी गुर्राहट सुन रहा था।

"मैंने बीस साल तुझे इसीलिए पाला-पनसोसा था।" रुकमिन चिल्ला रही थी—"तूने मेरी कूख लजाई है ! तूने मेरा पिरन तोड़ा है ! तूने अपने बाप का बैरी जिन्दा छोड़ दिया ?···तू नामर्द है !"

फौजदार कोई उत्तर नहीं दे सका। वह समझ नहीं पा रहा था, छतरी धरम निबाहने में उसने किस जगह भूल कर दी है।

"तूने जुहार को जिन्दा छोड़ दिया ? तू समझता है, इससे मेरा पिरन टूट जाएगा ?···मैं अपने मरद की मरजी पूरी कर सकती हूं···" रुकमिन घृणापूर्वक चीखती गई—"तूने बाप का खून लजाया है ! जो अपने बाप का बैरी जिन्दा छोड़ दे, जो बाप का करज न उतार पाए, उसकी कौन करम की जिनगी ?"···और इससे पूर्व कि फौजदार कोई और सफाई पेश करे, रुकमिन ने उसकी ओर बन्दूक तान ली। दांत पीसते हुए बोली—"अब तेरी-मेरी दोनों की जिनगी अकारथ है ?···" सधी हुई बन्दूक के ट्रिगर पर रुकमिन की अंगुलियां दबीं, और चीत्कार करता हुआ फौजदार धरती पर ही पसर गया। फिर रुकमिन ने बन्दूक नीचे धरती पर सीधी खड़ी कर पांव की अंगुलियों से ट्रिगर दबाकर आत्महत्या कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेनी चाही, किन्तु फौजदार के मृत शरीर की ओर देखकर दुख से भर गई।

"म···इयो !" फौजदार रक्त से सना हुआ सुगबुगा रहा था।

रुकमिन ने एकाएक ही बन्दूक एक झटके के साथ धरती पर पटक दी, और फिर फौजदार के शरीर पर गिर पड़ी। वह चिल्लाई—"फौजदार !···" आवाज गूंजी, फिर डूब गई।···"नहीं-नहीं, मैं नहीं मरूंगी ! फौजदार ! मेरे बेटे ! मैंने तुझे कतल कर अपने धनी का करज चुका दिया है, पर तेरे कतल का करज चुकाने मैं बहुत जिऊंगी·· बहुत जिऊंगी···अपने जी की जलन से तेरे करज को चुकाती रहूंगी···ता जिनगी···मैं बहुत जिऊंगी···"

और न जाने कब तक रुकमिन फौजदार के खून से सने शरीर पर सिर पटकती हुई—नया कर्ज चुकाने का प्रण करती रही।

१९६४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अ-लगाव

बिलैयाह मिल के लिए रवाना हुआ तो सुन्दरम्मा उसे दरवाजे तक छोड़ने आयी। और जब वह साइकिल पर फुर्ती से सवार होकर, पैडल घुमाता हुआ गली के मोड़ पर जाकर आंखों से ओझल हो गया, तब सुन्दरम्मा के चेहरे पर अजीब-सी परेशानी घिर आयी। यद्यपि बिलैयाह किसी लम्बे समय के लिए परदेस नहीं गया था, और नही उन दिनों में किसी बात पर झगड़ा ही हुआ था, जिस पर सुन्दरम्मा परेशान हो सकती, बिलैयाह उसे रोज ही मिल जाता था और सुन्दरम्मा रोज ही उसे आठ घंटे की विदाई देने दरवाजे तक छोड़ने आती थी, तथापि वह हर रोज यों ही परेशान हो जाती थी। बिलैयाह की गैरमौजूदगी के ये आठ घंटे वह यों उदासी और उलझन के बीच अजीब-अजीब ऊब भरे ख़यालों के बीच बिताती, उसे मालूम पड़ता कि जैसे उसे किसी कैद में डाल दिया गया हो--ऐसी कैद में, जहां चारों ओर मजबूत दीवारें खड़ी हुई हों, उसके चारों ओर मौत से भी गहरा अंधेरा हो और रोशनी की हर संभावना सपने की बात बन गई हो।

आज भी जब बिलैयाह चला गया, तब सुन्दरम्मा ने रोज की तरह वही कैद अनुभव की। वह दरवाजे के पास खड़ी-खड़ी, भटकी-भटकी आंखों से गली के उस मोड़ को देखती रही, जहां से अभी-अभी रोज की तरह बिलैयाह मुड़ा था और मोड़ को सूना कर गया था। सुन्दरम्मा ने उदास नजरों से गली बुहार दी। उसे लगा, जैसे यह गली बिलैयाह की गैरमौजूदगी से विधवा की मांग की तरह सूनी-सूनी हो गई है। यों गली में काफी चहल-पहल रहती थी, बच्चे खेलते रहते थे, खोमचे वाले शोर-शराबा करते थे, साइकिलों की घंटियां गूंजती थीं, आस-पड़ोस के मकान वाले आपस में झगड़ते थे। आज भी यही सब कुछ हो रहा था, वैसे ही जैसे रोज यह सब कुछ होता था। फिर भी सुन्दरम्मा को यह गली उदास और सूनी लगी, जैसे हर रोज लगती थी। दरवाजे से गली में दाएं-बाएं रीती आंखों की पुतलियां निरुद्देश्य घुमाते हुए उसने अनुभव किया, जैसे वह किसी ऐसी बाढ़ में फंस गई है, जहां से चारों ओर पानी-ही-पानी नजर आता है। दूर-दूर तक कोई आदमी नहीं है, और जो था—वह बह गया है। इर्द-गिर्द के आसरे, कूल-कगारे—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सब डूबे गए हैं। आठ घंटे ये कूल-कगारे, आसरे यों ही डूबे रहेंगे और सुन्दरम्मा यों ही ऊब और उदासी के समुद्र में निस्सहाय खड़ी रहेगी। न उससे और किसी से बातचीत होगी, और न किसी तरह की हंसी-मजाक। ये आठ घंटे, इस बड़े शहर की एक व्यस्त गली में आठ घंटे, और फिर भी सुन्दरम्मा के लिए यों मुर्दा, जैसे वह श्मशान-भूमि में जा बैठी हो।

सुन्दरम्मा गूंगी नहीं है। वह बोल सकती है और इतनी फुर्ती से बोलती है कि जिसने भी उसे बोलते सुना है, वह आश्चर्य से यों उसकी ओर देखता रह जाता है, जैसे वह अजूबा हो। बंगाले का जादू हो, जिसकी चर्चा परियों और पुराणों की कहानियों में आती है। पर सुन्दरम्मा अकसर पास-पड़ोसियों से नहीं बोलती, इस लिए कि वे उसे अजूबा समझते हैं, बंगाले का जादू समझते हैं। वे हंसते हैं और उसकी आवाज को मनोरंजन की चीज़ समझते हैं। सुन्दरम्मा को उनसे घिन होती है, खीझ आती है, उन पर गुस्सा आता है। मन में आता है कि उन्हें डांट दे, दुत्कार दे, पर दूसरे ही क्षण वह ऐसा कुछ न करने का निर्णय कर लेती है। वे उसकी डांट और दुत्कार पर भी हंसेंगे, आश्चर्य व्यक्त करेंगे, और भला क्यों न करेंगे ? उनमें और सुन्दरम्मा में कितना फर्क है ? सुन्दरम्मा जैसा पहनती है, वे नहीं पहनते। सुन्दरम्मा जैसा खाती है, वे नहीं खाते। सुन्दरम्मा जो बोलती है, वे नहीं बोलते। सुन्दरम्मा कन्नड़ बोलती है, उसके आस-पड़ोस के मर्द-औरत हिन्दी या मराठी बोलते हैं। सुन्दरम्मा जो कहना चाहती है, वे नहीं समझते, और वे जो कहना चाहते हैं, सुन्दरम्मा नहीं समझ सकती। वे सुन्दरम्मा के लिए अजूबा हैं—सुन्दरम्मा उनके लिए अजूबा है। उसमें और उनमें एक अलगाव है। ऐसा अलगाव, जिसने सुन्दरम्मा की जिन्दगी दूभर कर दी है। उसे यह अनुभव करने के लिए लाचार कर दिया है कि वह बाढ़ में घिरी हुई है, दूर-दूर के सारे सहारे, कूल-कगारे डूब गए हैं···डूबते जा रहे हैं···

एकमात्र बिलैयाह है, जिससे सुन्दरम्मा बोल सकती है। बोलती भी है, और कभी-कभी तो इतना बोलती है कि बिलैयाह चिढ़ जाता है। वह चीख पड़ता है—सुन लिया ! सुन लिया !···तू औरत नहीं है ! तू मशीन है ! लगातार मेहनत के बाद घर लौटता हूं; इस उम्मीद से कि शांति के दो पल मिलें, आराम करूं और तू है कि आते ही बोलने लगती है, ठीक एक मशीन की तरह !···

सुन्दरम्मा चुप हो जाती है—यों सहमकर जैसे उसने कोई भारी गुनाह कर दिया हो। मन में विचार आता है—बिलैयाह को अपनी सफाई दे। सारे दिन चुपचाप पड़े-पड़े सारी बातें मन में ही रखी रह जाती हैं, उसके आने पर सब कुछ कह देने की इच्छा होती है। जी चाहता है, बोलती चली जाऊं !···पर चाहकर भी सुन्दरम्मा कुछ नहीं कह पाती। गले से पेट तक एक लम्बी सांस खींचती है और बोलने की इच्छा भीतर-ही-भीतर दबा डालती है—उसी तरह जैसे आठ घंटे तक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह दबाती रही थी।

सुन्दरम्मा चाहती है, बिलैयाह यहां का काम छोड़ दे। अपने देश में कामों की क्या कमी है? वह इस मौन के सन्नाटे से घबरा उठी है। रोज आठ घंटे मौन! लगातार आठ घंटे मौन का सन्नाटा!...कहां तक सहन करेगी सुन्दरम्मा? न जाने शुरू-शुरू में कितने दिन तक सुन्दरम्मा मन की बात होंठों तक नहीं लायी थी, पर कई बार अमूर्त पीड़ा भी चीत्कार करवाने के लिए बाध्य करती है। सुन्दरम्मा ने अपने मन की व्यथा कह दी थी। सब कुछ जता दिया था। जब बिलैयाह काम पर से लौटा, तब उसने देखा, सुन्दरम्मा रो रही थी। उसकी आंखों के लाल डोरे अधिक लाल हो गए थे और कोरें फूल गई थीं। बिलैयाह ने पूछा—"क्या हुआ?"

"कुछ नहीं! कुछ नहीं!" सुन्दरम्मा ने दर्द छिपाने की बेकार-सी कोशिश की।

"तू रोती क्यों है? क्या पड़ोस में झगड़ा हुआ?" बिलैयाह ने पुनः पूछा।

"कुछ नहीं।" एक बार सुन्दरम्मा फिर बोली। उसने मन को थोड़ा कठोर कर आंसुओं पर बांध बांधा।

बिलैयाह उसकी तकलीफ समझता है। वह जानता है कि उसके काम पर चले जाने के बाद सुन्दरम्मा किस तरह मन-ही-मन घुटती है। बिलैयाह अनुभव करता है कि मुंह में जबान होते हुए भी उस पर ताला पड़ जाए तो कितनी तकलीफ होगी। वह सोचता है कि उसकी अनुभूति सुन्दरम्मा-जैसी नहीं हो सकती। बिलैयाह सोचने लगा कि क्या बात है जिससे सुन्दरम्मा रो पड़ी। उसने सवाल किया—बात क्या है? क्या किसी से झगड़ा हुआ?

—किसी से नहीं!

—फिर रोती क्यों हो?

—तुम मुझे मद्रास छोड़ आओ!

—पर, बात क्या है?

—कुछ नहीं!

—साफ-साफ क्यों नहीं बतलातीं? बिलैयाह चिढ़ उठा। यद्यपि वह स्वभाव से चिढ़ने वाला आदमी नहीं है, तथापि काम से लौटने के बाद की थकान उसमें चिढ़ पैदा कर देती है।

सुन्दरम्मा घबरा उठी। वह बिलैयाह को क्रुद्ध नहीं करना चाहती। उसने अपनी परेशानी बतलाते हुए कहा—तुम तो काम पर चले जाते हो, तुम्हें अंग्रेजी आती है, थोड़ी-बहुत हिन्दी भी, पर तुमने क्या कभी मेरे बारे में भी सोचा कि तुम्हारे पीछे मैं कितना परेशान रहती हूं। यहां सारे दिन मुझसे बात करने वाला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोई नहीं। मैं न हिन्दी जानती हूं और न अंग्रेजी ही जानती हूं।

सुन्दरम्मा की व्यथा सुनकर भी बिलैयाह चुप ही रहा।

सुन्दरम्मा कहती रही—हम लोग कहां आ गए हैं? यहां के लोगों को देखो, उनका पहनना-ओढ़ना, खाना-पीना सब कुछ कितना अलग है? कितना बदला हुआ है?···

यह सब कहानी सुनकर भी बिलैयाह चुप रहा तो सुन्दरम्मा ने स्वर में मिठास भरकर पूछा—क्या तुम्हें अपने देश की तरफ काम नहीं मिल सकता? मुझे यहां बुरा लगता है!

—अपना देश तो यह भी है। – बिलैयाह ने जवाब दिया—पर यह अपना गांव नहीं है, यहां अपनी भाषा नहीं बोली जाती, इसीलिए शायद तुझे कुछ बुरा लगता है।···खैर, फिर भी तू चाहेगी तो मैं मद्रास की ओर काम ढूंढ़ता रहूंगा। जब तक वहां काम नहीं मिल जाता, तब तक तो यहीं रहना पड़ेगा!

सुन्दरम्मा ने उसकी बात का कोई उत्तर नहीं दिया। वह रोज की तरह अपने काम में लग गई। बिलैयाह थोड़ा आश्वस्त हुआ। उसे लगा कि सुन्दरम्मा की पीड़ा कुछ कम हो गई है। फिर भी वह चिन्तित हो गया था—अगर यों ही सुन्दरम्मा घुटकर रोती रही, तो वह मर जाएगी!···पर काम? किसी जगह के जमे-जमाए काम को छोड़ देना आसान नहीं है। नया काम मिलने में कितनी दिक्कत होती है। न जाने कब तक बिलैयाह यही सब कुछ सोचता रहा था।

सुन्दरम्मा को याद है कि उस दिन बिलैयाह ने मद्रास की तरफ ही काम ढूंढ़ने का आश्वासन दिया था। वह जरूर कोई काम ढूंढ़ रहा होगा। यह वह भी अच्छी तरह जानती है कि आजकल काम मिलना इतना आसान नहीं होता, फिर मनचाही जगह पर काम मिलना तो और कठिन है। इसी प्रकार दिन कटते जा रहे थे। वही ऊब और रोजमर्रा की घुटन, पर बिलैयाह का आश्वासन सुन्दरम्मा की हर उदासी को आशा-किरण से धो रहा था।

वह बात हुए महीनों गुजर गए हैं। सुन्दरम्मा को जिस प्रकार अपनी घुटन का हर क्षण याद है, वैसे ही उसे आशा का हर इशारा याद है। यादों के सहारे ही उसका यह मौन कटता है। सुन्दरम्मा रोज-रोज पुरानी यादें करती है और अपना मौन काटती है।

उसे उस समय की बात याद है जब वह पहले-पहल इस शहर में आयी थी। बिलैयाह तो बहुत पहले ही यहां आ गया था। उसने पहले से ही मकान किराए पर ले लिया था, फिर सुन्दरम्मा को ले आया था। स्टेशन से उतरकर वे रिक्शे में सवार हुए थे और वहीं से सुन्दरम्मा के जीवन में अलगाव और ऊब ने घर कर लिया था। वह रास्ते भर विस्मय से इस नये शहर की सड़कें और दुकानें देखती गई थी। उस समय वह सोच रही थी—सफर के इन अठारह घंटों में जिन्दगी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कितनी बदल गई है ! उसे लग रहा था जैसे वह किसी दूसरे देश में आ गई हो। या यों जैसे वह कोई ऐसा स्वप्न देख रही हो, जिसमें सब कुछ अजूबा और तिलिस्मी होता है। वह सड़कों पर पैदल चलते मर्द-औरतें देख रही थी और इस रद्दोबदल पर विस्मय की सैकड़ों फुट ऊंची-नीची समुद्री लहरों में उछल-गिर रही थी। एकदम अनजान और अपरिचित ये लोग ! इनमें कितना वीरानापन है ! उसने सोचा—उसके गांव में लोग धोती पहनते हैं, निहायत सरल ढंग से। कभी वह तहमद की शक्ल में पैरों के नीचे तक घेरे रहती है और कभी घुटनों के ऊपर तक लिपटी रहती है। आदमी किसी काम में जल्दी हो या उसे क्रोध आ जाए तो वह उसे नीचे से उठाता है, उल्टी करता है, और घुटनों तक बांध लेता है। वैसे, यहां के लोग भी धोती पहनते हैं। पर वह अपने लोगों से कितना अलग है ? न जाने कितनी सलवटों के साथ, एक पैर के लिए अलग, दूसरे पैर के लिए अलग। यह बल खिलाकर पहनी जाने वाली धोती सुन्दरम्मा को बड़ी अजीब-सी लगी थी, जैसे वह धोती ही नहीं है···उसने इस नये शहर की औरतों का पहनावा देखा था, फिर अपने कपड़ों पर नजर डाली थी—कितना अलगाव है ? उसे कुछ विस्मय हुआ, कुछ खीझ भी आयी। कैसी औरतें हैं ? ये भी लगभग उसी ढंग की धोतियां पहने हुए हैं, जैसे उनके मर्द पहनते हैं। उसके देश में धोती अलग ढंग से पहने हुए है···सुन्दरम्मा चकित हो गई थी। उसे लगता था कि वह न जाने कहां आ गई है ? उसके मन में उसी दिन से यह सवाल पैदा हो गया था। कई दिन तक वह इस सवाल से ही नहीं, इस अलगाव से जूझती रही थी। उसे लगता था, इस नयी जगह उसे पुरानी कोई बात नहीं मिलती। बिलकुल नहीं मिलती।···

महीने गुजर गए, और वे सवाल घिसकर पुराने पड़ने लगे थे। सुन्दरम्मा की आंखें इस अलगाव के साथ लगाव करने की अभ्यस्त होने लगी थीं, पर बोलचाल की समस्या लगातार जिन्दा थी। और सुन्दरम्मा इस बात पर कोई समझौता करने के लिए तैयार नहीं थी।

हर रोज जब बिलैयाह काम से लौटता, सुन्दरम्मा बड़ी आशा के साथ उसे निहारती-देखती – सोचती कि शायद वह बताएगा, "मुझे काम मिल गया है ! अब हम मद्रास चलेंगे !"···

उस दिन भी जब बिलैयाह काम पर चला गया तब सुन्दरम्मा ने हर रोज की तरह यही सोचा कि शायद आज काम से लौटकर बिलैयाह कहेगा कि मुझे मद्रास में काम मिल गया है···

उसने एक लम्बी सांस ली, देहरी से हटी। कमेटी के नल से पानी ले लेने का समय हो गया था। सुबह केवल दो घंटे चलता है यह नल और दो घंटे शाम। इसी बीच उन लोगों को अपना सारा पानी भर लेना होता है, जिनके घरों में नल नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होते। सुन्दरम्मा को पानी भरना था। उसने खाली बर्तन उठाए और नल पर आ गई। यहां भीड़ थी—और भी औरतें थीं, जो पानी भरने खड़ी हुई थीं—सुन्दरम्मा भी उन्हीं में खड़ी थी, पर न जाने क्यों वह उस भीड़ से अपना अस्तित्व अलग महसूस कर रही थी। फिर वही अलगाव, खाने-पहनने, बोलने का अलगाव! कितनी दूभर है यह जिन्दगी! सुन्दरम्मा ने सोचा, और बड़े लाचार भाव से उन औरतों को देखा, जो अपने-अपने खाली बर्तन लिये, एक-दूसरे से गपशप करती हुई, आसानी से समय काट रही थीं। भूले-भटके वे औरतें उसकी ओर देख लेतीं। उनके चेहरे पर विस्मयभरे प्रश्न उभरते। सुन्दरम्मा उनकी प्रतिक्रिया अनुभव करती—न जाने क्यों उसे चिढ़ होती?

सुन्दरम्मा का नम्बर आने में देर थी, पर उसे खड़े रहना था। जिन्दगी में ऊब बर्दाश्त की जा सकती है, पर प्यास नहीं!

—तुम कन्नड़ हो?

सुन्दरम्मा ने चौंककर पीछे देखा। एक औरत थी—वही अलगाव वाली वेशभूषा। वही सलवटों वाली धोती, पर भाषा? सुन्दरम्मा को आश्चर्य हुआ, वह कन्नड़ बोल रही थी।

—मैं तुम्हीं से पूछ रही हूं, तुम कन्नड़ हो? उसने दुबारा सवाल किया।

—हां! उसी तरह विस्मय और परेशानी के बीच सुन्दरम्मा ने कन्नड़ में कहा—तुम कन्नड़ जानती हो?

—हां!

—तुम हिन्दी भी जानती हो? आश्चर्य से सुन्दरम्मा ने सवाल किया।

—हां।

सुन्दरम्मा ने अचरज से उसे नीचे से ऊपर तक देखा। उस औरत के कपड़ और उसका पहनावा सब-कुछ अलग, फिर भी सुन्दरम्मा को लगा कि जैसे वह उससे अलग नहीं है। उसने पहली बार अनुभव किया—वह भीड़ में मिल गई है। वह अकेलेपन का बोध न जाने कितनी दूर चला गया है उससे। और फिर वह देर तक उससे बातें करती रही। कितनी अच्छी औरत है यह! कितने प्यार से बोलती है!

जब सुन्दरम्मा पानी भरकर लौटी, तब उसी के बारे में सोच रही थी। उसने सारे दिन उसी के बारे में सोचा। खूब सोचा। वह इस गली में नयी आयी है··· पर सुन्दरम्मा को लगा, जैसे अर्से से वह उसकी साथी है, पड़ोसिन है।

—वही तो मुझे बतलाना था—बिलैयाह ने उत्तर दिया—अभी मिला तो नहीं है, पर खबर आयी है कि मिल सकता है।

सुन्दरम्मा हंस पड़ी।

बिलैयाह को लगा कि सुन्दरम्मा उसकी बात पर अविश्वास से हंसी है। यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हंसी एक व्यंग्य है। उसने फौरन कहा—सच मान ! जल्दी ही काम मिल जाएगा, फिर हम चलेंगे मद्रास !

सुन्दरम्मा और जोर से हंसी। पूछा— यहां से जमा-जमाया घर ले जाते कितनी तकलीफ और खर्च होगा ?

शाम को काम से लौटा बिलैयाह। सुन्दरम्मा आज खुश थी, बहुत खुश। उसने कहा—तुम्हें अब तक काम नहीं मिला मद्रास की तरफ ?

—वह तो होगा ही। बिलैयाह ने निराश भाव से कहा—पर तेरी खातिर करना पड़ेगा ! तुझे यहां परदेस-जैसा लगता है न ?

—अब कोई जरूरत नही है। सुन्दरम्मा ने उत्तर दिया—मुझे वैसा कुछ नहीं लगता।

बिलैयाह ने अवाक्-साश्चर्य उसकी ओर देखा।

सुन्दरम्मा हंस रही थी, और कह रही थी—आज मैंने एक औरत से दोस्ती की है। वह इधर की ही है, इधर वालों-जैसे कपड़े पहनती है, पर कन्नड़ बोलती है। यों लगता है जैसे वह अपने में से ही है।

बिलैयाह मुसकराया और बोला— तो फिर तू उससे हिन्दी सीख ले, फिर तू भी उसे अपनी जैसी ही लगेगी।

— यही मैंने सोच लिया है—सुन्दरम्मा ने जवाब दिया—वह तो हिन्दी और कन्नड़ दोनों जानती है। उसे तो मैं अब भी उसकी जैसी ही लगती हूं। मेरी ही परेशानी थी—मुझे सब अलग-अलग लगता था, पर उसकी बोली सीख ली तो नहीं लगेगा। है न ?

बिलैयाह हंस दिया। आश्वासन और हर्ष से डूबी हंसी।

१९६४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह सांवला बादल

कैलाश ने उसे सबसे पहली बार 'आन मिलो' के सेट पर देखा था। सीन था एक पब्लिक नल का, जहां बहुत-सी औरतें अपने-अपने बर्तन लेकर जमा हैं। कच्चे घड़े से लेकर पीतल के हण्डे तक, और बाल्टी से कनस्तर तक। यहां डायरेक्टर साहब ने भावात्मक एकता बतलायी थी। कुछ एक्स्ट्राज को पंजाबी वेशभूषा में पेश किया था, कुछ को बंगाली और कुछ को ठेठ महाराष्ट्रीयन कपड़े पहनाये गये थे। कैलाश ने उसे सबसे पहली बार यहीं देखा था। वह महाराष्ट्रीयन साड़ी पहने हुए थी, और इस पहनावे में उसका गठा बदन लगभग फटा पड़ता था। कैलाश देर तक उसे देखता रहा था, यों जैसे ईश्वरीय शिल्प का चमत्कार देख रहा हो। बाद में जब सीन शॉट हो चुका, तो तमाम एक्स्ट्रा लड़कियां थकान मिटाने स्टूडिओ के बाहर वाले हिस्से में यहां-वहां जा बैठी थीं। कैलाश कई-कई बार टहलता हुआ वहां से निकला था। उसने उसे ढूंढने की चेष्टा भी की थी। पर वह न जाने कहां चली गयी थी?···फिर वह बात आयी-गयी हो गयी। कैलाश लगभग भूलने लगा था और तभी उसने उसे दोबारा देखा।

इस बार वह नये वेश में थी। उसे एक नर्स का रोल अदा करना था। उसने नीचे से ऊपर तक सफेद कपड़े पहन रखे थे। यों सफेदी अजीब-सी सात्विकता का इम्प्रेशन देती है, पर वह सफेद कपड़ों के बावजूद एक्स्ट्रा छोकरियों की भीड़ में किसी खिले हुए ताजे फूल की तरह अलग नजर आ रही थी। कैलाश को जल्दी जाना था। वह फिल्म जर्नलिस्ट था। दो दिन पहले कुछ तस्वीरें ली थीं उसने, आज वे प्रिण्ट होकर मिलने वाली थीं। मिलते ही कैलाश को उन्हें एक मैगजीन को पोस्ट कर देना था, ताकि वे उसके एकदम नये अंक में प्रकाशित हो जाएं, पर जब उसने उसे देख लिया, तो न जाने क्यों वहां से हटने की उसकी तबीयत नहीं हुई थी। उसने प्रोग्राम कैंसिल कर दिया और देर तक वह स्टूडिओ में यहां-वहां पर चहलकदमी करता हुआ उस पर चोर नजरें डालता रहा।

यह चोरी करते वह न जाने कहां-कहां तक सोचता गया। उस लड़की के चेहरे-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मोहरे से लगता था, जैसे उसे स्टूडिओ की जिन्दगी कबूले अधिक दिन नहीं हुए। यह बात उसने कई पहलुओं से देखने-सोचने के बाद पुख्ता की। सबसे पहली बात तो उसने यही देखी कि वह तमाम एक्स्ट्रा लड़कियों की तरह किसी भी मर्द से बात करने की अभ्यस्त नहीं थी। दो घंटे से लगातार कैलाश उसकी हर गति-विधि पर नजर रखे हुए था, न तो उसने अब तक तम्बाकू खायी थी, न सिगरेट या बीड़ी पी थी। वह अपनी साथिन एक्स्ट्राओं में भी घुली-मिली नहीं थी। डायरेक्टर उसे बुलाता और जहां जैसी खड़ी कर देता, वह बगैर बोले-चाले खड़ी रहती। दो-एक बार कैलाश की नजरें भी उसकी आंखों में टकरायीं थीं, और उसने कुछ झेंप और कुछ उपेक्षा के भाव से हर बार या तो आंखें झुका ली थीं, या यहां-वहां देखने लगी थी।···कैलाश का विचार पुख्ता हो गया— अभी नयी है। कैलाश का मन हुआ था, किसी से जानकारी करे—कौन है? क्या नाम है उसका? यहां बहुत से लोग कैलाश को अच्छी तरह जानते थे। पिछले दस सालों से यही धंधा कर रहा था वह। शुरू में उसे यहां-वहां जाकर परिचय देना पड़ता था, फिर यह मुसीबत खत्म हो गयी थी। करीब-करीब तीन हिस्से फिल्म इण्डस्ट्री में उसे अच्छी तरह जाना जाता था, और इज्जत मिलती थी। कई बार कैलाश का मन हुआ, उसके बारे में किसी से पूछताछ करे, पर हर बार उसने यह ख़याल घोंट लिया। कुछ ठीक नहीं लगता। वह चुपचाप अपनी जगह बैठा हुआ उसे देखता रहा था।

सीन शॉट हो जाने पर जब वह कपड़े बदलने और एक्स्ट्रा लड़कियों के साथ कमरे में चली गयी, तब कैलाश ने अपनी जगह छोड़ दी। वह कमरे के बाहर वाले हिस्से में चहलकदमी करता रहा। न जाने क्यों वह उसके प्रति एक विचित्र-से आकर्षण में बंध गया था। एक बार फिर इच्छा हुई थी उसकी—किसी से पूछ ही डाले, क्या होता है?···पर मन के किसी कोने से फिर संकोच उभरा था और कैलाश को फिर खयाल छोड़ देना पड़ा। एक बार तो उसे लगा, वह बेवकूफ है। व्यर्थ ही उसने ढाई घंटे बरबाद कर दिये। बम्बई की व्यस्त जिन्दगी अगर यों चेहरों के मोह में जी जाय, तो आदमी कुछ नहीं कर सकता। कैलाश ने पिछले दस साल बम्बई की और फिर फिल्मी जिन्दगी जी है पर किसी बार ऐसी बेवकूफी नहीं की। उसने दिमाग पर अनचाहे ही सच्चाई का यह बुर्का डालना चाहा, पर न जाने क्यों वह वहां से हट नहीं सका। उसने एक सिगरेट निकाली और जला कर जहरीला धुंआं दिल की गहराइयों तक उतार लिया। अभी वह पैकेट वापस जेब में डालने ही वाला था कि सामने से साबक चाचा आता दिखलायी दिया। वह एक्स्ट्रा-सप्लायर था और बीसियों साल से इस सुनहरी दुनिया की जन्मपत्री लिखता आ रहा था। चेहरे-मोहरे से अजीब-सा इम्प्रेशन देने वाला साबक चाचा कपड़े शानदार पहनता था और बात बोदे ढंग से करता था। उसने आते ही जब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कैलाश के सामने पान-तम्बाकू में डूबे दांत निपोरकर कहा—"कैलाश साब !" तो कैलाश ने फौरन सिगरेट का पैकेट उसकी ओर बढ़ा दिया ।

साबक चाचा ने बेतकल्लुफी से पैकेट से एक सिगरेट खींचा और अपनी जेब की माचिस निकालकर जला लिया । धुएं के गुबार के साथ ही उसने बात उगली—"बड़ा बोगस स्टूडिओ है, मास्टर ! इधर जो-जो फिल्म शॉट हुआ है, फेल हो गया !"

कैलाश ने मुसकरा भर दिया । वह जानता है, साबक चाचा की किसी बात का जवाब दिया जाये, तो फिर वह उसे रबर की तरह खींचता चला जाता है—तब तक, जब तक कि वह टूट न जाए ।

कैलाश ने मौका नहीं दिया था, फिर भी आदत के अनुसार साबक चाचा ने बात खींची—"इस बार तो ये स्टूडिओ ही नहीं, फिल्म भी बड़ा बोर वाला शूट हो रहा है, कैलास साब ! छोकरा एक लगता है, छोकरी बीस लगता है । कहां तक छोकरी लोग सप्लाई किया जायेगा । साब ! मैं तो परेशान आ गया हूं ।"

कैलाश ने पुनः कोई जवाब न देकर एक मुसकान साबक चाचा को दे दी । वह चाहता था, साबक चाचा जल्द-से-जल्द उसका पीछा छोड़ दे । उसने एक नजर घुमाकर उस दरवाजे की ओर देखा, जिसमें अभी-अभी वह अजनबी लड़की समा गयी थी । अब वह निकलने को ही होगी और यह साबक चाचा···।

साबक चाचा को जवाब न मिले तो उसकी आदत है, बात भी खुद करता है, जवाब भी खुद देता है । कहने लगा—"छोकरी लोग को सम्हालना आसान काम नहीं है, साब ! तीन सौ किस्म का फैशन करता है और तीन हजार किस्म का नखरे मारता है । और जरा कोई सीने की तरफ घूरकर देख ले, तो समझता है, स्साला वह ही हीरोइन है । दो घंटे तक हीरोइन ही रहता है । चलेगा हीरोइन के माफिक, बोलेगा हीरोइन के माफिक !"

कैलाश को क्रोध आया । इस बार वह चाहकर भी मुसकरा न सका । उसने बेचैनी से उस दरवाजे की ओर देखा । वह फिलहाल सूना था ।

साबक चाचा कह रहा था—"और जो नया छोकरी आता है, साब ! वह स्साला एकदम मीनाकुमारी होना मांगता । जब दस-पांच स्टूडिओ का धक्का खाता है न, साब, तो ढुंढेरा मचाता है—'साबक चाचा कूं मिलना है ।' साबक चाचा भौत साफ बात करता है, छोकरी उसके सामने आया कि उसने बोला—नई-नई···स्साली तुमेरा बाप मीनाकुमारी नई हो सकता !"

कैलाश को शायद और वक्त होता, तो हंसी आ जाती, पर न जाने क्यों उसे हर अगले क्षण साबक चाचा की मौजूदगी एक पुराने घाव के दर्द की तरह कसकने लगी । मन हुआ था, साफ-साफ कह दे—तुम अभी मुझे बख्श दो···पर उसने नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहा। साबक चाचा काम का आदमी है। कैलाश ने सैकड़ों बार उसके जरिये कई काम निकाले हैं।

साबक चाचा ने सिगरेट फेंक दी। कैलाश को लगा था, अब वह चला जायेगा, पर जल्दी ही उसे निराश होना पड़ा। साबक चाचा बजाय जाने के 'स्टैण्ड ईज' के पोज में खड़ा हो गया। उसने दोनों हाथ एक-दूसरे से बांधकर छाती पर धर लिये, बात फिर खींची—"और सुनाओ, कैलाश साब! तुम्हारे परचे का क्या हाल है?"

कैलाश ने बेहद संक्षिप्त-सा जवाब दिया—"ठीक है।" और फिर एक गहरी श्वास खींचकर व्यर्थ ही इधर-उधर नजरें दौड़ायीं। एक ओर टूटे हुए कागज के सेट पड़े हुए थे, दूसरी ओर नया सेट तैयार हो रहा था। एक टूटी कुर्सी पर किसी राजा की पोशाक पहने हुए कोई एक्स्ट्रा बैठा बीड़ी धौंक रहा था। उसके नजदीक ही थुल-थुल और बेडौल बदनवाली कुछ लड़कियों का झुण्ड खड़ा था। कैलाश ने देखा—न उन्हें शरीर की परवाह थी, न कपड़ों की। एक जवान एक्स्ट्रा लड़की किसी चलतू मर्द से कोने में खड़ी, सिगरेट पीते हुए निहायत बेतकल्लुफी से बातें कर रही थी। कभी उसके कूल्हे हिलते, कभी आंखें। उसकी छातियां एक ढलवां रोड की तरह थीं, फिर भी वह हर क्षण इस फुर्ती से हिल-डुलकर बात कर रही थी, जैसे उसमें काफी जिन्दगी है। कैलाश देर तक यों ही निरर्थक इधर-उधर देखता रहा। यों यह सारी जिन्दगी और तस्वीरें उसके लिए अजूबा नहीं थीं, फिर भी उसने उन्हें इस भाव से देखना जारी रखा, जैसे पहली बार देख रहा है। वह चाहता था, इस उपेक्षा से साबक चाचा टल जायेगा, पर यह महज उसका खयाल था। साबक चाचा न जाने कितनी फुरसत में था। वह ज्यों का त्यों खड़ा रहा। उसने एक नयी बात प्रारम्भ कर दी—"वह जो कोने वाला छोकरी है न, साब!" साबक चाचा उसी लड़की के बारे में कह रहा था, जो किसी मर्द से बड़ी अजीजी से बात करने में मशगूल थी, "पंजाबी छोकरी है। ये भी स्साली शुरू-शुरू में निम्मी होना मांगती थी। मेरे कू मिली, तो कहने लगी, 'मेरा आंख बिलकुल निम्मी के माफिक है; बल्कि उससे भी बीस हैं।...' मैंने इसको बोल दिया—'तुम्हारा आंख निम्मी के माफिक हो, चाहे नाक नसीम के माफिक हो, पर तुमको काम मिलेगा चार रुपया रोज का। हमको तुम्हारा आंख-नाक नई होना। आंख-नाक होना डायरेक्टर को! तुम्हारा तकदीर उसकी मुट्ठी में बंद है!"

अब कैलाश बेहद ऊब उठा। उसने निर्णय किया, अगर साबक चाचा नहीं टला तो कैलाश उससे खुद विदा ले लेगा।

साबक चाचा फिर बोलने को हुआ था, पर एकाएक ही रुक गया। उसने हंसते हुए एक ओर इशारा किया—"आओ-आओ।" कैलाश ने लौटकर देखा, तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसके दिल की धड़कन बढ़ गयी। साबक चाचा उसी लड़की को बुला रहा था, जिसकी कैलाश को प्रतीक्षा थी।

वह सामान्य चाल में आ रही थी। उसने मेकअप उतार दिया था और अब सफेद साड़ी और काला ब्लाउज पहने हुए थी। उसके बाल गहरे काले थे और वे सिर के बीचोंबीच से माथे के दाएं-बाएं किसी दरवाजे पर दो ओर से बांधे गये परदे की तरह खिंचे हुए थे। जब वह नजदीक आ गयी, तो साबक चाचा का फिर बोलना शुरू हो गया—

"कैलाश साहब !" उसने कहा—"तुमने बहुतेरा इण्टरव्यू लिया है। तुम्हारा कैमरे ने कभी मीनाकुमारी का अक्स कैद किया है, कभी वहीदा रहमान का, पर हमेरा बेलाबाई भी कम नहीं है।" यह कहते हुए साबक चाचा ने पास आ गयी उस लड़की के कंधे पर हाथ रख दिया। कैलाश को कुछ अजीब-सा लगा। उसने हैरानी से कभी साबक चाचा के दुचे कनस्तर-जैसे मुंह और कभी बेला के चेहरे की ओर देखा। वह अब समझ पाया था, साबक चाचा देर तक क्यों नहीं टला था। उसने एक क्षण में साबक चाचा और बेला दोनों की ही मनःस्थितियां भी समझी थीं। साबक चाचा ने जब उसके कंधे पर हाथ रखा, तो वह जैसे अजीब ढंग से सिकुड़-सी गयी थी। उसके चेहरे पर संकोच का कुछ विचित्र-सा बादल तैरने लगा था। उसने एक बार कैलाश की ओर नजर उठायी भी थी, और क्षण भर में ही वह पलक झुकाकर नीचे की ओर देखने लगी थी।

"बेलाबाई !" खीसें अजीब भोंडेपन के साथ निपोरकर साबक चाचा से उसे परिचित कराया—"ये कैलाश साब हैं। कई अंग्रेज़ी-हिन्दी परचों के लिए एक्टर-एक्ट्रेस लोक का फोटो भी खींचता है, इन्टरव्यू भी लेता है। बड़ा जालिम फोटो खींचता है। बड़ा मारू चीज़ लिखता है।" फिर उसने बेला के बारे में कैलाश को जानकारी देनी चाही —"ये बेलाबाई है···।" कैलाश ने बात तोड़ दी —"मैं जानता हूं।"

बेला ने जब परिचय पाकर नमस्ते की, तो कैलाश ने अनुभव किया था, उसके हाथ कांप-से रहे थे—यों जैसे उसका हर नया परिचय अपने पीछे कोई आतंक छिपाये लाता है। कैलाश बराबर उसकी ओर देखता रहा था, और एक अनुभवी फिल्म-पत्रकार के नाते उसने जल्दी ही समझ लिया था कि लड़की एकदम नयी है, एक-दम ताजा और फिल्मी जिन्दगी के जाले तोड़ने की कोशिश कर रही है। वह जानता है, फिल्म लाइन में हर कदम पर किसी भी नयी आर्टिस्ट के सामने एक बड़ा मकड़ा होता है, और रास्ता रोके हुए उसका जाला तना रहता है। बगैर उलझे अगला कदम बढ़ ही नहीं सकता।

साबक चाचा ने कहा—"बड़ा सेंसेटिव छोकरी है, कैलाश साब ! इट इज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओनली चांस ! बेलाबाई फिल्म लेन में आ गया है, वर्ना ये तो किसी मंदर में मूरत होना था । लोक इसका पूजा करता, फूल-पत्तर चढ़ाता ।"

कैलाश ने हंसने का अभिनय कर साबक चाचा की बात में पसन्दगी जाहिर की । वह बेला को देख रहा था, जो इतनी देर हो चुकी थी, एक शब्द नहीं बोली थी । साबक चाचा बोलता, तो हर शब्द के साथ उसके चेहरे पर चौंकने के भाव उभरते, इस तरह जैसे साबक चाचा उसके बारे में जल्दी ही कोई बेशर्म टिप्पणी करने जा रहा है, या वह उसके किसी रहस्य से पर्दा उठा रहा है । हर क्षण कैलाश का मन हुआ था, कुछ कहे पर हर बार वह खुद संकोच के कुहासे में डूब गया था, क्या कहे ?

साबक चाचा ने कहा—"तुम बड़ी-बड़ी एक्ट्रेस का फोटो लेता है । स्टोरी लिखता है । कभी हमेरा बेलाबाई के लिए भी कुछ करो न ! साबक चाचा हर छोकरी का सिफारिश नहीं करता, वह उस छोकरे का सिफारिश करता है, जो दिलीपकुमार बनने वाला है; वह उस छोकरी के बारे में बोलता है, जो साधना बनने वाला है···।" वह बगैर फुलस्टॉप कहे गया—"कैलाश साहब ! अब तुम जिनका इन्टरव्यू लिये डोलता है न, वह सब-का-सब फिल्म इंडस्ट्री में आते ही हमेरा तलवा चाटा था । हमेरा बटर किया था । हमने उनका सिफारिश मारा, और सब-का-सब दनदनाकर फिल्म लेन का सातों मंजिल चढ़ गया ।"

कैलाश ने देखा, साबक चाचा की किसी बात ने बेला के चेहरे पर मुसकान की रेखा नहीं उभारी थी । साबक चाचा फिर कुछ कहने वाला था, पर तभी कैलाश ने हिम्मत साधकर बेला का मौन कुरेद दिया—"आप इस वक्त किसी फिल्म के इम्पार्टेण्ट रोल में हैं क्या ?"

बेला चौंकी—इस तरह, जैसे कैलाश ने सवाल नहीं किया था, उसके सीने पर हाथ धर दिया था । बेला जब तक जवाब के लिए तैयार हो, साबक चाचा पुनः एक रेकार्ड की तरह बज उठा—"हां, कैलाश साब ! बेलाबाई को अरोड़ा साब ने बड़ा इम्पार्टेण्ट रोल दिया है । यह उसके नये फिल्म में हीरोइन का सहेली बना है । दस मिनट के लिए पर्दे पर इसकूं चांस मिला है । ये इसमें हीरोइन को छेड़ता है । उससे उसके लवर कूं लेकर मजाक करता है ।···ये हीरोइन को बोलता है, हम तुमको तुम्हारे प्यारे से मिलवा देगा । बड़ा इम्पार्टेण्ट रोल है । अरोड़ा साहब शक्ल से भोंडा हो, पर आदमी दिल का मक्खन सरीखा है ।"

कैलाश ने अपनी आंखें बेला के चेहरे पर गड़ाये रखीं, और हर क्षण उसने देखा, बेला के चेहरे पर उदासी का सांवलापन ज्यों का त्यों रहा था । यह सच-मुच बड़ी अजीब बात थी कि इतना अच्छा रोल मिलने के बावजूद बेला का चेहरा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बेरौनक था। कैलाश को लगा, जैसे बेला फिल्म इण्डस्ट्री के मकड़ी-जालों से जूझ रही है। कैलाश का मन हुआ था, फिर कोई बात करे, पर साबक चाचा की मौजूदगी बेला के इर्द-गिर्द एक और जाले की तरह थी, जिसे न कैलाश तोड़ सकता था, न बेला। लाचार, बड़ी औपचारिकता के साथ कैलाश ने घड़ी देखी, नकली हंसी हंसकर और न ठहर पाने के लिए क्षमा-प्रार्थना की, और वहां से विदा हो लिया। मेनगेट से पार होते समय उसने एक बार लौटकर पीछे देखा था। बेला के कंधे पर उसी तरह हाथ रखे हुए साबक चाचा एक ओर चला जा रहा था, और बेला इस तरह उसके साथ खिंची जा रही थी, जैसे साबक चाचा ने नया कुत्ता पाला हो।

मेनरोड पर बस-स्टैण्ड तक आते-आते और फिर सिटी बस में चढ़कर कैलाश देर तक कभी बेला और कभी साबक चाचा के बारे में सोचता आया था। उसे रह-रहकर बेला के गोरे चेहरे पर उदासी-उभरे सांवलेपन का ख़याल होता, उसकी सिहरन याद आती जो साबक चाचा के हाथ ने उसके सारे जिस्म में पैदा की थी, और फिर उसकी झुकी पलकों या बोलने की आदत का ख़याल आता। कुल मिलाकर कैलाश को लगता, जैसे वह बेला से नहीं मिला, किसी ऐसे रहस्य के नजदीक आ पहुंचा है, जिसमें अनेक दुर्घटनाएं छिपी हैं। और साबक चाचा···? कैलाश के सामने उसके व्यक्तित्व का हर कोना साफ था। वह एक्स्ट्रा-सप्लायर होने के अलावा बड़े-बड़े डायरेक्टरों-प्रोड्यूसरों का दलाल है। उनकी अंधेरी रातों में रोशनियां जलाने का काम करता है। यों आये दिन इस दुनिया में कैलाश ने मर्द-औरतों के सैकड़ों जिस्मी तिलिस्मी टूटते-बनते देखे थे। बेला निश्चय ही उनसे अलग नहीं थी, फिर भी न जाने क्यों कैलाश अनचाहे ही उसके प्रति विचित्र-सी सहानुभूति से भर आया था। उसने सैकड़ों ही बार बेला और उसके आस-पास के वातावरण के विचारों की ओर से उदासीनता बरतनी चाही, पर अजीब बात थी, जैसे-जैसे कैलाश ने यों सोचा वह पूर्वापेक्षा उसके और नजदीक होता गया।

फिर कई दिनों तक कैलाश बेला को नहीं देख सका था। इधर कुछ दिनों वह स्टूडिओ के चक्कर भी नहीं लगा सका था। जितने फोटोग्राफ और इण्टरव्यू नोट्स उसके पास जमा थे, उन सबको सिलसिलेवार भेजकर उसे पत्र-पत्रिकाओं की मांग पूरी करनी थी। लगभग एक सप्ताह बाद फिर नये कार्यक्रमों में व्यस्त हुआ। इस पहले दौरे में ही उसने बेला को पुनः देखा। इस बार न वह अकेली थी, न साबक चाचा उसके साथ था। कैलाश ने स्टूडिओ के अहाते में प्रवेश किया ही था कि उसने देखा, बेला डायरेक्टर अरोड़ा के साथ उसकी कार के नजदीक खड़ी थी। कैलाश जब नजदीक से गुजरा तो अरोड़ा ने बुला लिया—"अरे भई कैलाश !"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कैलाश उन दोनों के बीच नहीं आना चाहता था, पर जब अरोड़ा ने आवाज ही मार दी, तो उसे पहुंचना पड़ा। कैलाश पहुंचा, किन्तु उसने न बेला को अभिवादन ही किया और न उससे बात ही की। वह जाते ही अरोड़ा से बातों में उलझ गया। हालांकि बेला और उसकी आंखें मिली थीं, और बेला ने आंखों ही आंखों में एक चमक पैदा कर उसके आगमन का स्वागत कर दिया था। अरोड़ा से बहुत थोड़ी बातचीत हुई। वह चाहता था, कैलाश उसकी नयी फिल्म की हीरोइन के बारे में कुछ लिखे, जिसे वह एकदम, पहली बार फिल्म में पेश कर रहा था। कैलाश ने वायदा दिया और इधर-उधर की संक्षिप्त-सी बातचीत के बाद वहां से हट गया। वह आगे जाकर, कैमरे को खोलकर साफ करने के बहाने बेला को देखता रहा। हमेशा की तरह वह लगभग नहीं के बराबर बोल रही थी, और अरोड़ा था कि कभी खीसें निपोरकर और कभी हाथ-पैर हिलाता हुआ उससे लगातार बातें किये जा रहा था। अधिक देर तक स्थिति वैसी नहीं रही थी। कैलाश ने देखा, अरोड़ा ने बेला के कंधे से गला लपेटकर बांह डाली और फिर दाएं हाथ से कार का अगला गेट खोलकर उसे भीतर पहुंचाया, फिर खुद कार ड्राइव करता हुआ स्टूडिओ से बाहर हो गया। कैलाश ने गहरी श्वास खींचकर कैमरा बंद कर दिया और बेला का ख़याल दिमाग में उलझाये हुए अपने काम में लग गया।

रहस्य के परदे और घने हो गये थे। कैलाश जो कुछ देख रहा था, रहस्य वह नहीं था, बल्कि वह रहस्य के उन परदों में बन्द हो गया था, जिनके पीछे बेला के यहां तक आने और प्रारम्भिक जाले तोड़ने की कहानी छिपी हुई थी।

इस बीच उसने करीब-करीब हर दूसरे-तीसरे दिन बेला को देखा। कभी वह अरोड़ा के साथ होती, तो कभी मूलजी भाई स्टण्ट फिल्म प्रोड्यूसर के साथ। किन्तु चेहरा वही का वही। बोलचाल में, स्वभाव में जरा हेर-फेर नहीं। इस बीच कैलाश से हुई हर मुलाकात में बेला ने आंखों ही आंखों में आदत के अनुसार कभी उसका स्वागत किया था, कभी अभिवादन, किन्तु बात किसी बार नहीं हुई। हालांकि दोनों ही यह अनुभव कर रहे थे, जैसे वे एक-दूसरे को खूब समझते-पहचानते हैं। बहुत नजदीकी हैं। एक बार बेला एकान्त में नजर भी आ गयी थी कैलाश को। वह स्टूडिओ के उस हिस्से में बैठी हुई थी, जिधर काफी टूटे-फूटे सेट्स पड़े थे। कैलाश ने सोचा था, बात करने का मौका अच्छा है। वह उधर बढ़ने ही वाला था कि अरोड़ा कार लेकर आ खड़ा हुआ। कैलाश से हवाई अभिवादनों का आदान-प्रदान हुआ, और फिर हमेशा की तरह बेला उसके साथ कार में बैठकर कहीं चली गयी।

बेला की आंखों के मौन अभिवादनों ने कैलाश को डगमगा दिया। उसका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हर दिन अजीब-सी उदासी और बेचैनी से भर गया। उसे लगा, जैसे वह खुद किसी जाले के सामने आ खड़ा हुआ है, और हर क्षण उसने अनुभव किया, जैसे वह उस जाले को अपने दिमाग से तोड़ देने में असमर्थ है। एक बार, सिर्फ एक बार, उसे उस एकान्त की प्रतीक्षा थी, जब वह बेला से बात करेगा। फिर कई दिन गुजर गये थे और कैलाश वह मनचाहा एकान्त नहीं पा सका था। इस बीच आकर्षण के उस जाले को निराशा के क्षण काटते रहे थे और कैलाश लगातार असमंजस, बेचैनी से घिरा रहा था।

उस दिन एकाएक ही कैलाश एकान्त पा गया था। यह उसका मनचाहा एकान्त तो नहीं था, किन्तु था एकान्त। कैलाश घर से निकला ही था कि उसने बेला को पा लिया। वह बांद्रा मेनरोड पर एक टैक्सी से उतरी ही थी कि फुटपाथ पर कैलाश से एकाएक ही भेंट हो गयी। यों औरत-मर्द उनके आसपास में आ-जा रहे थे, फिर भी यह एकान्त ही था। बड़े शहरों की अपरिचितता भीड़ में भी हर आदमी का एकान्त होती है।

वे दोनों आदत के मुताबिक एक-दूसरे को देखकर मुसकराये, फिर पहल कैलाश ने की—"नमस्ते।"

बेला ने हाथ जोड़ दिये।

कैलाश ने उतावलेपन से फिर पहल की—"अर्से बाद आपको अकेली देखा है?"

उत्तर में बेला मुसकरा दी। कैलाश ने देखा, उसकी हंसी में कोई फर्क नहीं था। वही गोरे चेहरे पर चित-परिचित सांवली हंसी।

"इन दिनों बहुत बिजी लगती हैं।" कैलाश ने कहा। वह एकाएक तय नहीं कर पा रहा था, क्या बात करे।

"हां।" इस बार बेला ने बोलकर जवाब दिया, तो कैलाश के तमाम शरीर को एक फुरहरी छू गयी—इस तरह, जैसे ठंड के मौसम में भोर की ओस-भीगी हवा ने बदन छुआ हो। कुछ क्षण कैलाश ने बेला की ओर से किसी बात की अपेक्षा की, किन्तु जब वह कुछ नहीं बोली, तो कैलाश को ही बोलना पड़ा—"आइए, कहीं बैठकर बात करें।" यह कहते हुए जब वह एक रेस्तरां की ओर बढ़ा, तो बेला बगैर कुछ कहे उसके साथ हो ली।

उन्होंने रेस्तरां में कोने वाली एक टेबिल घेर ली। जब बेरा सामने आ खड़ा हुआ, तो कैलाश ने सवाल किया—"खाने के लिए कुछ लीजिएगा?"

"जी नहीं।" बड़ी मीठी आवाज में बेला ने इनकार कर दिया, तो कैलाश ने दोबारा उसे नहीं कुरेदा। बेरे की ओर कोकाकोला की दो शीशियों के आर्डर फेंक दिये और बात प्रारम्भ कर दी—"वह इम्पार्टेण्ट रोल आपको मिला था न···?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"जी हां।" बेला खुली—"वह पूरा हो गया। अब तो फिल्म भी सेंसर हो चुकी है।"

कैलाश को उसका खुलना अच्छा लगा। बड़ी अजीजी से उसने सवाल किया, "क्या नाम है पिक्चर का?"

"हम तुमसे मिले।" बेला ने जवाब दिया।

"अजीब इत्तफाक है!" कैलाश होंठों ही होंठों में मुसकराकर बोला—"हम दोनों भी आज ही मिल रहे हैं।"

दोनों हंसे। बेला की वह हंसी कांच के एक गिलास के टूटने के स्वर-जैसी थी। कैलाश ने उन क्षणों में स्वयं को बेहद रोमांचित अनुभव किया। बातों का क्रम टूटता-सा लगा, तो उसने कोई नयी बात ढूंढ़नी चाही। पर बेला का संकोच खुल गया था। उसने कहा—"मैंने अरोड़ा साहब की नयी फिल्म के लिए काण्ट्रैक्ट साइन कर दिया है। उसमें उन्होंने मुझे साइड रोल दिया है।"

"कांग्रेच्युलेशन्स!" कैलाश ने जैसे अपना सारा उत्साह बेला की ओर उड़ेल दिया। बोला—"आप लकी हैं, वर्ना यहां तो लोग सालों ऐड़ियां रगड़ते हैं। और फिर भी तकदीर विरलों का ही साथ देती है।"···उसको अपेक्षा थी, बेला उसकी बधाइयां पाकर खुश होगी, कहेगी—'हां, बेशक मैं भाग्यवान हूं।' पर यह देखकर कैलाश का सारा उत्साह फीका पड़ गया कि बेला के चेहरे पर फिर एक सांवला बादल उतर आया है।

कुछ क्षण दोनों ही ओर से चुप्पी रही। कैलाश कोकाकोला की शीशी पर झुका रहा और बात के किसी नये सिरे की तलाश में रहा, जो एकाएक विचित्र ढंग से टूट गयी थी। इस तरह, जैसे डोरे की एक पिण्डी से डोरा निकलता गया हो, निकलता गया हो, फिर एकदम टूट गया हो।

"अब है इण्टरव्यू का मजा।" कैलाश बोला—"मैं आपकी एक कलर्ड ट्रांसपेरेंसी और कुछ ब्लैक एण्ड व्हाइट पोज किसी मैगजीन में भेज दूंगा। अच्छी पब्लिसिटी रहेगी···।"

वह आगे भी कुछ कहता, किन्तु बात बेला ने झटक ली, बोली—"आप तो बड़ी-बड़ी हीरोइनों के इण्टरव्यू लेते हैं, कैलाश बाबू! मेरे लिए समय निकाल पाएंगे?" उसके स्वर में बहुत संजीदगी थी। निश्चय ही वह कैलाश का भरोसा नहीं कर पा रही थी। कैलाश ने अनुभव किया। उसने फौरन भरोसा दिलाया—"क्या कहती हैं आप? मैं सचमुच आपकी तस्वीरें लूंगा। लिखूंगा भी। आप··· आप देखेंगी कि विदिन ए मंथ आप मशहूर फिल्मी मैगजीन में छायी हुई हैं। रीडर मैगजीन खोलेगा और आपकी तस्वीर देखेगा—मिस बेला—ए न्यू···।"

"क्या वाकई आप मुझ पर लिखेंगे?" बेला ने जब पुनः अविश्वास-भरे स्वर में सवाल किया तो कैलाश का उत्साह ठंडा पड़ गया। वह समझ नहीं पा रहा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था, बेला को कैसे भरोसा दिलाये। बड़ी लाचारी-भरे स्वर में उसने कहा—"विश्वास कीजिए, मैं आपके लिए बहुत कुछ करना चाहता हूं। मेरे पास इस समय कैमरा नहीं है वरना मैं अभी आपकी कुछ तस्वीरें ले लेता···फिर इण्टरव्यू के लिए कोई ढंग की जगह होनी चाहिए। मेरा मतलब है···ये रेस्टोरेण्ट वगैरह कोई ठीक जगह नहीं है। कुछ फुरसत का वक्त होना चाहिए···।" उसने बेला के चेहरे पर अपनी प्रश्नवाचक आंखें गड़ा दीं, पूछा—"आप तय कीजिए, कब वक्त निकाल रही हैं? कोई ऐसा वक्त दीजिए···" काफी संकोचपूर्वक उसने बात पूरी कर दी—"जब काफी साफ और खुले ढंग से बातें हो सकें?"

बेला ने कुछ घबराकर कैलाश की ओर देखा, फिर वह संयत हो गयी। उसने लगभग डूबते-से स्वर में कहा—"आज से लगातार एक हफ्ते तक मेरे पास टाइम ही टाइम है। सवाल आपके वक्त का है।"

"मेरे वक्त की छोड़िए।" कैलाश बोला—"मैं कल ही शाम को आपके पास आ जाता हूं। कहिए, ठीक है न?" फिर उसने सिलसिले में दूसरा सवाल कर दिया—"आप रहती कहां हैं?"

"यहीं खार में।" बेला की आवाज पहले की ही तरह कुछ रुंधी हुई थी।

कैलाश समझ नहीं सका। अभी-अभी कुछ देर पहले वह बड़ी तीखी आवाज में बात कर रही थी, फिर एकाएक ही उसकी आवाज पर एक भारीपन छा गया था। "···खार में कहां रहती हैं आप?" उसने सोचना छोड़कर अगला सवाल किया।

बेला ने पता बताया। ··"एक मिनट···।" कैलाश ने डायरी निकालकर नोट कर लिया। बोला—"तो शाम सात बजे···मैं आपके यहां आ रहा हूं।"

बेला ने फीकी-सी मुसकान चेहरे पर लाकर हामी भर दी। उसके बाद एक-दो यहां-वहां की बातें हुईं, और फिर वे दोनों अलग हो गये। कैलाश सारी राह और फिर सारे दिन, रात में भी देर तक बेला के बारे में सोचता रहा। बेला से भेंट के बाद उसकी सहानुभूति पूर्वापेक्षा कहीं अधिक हो गयी थी, और वह उसके प्रति अपना आकर्षण पहले से कहीं ज्यादा अनुभव कर रहा था। उसे अफसोस था, इतने दिन तक वह बेला के लिए कुछ भी नहीं कर सका, जबकि वह बराबर यह समझता रहा था कि बेला के मन में भी उसके लिए बहुत कुछ है। कुछ वैसा ही, जो वह खुद अनुभव करता रहा था। उसे बार-बार बेला की उन गिरती पलकों का ख़याल आया, जो कैलाश से पहली भेंट के बाद स्त्रीत्व की एक खास मर्यादा में बंधी रही थीं।

दूसरे दिन भी वह सिर्फ बेला के बारे में सोचता रहा था। और तब तक सोचता रहा, जब तक कि शाम को अपने दिये वक्त पर वह बेला के घर नहीं जा पहुंचा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह उसका इन्तजार कर रही थी। दरवाजा खोलते हुए जब उसने कैलाश के स्वागत में मुसकान के इन्द्रधनुषी रंग फैलाये और मीठे स्वर में 'नमस्ते' के शब्द कहे, तो कैलाश अजीब-से नशे में भर गया। उसने कमरे में प्रवेश किया तो लगा, जैसे उसके हर कोने से बेला के स्वभाव का सम्बन्ध है। एक ओर टेबिल पर कुछ पत्र-पत्रिकाएं बिखरी हुई थीं। पास की टेबिल पर घर की बुनाई वाला सफेद टेबिलपोश पड़ा हुआ था। इस पर लगभग दो फुटी मूर्ति थी, जिसमें कोई गुप्तकालीन जोड़ा एक-दूसरे से लिपटा हुआ बताया गया था। कैलाश ने एक बार उस जोड़े की ओर और फिर बेला की ओर देखा, तो फिर उसकी पलकें उसी संकोच और लज्जा से दबकर उठीं-गिरीं जिस तरह सबसे पहली बार तब, जब साबक चाचा ने उसे कैलाश से परिचित कराया था, उठी-गिरी थीं। कैलाश को यह अच्छा लगा।

बेला भीतर वाले कमरे में चली गयी थी। कैलाश ने हाथ का बैग टेबिल पर रख दिया और वहीं पड़ी साधारण किस्म की सोफा कुर्सी पर चौड़ा हो गया। उसने निरुद्देश्य कमरे में नीचे-ऊपर नजरें दौड़ायीं। सामान न तो बहुत कीमती था और न बहुत आकर्षक। फिर भी करीने से सजा होने के कारण अच्छा लगता था।

बेला भीतर से लौटी। उसके हाथ में ट्रे थी, जिसमें चाय के अलावा कुछ खाने का सामान था।

कैलाश का मन हुआ था, औपचारिक ढंग से कहे—'आपने ये तकलीफ क्यों की?" पर उसने नहीं कहा। बेला और उसके बीच की भेंट भले देर से हुई हो, पर रिश्ते बहुत पुराने लगते थे। जब बेला चाय बनाने लगी तो कैलाश ने पूछ लिया—"आप अकेली हैं?"

"जी हां।" बेला ने जवाब दिया, फिर उसके साथ ही उसने बड़े संक्षिप्त-से ढंग पर यह बताया कि किस तरह फिल्मों का शौक उसे घर से बम्बई खींच लाया, और अन्त में उसने कहा—"अब घरवालों के लिए मैं करीब-करीब मर चुकी हूं।" यह कहते समय कैलाश ने देखा, बेला के चेहरे पर फिर वही पुराना, सांवला और उदासी से भरा बादल तैर आया है।

कैलाश चाय पीते हुए देर तक उसके प्रति अपनी सहानुभूति और स्नेह व्यक्त करता रहा। उसने उसे ढाढ़स भी दिया।

बेला ने बेहद खुली-खुली बातचीत की। कैलाश भी अब संकोच के बादलों में कैद नहीं था। चाय के बाद उसने बेला के कई चित्र खींचे। किसी चित्र में वह प्रतीक्षा के भाव में थी, किसी चित्र में उसने शरीर को कामुक ढंग से पलंग पर बिछा रखा था। भिन्न-भिन्न मुद्राओं में चित्र खींच लेने के बाद कैलाश के लिए बेला ने पुनः चाय बनायी। इस बीच वह बेला का फोटो अलबम देखता रहा, जिसमें उन फिल्मों के कुछ दृश्य थे, जिनमें बेला को छोटे-मोटे रोल मिले थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बेला ने चाय लाकर उसके सामने रखी।

चाय की चुस्कियों के बीच कैलाश ने उससे अनेक जवाब-सवाल किये।

रात काफी हो चुकी थी, और सड़कों का सन्नाटा कमरे की खिड़कियों से भीतर तक आ गया था। कैलाश और बेला एक-दूसरे से बातें करते, हंसते इस सन्नाटे को इर्द-गिर्द से छांट लेते। जब घड़ी ने पास की दीवार से चीखकर बताया कि साढ़े दस बज चुके हैं, तो अचानक ही चौंककर बेला ने सवाल कर दिया—"आपको जाने में परेशानी होगी, कैलाश साहब ?"

"नहीं, नहीं।" कैलाश ने जवाब दिया—"मैं टहलता हुआ ही चला जाऊंगा। मेरा घर यहां से ज्यादा दूर नहीं है।"

बेला को जैसे यह जवाब रुचा नहीं। उसके चेहरे पर कुछ उकताहट के भाव उभर आये, जैसे वह कैलाश से ऊबने लगी है। कुछ देर वह ऐसी ही ऊब से भरी रही, फिर मद्धिम स्वर में उसने कहा—"कैलाश बाबू !"

कैलाश बातों में जितना खुल चुका था, शरीर से भी वैसा ही लापरवाह होकर कुर्सी पर फैला हुआ था।

"आप बुरा तो न मानिएगा···।" बेला ने जैसे किसी गहराई में डूबकर कहा।

"कमाल करती हैं ?" कैलाश बड़े अपनेपन से बोला—"कहिए न, क्या बात है ?"

"आपने मेरे लिए बहुत तकलीफ उठायी है।" बेला ने कहा—"ढेरों चित्र लिये हैं, इण्टरव्यू लिया है, यहां तक आये है, वरना मुझ-जैसी एकदम नयी आर्टिस्ट के लिए बड़े जर्नलिस्ट इतना थोड़े ही करते हैं···?"

"कैसी बातें करती हैं ?" कैलाश के स्वर में वही अपनापन था, और यह अपनापन बेला की औपचारिक बातों से एक झल्लाहट में भर गया था।

"ठीक कहती हूं, कैलाश बाबू !" बेला जैसे रटे-रटाये ढंग से बोलती गयी—"मैंने तय कर लिया था ··सच मानिए, बिलकुल तय किये हुए थी···।" वह टूटते शब्दों में बोली—"आज की रात सिर्फ आपके साथ गुजारूंगी···पर···।"

कैलाश ने हैरानी से उसके चेहरे की ओर देखा। वह समझ नहीं पा रहा था, बेला क्या कह रही है ?

बेला की आंखें फर्श पर लगी हुई थीं, उसने पैर के अंगूठे से फर्श कुरेदा और वैसे ही टूटते शब्दों में कहना जारी रखा—"मैं सच कहती हूं, कैलाश बाबू !··· ये रात·· मेरा मतलब है, आज की रात मैंने···बिलकुल सोच रखा था···मेरा मतलब है।"

कैलाश कुर्सी पर सीधा बैठ गया। मन हुआ था, चिल्लाकर कहे—"जलील औरत ! तू मुझे समझती क्या है ?···" पर वह कुछ नहीं कह सका। बस, आंखें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फाड़े अवाक् बेला की ओर देखता रहा।

बेला ने कहा— "मैं बता नहीं सकती आपको, मैं कितनी लाचार हूं। आज दोपहर ही अरोड़ा साहब के यहां से खबर आ गयी थी। आज रात वे आ रहे हैं। ···यों मैं आपके लिए सोचे हुए थी···।" वह फर्श पर जल्दी-जल्दी अंगूठा रगड़े गयी···"आज मुझे माफ कर दीजिए। मैं आपको नाराज नहीं कर सकती पर··· मेरा मतलब है अरोड़ा साहब ने मुझे अपनी नयी फिल्म में साइड रोल का चांस दिया है। यों आप भी मेरे लिए कम नहीं कर रहे···मैं आपकी शुक्रगुजार हूं पर···।"

कैलाश उठ खड़ा हुआ। उसके होंठ कांप रहे थे। इस तरह, जैसे वे कुछ उगलने ही वाले हैं। उसने फुर्ती से आगे बढ़कर अपना बैग उठा लिया और एक क्षण घूरकर बेला के, मरकरी लाइट में चमकते हुए गोरे चेहरे पर दृष्टि डाली, जिस पर उदासी का अंधेरा बढ़ता जा रहा था, फिर तेज चाल में कमरे से बाहर हो गया।

सीढ़ियों से उतरते हुए कुछ टूटते-से शब्द उसके कानों से आ टकराये थे— "बुरा मत मानियेगा, कैलाश बाबू···! मेरा मतलब है, सिर्फ आज के लिए···" और कैलाश सड़क पर आ गया था। न जाने किस ऊहापोह में वह किसी मशीन की तरह रास्ता पार करता रहा। लगता था, जैसे सड़क पर फैला हुआ सन्नाटा उसके दिमाग में समा गया है, और वह कुछ भी सोचने-समझने में असमर्थ हो गया है।

१९६५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिरादरी

अजीब बात थी ! शाम नहीं सरकी थी, पर वामन घुर्डे सड़क की बगल से फुटपाथ पर सरकने लगा । एकनाथ मोची के पास कोई ग्राहक नहीं था । उसने हैरानी से घुर्डे की ओर देखा । वह फुटपाथ पर फुर्ती से सरकता उसकी ओर ऐसे चला आ रहा था जैसे कोई मगर पानी की सतह पर तैर रहा हो ।

एकनाथ को उसका समय से पहले जगह छोड़ देना अस्वाभाविक-सा लगा । वर्षों से वे एक-दूसरे के साथी थे । एक-दूसरे के बारे में बहुत-कुछ जानते भी थे । एकनाथ मोची था—जूते गांठता, पालिश करता, और वामन घुर्डे कोढ़ी था—भीख मांगता । दोनों एक ही फुटपाथ पर और कुछ ही कदम के फासले पर अपने-अपने ढंग से जिन्दगी जी रहे थे ।

पहले तो ऐसा कभी नहीं होता था ! घुर्डे शाम ढले तक सड़क चलतों को अपना कोढ़ दिखा-दिखाकर भीख मांगता रहता था । वह तब तक जगह नहीं छोड़ता था, जब तक कि चौराहे वाले सिपाही की ड्यूटी खत्म न हो जाती । ड्यूटी बदलने के साथ ही ट्रैफिक सिपाही घुर्डे के पास से निकलता, दोनों की आंखें उद्देश्यपूर्ण ढंग से मिलतीं और घुर्डे भी टीन का डिब्बा हाथ में संभाले हुए सरकने लगता ।

"क्यों रे, कैसा रहा दिन ?"

"ठंडा रहा, जमादार !" घुर्डे जवाब देता और एक रुपया उसकी ओर बढ़ा देता ।

सिपाही इधर-उधर घूरता, रुपया जेब के भीतर रखता और कहता, "अबे, जरा आवाज में जान पैदा कर ! रुपया कमाना आसान नहीं है । समझा ?"

"क्या, तुम भी जमादार ···" वामन घुर्डे एक खिसियानी हंसी हंसकर रेंगता हुआ रोशनी वाले हिस्से में आ जाता और सिपाही एक ओर चल देता । फिर घुर्डे स्टेशन की ओर रेंग जाता । बहुत से कोढ़ियों के साथ वह भी मुसाफिरखाने में रहता था ।

पर आज बड़ी अजीब बात हुई । घुर्डे जमादार से भेंट किये बिना ही चला जा रहा है । एकनाथ ने गले का थूक निगलकर घुर्डे की ओर पुनः देखा । घुर्डे सरकता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुआ उसके पास आ पहुंचा तो एकनाथ से सहन नहीं हुआ। न जाने क्यों वह क्षण भर से ऐसा महसूस कर रहा था जैसे किसी रहस्य के नजदीक आ पहुंचा हो। "क्यों, आज जल्दी कैसे चला रे? जमादार से मुलाकात नहीं की?" एकनाथ ने पूछ लिया।

"मैं गांधी ब्रिज जा रहा हूं," घुर्डे उसके और पास सरक आया। उसके चेहरे पर उदासी थी। इससे पहले कि एकनाथ कारण पूछे, उसने कहना शुरू कर दिया, "बिरादरी में गमी हो गयी है, यार! मुझे वहां अर्जेन्ट जाना है···" बात करते-करते उसने सर्दी से, जो रंग-बिरंगे चिथड़ों में बेतरतीबी से एक एब्स्ट्रेक्ट आर्ट की तसवीर-जैसा प्रभाव देती थी, थोड़ी-सी रेजगारी निकालकर एकनाथ की ओर बढ़ा दी और बोला, "जमादार से तू मुलाकात कर लेना।"

एकनाथ अब तक कुछ नहीं बोल सका था। उसने यंत्रवत हाथ आगे बढ़ाकर रेजगारी ले ली। बिना गिने उसने सवाल किया, "कितने हैं?"

"बारह आने," घुर्डे ने तत्परता से उत्तर दिया, "जमादार को बोल देना, आज पूरे बखत जगह पर नहीं रुका हूं। समाज-बिरादरी की बात है।"

एकनाथ ने ऊपर-नीचे सिर हिलाकर हामी भरी, पर रहस्य के परदे नहीं खुले थे। घुर्डे फुटपाथ पर आगे सरकने को लगभग तैयार ही था कि एकनाथ ने सवाल कर लिया, "किसकी मौत हुई?"

"गांधी ब्रिज वाली कावेरीबाई की," वामन घुर्डे ने बड़ी गंभीरतापूर्वक बताया और दोनों हाथों पर वजन डालकर धड़ आगे खिसका दिया। उसे जाने की जल्दी थी।

एकनाथ ने फिर सवाल किया, "वही न जो ब्रिज के बाजू वाले फुटपाथ पर बैठती थी?"

"हां-हां, वही!' घुर्डे ने संक्षिप्त-सा उत्तर दिया। उसे एकनाथ की छानबीन पसंद नहीं आयी। एकनाथ की उत्सुकता भी ठंडी हो गयी। कोई खास बात नहीं थी। लगा, जैसे वामन घुर्डे एकदम बेवकूफ है, जो ममता-मोह के चक्कर में काम छोड़कर जा रहा है। यों वह घुर्डे से अच्छी तरह परिचित था। वह जानता था, घुर्डे अपने काम के प्रति बहुत जागरूक है। सूरज उगने के साथ ही घुर्डे फुटपाथ पर आ जाता था और शाम ढले तक न हिलता, यहां तक कि दोपहर को कड़ी धूप में भी नहीं।

कभी-कभी उसे वामन घुर्डे से चिढ़ भी काफी होती। जब-जब वह अपने और वामन के पेशे को तौलता, उसे लगता जैसे असफल आदमी वह खुद है। घुर्डे घिघियाता हुआ, कोढ़-अपंगता की दुहाई दे-देकर मांगता। दिन भर में लोगों से इतना वसूल कर लेता था कि पास के पंजाबी होटल से सुबह-शाम एक प्लेट मटन और तंदूरी रोटियां खा सके। एकनाथ कड़ी मेहनत करता लेकिन वह वामन घुर्डे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की तरह आशीर्वाद नहीं बेचता था, पसीना बेचता था, फिर भी कमाने के मामले में घुर्डे से कमजोर था। दर्पण की तरह जूता चमका देने के बावजूद ग्राहक उससे अबे-तबे बोलता, तब एक चवन्नी देता।

कई बार एकनाथ के मन में इस कुढ़न की वजह से एक विचार आता—क्यों न वह वामन घुर्डे का रहस्य खोल दे! वह कोढ़ी जरूर था, पर अपाहिज निश्चय ही नहीं।

बड़ा चालाक है वामन –एकनाथ ने सोचा। बरसों की दोस्ती के बावजूद वह तुरुप का पत्ता एकनाथ से छिपाये था। वह तो एक दिन संयोग से ही एकनाथ के सामने उसके बिजनेस की दबी-मुंदी खुल गयी। एकनाथ उस दिन को कभी नहीं भूल सकता। अगर चौराहे पर पुलिस हड़ताली मजदूरों पर लाठीचार्ज न करती तो शायद घुर्डे का चरित्र तमाम जीवन एकनाथ के लिए लिफाफे में बंद अनपढ़ी चिट्ठी की तरह रहस्य ही रहता। उस दिन की बात जब-जब एकनाथ सोचता है, उसे हंसी भी आती है और वामन घुर्डे की चालाकी से कुढ़न भी होती है। हड़ताली मजदूरों पर पुलिस ने जैसे ही लाठियां बरसायीं, वामन फुर्ती से दोनों पैरों पर खड़ा होकर एक तेज छिपकली की तरह बगल की गली में सरपट भाग निकला। खुद एकनाथ भी भागा था और उसने हैरानी से आगे भागे जा रहे वामन को देखा था।

बाद में कई बार एकनाथ का मन हुआ कि वामन की कलई खोल दे, उससे हंसी करे, "बड़ा पाजी है रे, दोनों पैर ठीक हैं, फिर भी लंगड़ा बनकर लोगों को धोखा देता है···" एकनाथ ऐसा नहीं कर सका। यह खयाल उसे मन में ही रखना पड़ा। यदि कहीं वामन को बुरा लग जाता तो एकनाथ को समय-समय पर मिल जाने वाले उधार का आसरा टूट जाता। वामन दूसरों के लिए जैसा भी हो, एकनाथ के लिए कीमती आदमी था। कई बार आड़े मौकों पर उसने एकनाथ की आर्थिक सहायता की थी।

एकनाथ ने हाथ में पकड़ा हुआ सूजा नीचे रखा और दूर सामने फुटपाथ पर नजर दौड़ायी। वामन अब भी घिसटता हुआ फुर्ती से गांधी ब्रिज की ओर बढ़ा जा रहा था। चाहे जो हो, एकनाथ ने सोचा, वामन कुछ लोगों के लिए काम का आदमी है। बड़ी से बड़ी घटना भी उसे अपनी जगह से नहीं हटा सकती, पर ब्रिज वाली कावेरीबाई की मौत ने उससे एक दिन का काम छुड़वा दिया। कैसे अपनेपन से कह रहा था कि समाज-बिरादरी की बात है—वह सोचता गया। अनजाने ही वामन घुर्डे के प्रति उसका मन श्रद्धा से भर आया। उसने पुनः एक बार दूर फुटपाथ पर घिसटते जा रहे वामन की ओर देखा। अब वह धीरे-धीरे भीड़ में गुम होता जा रहा था।

घुर्डे ने घिसटने में तेजी पैदा की ताकि जल्दी स जल्दी ब्रिज पर पहुंच जाये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसने सोचा कि दोनों पैरों पर उठ खड़ा हो और आनन-फानन रास्ता तय करे डाले, पर दूसरे ही क्षण उसने यह ख़याल छोड़ दिया। जरा-सा उतावलापन सारी जिन्दगी की बेवकूफी बन जाता। सारा बाजार जानता है कि वामन अपंग है, लाचार है।

उसे डर लग रहा था, कहीं कावेरीबाई का मुरदा उठ न गया हो। उसे यह सोचकर खीझ हुई कि कावेरीबाई की मौत का समाचार समाज का छोकरा बहुत देर से देने आया था। गांधी ब्रिज कोई इतना दूर तो नहीं है कि वहां से खबर आते-आते चार घंटे लग जायें?

अभी खबर मिले मुश्किल से दस मिनट हुए होंगे और वामन घुर्डे गांधी ब्रिज के एकदम पास आ गया था। जैसे-जैसे वह पास आ रहा था, उसकी चाल तेज होती जा रही थी। मन में संशय था, कहीं कावेरीबाई का मुरदा उठ न गया हो; बिरादरीवाले चल न दिये हों। उसने निश्चय किया कि अगर कहीं मुरदा उठ गया होगा तो सबको ऐसी-ऐसी सुनायेगा कि तबीयत ढीली हो जाएगी। समझते क्या हैं? धोखेबाज कहीं के! कावेरी को मरे चार घंटे हुए और डेढ़ फर्लांग तक खबर पहुंचाते सबको बुखार आ गया। वामन सारी बिरादरी की नस-नस पहचानता है। जान-बूझकर उस तक खबर नहीं भेजी गयी। वे और मेंबर नहीं बढ़ाना चाहते होंगे, सो वामन को ही काट दिया। पाजी कहीं के! वामन और भी बहुत-कुछ सोचता, पर उसने पुल के किनारे आकर देखा, बिरादरीवालों की अच्छी-खासी भीड़ जमा थी। उसने शान्ति की एक सांस ली।

"वामन आया रे," चिथड़ों से ढंके मैले-कुचैले भिखारियों के समूह में किसी ने फुसफुसाकर कहा। वामन उनके एकदम पास जा पहुंचा।

एक बूढ़े कोढ़ी भिखारी ने फुटपाथ पर लेटे-लेटे पूछा, "बड़ी देर लगी रे!"

वामन ने सिर हिलाकर अनमनेपन से सवाल किया, "कावेरीबाई का मुरदा कहां है?"

"कारपोरेशन वाले ले गये," एक ने जबाब दिया। वह आगे भी कुछ कहता पर वामन उबल पड़ा, "तुम सब पाजी हो। तुमने जान-बूझकर मुझे देर से खबर दी। सबको देख लूंगा।"

दो-तीन भिखारी उसके पास आ गये और समझाने लगे, "बिगड़ता काहे को है? तेरे साथ कोई धोखा नहीं हुआ।"

बूढ़ा कोढ़ी भिखारी उठ बैठा। बोला, "हम तो तेरा ही इंतजार कर रहे थे रे! कफन की खातिर जो कुछ इकट्ठा हुआ था, मेरे पास जमा है। इसमें काहे का धोखा हुआ? बड़बड़ाता क्यों है? बिरादरी किसी के साथ धोखा नहीं करती, सबके साथ न्याय होगा।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वामन ने संतोष की सांस ली और एक सूखी हंसी हंस दिया। कहने लगा, "मुझे और कोई डर नहीं था, आत्या ! कावेरी का मुंह नहीं देख पाया। मन की मन में रह गयी।"

"वैसी औरत तो हो ही नहीं सकती, वामन्या !" बूढ़ा कोढ़ी भिखारी एक गहरी श्वास उगलकर अफसोस के स्वर में बोला, "उसने सारी जिन्दगी बिरादरी का साथ दिया। उसकी क्या बात थी !"

१९६५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रश्नों के घेरे

सीट पर बैठे-बैठे उसकी पीठ में चुनचुनी होने लगी थी। गर्मियों में ऐसी सीट पर देर तक बैठे रहिये तो पसीना काटने लगता है। मन हुआ था— नजर बचाकर पीठ खुजला ले, पर···इर्द-गिर्द बे-तरह सवारियां अंटी हुई थीं। मर्द, औरतें और बच्चे···सब एक-दूसरे से सटे हुए, पसीने में सराबोर···

उसने मन-ही-मन सरकार को गाली दी··घटिया !···एकदम घटिया ! आजादी के बीस सालों में न सरकार कुछ कर सकी है और न ये सवारियां ही कुछ सीख सकी हैं···बस स्टॉप पर रुकी थी और भेड़ों के गल्ले की तरह ये सारे मर्द, औरत और बच्चे झपट पड़े थे···एक अजीब-सा बदहवासी का माहौल पैदा हो गया था और उसी हालत में जगदीश इसमें समा गया था। गेट पर उसकी नयी टेरिलीन की कमीज फटते-फटते बची थी और अब इस सीट पर बैठे हुए उसे लग रहा है जैसे आसपास सिगड़ियां जल रही हों।

इस बार बड़ी तेज चुनचुनी हुई और जगदीश का हाथ पीठ की ओर बढ़ते-बढ़ते रह गया। असल में वह डर गया है ··डरने और झेंपने जैसी बात है। अगर उसने पीठ खुजलायी तो शायद यह बिलकुल नजदीक, उससे सटी हुई खड़ी खूबसूरत लड़की उसकी कमीज के भीतरवाली बनियाइन देख लेगी···बनियाइन फटी हुई है। कितने दिनों से सोच रहा है वह, एक नयी बनियाइन खरीद ले···पर किसी बार भी हो नहीं पाया। बिलकुल गुंजाइश नहीं होती।···

गुंजाइश कैसे हो ? जब-जब पैसा हाथ में होता है, कोई-न-कोई ऐसी जरूरत सामने आ खड़ी होती है कि जगदीश थककर हथियार डाल बैठता है। फटी हुई बनियाइन तो कमीज के अंदर ढंकी रह सकती है, मगर राशन···भूख कैसे दबायी जा सकेगी भला ? और तिस पर यहां, दिल्ली में ? जहां कोई किसी का परिचित नहीं। है भी तो न होने जैसा। हर आदमी की, कम-से-कम जगदीश के परिचितों की बनियाइनें भी फटी हुई हैं और ऊपर से चढ़ा हुआ है टेरिलीन की कमीज का खोल···

पर अब बर्दाश्त नहीं हो रही है खुजली। जगदीश ने पीठ कुछ आगे खिसका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ली। शायद थोड़ी हवा लगे और पसीना सूख जाये।···मगर यह हो नहीं सका। कैसे हो? एक के बाद एक सवारियां बस के इस दरवाजे से उस दरवाजे तक सटी हुई खड़ी हैं। मजाल है हवा का कोई झोंका इधर की ओर रास्ता भूल सके!

उसने रूमाल निकालकर चेहरे पर उभर आया पसीना पोंछ लिया। सुबह घर से नहाकर चला था और अभी आफिस पहुंच भी नहीं सका है कि लगता है ···शायद आज नहाया ही नहीं था। माथे और होंठों के आसपास से रूमाल पर पसीने के साथ-साथ धूल के महीन रेशों की एक पर्त उतर आयी।···अजीब जिंदगी है! उसने भाग्य को कोसा—उंह!

ब्रेक लगा और सवारियां एक हिलोर में उतराये तिनके की तरह आगे की ओर खिंची चली गयीं। नजदीक खड़ी लड़की का तरेटवाला हिस्सा जगदीश के कंधे पर आ लगा···एक झुरझुरी·· खुजली, गरमी और घुटन सबको रौंदती हुई एक गुदगुदी···और जब भीड़ स्थिर हुई तब भी जगदीश का कंधा रह-रहकर उस लड़की की जांघ से छू जाता था। एक बार नजर उठाकर उसने ऊपर की ओर देख भी लिया। बहुत खूबसूरत है!···बहुत!···शो-केस की एक मूर्ति की तरह गठा-गठाया बदन···तंग कपड़ों में से चीखती हुई उमर···बहुत हुआ तो पच्चीस साल! इससे ज्यादा की नहीं हो सकती। जगदीश को लगा, कंधे का उतना हिस्सा उसके अपने शरीर में सबसे अधिक जीवंत और जीभ की तरह स्वाद महसूस करनेवाला है। बहुत सुंदर·· एक लयबद्ध गीत की तरह···

यह सीट है ही कमाल की जगह। जगदीश जब-जब घर से कहीं चलता है तो निश्चित कर लेता है – लेडीज सीट के ठीक पीछेवाली सीट के पहले हिस्से में बैठेगा वह। यहीं सारी बस की लड़कियां घिर आती हैं और इसी तरह उनकी तरेट का हिस्सा···

फिर गुदगुदी···

कितनी खूबसूरत!

यह शहर क्या है? बगीचा है। हर कदम के साथ एक खूबसूरत मकान, खूबसूरत लड़की, खूबसूरत कार···रेस्तरां···रंगीन फिल्में···

एक झटके के साथ बस रुकी और भीड़ को चीरती हुई वह लड़की चली गयी। जगदीश देखता रहा। वह अगले गेट से उतर गयी थी और उसकी जगह एक बूढ़ा आदमी आ खड़ा हुआ था। जगदीश का कंधा निर्जीव हो गया, बिलकुल टूट गया उसके शरीर से।

पीठ में फिर चुनचुनी होने लगी है। उसने एक बार संकोच से आसपास देखा। कोई लड़की नहीं थी और अगर थी तो उससे इतनी दूर थी कि वह उसकी फटी हुई बनियाइन नहीं देख सकेगी। फुर्ती के साथ जगदीश ने कमीज का ऊपरी बटन खोला और गहराई तक हाथ ले जाकर पीठ की बगलें खुजा लीं। घुटन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बढ़ने लगी थी, हवा अब भी नहीं आ पा रही है। सवारियां अब भी बोरे में बन्द कपड़े की चिन्दियों की तरह बस में भरी हुई हैं। यह शहर क्या है, पागलपन की हदों तक पहुंचा हुआ नशा है। बदहवास दौड़ती हुई जिन्दगी···जगदीश कभी-कभी खुद भी समझ नहीं पाता कि वह क्षण-क्षण जो कुछ महसूस करता है, क्या वह सब सही होता है?

अभी-अभी एक क्षण पहले वह महसूस कर रहा था कि एक बगीचे में है वह और अब उसे लग रहा है, अब तक एक दावानल के बीच जीता रहा था वह!

अब से एक साल पहले वह इस छलावे में आ फंसा था। तब सिर्फ उसने इस शहर के आकर्षण देखे थे···हर कदम के साथ एक खूबसूरत मकान, लड़की, रेस्तरां, रंगीन फिल्में · और जगदीश किसी अनजाने आकर्षण के नागपाश में बंधा हुआ नागपुर से दिल्ली चला आया था···सिर्फ एक साल हुआ है···

"तुम अच्छी तरह सोच लो। गुजारा हो सकेगा वहां?"

"क्यों नहीं हो सकेगा?" जगदीश बोला था, "चार सौ के करीब तनख्वाह हो जायेगी। दो-तीन सौ रुपये बाहर का काम करके कमाये जा सकेंगे!"

दिल्ली के एक दौरे में वह नौकरी पक्की कर आया था। नागपुर के ढाई सौ और दिल्ली के चार सौ। जैसे हम यहां रहते हैं वैसे ही दिल्ली में रहेंगे। पर दिल्ली में रहने की बात ही और है। उसने पत्नी को समझाया था।

पत्नी कुछ नहीं बोली थी। अकसर इसी तरह नहीं बोलती थी। जब-जब जगदीश की किसी बात से असहमत होती, वह इसी तरह खामोश हो जाया करती थी और जगदीश का चाहा घर में लागू हो जाया करता था। इस बार भी लागू हो गया था। वे नागपुर के मित्रों, पास-पड़ोसियों से विदाई लेकर दिल्ली आ गये थे। दिल्ली में उन्होंने पटेलनगर में किराये का एक छोटा-सा मकान लिया था। एक कमरा, रसोई और मिला-जुला बाथरूम और संडास। किराया—सौ रुपये। नल-बिजली का पेमेन्ट अलग से। जगदीश सुबह नाश्ते के वक्त तैयार होकर आफिस चला जाया करता। लौटता तो शाम होती। बस और छिटपुट खर्च में पचास रुपये निकल जाते। बाकी डेढ़ सौ में गुजारा मुश्किल हो गया था। तीन बच्चे हैं, कम-से-कम पाव भर दूध तो चाहिए। जब से दिल्ली आ गये थे वे, जगदीश ने बाहर का काम बिलकुल बंद कर दिया था। शायद वह अपने-आप हो गया था···कब होता? सुबह के साथ नौकरी और शाम के साथ वापसी···न जाने दिन हुआ भी था या नहीं?

घर में झल्लाहट का अजीब-सा माहौल बन गया।

"मैं जब-जब घर वापस आता हूं तो तुम्हें इस कदर गंदी पाता हूं कि बात

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करना तो दूर, देखने की तबीयत नहीं होती।" बैग एक ओर फेंककर वह कुर्सी पर आ गिरा था, इस तरह जैसे पिटकर चला आ रहा हो। कभी-कभी नहीं, अकसर बस में खड़े-खड़े आना पड़ता है और उससे भी पहले लाइन में खड़े रहना होता है···दस मिनट, पंद्रह मिनट, बीस मिनट ··तब तक, जब तक बस न आ जाये।

वह कुछ नहीं बोली थी। उसी तरह बच्चों को खाना परोसती रही थी। उसने मटमैली-सी साड़ी पहन रखी थी। चेहरा उतरा हुआ था और उस पर जगदीश के उतरे चेहरे से कम थकान नहीं थी। गर्मियां हैं। ऊपर की मंजिल के इस मकान में पानी नहीं चढ़ता। दोपहर भर कड़कती धूप में पानी भरना होता है, फिर बच्चों को संभालना, सब्जी लाना, राशन जुटाना···जगदीश को एकदम सुबह नाश्ता चाहिए, फिर लंच-बॉक्स और आफिस से लौटते ही नहाने के लिए पानी, साफ, धुले हुए अंडरवीयर-बनियाइन, और इस सब के बाद फौरन खाना···उसे अपने बारे में सोचने तक की फुरसत नहीं मिल पाती।

"मैं कुछ कह रहा हूं!" वह झगड़ने के मूड में था। इधर कुछ दिनों से उसका यह मूड ऐसा ही रहता है। क्यों? वह खुद नहीं जानता। बस, कभी-कभी इच्छा होती है—यह सब कुछ छोड़कर भाग जाये।

उसने कोई उत्तर नहीं दिया। क्या दे? यह अब का नहीं, रोजमर्रा का हिसाब हो गया है।

"विमला!" वह गरजा।

फिर चुप्पी।

"तुम लोगों ने मेरी जिन्दगी हराम कर रखी है!" वह बड़बड़ाने लगा, "गंवार कहीं के!···जाहिल!"···वह देर तक बड़बड़ाता रहा और फिर कपड़े बदलकर बाहर गैलरी में आ खड़ा हुआ।

दूर तक, सामने सड़क फैली हुई थी। एक जमाने में जब वह नागपुर में था, वक्त भी इसी तरह फैला रहता था और जगदीश मनचाहा चल सकता था···काम कर सकता था और ढाई सौ की तनख्वाह के अलावा सौ-डेढ़ सौ का बाहर का काम कर सकता था···

यह गैलरी आसपास के कई लोगों के लिए एक ही है। सौ रुपया किराया दे देने के बावजूद वह इस घर में खुद को किसी से अलग नहीं पाता। बिलकुल सटा हुआ एक और परिवार···फिर एक और···फिर एक और···

वह निरुद्देश्य इधर-उधर देखने लगा। पड़ोसवाले परिवार के बच्चे और मर्द-औरतें गैलरी में चारपाइयां लगा रहे थे और उसके आगे वाले घर के लोग बाहर चारपाई लगाकर खाना खाने लगे थे। उससे भी आगे वाले घर में सिर्फ मियां-बीवी हैं। बिलकुल नया जोड़ा। पति किसी दूतावास में काम करता था और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आराम से औसत छह सौ कमा लेता था। अकसर वे शाम को घूमने जाते थे, या सिनेमा देखते थे, या फिर साथ-साथ खड़े होकर गैलरी से इधर-उधर के परिवारों की हालत देखते रहे थे।

अगर ये बच्चे न होते तो शायद जगदीश भी इसी तरह शाम बिताता···

वह गैलरी पर दोनों कोहनियां टिकाकर उधर ही देखने लगा। उन दोनों ने दो कुर्सियां डाल ली थीं बाहर और नीचे जाकर पति कोकाकोला की दो शीशियां ले आया था और अब चुस्कियों के साथ गप्पें करते हुए वे उसे पी रहे थे।

जगदीश भी यही चाहता है।···यह सब न हो तो जिन्दगी का क्या मतलब? वह देर तक उन्हें घूरता रहा और फिर सामने देखने लगा। एक बहुत खूबसूरत लड़की खड़ी है वहां। कपड़े, सूरत-शक्ल, सभी कुछ सजा-संवरा···हर शाम यह इसी तरह खड़ी रहती है। पति आफिस से लौटता है और मुसकराती है, फिर दोनों भीतर चले जाते हैं। सामने भी बिलकुल इसी ढंग का विशालाकार मकान है। कई हिस्से हैं उसमें। हर हिस्से में बिलकुल जगदीश के घर जितनी जगह है।

जगदीश चाहता है, विमला भी इसी तरह खड़ी रहे। गैलरी में नहीं तो, कम-से-कम घर में जरूर ऐसी ही मिले···पर···वह फिर कुढ़न से भर गया! एकदम फूहड़ है!···बिलकुल फूहड़!

"पापा, खाना खायेंगे?"

वह चौंक गया। पीछे से उसकी बच्ची कह रही थी। मन हुआ था, झल्लाकर उसे भगा दे, पर भूख···! भूख के मामले में कमजोर है जगदीश।

"हां।" वह भीतर चला आया। दाल और एक सब्जी थी सिर्फ। रोटियां सूखी।

"क्यों, घी नहीं है?"

"नहीं।"

फिर जगदीश ने नहीं पूछा, क्यों नहीं है। कहां से आयेगा? चार सौ कुल तनख्वाह, बाहर का काम बंद। उसने चुपचाप रोटी खायी और बिस्तरे उठाकर ऊपर छत पर चला गया। देर तक वह आसमान की ओर मुंह किये चित लेटा रहा···कितना विशाल शहर है! रंगीनियों और रोशनियों में डूबा हुआ। महंगी से महंगी कारें, सजे-संवरे नये से नये फैशन के मकान, खूबसूरत कपड़ों में सजी हुई खूबसूरत औरतें···पर यह सब देखा जा सकता है!

छतें भी एक-दूसरे से सटी हुई हैं। सब कुछ एक पारदर्शी शीशे की तरह साफ! हर आंख, पत्तों को बड़ी आसानी से भेदती हुई दूसरी ओर पहुंच जाती है। उंह, कोई जिन्दगी है! नागपुर में भी उसके पास मकान था, पर ऐसा तो नहीं···

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शायद उसे नहीं आना चाहिए था। क्यों नहीं ?

आने से पहले कितना, कुछ सोच रखा था, जगदीश ने ? दिल्ली में काम करने का ज्यादा स्कोप है। कई प्रकाशक, पत्रिकाएं और अखबार। वह चित्रकार है। नागपुर में अपने महंगे रेटों के लिए मशहूर था और लोग कहते थे—काम चाहिए तो सिर्फ जगदीश का ! और यहां···यहां शायद दूर-दूर तक कोई नहीं जानता कि जगदीश नाम का कोई है !···और अगर है तो समय ने उसे एक डिब्बे में बंद कर दिया है।

एक छटपटाहट ने घेर लिया उसे।

अकसर घेर लेती है यह छटपटाहट ! खूबसूरत घर, खूबसूरत सजी-संवरी पत्नी और खूबसूरत कार की प्यास !···एक अनंत प्यास !

जगदीश ने क्या नहीं कर डाला है इस बीच। चालीस रुपये की एक बड़ी छोटी-सी नौकरी में दिन-दिन और रात-रात पसीना बहाकर वह चार सौ तक आ पहुंचा है पर प्यास है कि ज्यों की त्यों कायम है !

···और होने को सब कुछ है। पूरा दिल्ली शहर है। खूबसूरत मकान, खूबसूरत लड़कियां, कारें, रेस्तरां, रंगीन फिल्में, घूमते हुए जोड़े···सब कुछ ! पर···

थककर बिलकुल टूट जाता है वह। नागपुर में काफी रात तक जागता रहता था, पर यहां···

सुबह के साथ ही शायद फिर छटपटाहट उसे घेर लेगी। हर रोज़ घेर लेती है और वह चुपचाप सो जाता है···

वह लड़की नहीं चली गयी है, बांह टूटकर एक तरफ जा गिरी है।

गर्मी में खोलता हुआ पसीना अब बनियाइन ही नहीं, कमीज की पर्त भेदकर बाहर निकल आया था।

कितनी खूबसूरत थी वह !

एक धक्का और उसके साथ ही सवारियों का अर्राकर एक-दूसरे पर लुढ़कना। काफी जोर से ब्रेक लगाया है ड्राइवर ने। जगदीश ने पास के शीशे से बाहर देखा—कोई स्कूटरवाला जरा-सा बच गया था।

बेवकूफ ! जानते हैं कि हम इस शहर में नहीं जी रहे बल्कि कोट की जेब में एक ऐसा टाइम बम रखे हुए हैं, जो कभी भी फट सकता है ! कोई लाश तक नहीं पहचानेगा !

मूर्ख !···उसने मन-ही-मन एक गाली घोंट ली, पर एक क्षण बाद उसे लगा, शायद वह स्कूटरवाले के बारे में कुछ गलत ढंग से सोच गया है···कहीं वह भी उसी की तरह दिल्ली में तो नहीं आया था ? दस-पांच सपने संजोये हुए। बड़ा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शहर, अधिक कमाई···

पर एक साल हो गया है, कुछ नहीं हो पाया।

शायद कभी हो भी नहीं सकेगा ! कैसे होगा ? सुबह से शाम तक तो सिर्फ चार सौ में घूमता रहता है।···वह हमेशा चार सौ में ही घूमता रहेगा···विमला उसी तरह हर गर्मी में नीचे से ऊपर पानी की बाल्टियां चढ़ाती रहेगी·· बच्चे गैलरी की धूल में खेलते रहेंगे और जगदीश रोशनियों के वेग पर सवार इस शहर में घूमता रहेगा···

वह बूढ़ा आदमी बगल से हट गया था और अब उसकी जगह एक अधेड़ उम्र की औरत आ खड़ी हुई थी। दो बच्चे थे साथ में और वे भीड़ में हड़बड़ाये हुए यहां-वहां ठीक से खड़े रहने के लिए सहारा खोज रहे थे। बड़े साधारण किस्म के बच्चे···बगैर क्रीज के कपड़े···उनकी सस्ती किस्म और उस औरत की मटमैली-सी साड़ी ! शायद इसका पति भी···

जगदीश ने सीट से कुछ खिसककर उन बच्चों के लिए जगह बना दी, "इधर आ जाओ।···इधर···।" और वे बैठ गये। कुछ ही मिनटों में उसके शरीर का एक हिस्सा पसीने से बिलकुल भीग गया। वे बच्चे बिलकुल चिपक गये थे उससे।

बीच में पुनः जगदीश की आंखें उस औरत पर जा ठहरीं। उदास चेहरा, पेट की तरेट पर मांस की सलवटें। अगर इसकी गरदन काट दी जाये तो इसमें और विमला में कोई फर्क नहीं रह जायेगा।

विमला !···कुछ औरतें रहती ही इस तरह हैं। छोटे शहर से आये हुए ये चेहरे कितने 'मिसफिट' हैं इस शहर में ? उसने सोचा। वह अब तक हर बार खुद को ही दोषी ठहराता रहा है जबकि कारण कुछ और ही है। क्या विमला ढंग से नहीं रह सकती ? शायद वह रहना ही नहीं चाहती···छोटे शहर की औरत !

"लिंक रोड !···है कोई ?···" कंडक्टर चीखने लगा था।

अब जगदीश का आफिस आधी दूर रह गया है। उसने एक तसल्ली की सांस ली। चार स्टॉपेज और बचे हैं। फिर वह इस कैद से छूट जायेगा।

बस रुकी। कुछ सवारियां उतरीं, कुछ चढ़ गयीं और बस चल पड़ी। वह पुनः विमला के बारे में सोचने लगा।···शायद वह नहीं, निश्चय ही विमला अपराधी है। हरजीत भी तो चार सौ ही कमाता है। उसके साथ काम करने वाला आर्टिस्ट··· पर उसके बीवी-बच्चे-बहन···सारा घर कितने सलीके में बंधा हुआ है। विमला कुछ सीख ले, इसलिए एक बार हरजीत को सपरिवार उसने घर पर बुलाया था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इतवार था उस दिन। वे दोपहर को ही आ गये।

सुबह के साथ ही जगदीश ने विमला को याद दिलाया था, "देखो, वे लोग कहीं यह न सोचें कि···तुम जरा बन बच्चों को ढंग के कपड़े तो पहना रखना।" पर जब वे आये तब इस कमरे में कोई खास बात नहीं हो सकी थी। बच्चों को सुबह के साथ ही पहना दिये गये कपड़े तब तक गंदे हो गये थे। उछल-उछलकर उन्होंने तख्त पर पड़े नये चादरे पर धूल भरे पैरों के निशान डाल दिये थे और खुद विमला ने ऐसी भद्दी साड़ी पहन रखी थी कि जगदीश कुढ़कर रह गया।

इनके सामने कुछ कहा भी तो नहीं जा सकता।

हरजीतसिंह की बीवी नीले रंग की नायलान की साड़ी पहने हुए थी और उसकी बहन कत्थई रंग का चिपकी कुरतीवाला सूट ··कत्थई रंग की ही ओढ़नी। कितनी खूबसूरत दीख रही थी वह ! दो बच्चे थे हरजीत के। बोलते भी ढंग से थे, चलते भी ढंग से थे। उन लोगों को देखते ही ढेर-सी कुण्ठा में भर गया था जगदीश।

वे बातचीत करने लगे थे।

"तुम एक सीलिंग फेन क्यों नहीं ले लेते ?" हरजीत ने सवाल किया था।

"इरादा तो है !" जगदीश कटकर रह गया था। उसे ख़याल आया था, हरजीत के घर के दोनों कमरों में सीलिंग फेन है।

"तुम्हारी ये साड़ी तो बहुत पुराने फैशन की हो गयी है। जगदीश बाबू से कहकर नयी वाली···मेरा मतलब है, हैंडलूम की चौड़े पट्टेवाली क्यों नहीं मंगा लेतीं ?"

विमला कोई जवाब नहीं दे सकी थी। जगदीश एक-एक बात मार्क कर रहा था। विमला बच्चों को डांटने लगी थी – "शिश···शि···शोर नहीं !"

बेवकूफ औरत !···वह मन-ही-मन भुनभुनाने लगा था। जवाब तक नहीं दे सकती ढंग से। हरजीत की बीवी के सवाल पर उसका चेहरा किस तरह उतर गया है !···

वे शाम तक इसी तरह की बातें करते रहे थे और हर सवाल के साथ जगदीश झुकता चला गया था···बौना होता चला गया था···और बिलकुल जमीन से आ मिला था।

वे चले गये थे और जगदीश ने शोर मचा-मचाकर सारा घर सिर पर उठा लिया था, "तेरी वजह से मैं बदनाम हो रहा हूं !···सिर्फ तेरी वजह से। तुझे जरा भी तमीज नहीं है। बात नहीं कर सकती, ढंग से बैठ नहीं सकती।··· जाहिल !"

और वही बात ! विमला सब कुछ चुपचाप सुनती रही थी। उसने साड़ी बदली थी और उसकी जगह वही मरमैली सी साड़ी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्रोध में कांपता हुआ जगदीश फिर गैलरी में आ खड़ा हुआ था। उसकी आंखों में रह-रहकर हरजीत की बीवी और बहन उभर आती थीं।

बच्चे उसके पास खेलने आ गये थे। वे शोर मचाने लगे थे और जगदीश ने उन्हें दुत्कार दिया था, "हटो ! मरो यहां से !···दूर हो जाओ !"

वे सहमे हुए भीतर चले गये थे।

उस आखिरी हिस्से में रहनेवाला जोड़ा अभी-अभी उसके नजदीक से निकल गया है। जगदीश ने नजर बचाकर देखा था। वे दोनों आपस में हाथ मिलाये हुए थे, उनके कूल्हे एक-दूसरे से टकरा रहे थे और वे जगदीश का कोई नोटिस लिये बगैर इस तरह चले गये थे जैसे उनके अपने अलावा कुछ है ही नहीं और एक जगदीश है जिसे हर क्षण एहसास होता है कि उसके अपने अलावा सब कुछ है।

उसे फिर ख़याल आ गया था···हरजीत की बहन—सुरिन्दर का। बिलकुल इस जोड़े की लड़की की तरह है। कत्थई रंग वाला सूट···वैसी ही ओढ़नी···

इससे पहले भी एक बार मिली थी उसे। कॉलेज से लौट रही थी और इसी तरह एकाएक ही भेंट हो गयी थी उससे और वह निस्संकोच उससे बातें करती हुई कनाट प्लेस तक आयी थी। वे एक ही सीट पर सटकर बैठे थे···

उस दिन सुरिन्दर और जगदीश इतनी ही नजदीक थे और एक क्षण के लिए भूल गया था जगदीश कि वह तीन बच्चों का बाप है और शादी हुए करीब चौदह साल बीत चुके हैं···

सुरिन्दर की चिपकी वेशभूषा से शरीर फटा पड़ रहा था। जगदीश के शरीर का एक पूरा हिस्सा उसके मांसल शरीर से सटा हुआ था, कुछ इस तरह कि वह सुरसुरी अनुभव करने लगा था। वह इतना बिखरने लगा था कि कई बार बड़ी बेसिलसिले बातें की थीं उसने।

"आपका कॉलेज इसी तरफ है क्या ?"

"हां।" वह बोली थी।

"आप रोज इसी तरफ से जाती हैं ?" उसने कुछ संकोच के साथ पूछा था, "मेरा मतलब है, इसी 'इक्कीस' नंबर से ?"

"हां।"

"मैं भी 'इक्कीस' से ही जाता हूं।"

"पर, आप तो कभी नहीं दिखे मुझे ?"

"असल में, मैं नौ-दस वाली सर्विस से निकल जाता हूं। आज कुछ लेट हूं, इसलिए यह बाद वाली बस मिली है मुझे।"

"ओह !"

कितनी मीठी आवाज है सुरिन्दर की ! बरबस ही जगदीश को विमला की आवाज का ख़याल हो आया था। चौदह साल में एक बार भी वह इस तरह नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बोल सकी है···

फिर एकदम उसने ख़याल थूक दिया। इस मौके पर उसकी याद तक मन में कड़वाहट भर देती है। उसे जल्दी से जल्दी सुरिन्दर से बहुत-सी बातें कर लेनी चाहिए। थोड़ी देर बाद उसके कॉलेज का स्टॉप आ जायेगा···

"आप कनाट प्लेस चलेंगी क्या ?" बिलकुल अनचाहे, एकदम टूटा हुआ सवाल कर बैठा था वह।

सुरिन्दर ने एक बार उसकी ओर सिर घुमाकर इस तरह देखा जैसे पूछा हो, "क्यों ?"

"वैसे मुझे उतरना तो उसके पहले ही है, पर खैर, चली चलूंगी। वहां से कुछ खरीदना भी है। लगे हाथ वह भी काम हो जायेगा।"

जगदीश खुश हुआ। अब काफी देर तक साथ रह सकेगा उसका। आज ऑफिस के लिए थोड़ा लेट ही सही।

वह देर तक इधर-उधर की बातें करता रहा था। कई-कई बार यह बातें इतनी अजीब होती थीं कि सुरिन्दर अचकचाकर रह जाती थी। फिर मरदों में रहने वाली एक अच्छी और अनुभवी लड़की की तरह उसने समझ लिया था, वह घबरा गया है। और फिर जगदीश के हर ऐसे सवाल पर मुसकराने लगी थी।

कितना मीठा मुसकराती है ! काश, विमला भी···

वे कनाट प्लेस आ गये थे। सुरिन्दर उसके बहुत नजदीक चल रही थी। कई-कई बार उसकी बांह जगदीश को छू लेती थी और वह सिहर जाता था जैसे बेहद ठंडे मौसम में पानी की बूंदें नंगे बदन पर आ पड़ी हों !

कितना अच्छा होता कि विमला भी उसके साथ इसी तरह घूम सकती।··· पर उसे साथ लेकर चलना कितना कठिन है ? यह सोचते ही जगदीश एक किस्म का तनाव मस्तिष्क में अनुभव करता है। जब विवाह हुआ ही था तब वह घूंघट डाले उसके पीछे-पीछे चला करती थी और लगता था जगदीश किसी ट्रक की तरह है जो कचरे से भरी हुई ट्रॉली खींचता है !···

"आपने 'साउंड ऑफ द म्यूजिक' देखी है ?" सुरिन्दर पूछ रही थी और वे उस टॉकीज के बिलकुल सामने से निकल रहे थे, जहां वह फिल्म चली थी।

"नहीं।" जगदीश को सच कहना पड़ा था। हालांकि उसे लगा था, वह इस तरह खुद को बहुत बोना साबित कर रहा है।

"दैट वाज ए वण्डरफुल फिल्म ! आपने उसे 'मिस' कर दिया।"

वह निरुत्तर हो गया। उबलकर अगर जवाब देना चाहे तो कई जवाब हैं उसके पास ! मेरी कुल चार सौ तनख्वाह है ! तीन बच्चे, बीबी···बीबी ? वह पागलों की तरह हंस पड़ना चाहता था। एक मशीन है उसके घर में। सुबह से शाम तक चलती रहने वाली···खामोश···मुरदा !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुरिन्दर ने एक दूकान पर रुककर कुछ खरीद की और उस समय तक जगदीश कनाट प्लेस के कारीडोर में खड़ा गोल घेरों में दौड़ती हुई वे मशीनें देखता रहा, जो आदमी ढोती हैं···वे जिन में जिंदगियां दौड़ रही हैं और जगदीश बना हुआ है ट्रैक्टर···चार सौ रुपये के पेट्रोल से कचरे की ट्रॉली खींचता हुआ। ट्रॉली, जिसमें एक फूहड़ औरत रखी हुई है और तीन शैतान बे-शऊर बच्चे भरे हैं!···

कैसा लगेगा अगर कनाट प्लेस के इस खूबसूरत घेरे में एक कचरे भरी ट्रॉली वाला ट्रैक्टर गुजर जाये?···शायद वह गुजर भी रहा है···

सुरिन्दर ने उसकी बांह में अपनी बांह उलझा दी थी और सवाल दोहरा रही थी, "क्या सोच रहे थे?"

"कुछ नहीं।" वह उस दिशा में चलने लगा था जिस ओर सुरिन्दर जा रही थी।

"आइये, कहीं कॉफी पियें।"

"कॉफी?" वह चौंक गया और फिर उसे याद आ गया कि उसकी जेब में वे पैसे पड़े हुए हैं जो कल राशन खरीदते समय दुकानदार ने वापस किये थे, यों जगदीश हमेशा पैसे विमला को लौटा दिया करता है। यह इत्तफाक ही था कि वह कल भूल गया था। अगर आज जेब में पैसे न होते तो···

"हां, हां।" वह बोला।

वे दोनों कॉफी हाउस चले आये। शोर और हंगामे के बीच उन्होंने एक टेबल पर कब्जा कर लिया।

बैरे के आने पर उसने पूछा, "कुछ खायेंगी?"

"नहीं-नहीं, रहने दीजिये। खाली कॉफी।"

बैरा जाने लगा तो जगदीश ने रोक दिया, "नहीं-नहीं, कुछ तो खाना ही पड़ेगा।" फिर वह बैरे को आर्डर देने लगा, "दो जगह वेजीटेबल कटलेट···दो कॉफी!"

बैरे के जाने पर वे इधर-उधर की बातें करने लगे।

"यह जगह है, पर कितनी बेकार!"

"जी?" वह चौंका, "जी हां। जी हां।" और उसेएकाएक ही ख़याल हो आया, पटेलनगर का अपना घर!···विमला चाहे तो उस एक कमरे को ही बहुत सुन्दर ढंग से सजा सकती है। उसके पड़ोस में ही कितने घर हैं जो बहुत छोटे हैं, सिर्फ एक कमरे के घर, पर कितने करीने से सजे-संवरे···एक बार वह शेड-लैंप ले आया था। तनख्वाह लेकर पंचकुइयां रोड तक उस दिन यों ही टहलता हुआ निकल आया था। सोचा था, बिरला मंदिर होता हुआ जायेगा और बीच में ही दिख गया था शेड-लैंप···दो-एक के दाम पूछे थे उसने और फिर एक खरीद लिया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था—पैंतालीस रुपये में ! फिर स्कूटर लेकर सीधा घर चला आया था वह।

विमला ने उसकी सराहना तो दूर, उसके दाम तक न पूछे थे और जगदीश को लगा था जैसे तड़ातड़ तमाचे जड़ दिये गये हैं उसके गालों पर। उसने चर्चा भी चलानी चाही थी, "देखो, विमला ! कितना खूबसूरत लगता है ?···सारे कमरे में जवानी आ गयी है !"

"हूं।"

बुझ गया था जगदीश। हद दरजे की ठंडी औरत है !

"क्या सोचने लगे हैं ?" सुरिन्दर ने उसे टोका।

"कुछ नहीं।"

"आप कुछ परेशान रहते हैं, जगदीश बाबू !"

"नहीं।" वह फीकी हंसी हंसा, "ऐसी तो कोई बात नहीं।"

बैरा कॉफी और कटलेट रख गया।

उस दिन जब उसने सुरिन्दर से विदा ली तो निश्चित कर चुका था, वह इस सारे पचड़े को खत्म कर देगा और नये सिरे से जिन्दगी शुरू हो जायेगी उसकी !

वह इन सबको गांव धकेल आयेगा और फिर कभी नहीं जायेगा वहां। लगता है सिर्फ यही कारण है कि वह कुछ नहीं कर पा रहा और जो कुछ कर रहा है, वह अपने लिए नहीं है।

एक नशा-सा पिये हुए वह ऑफिस की ओर चल पड़ा था। शरीर के उस हिस्से में अब भी सिहरन हो आती थी जो सुरिन्दर से टकराता रहा था···कितनी शोख और चुस्त लड़की है !···

जगदीश चाहता है ऐसी ही शोख लड़की, जो उसे टोके, जवाब दे और जिद करे···

काश, विमला···

यह हो नहीं सकता। एक बुझे हुए कोयले से कैसे उम्मीद की जा सकती है कि वह आग उगले ?

फिर कई दिनों तक कोशिश की थी उसने इक्कीस नम्बर पर उससे मुलाकात हो जाये, पर हर बार वह चूकता रहा। कभी वह बस नहीं ले पाया, कभी जल्दी बस ले ली और कभी मिली भी वह बस, तो सुरिन्दर से खाली···

और फिर वह भूलने लगा···शायद उसे सिर्फ एक तलाश है···एक खूबसूरत चेहरे, घर और जिन्दगी की तलाश। सुरिन्दर से इसके अतिरिक्त कोई लगाव नहीं है उसे कि वह एक सुन्दर और सलीकेदार, फुर्तीली और शोख लड़की है···और यह शहर ? सिर्फ फुर्ती, शोखी और सुन्दरता···

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसका स्टॉप आ गया था। चौंककर वह उठा और बस से बाहर आ गया। रूमाल से चेहरे का पसीना पोंछकर वह कनाट प्लेस के कारीडोर की ओर बढ़ा···यही दूकान है। उस दिन सुरिन्दर के साथ वह यहीं आया था।

किसी दिन चला जाये वहां ?···किसी दिन क्यों, आज ही ऑफिस से छूटते ही वह जायेगा वहां। हरजीत के साथ ही हो लेगा। उस दिन कह रहा था वह, "सुरिन्दर के लिए लड़का खोज रहा हूं।"

"बड़ी जल्दी कर रहे हो ?"

"जल्दी कैसी ?"

"मेरा मतलब है···मेरा मतलब है···" जगदीश की समझ में नहीं आ रहा था, क्या कहे ? असल में वह बड़ी उतावली में और बड़ी नासमझी से भरी बात कह गया था। सुरिन्दर पच्चीस पार कर रही है और अगर पच्चीस साल की लड़की के लिए उसका भाई लड़का खोज रहा हो तब यह कहना कितना अजीब लगता है कि बड़ी जल्दी कर रहे हो ?···

"सुरिन्दर पच्चीस पार कर गयी है, जानते हो ?" हरजीत ने कहा और वह चुप हो गया।

न जाने क्यों उस सारे दिन किसी काम में मन नहीं लगा था उसका। रह-रहकर वह सुरिन्दर के बारे में सोचने लगता···

उस दिन न जाने कितनी यादें सहेज ली थीं जगदीश ने—और यहां चौदह साल हो गये हैं शादी हुए। कोई बात ऐसी नहीं है जो याद हो आये। कुछ नयापन और छू जाने वाली बात है ही नहीं इसमें। शादी हुई थी और वे बिलकुल साधारण, औसत किस्म की जिन्दगी जीने लगे थे। बच्चे पैदा किये थे उन्होंने, जगदीश मेहनत करता रहा था, खाना खाता रहा था और सब कुछ इस तरह चलता गया था जैसे सुबह उठने के बाद के जरूरी क्रम···

वह रात को देर तक भुनभुनाता रहा था। हर करवट के साथ वह नये से नये ख़यालों में जकड़ता गया था। क्या ऐसा नहीं हो सकता कि सुरिन्दर···

यह कैसे मुमकिन है ? जगदीश के नाम के साथ एक अदद बीबी और तीन बच्चे जुड़े हुए हैं···भला कौन-सी बेवकूफ लड़की होगी या उसके बेवकूफ घरवाले होंगे जो जगदीश के साथ बंध जाना चाहेंगे। वह खीझ में भर उठा था। वह एक पुराने पुर्जे के अलावा कुछ नहीं रह गया है। अब एकमात्र स्थिति यही है कि या तो वह मशीनी जिन्दगी से जुड़ा रहे या फिर इससे अलग, नाकारा होकर किसी एकांत में पड़ा रहे।

ऑफिस की सीढ़ियां चढ़ते-चढ़ते अनचाहे ही वह बाथरूम में चला आया। उसने आस-पास देखा, कोई नहीं था। फिर वह वाशबेसिन के शीशे के सामने जा खड़ा हुआ—अभी बहुत उमर तो हो नहीं गयी है।···उसकी शादी जल्दी हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गयी थी। सत्रह साल की उम्र में। इकतीस साल का है जगदीश !···

उसने देखा, चेहरे पर वह रौनक थी जो इकतीस साल के आदमी के चेहरे पर होनी चाहिए। इधर जब से दिल्ली आया है, कुछ ढंग से नहीं रह पाया है। कभी-कभी दाढ़ी बढ़ जाती है, उसे शेव करने के लिए वक्त नहीं मिल पाता और चेहरे से उमर बढ़ी हुई दीखने लगती है। आज शेव कर पाया है तो चेहरा किस तरह दमक रहा है ? यों शक्ल के मामले में वह है भी उमर-चोर !

जब नया-नया दिल्ली आया था वह और ऑफिस के साथियों को उसने जानकारी दी थी कि वह तीन बच्चों का बाप है तब वे हैरान रह गये थे। हरजीत ने आश्चर्य से पूछा था, "सच ?"

वह झेंप गया था जैसे चोरी की हो उसने। बोला था, "मैं ठीक कह रहा हूं।"

"तब तो कमाल कर दिया तुमने !" हरजीत ने कहा था, "उमर से तो ऐसा लगता नहीं है। बिलकुल कॉलेजिएट लड़के दीखते हो !"

···बिलकुल 'कॉलेजिएट' लड़के जैसा !···प्रसन्नता की एक किरण उसके चेहरे और शीशेवाले चेहरे पर उभर आयी थी। अगर वह विमला और बच्चों को गांव भेज दे तो किसी लड़की और उसके घरवालों को धोखा देना मुश्किल बात नहीं है ! एक अजीब-सा आत्मविश्वास का भाव जनम आया था उसके मन में। कुछ और लोग बाथरूम में आ गये थे। वह चौंककर शीशे के सामने से हट गया था। यह बिलकुल कठिन नहीं है कि किसी से अपने लिए कहा जाये··· बिलकुल कहा जाना चाहिए !

वह ऑफिस आ गया था। लेट हो जाने पर उसे स्पष्टीकरण देना होता है··· उस दिन सुरिन्दर के साथ घूमता रहा था, तब दिया था। एक क्षण के लिए उसे लगा, शायद आज भी लेट हो गया है वह ··कितना कुछ सोचता रहा है सुरिन्दर के बारे में। पर दूसरे ही क्षण उसे अपनी भूल का एहसास हो आया। आज बिलकुल ठीक वक्त पर आया है। हमेशा आता रहता है जब कि ऑफिस का उसका हर साथी लेट होता है, हर दिन किसी न किसी को डांट पड़ती है। सबकी सुरिन्दर जैसी बीवियां हैं···सब हर दिन घूमते या सिनेमा देखते हैं, सुबह देर से जागते हैं और ऑफिस में लेट होते हैं। सिर्फ एक जगदीश ही है जो हमेशा वक्त का पाबंद रहा है। असल में वह आदमी से ज्यादा पुरजा है। सुबह के साथ ही चल उठा और फिर सब कुछ बिलकुल रुटीन···

पुरजा···एक निश्चित सीमा !

जगदीश···एक निश्चित सीमा !

टेबल पर काम करते हुए वह उखड़ा रहा। बीच-बीच में पास ही काम करते हुए हरजीत की ओर उसका ध्यान चला जाता। सुरिन्दर के लिए लड़का ढूंढ़

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहा है। पच्चीस साल की सुरिन्दर···यह खूबसूरत शहर, खूबसूरत चेहरे, रंगीनियां···जिसको सुरिन्दर का साथ मिलेगा, वह मजे करेगा। वे साथ-साथ सटे हुए कॉफी हाउस में घूमेंगे, अंग्रेजी फिल्में देखेंगे और रातों को देर तक खिलखिलाते हुए जागेंगे···

विचार के हर दौर में वह एक झटका खा जाता। क्या हर्ज है अगर हरजीत से बात की जाये। वह दोस्त है। सब कुछ साफ-साफ कहा जा सकता है। यह भी कि वह ऊब गया है इस रुटीन-जिन्दगी से··यह भी कि चार सौ रुपये दो आदमियों के लिए कम नहीं होंगे, फिर भूले-भटके पांच-पचास का प्राइवेट काम हो ही जाता है और यह भी कि वह सबको गांव छोड़ आयेगा और··और फिर कभी नहीं जायेगा वहां !

वे तो आ सकते हैं ? उसने खुद से सवाल किया और डर गया। लगा जैसे एक शीशे पर रंगीन तसवीर खींच रहा था वह, अचानक एक पत्थर आ लगा है और टुकड़े हो गये हैं !

नहीं, वे नहीं आयेंगे ! उसने खुद को जवाब दिया। विमला ऐसी है ही नहीं ! उसमें हिम्मत ही कहां है इतनी ?···उसे मालूम ही क्यों पड़ने देगा जगदीश ? पर इस तरह की बातें बहुत दिनों तक छिप नहीं पातीं···ठीक है ! न छिप पायें। मालूम भी हो गया तो क्या होगा ?

वह जरूर बात करेगा हरजीत से ! उस दिन हरजीत टूटती हुई बातों के दौरान स्वीकार कर गया था कि सुरिन्दर के लिए लड़का ढूंढ़ना आसान नहीं है ! एक तो वह पच्चीस साल पार कर गयी है, तिस पर उसने खासी एजुकेशन ले रखी है···उमर, एजुकेशन···हर मामले में टक्कर होनी चाहिए और फिर सबसे जरूरी बात है कमाने-खानेवाला आदमी···कम से कम तीन सौ कमाता हो। कुछ सुरिन्दर भी हाथ बंटा लेगी।

जगदीश एम० ए० है। चार सौ कमाता है। पच्चीस साल की लड़की के लिए भी ठीक है···

"आज लंच पर मेरे साथ चलना।" हरजीत के पास पहुंचकर उसने कहा था।

"कोई खास बात है ?"

"हां।"

"ठीक।"

वे लंच पर साथ-साथ गये थे। रेस्तरां में आते ही जगदीश ने आर्डर छोड़ दिया, "एक मसाला दोसा और कॉफी···" फिर वह इधर-उधर की बातें करने लगा। धीरे से सुरिन्दर तक बात ले आनी है।

उन्होंने दोसा खाया, फिर कॉफी पी और जगदीश कई मौके आने के बावजूद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी बात नहीं कह सका। क्या सोचेगा हरजीत ? जगदीश का दिमाग खराब हो गया है ! एक अदद बीवी···तीन बच्चे···चौदह साल से चलता रहा एक घर···

वे लौट आये थे। जगदीश ऑफिस पहुंचने तक अनमना रहा था, फिर ऑफिस में भी और घर आकर भी।

रोज की तरह उसने विमला से उखड़ी-उखड़ी बातें की थीं। बच्चों को डांटा था और बिस्तरा उठाकर छत पर आ रहा था। अच्छा ही किया जो हरजीत से कुछ नहीं कहा। अगर कह देता तो न जाने क्या सोचता वह मन में ?···मुमकिन था वह जगदीश के चेहरे पर एक थप्पड़ जड़ देता ! कहता, मेरा अपमान करते हो ! वैसे वह आदमी इस तरह का नहीं है ! जगदीश को कहना चाहिए था··· यह भी तो हो सकता है कि हरजीत मान जाता ! पंजाबी कौम ही वैसे बड़ी 'बोल्ड' होती है ! हरजीत जरूर मान जाता। और फिर इसमें कोई घाटा भी तो नहीं था। वह देर तक सोचता रहा।

"पापा, खाना खायेंगे ?" बच्ची उसे बुलाने आ गयी थी। जब-जब वह नाराज होता है, और अकसर होता है, तब विमला खुद नहीं बोलतीं। इसी तरह बच्चों में से किसी को भेजकर बुलवाती है। वे दोनों एक-दूसरे से नहीं बोलते और एक पशु की तरह जगदीश चुपचाप गरदन झुकाये खाना खाता है।

"पापा···"

"जा !···अभी नहीं !" वह झल्ला गया। बिलकुल तमीज नहीं सिखाया गया है इन्हें। जब भूख लगेगी तो अपने-आप खा लेगा जगदीश···भूख ? भूख तो लग रही है। उसने महसूस किया और जब मुड़कर देखा तो बच्ची जा चुकी थी। मन हुआ, उठे और खाना खाने नीचे चला जाये, पर···विमला क्या सोचेगी ? अभी ही तो बच्ची को भगाया है। उसने जाकर कह दिया होगा। बिलकुल वैसा ही, जैसा जगदीश ने कहा था।

वह अभी नहीं जायेगा। कम से कम दस मिनट। और फिर वह देर तक निरुद्देश्य आसमान की ओर देखता रहा।

देर तक भूख से लड़ते रहने के बाद जब वह नीचे आया तो उसने देखा, विमला खाना खा रही थी। उसने एक ओर रखी चटाई बिछायी और बैठ गया। विमला हाथ धोकर उसे खाना परोसने लगी।

रसोई में चीजें बिखरी हुई थीं। कितनी गंदी रखती है रसोई। वह झल्लाता रहा और तभी उसका ध्यान विमला के खाने पर चला गया। सूखी रोटियां और अचार की फांकें। उसे चिढ़ हो आयी, "क्यों, क्या सब्जी नहीं बनी है ?"

"है।" बड़ा संक्षिप्त-सा उत्तर।

"फिर तुम यह···"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"सब्जी सिर्फ तुम्हारे लायक ही थी।"

कटकर रह गया जगदीश। खाना खाते समय वह देर तक विमला से बात नहीं कर सका था। हिम्मत नहीं होती थी। वह उसी तरह चुपचाप अचार की फांक से रोटी खाती रही थी और जगदीश जब-जब ग्रास सब्जी में डुबोता, उसे लगता था कि वह खुद डूब गया है···गहरे, बहुत गहरे···जैसे-तैसे वह खाना खाकर उठ आया था। गैलरी में आकर एक सिगरेट सुलगा ली थी उसने और लगातार कई कश खींच डाले थे। आज लंच में उसने दोसा लिया था, कल भी फ्रूट प्लेट ली थी। परसों शायद वह समोसे खा आया था···पिछले कई दिन याद कर डाले उसने।

और विमला अचार खा रही है। सब्जी सिर्फ जगदीश के लायक थी···लायक या उतनी ही? उसने धुएं का एक गहरा गुबार उगल दिया।

पड़ोसवाला जोड़ा फिर निकल पड़ा है···उसी तरह हाथ में हाथ डाले हुए···

जगदीश से भूल हो गई। एक बार कहकर देख लेता हरजीत से, शायद···

पर विमला अचार के साथ रोटियां निगल रही है। सूखी···बगैर घी वाली···

१९६५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक डाकिन । एक मां

काशी को मोटे-मोटे सींखचों में बन्द कर जब हवलदार जाने लगा, उसने सींखचों के नजदीक आकर पूछा—'तेरे कोई बच्चा है ?'

हवलदार ठिठककर रह गया। उसके चेहरे पर दो-एक झुर्रियां पहले की अपेक्षा और गहरी हुईं। एकाएक कोई उत्तर न दे पाया तो काशी ने पुनः वही प्रश्न कर दिया—तेरे कोई बच्चा है ?

तेरे कोई बच्चा है ? इसके आगे न तो कोई पृष्ठभूमि ही थी और न पीछे कोई कारण। यों ही बे-सिर-पैर का सवाल सुनकर हवलदार को कुछ उलझन हुई, कुछ घबराहट। थोड़े रूखे स्वर में बोला—तुझे क्या करना ?

काशी जोर से हंस पड़ी, जैसे झर-झरकर पानी बरसा हो। हवलदार की घबराहट दुगुनी हो गई। कड़वे स्वर में बोला—हंसती क्यों है ?

'तेरा डरपोक मन देखकर हंसती हूं।' काशी सोचती हुई बोली, 'अब तो तुमने मुझे 'जेह'···ल में बन्द कर दिया है। अब थोड़ी किसी का बच्चा चुरा सकती हूं ? बता, तेरे कोई बच्चा है ?'

'हां···है।' हवलदार ने उत्तर दिया।

'तो उसे मेरे पास ले आ।' काशी बोली।

'क्यों ?' हवलदार ने पूछा।

'क्यों क्या ? मैं उसे प्यार करूंगी।' काशी ने निस्संकोच उत्तर दिया, 'मुझे बच्चे बहुत अच्छे लगते हैं।'

'अच्छा, लाऊंगा !' हवलदार ने पीछा छुड़ाया। उसने काशी के इस सारे वार्तालाप की जानकारी जेलर को दी, और भी कई लोगों से कहा-सुना। और इसके बाद एक नहीं, अनेक सिपाहियों ने काशी की ऐसी ही रिपोर्ट की। वह उस हर आदमी से, जो उसके कमरे के आस-पास पहुंचता, पूछती—तेरे कोई बच्चा है ? अगर वह उत्तर में 'न' कर देता तो काशी उदास हो जाती, और अगर स्वीकार कर लेता तो काशी उसे लाने को कहती। जिद करती कि वह अपना बच्चा काशी के पास ले आये, काशी उसे प्यार करेगी, उसे बच्चे बहुत अच्छे लगते हैं, पर न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाने क्यों काशी ने जिस-जिस से भी बच्चा लाने को कहा, वह फिर उसकी तरफ न आया, और काशी पूर्ववत् हर नये आदमी से यही सवाल पूछती रही। लोगों को उससे भय-सा लगता, हालांकि वह न तो खूनी थी और न ही किसी और भयानक अपराध में उसे दो वर्ष की सजा मिली थी, फिर भी वह तमाम कैदियों से अलग एक विचित्र-सी घृणा का बोझ ढोती। उसे किसी का बच्चा चुराने के आरोप में सजा मिली थी। कहते हैं, वह किसी का बच्चा बहका-फुसलाकर एक बाजार से दूसरे बाजार तक ले आयी थी, और पकड़े जाने पर उसने बच्चा उसका अपना होने का दावा कर दिया था। इसी अपराध में उसे सजा हुई। डॉक्टरों ने उसकी जांच कर प्रमाणित कर दिया था···वह पागल नहीं है। शरीर से हृष्ट-पुष्ट थी वह। उम्र यही कोई तीस-पैंतीस के बीच रही होगी। गेहुंआ रंग था उसका, और चेहरा भी कुछ विशेष अनाकर्षक न था। साधारणतः जेल के अधिकारियों, सिपाहियों से लेकर साधारण आदमी तक कोई भी उसके पास जाना पसन्द न करता। एक-दो लोग 'स्त्री' के आकर्षण में बंधे चले भी गये, तो उसने किसी-न-किसी ढंग से बच्चे की चर्चा छेड़ दी और वे भी सदा के लिए कटकर रह गये।

काशी को जेल भुगतते-भुगतते करीब एक वर्ष हो चुका था। इस बीच उसने हर आदमी से यही एक प्रश्न किया था, और हर आदमी उसे बदले में तिरस्कार और घृणा देकर दूर हो गया था। इसी बीच एक ऐसी घटना हुई कि वह सारी जेल में आतंक का कारण बन गई। हवलदार हनुमानसिंह का पांच वर्षीय इकलौता लड़का न जाने कहां से घूमता-घामता अपने क्वार्टर से निकलकर कैदियों की कोठरियों तक चला गया। काशी ने देखा तो एक प्यार डूबी मुसकराहट उसके रास्ते में बिछाकर पास बुला लिया, पर कमरे का मोटे-मोटे सींखचों वाला फाटक अब भी उन दोनों के बीच था। काशी भाग्य की लाचारी पर कुछ क्षण उदास हुई, फिर दूसरे ही क्षण उसने फाटक के सींखचों में से दोनों बांहें फैलाकर उसे भींच लिया। बीच में मोटे-मोटे सरिये होते हुए भी उसने शांति और तसल्ली अनुभव की। कई-कई बार बच्चे के सिर पर हाथ फिराया। उसका मुंह अपनी ओर को खींचकर सींखचों के बीच से उसकी 'मीट्ठियां' लीं। ठीक तभी एक सिपाही की दृष्टि उस पर गई। बात की बात में सारी जेल में हंगामा हो गया। हवलदार हनुमानसिंह ने सुना तो क्वार्टर से वैसे ही अंडरवियर और बनियाइन पहने भागता हुआ आया। उसने बच्चे को उठाकर सीने से भींच लिया। घृणापूर्वक काशी की ओर देखकर बिना कुछ कहे चुपचाप अपने क्वार्टर की ओर वापस चला गया।

दूसरे दिन काशी को जेल की उस कोठरी से निकालकर सबसे अन्तिम कोठरी में भेज दिया गया। यहां मरघट जैसा भयावना सूनापन था, और क्वार्टर काफी दूर थे। इस कोठरी में सीलन भी थी, कोने कातरों में मकड़ियों ने जाल तान रखे थे। जेलर ने ऐहतियातन यह कार्यवाही की थी, ताकि बच्चे खेलते-कूदते काशी के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पास तक न जा पहुंचें। यह कोठरी सारी जेल में सबसे गंदी और घुटनदेह थी। काशी इस कोठरी में आयी, लगा जैसे बीमार हो गई है। बच्चे तो बच्चे, जेलर के इस निर्णय ने उससे सूरज भी छीन लिया था। मन के कोने पहले की अपेक्षा ज्यादा अंधेरे हो गये—ठीक इस कोठरी की तरह। सारे दिन काशी सींखचों से सटी बाहर की ओर झांका करती, यों जैसे बच्चों को बुलाने की कोशिश कर रही हो—सूरज से दया मांग रही हो। वह देखती, दूर उधर जहां से कैदियों की कोठरियां प्रारम्भ होती थीं—चहल-पहल नजर आती थी। कई बार उसने लोगों की ओर ध्यान भी दिया तो पाया जैसे वे सब उसी के बारे में सोचते थे—सिर्फ उसी के कारण परेशान थे।

काशी को अदालत से सख्त कैद का आदेश हुआ था और वह सख्त कैद भुगत भी रही थी। इस सख्ती के सिलसिले में उससे कठिनतर कार्य करवाये जाते थे। जेलर साहब के बंगले के इर्द-गिर्द काफी कूड़ा-कचरा पड़ा हुआ था। सुबह से ही काशी को उस सीलनभरी कोठरी से निकालकर वहां भेज दिया जाता, ताकि वह कचरा साफ करे, उन आवारा पौधों को उखाड़े जिन्हें आदमी फलों के झाड़ों और क्यारियों के सुन्दर दृश्यों के बीच देखकर अप्रसन्न होता है। बंगले के दूसरी ओर जेल के अनेक कर्मचारियों, धोबियों और मेहतरों आदि के क्वार्टर्स थे। काशी काम करते-करते उधर देखा करती। उन क्वार्टरों के इर्द-गिर्द काले-कलूटे नंग-धड़ंग बच्चे खेला करते। काशी को बहुत अच्छा लगता, पर उसे यह देखकर दुख होता कि कोई बच्चा इस ओर आने का प्रयत्न न करता। काशी ने अनेक बार किसी बच्चे की ओर मुसकराकर प्यार भरी नजरों का बुलावा भेजा, पर उत्तर में वह भी केवल मुसकराहट पाकर रह गई। काशी का मन होता कि काम छोड़कर उन गन्दे झोंपड़ों की ओर चली जाये और किसी नंग-धड़ंग काले-कलूटे बच्चे को सीने से लगाकर भींच ले, उसके गालों पर प्यार भरी 'मीट्ठियों' की बौछार कर दे, पर चाहकर भी काशी ऐसा नहीं कर पायी। बंगले की दूसरी ओर हवलदारों, सिपाहियों आदि के क्वार्टर्स भी थे, और इन लाल पगड़ी वालों से उसे भय लगता था। उनकी तीखी और चुभनदार नजरों से उसे भय लगता था। उनकी दृष्टि उस खुली जगह में भी कैद थी।

काशी जी थामे— मन मारे काम करती गई थी। कई दिनों यही चला था। वह खुली हवा की कैद—और काशी की लाचार नजरें—वे नंग-धड़ंग बच्चे। सब एक-दूसरे से अलग।···और एक दिन यह अलगाव काशी ने तोड़ दिया था। उसने सन्तरियों की नजरों के ताले मौका पाकर तोड़ डाले थे, और गंदे छोकरों के बीच जा पहुंची थी। काशी उनसे दो-तीन गज के फासले पर ही ठहर गई। उसने उन बच्चों का खेलना देखा, उसे अच्छा लगा था। तभी न जाने कहां से एक चार-पांच वर्ष का गंदा लड़का उसके पास आ खड़ा हुआ था। उसकी नाक होंठों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तक बह आयी थी, और वह उसकी ओर से लापरवाह होकर उसका खारा स्वाद ले रहा था। काशी ने उसे और उसने उसे नीचे से ऊपर तक देखा। दोनों मुसकरा दिये। वह एक गंदी-सी बनियाइन पहने हुए था, जिसकी बगलों से सिलाई उधड़ने लगी थी। काशी ने सवाल कर दिया···यों, जैसे हर बोल चाशनी में भीगा हुआ हो—"तेरा क्या नाम है ?"

"छियोराम।" बच्चे ने निधड़क उत्तर दिया।

काशी को उसकी तोतली भाषा रुची। बोलना सुहाया। उसने दूसरा सवाल किया—"कौन का लड़का है तू ?"

"मन्नी धोबी का !" लड़के ने उत्तर दिया। उसकी नाक होंठों से भी नीचे तक बह आयी थी।

"तेरी नाक बह रही है।" मुंह बिचलाकर काशी ने कहा तो लड़के ने जल्दी से दायां हाथ कोहनी तक ले जाकर नाक पर घुमाया। फिर बोला—"कहां आ रही है ?"

काशी हंस दी। छियोराम की गिजगिजी नाक उसके पोंछने के प्रयत्न में होंठों से पूरे गाल तक फैल गई थी और वह स्वयं पहले की ही तरह उस ओर से लापरवाह था।

हर गंदगी के बावजूद काशी को वह बच्चा अच्छा लगा। "मेरी गोद में बैठेगा तू ?" उसने सवाल किया तो लड़के ने फौरन ऊपर-नीचे सिर झुकाकर 'हां' का इशारा किया। काशी ने दाएं-बाएं बड़े चौकन्नेपन के साथ नजरें घुमाईं, और फिर पास खड़े छियोराम को दोनों हाथों से खींचकर गोद में बिठला लिया। उसने उसकी फैली हुई नाक अपने पल्लू से पोंछ डाली। उसने छियोराम की 'मीट्ठियां' लीं, उसके सिर से पांव तक कई बार हाथ फिराया। "तू छियोराम है न ! तू बहुत अच्छा है। बहुत अच्छा लड़का है तू।···तू बड़ा अच्छा है।"···काशी जैसे इन सवालों के साथ डूबती गई···डूबती गई···

काशी का ध्यान टूटा। सामने अरदली समेत जेलर खड़ा हुआ था। पीछे था लम्बे-चौड़े डीलडौल वाला कोई ग्रामीण।

"उतार उसे !" अरदली ने छियोराम की ओर संकेत किया।

काशी के हाथ किसी मशीन की तरह चले। छियोराम को गोद से उतारकर उसने एक ओर खड़ा कर दिया।

"चल !" अरदली ने कुछ अजीब कड़वाहट भरे शब्दों में कहा।

काशी उठ खड़ी हुई। उसने विचित्र ढंग से जेलर को देखा। वह कुछ बोला नहीं था, किन्तु जाहिर था, वह काशी की अनाधिकार चेष्टा से क्रुद्ध हो गया था। काशी की गर्दन नीचे झुक गई। यों, जैसे वह कोई नयी चोरी करते पकड़ी गई थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अरदली ने पुनः कठोरतापूर्वक कहा—"जल्दी चल !" फिर वह ग्रामीण वेश-भूषा वाले लम्बे-चौड़े डीलडौल के आदमी की ओर मुड़ा—"संभाल ले अपने छोकरे को।"

काशी ठिठकी। एक नजर ग्रामीण पर फेंकी। मन्नी धोबी है—छियोराम का बाप।···और जब मन्नी ने लपककर छियोराम को गोद में उठा लिया, तो एक गहरी श्वास खींचकर काशी जेलर और अरदली के साथ वापस अपने काम की ओर चली आयी। रास्ते में पढ़े-लिखे जेलर ने उसे डांटा—बिना मां के बेटे हैं, तो तेरी आंख चढ़ गये। आगे से कभी ऐसा हुआ तो कोठरी से बाहर ही नहीं आने दूंगा।

काशी चुपचाप सुनती गई। और यों अनसुनी करती गई, जैसे जेलर या अरदली एक रेडियो की तरह हैं, जो जब चाहे—बज सकते हैं, जब चाहे बन्द हो सकते हैं। उसे छियोराम का ख़याल आ रहा था। कितना मासूम है वह ! उसे पूछा था—मेरी गोद में बैठेगा तू ? तो कैसे 'जल्दी' से हां करके आ बैठा ? उसे खीझ हुई, एक छियोराम है···मन्नी का बेटा, गंगा के पानी जैसा और एक जेलर और तमाम सिपाही-हवलदार हैं, पढ़े-लिखे, समझदार आदमी···पर शहर की सड़कों के नीचे बिछे गन्दे गटरों जैसे दिमाग वाले। उसने एक बार फिर जेलर की ओर देखा, घृणापूर्वक थूक दिया धरती पर। जेलर ने घूरकर उसे देखा, यों जैसे वह गंदगी को देख रहा था। उसने कुछ कहा तो नहीं, पर काशी को थूकने का उत्तर दे दिया। दूसरे दिन से वह काम के लिए भी नहीं छोड़ी गई। वह सींखचों के भीतर सूर्य का जागना और सोना देखती रही·· उस दिन, उसके अगले दिन और फिर उसके भी अगले दिन। लगातार कई दिन। यह कैद बंगले का काम करने की अपेक्षा कई गुना कष्टदायक थी। काशी को लगता, जैसे सांस रुंध रही है, और भीतर ही भीतर किसी फोड़े का दर्द उठ रहा है। काशी जानती थी, ये फोड़ा छियोराम ने उसे दे दिया है। उसे पछतावा होता, अकारथ ही उस दिन बोल ली उससे। जैसे-जैसे वह सोचती, अन्तर के किसी कोने में उभर आया वह फोड़ा और-और कसकने लगता। टीस गहरा जाती।

और फिर एक दिन फोड़ा फूट गया था। उस सारे दिन काशी फूट-फूटकर रोयी थी, उसने सींखचों को हिलाने की बेवकूफी भरी कोशिश की थी। उसने घिघिया-घिघियाकर सन्तरी से प्रार्थना की थी—एक बार मुझे बाहर तक आने दे ! बस, एक बार मुझे छियोराम को देख लेने दे, उसे जो मेरी गोद में बैठ गया था, जिसके गालों पर मैंने 'मीट्ठियां' ली थीं, और जिसकी नाक मैंने अपने पल्लू से पोंछ दी थी। एक बार मुझे छियोराम को देख लेने दे !···पर काशी की यह सारी अनुनय-विनय बेकार गयी थी। किसी ने उसकी कोई बात नहीं सुनी थी। उल्टे उसे दुत्कारा था, घृणा दी थी—डाकिन ! उस दिन तूने ही छियोराम को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गोद उठाया था न, बिन मां का बेटा !···तूने मन्नी का कलेजा नोंच लिया। तीन दिन के बुखार में ही चटपट हो गया !

फोड़ा फूट गया था। काशी ने सिर धुन लिया। छियोराम मर गया ! लोग कहते हैं, वह काशी के कारण मर गया ! काशी के हाथों में ज़हर है। उसकी मीट्ठियां मौत के बुलावे हैं···काशी खूब रोयी··· केवल उस दिन ही नहीं, कई दिन रोती रही। यों, जैसे भीतर का जो फोड़ा फूट गया था, उससे मवाद रिस रहा था। यह मवाद कई दिन रिसा, और फिर एक दिन फोड़ा सूख गया— काशी की आंखें रीत गयीं। उसकी यादों में छियोराम का चेहरा धुंधलाने लगा। हर याद एक तसवीर है, और हर तसवीर का रंग एक न एक दिन जरूर धुंधला जाता है।

जेल की इस बस्ती में छियोराम की मौत और उसकी मौत से काशी का नाम जुड़ जाना— एक बड़ी घटना थी। पहले की अपेक्षा आतंक का वातावरण और अधिक फैल गया था, और अब बच्चे, तो बच्चे-बड़े आदमी भी उससे बचाव की कोशिश करते थे। काशी को यह सब कुछ एक तिलिस्म की तरह लगा। पर वह इस तिलिस्म की आदी होती जा रही थी। उसने उन आंखों को— जो उसे घृणा और तिरस्कार के अंधेरे में कैद किये हुए थीं— एक ऐसी हंसी और उपेक्षा से कुरेदना प्रारम्भ कर दिया, जो उन्हें सहमाती थी—उसकी खिल्ली उड़ाती थी। जैसे कह रही हो—तुम मेरा कुछ नहीं कर सकते।···तुम कितने कमजोर हो !

इधर कुछ दिनों से उसे फिर काम पर लगा दिया गया था। कैदी के लिए काम एक कानूनी बन्धन है—जेलर अधिक दिन मनमानी नहीं कर सकता था। काशी काम करती, क्वार्टरों में खेलते बच्चों को उनकी माताएं उसकी नजर से बचाने की कोशिश करतीं। उन्हें बाहर मैदान में नहीं आने दिया जाता। काशी औरत नहीं है ! ··उसके हाथ ज़हर में डूबे हुए हैं, और उसकी मीट्ठियां मौत के बुलावे हैं···हर डाकिन के हाथ ज़हर में डूबे होते हैं, उसकी मीट्ठियां मौत का बुलावा होती हैं।

काशी रीती आंखों सूने मैदान को देखती। यहीं वे नंग-धड़ंग बच्चे खेलते थे, यहीं छियोराम खड़ा रहता था। उस दिन जरा कहा था काशी ने—तू मेरी गोद में बैठेगा ? और कैसे झट से आ बैठा था। काशी को लगता, जैसे रीती आंखों के कुछ कोनों को यादों के मानसून ने छू लिया है।

कितने ही दिन बीते थे। कितनी ही बार काशी की रीती आंखों को यादों के मानसून छू गये थे। ऐसे ही एक दिन जब काशी स्मृतियों के मानसून में हरियाती काम करने में लगी हुई थी, न जाने कहां से एक बच्चा उसके पास आ खड़ा हुआ था। वैसा ही नंग-धड़ंग, जैसा उस दिन छियोराम देखा था। काशी अवाक् उसे देखती ही रह गयी थी। मन हुआ था—गोद में उठाये और सीने से लगाकर भींच

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डाले···अनचाहे उसके हाथ बढ़ भी गये थे, पर सकुचाकर जल्दी ही उसने उन्हें खींच लिया।···उसके हाथ ज़हर में डूबे हुए हैं, और उसकी मीट्ठियां मौत के बुलावे हैं···। उसने छियोराम को गोद में लिया था, और छियोराम मर गया! काशी ने एक बार लाचार-सी दृष्टि से उस बच्चे को देखा, यों जैसे वह कई दिनों से भूखी थी, और सामने खाने की भरी थाली रखी थी। पर काशी उसे छू नहीं सकती!···ऐसी भरी थालियां उसके भाग में नहीं हैं!···न जाने क्या हुआ कि वह चीख पड़ी—जा!···तू जा! मरे जायेगा तू!···मेर पास मत आ!

काशी की चिल्लाहट से इधर-उधर के आदमी एकत्र हो गये। काशी के पास बच्चा आ गया है। न जाने किसका बच्चा! ये मन्नी का दूसरा बेटा है! छियोराम का छोटा भाई! एक सिपाही गया, दौड़कर मन्नी को बुलाकर लाया। एक सिपाही ने बच्चे को गोद में उठा लिया था।

मन्नी आया। दौड़ता हुआ।

'तेरे दूसरे छोकरे को भी काशी गोद में लेने वाली थी', सिपाही ने बच्चा मन्नी की गोद में देते हुए कहा—'तेरे दूसरे लड़के पर भी आंख है इसकी!'

मन्नी चुप रहा। उसने देखा, काशी उसकी ओर देख रही थी। उसकी आंखों में दया का भाव था, जैसे कह रही हो—मैंने छियोराम को नहीं मारा··! सच जान, मैंने ··!

'अपने छोकरे को संभालकर रखा कर।' एक सिपाही को एक ओर हटाकर जेलर ने प्रवेश किया—'इस डायन की परछाईं तो एकाध महीने में यहां से दूर हुई जाती है।'···वे और भी कुछ कहते, किन्तु मन्नी बोल पड़ा—'बहुत संभालकर' रखता हूं, साब! पर बिन मां का बेटा है, हर औरत को अपनी मां समझता है! ···कहते हुए मन्नी ने लड़के को गोदी से उतारकर काशी के एकदम नजदीक खड़ा कर दिया। उसने फिर बात दोहराई—बिन मां का बेटा है, साब! हर औरत को अपनी मां समझता है, उसने लड़के को काशी की ओर खिसका दिया—ले! खिला ले इसे! इसका भी मन रह जायेगा।

अचरज से आसपास इकट्ठा लोगों ने मन्नी की हरकत देखी। मन्नी बोला—ये औरत है हुजूर। और हर औरत मां होती है।···

'पर मन्नी···' जेलर ने कुछ कहना चाहा।

'माफी देना, हुजूर।' मन्नी बोला, 'आप ऊंची पढ़ाई पढ़े हैं, साब। छियोराम को लपट लगी थी।' और फिर वह बगैर किसी उत्तर की प्रतीक्षा किये, अपने क्वार्टर की ओर चला गया।

१९६५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लाख रुपये की तकदीर

हर आदमी की तकदीर अलग है, और उसकी कीमत अलग है। मैं जिस घर में रहता हूं, उसमें मेरे अलावा एक और किरायेदार है, जो रेलवे में नीची श्रेणी का क्लर्क है। कुल मिलाकर एक सौ साठ रुपये मिलते हैं। उसकी तकदीर फिलहाल एक सौ साठ की है। इससे कुछ ज्यादा एक सौ पिचहत्तर मुझे मिलते हैं, और इस तरह मेरी तकदीर पौने दो सौ की हो जाती है। बाकी दो घर इस मकान में और बसे हैं—मेरा मकान मालिक, जिसकी हजार रुपये की तकदीर है, और तीसरे एक लाख की तकदीर वाली मिस्त्री बाबूलाल की घरवाली भानमती, जो न किरायेदार है, न मकान मालिक।

चूंकि भानमती हम दो किरायेदारों की तरह मकान मालिक को किराया नहीं देती, इसलिए वह किरायेदार नहीं है और हमसे मकान मालिक की तरह किराया नहीं लेती, इसलिए मकान मालिक नहीं है।

भानमती बूढ़ी है। उसकी उम्र साठ साल—मिस्त्री बाबूलाल से तीन-चार वर्ष ही कम है। किसी शाम वे दोनों खाना पा जाते हैं, किसी शाम भूखे ही सो रहते हैं। इसके बावजूद भानमती की लाख रुपये की तकदीर है। हम दोनों किरायेदारों और मकान मालिक से कई हजार गुना कीमती उसका भाग्य है।

एक दिन वह मेरे पास आयी। उसे दो रुपयों की जरूरत थी। मिस्त्री बाबूलाल की आंखों का आपरेशन हुआ था। उसकी नजर कमजोर थी। कहने लगी—मास्टरजी! (मैं मास्टर नहीं हूं, पर भानमती किसी भी 'पराये' को यही कहकर पुकारती है।) दो रुपये हैं?

मैंने कहा—हैं, तो भानमती फौरन हाथ फैलाकर बोली—हमको दे ओ न? बाबू की आंख का आपरेशन हुआ है। उसको आराम की जरूरत है।

मैंने दो रुपये उसे दिये और पूछा—क्या डॉक्टर मांग रहा है?

—नहीं, मास्टरजी। उससे तत्परता से उत्तर दिया—बाबू दूध-जलेबी खायेगा। उसकी आंखों को ठंडक मिलेगी और फिर वह चली गई।

मकान मालिक के नौकर साना ने उसे मेरे कमरे से बाहर निकलते देखा था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जैसे ही वह गई, तपाक से वह आया। पूछने लगा—क्यों आयी थी, साब? उसकी आंखों में तिरस्कार और घृणा के मिले-जुले भाव थे।

—दो रुपये मांगने, मैंने कहा तो साना ने आश्चर्यपूर्वक पूछा—आपने दे दिये?

'हां।'

'कैसे आदमी हैं आप?' उसने ऐसे कहा जैसे वह मेरा 'गार्जियन' हो। दबाव से, बड़े अपनेपन के साथ वह बोला—'हमसे पूछा तो होता, साब। आप अपनी मरजी से देन-लेन करते हो, फिर हमसे मत कहना।'

'क्यों?'

'इन हरामजादों का धंधा ही है ये।' वह बोला, 'सारे मोहल्ले में ही इन्होंने ये गदर मचा रखा है। चार आने इससे लिये, छः आने उससे लिये, इसको पांच रुपये से लटकाया, उसको दस रुपये से लटकाया।' एक व्यंग्यपूर्ण मुसकान के साथ उसने अपनी बात जारी रखी—'अब दो रुपये से आप भी लटक गये समझिये।'

'आगे से ख़याल रखूंगा।' मैंने उत्तर दिया। साना आश्वस्त हो गया। मेरी बीड़ियों के बंडल से उसने एक बीड़ी निकालकर अपने कान पर चढ़ा ली और वापस चला गया।

कुछ देर बाद मैंने कमरे में बैठे-बैठे सुना, साना कह रहा था-- तुझे सरम नहीं आती? उस नये बाबू से भी दो रुपये ले आयी? अब वापस कहां से करेगी?

भानमती जवाब दे रही थी—तुझे क्या जरूरत है? हम लाये हैं, तो देंगे।

'दे दिये!' साना उपेक्षा के भाव से कह रहा था।

'फालतू में सिर मत खपाओ, साना। हम रसोई बना रहे हैं। सब्जी चढ़ाई है, उसमें नमक डालना भूल जायेंगे। बड़े आदमियों से मुंह नहीं चलाते। बाबू काम से आयेगा, उसे खाना देना है।' भानमती उत्तर देती है।

साना चिल्लाता है—'अरे, बड़े आये बड़े आदमी। घर-घर दरवज्जे-दरवज्जे आठ-आठ आने मांगते फिरते हो!' उसके स्वर में नफरत का जहर भरा हुआ है··· बड़े आदमी।

'देखो साना!' बड़े नखरे के साथ वह कहती है, 'तुम हमारे से बोल-बोल मती करो। हम सब्जी में मसाला डालना भूल जायेंगे। हमारा सिर घूमता है।'

साना इस तरह चीख रहा है कि सारा मोहल्ला सुन ले—'मसाला भूल जायेगी तो हम क्या करें? ऐसी मसालेवाली है तो किसी बंगले में जाके रह।'

ठिगने कद की भानमती कमरे से बाहर आ जाती है। आगे से किसी बेशर्म भिखारी के खुले मुंह जैसे स्लीपर में पांव डालकर आंगन के दो-चार दौरे करती है, फिर बुदबुदा उठती है—'राम जाने कैसे मुलुक में आ गये? कलकत्ते में थे, तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चार-चार नौकर लगे। 'इलेक्ट्री' की सिगड़ी पर खाना बनता था। हज्जार-हज्जार आदमी बाबू से मिलने आते थे। हाय रे, मेरी लाख रुपये की तकदीर !

'दो लाख की नहीं ?' साना फिर चिल्लाता है, 'रोज सबेरे-शाम हाय-हाय किट्-किट् करती है, तेरा मुंह नहीं दुखता ? ऐं ?'

चिढ़कर भानमती पूछ रही है—'खाना नई बनायें ?'

'हमारी तरफ से बना, चाहे मत बना।'

'लो।' भानमती पैर पटककर कहती है—'नई बनाते।' वह बाहर चली जाती है।

मुझे मालूम है, ऐसा अकसर होता है। भानमती के लड़ने-बोलने का एक खास 'टेकनीक' है। वह इसी तरह बातचीत करती है। मिस्त्री बाबूलाल हमेशा किसी न किसी रोग से बीमार रहता है। जवानी के दिनों उसने सैकड़ों रोग पाल लिये थे। सुनते हैं, उन दिनों ये मकान मिस्त्री बाबूलाल का ही था। वह इस शहर का सबसे अच्छा कारपेंटर माना जाता था। बड़े-बड़े ठेके लिया करता। मिस्त्री की जवानी के दिनों का जिक्र छिड़ता है तो भानमती कभी हर्षपूर्वक और कभी दुःख से संस्मरण सुनाना प्रारम्भ कर देती है। कभी उसकी आवाज शादी की-सी खुशी में डूबी होती है, कभी उसके स्वर में एक मातमी अहसास होता है।

मुझे उस दिन की याद हो आती है, जब मैं आफिस से लौटा ही था और घर के चौक में भानमती की आवाज आ रही थी। न जाने कौन-सा आकर्षण है कि मैं स्वयं को रोक नहीं पाया था। आंगन में आ गया। मिस्त्री बाबूलाल एक ओर बैठा हुआ था। उसके पास ही उसी की उम्र का एक मोटा-ताजा व्यक्ति उकड़ूं बैठा हुआ था। माथे पर चौड़े-चौड़े रामानन्दी तिलक, गले में दो हल्की मोटी मालाएं। भानमती अपनी कोठरी की देहरी पर बैठी हुई थी। उसने जरी की एक बहुत पुरानी साड़ी पहन रखी थी, जिसमें कई जगह छेद खुले थे, और कई पर पैबन्द जड़े थे। एक जगह पल्लू के पास तो बड़ा-सा छेद हो गया था। आंगन के बीचोंबीच एक भारी-सा सन्दूक रखा था, जिस पर धूल की मोटी तह जम गई थी।

मिस्त्री बाबूलाल पंडित को समझा रहा था···बस थोड़ी-सी तकलीफ करनी पड़ेगी। बाजार से चार पैसे का रेगमाल लाकर रगड़ देना, एकदम नया हो जायेगा।

सन्दूक का मोल भाव हो रहा है। पंडित एक—बार सन्दूक की ओर बड़ी व्यापारिक दृष्टि से देखता है।

भानमती कहती है—'सन् इकतीस में खरीदा था बाबू ने कलकत्ते से। उस समय गांधी बाबा जेल में थे।'

'तू तो पागल है।' मिस्त्री बाबूलाल उसे डांट देता है, फिर कहता है—'पंडित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जी ! उस जमाने की-सी चीज़ें अब कहां मिलती हैं ?

पंडित खिसककर सन्दूक के पास आ जाता है। वह सन्दूक ठोंक-बजाकर देखता है—'है तो मजबूत।'

'मोटी चादर का है।' बाबूलाल बता रहा है। भानमती फिर बोल उठती है—'मेरे बाबू ने सब माल पक्का खरीदा है। सब अंग्रेजी। जब कलकत्ते से आये थे तो ये सारा माल-असबाब डब्बा 'रिजविज' (रिजर्व) करके लाये थे।' उसकी आवाज में उत्साह है। 'पंडित जी ! बाबू तो राजा आदमी है। लक्खों रुपया जमाने को खिला दिया। इसी चौक में हज्जार-हज्जार आदमी को खाना खिलाया है। दो-दो साग, कचौड़ी, मीठा···।'

मिस्त्री फिर उबल पड़ता है—तू चुप रह।

भानमती नहीं रुकती—ये सब घर मकान मोर हीरा बाबू जुड़ाये। चार-चार बाल्टी, लोटा, गिलास, पानी पीने की केतली, साबुन, तौलिया सभी कुछ तो है। पर हाय रे मेरी लाख की लकदीर। इस मुलुक में सब चले गये।

मिस्त्री गरज पड़ता है—चुप रह।

भानमती चुप हो जाती है। उसकी झुर्रियों में कहीं सहम की लकीरें भी हैं।

पंडित तहमद की अंटी से तीन रुपये निकालकर मिस्त्री को देता है, कहता है—अभी तो इसमें तीन और खर्च होंगे।

मिस्त्री ने रुपये ले लिये हैं। पर उसकी आंखें कुछ अजीब ढंग से फैलती-सिकुड़ती हैं, चेहरे पर एक उदास आसमान आ बैठता है। वह डूबी-डूबी आवाज में कह रहा है—उस जमाने में तीस रुपये में खरीदा था।

'तब की बात और थी।' पंडित का रूखा-सा उत्तर है।

भानमती का जी नहीं मानता जैसे, कहती है— हां, पंडितजी ! तब की बात और थी। अब ऐसी चीज़ें मिलती कहां हैं ?

पंडित सन्दूक उठाता है और आंगन से बाहर हो जाता है। मिस्त्री ने कहा था—'राम-राम !' पर उसे पलटकर देखने की फुरसत नहीं थी।

भानमती कमरे में बड़बड़ा रही है— हाय राम ! मोरा हीरा बाबू।···कैसा जमाना आया है ? तीस रुपये के सन्दूक का तीन रुपये ? कैसा मुलुक है, मेरे रामजी !

मैं अपने कमरे में आ गया हूं। सुख की स्मृतियां भी कितनी पीड़ादायक होती हैं ? भानमती को पुरानी यादें काट रही हैं।

वह घर की मालकिन नहीं थी, कभी रही होगी, पर मैंने कई बार देखा वह मकान की मालकिन से अधिक चिन्ता करती है। कभी इधर-उधर कचरा फैल जाता तो वह फौरन ही टोक देती, भले फिर मकान मालिक ही क्यों न हो। अपने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस विचित्र अपनत्व के कारण कई बार उसे भली-बुरी भी सुनने को मिलती, पर भानमती ने इस तरह अपनी आदत बदली हो, मैंने तो कभी नहीं देखा। वह मकान का इतना खयाल रखती कि किसी को भी पहली बार देखकर विश्वास हो सकता था कि मकान मालकिन वही है। मैंने यह मकान किराये पर लिया तो पहली बार ऐसा ही समझा था। न जाने किस बहम से घिरी हुई है वह?

सचमुच भानमती के भाग्य ने अजीब तरीके से पलटा खाया था। उसके पति मिस्त्री बाबूलाल ने यह मकान तब खरीदा था जब वह कलकत्ता में काम करता था। उसका इरादा स्थायी रूप से इस शहर में रहने का था। कलकत्ता में उसने काफी कमाई की थी, पर लोग कहते हैं बाबूलाल को यह शहर फला नहीं। यहां आकर एकाएक ही उसे बीमारी ने घेर लिया था, और यह बीमारी इस तरह चली कि भानमती के सुख की सारी सामग्री एक-एक कर उसके भाग्य से उतरती चली गई थी। मकान, जमीन, जायदाद, जेवर सभी कुछ भानमती को बाबूलाल के इलाज में होम देने पड़े। बाबूलाल को जिन्दगी मिली, पर इसमें और उस जिन्दगी में जमीन-आसमान का अन्तर था। अब उसके पास केवल भानमती थी, रहने को एक कोठरी। जिस आदमी को बाबूलाल ने यह मकान बेचा, वह भला आदमी है, उसने उन्हें रहने के लिए एक कोठरी मुफ्त दे रखी है।

एक दिन भानमती काफी अच्छे मूड में थी। मिस्त्री बाबूलाल को किसी ठेके पर देख-रेख का काम मिल गया था, कुछ एडवांस पैसा भी। रसोई में खाना बनाते हुए वह गा रही थी—

मोर बाबू का है अलबेला राज,
बाबू तो है मोर राजा शहंशाह,
सौ-सौ जने को खाना खिलाये,
हमको साड़ी लाये जारजिट की,
मोर बाबू का है·····

मैंने पास जाकर पूछा—बड़ी खुश हो आज?

भानमती ने कोई उत्तर नहीं दिया। वह उसी तरह तन्मयता के साथ गीत गाती गई—मोर बाबू का है अलबेला राज···।

साना चिल्लाया—दिमाग खराब हो गया है सा···ब!

भानमती ने गाना बन्द कर दिया। कोठरी से बाहर निकलकर बोली—देखो साना। हम तुम्हारे से नहीं बोल रहे हैं। हम घान (गंदे) आदमी से बात नहीं करते। हम बड़े आदमी, हमारी लाख रुपये की तकदीर।

साना चुप हो गया।

मुझे बाहर जाना था। कपड़े बदलकर जब जाने लगा तो भानमती कह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रही थी—सब घान-घान मचा रखा है। कैसा आदमी है इस मुलुक में ? छि:-छि: ! हम कलकते में थे, तो साबुन से कमरा धोते थे। दस-दस टॉवेल से धरती पोंछते थे···।

मैंने सुना, भीतर से साना भी कोई उखड़ा-सा उत्तर दे रहा था। मैं चला गया। काफी रात गये, मैं वापस लौटा ! मकान पर बहुत भीड़ थी। मोहल्ले के तमाम मर्द-औरत इकट्ठा थे। साना बीचोंबीच जमीन पर बैठा हुआ था। उसके सामने कुछ पोटलियां रखी हुई थीं। एक पोटली जिसमें कुछ गन्दी चिन्दियां और फटे-पुराने कपड़े थे, साना ने अपने सामने खोल रखी थी। वह कह रहा था—हमको घान कहती है और खुद ये सब गन्दगी रखे हुए है ? कैसी औरत है कमबख्त !

मुझे देखते ही उसने एक पुराना कपड़ा हाथ ऊंचा कर मेरी ओर लटका दिया और उसे हिलाते हुए बोला—"पंडितजी ! देखो ये बाबू का कुर्त्ता है। तब का, जब वह बीमार था। इसमें खून सूख गया है। अब इसका ये क्या करेगी ? हमको घान कहती है, जैसे ये बड़ी साफ-सुथरी है ?···"

कुर्त्ते पर गंदगी के निशान थे—अजीब बात थी भानमती को हर पुरानी चीज़ से, भले फिर वह कितनी ही गंदी और घृणास्पद क्यों न हो, एक विचित्र लगाव था।

फिर भानमती की आवाज सुनाई दी। वह भीड़ से अलग एक ओर खड़ी हुई कह रही थी—कैसा मुलुक है ? हमारा सब माल-असबाब लूट के ठिठोली कर रहे हैं ? ये सब मोर हीरा बाबू जुड़ाये। हाय रे मेरी लाख रुपये की तकदीर !···

१९६४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मौन

लंच टाइम होने में अभी आधा घंटे से कुछ ज्यादा की देर थी। आहूजा फुर्ती से अंगुलियां चलाता गया। तीन चिट्ठियां अब भी टाइप करने को शेष थीं और 'बॉस' का संदेशा अभी-अभी चपरासी ने आकर सुनाया था—'सारी चिट्ठियां लंच से पहले टाइप होनी चाहिए।' आहूजा ने कुछ सुलगकर संदेशा सुन लिया था। उसके होंठों तक खीझ-एक गाली बनकर आयी थी और उलझकर होंठों में ही कैद रह गयी थी। चपरासी ने कॉलर ऐंठा, जो उसकी गर्दन के पास कुछ लुजलुजा-सा होने लगा था, चला गया। आहूजा ने उसकी पीठ पर कुढ़न-भरी दृष्टि फेंकी। उसे एक झल्लाहट और विद्रोह की स्थिति ने घेर लिया था, पर न जाने क्यों वह चाहकर भी उस चपरासी के सामने 'बॉस' के ऑर्डर को नहीं कोस सका। उसने चुपचाप फाइल पर पिन की हुई आवश्यक, अतिआवश्यक और अनिवार्य पर्चियां देखीं और क्रमवार अनिवार्य, अतिआवश्यक और आवश्यक चिट्ठियां टाइप करने में जुट गया।

आदमी और मशीन में फर्क है। आहूजा एक के बाद एक चिट्ठी फुर्ती से टाइप करता हुआ सोचता रहा था। न जाने कितनी ही बार उसका मन हुआ था, जाकर 'बॉस' से कह दे—"आदमी और मशीन में फर्क होता है साहब! भला सोचिए, डिस्पैचिंग का काम भी मेरी ही तरफ है···ऐसी हालत में···मेरा मतलब है लंच से पहले बाईस चिट्ठियां कैसे टाइप हो सकती हैं?···" पर कई बार सोचकर भी आहूजा अपना विचार कार्य रूप में परिणत नहीं कर सका था। न जाने क्या परिणाम होता इसका?

आहूजा बेहद फुर्ती से अंगुलियां मशीन पर दौड़ाता गया। अब दो चिट्ठियां बची थीं। उसने सामने टंगी दीवार घड़ी पर आंख फेरी—अब सिर्फ पन्द्रह मिनट बचे थे। शरीर में कुछ झुनझुनी-सी पैदा हुई। लंच से पहले ही चिट्ठियां तैयार होकर बॉस की टेबुल पर पहुंचनी हैं। फिर वही झल्लाहट—आदमी कोई मशीन है क्या? ऊंह!

आहूजा ने चिट्ठी टाइपराइटर से उतारी और आवश्यक फाइल में लगा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दी। एक गहरी—खूब गहरी—श्वास खींचकर नया कागज चढ़ाया, कार्बन लगाया और दूसरी फाइल का ड्राफ्ट सामने रख लिया। एक नजर चिट्ठी के लम्बे-चौड़े मैटर पर डाली, फिर एक गहरी श्वास खींची और मशीन पर अंगुलियां फिरानी प्रारम्भ कर दीं।

वह चिट्ठी टाइप कर रहा था। सेवा में···विषय ··प्रिय महोदय··· चिट्ठियां भी कितनी लम्बी लिखी जाती हैं। एक अच्छा-खासा उपन्यास। इतनी सारी बात कम मैटर में भी लिखी जा सकती हैं। वह सोचे गया। पर नहीं होता। तीन अंगुल की बात के लिए भी तीन हाथ की चिट्ठी इस आफिस से जाती है, तिस पर टाइपिस्ट की परेशानी। सारी चिट्ठियां लंच से पहले चाहिए। कोई तरीका है? इतना नहीं होता कि एक और टाइपिस्ट रख लिया जाये।···उसे ख़याल आया, एक बार उसने बॉस को सुझाया भी था, "काफी लैटर्स होते हैं साहब! मुझे एक और साथी मिलना चाहिए। आफिस की रौनक भी बढ़ेगी और मुझ पर काम का बोझ कम हुआ तो काम अच्छा भी होगा।" और उसे जवाब मिल गया था—"क्या बोझ है? रोजाना ऐसा कितना काम तुम्हारी तरफ आता है?···" और आहूजा गर्दन दबाकर लौट आया था। सोचते-सोचते उसने आफिस और बॉस के नाम पर एक गन्दी गाली विचारी, फिर मैटर टाइप करता गया। आशा है प्रसन्न होंगे। धन्यवाद···भवदीय···मैनेजिंग डायरेक्टर···

अब एक चिट्ठी बची थी। आहूजा ने पुन: घड़ी देखी—लंच टाइम हो गया था। कुछ अजीब-सी हड़बड़ी की हालत में उसने चिट्ठी टाइपराइटर से उतार ली।

"आहूजा बाबू!"

आहूजा ने सिर उठाया। चपरासी सामने खड़ा हुआ, धीमा-धीमा मुसकरा रहा था! "···वह चिट्ठियां···?"

"हां-हां, हो गयी हैं!" आहूजा ने कचरे की टोकरी के नजदीक जमीन पर रखे फाइलों के गट्ठे की ओर इशारा किया—'···ये!'

चपरासी झुका। उसने आहूजा की ओर कुछ इस तरह देखा, जैसे धन्यवाद दे रहा हो। बड़ा अच्छा हुआ। आपकी भी बला टली—मेरी भी। उसने फाइलों का गट्ठा एक बिस्तरे की तरह उठाया और वापस हो गया। आहूजा उसे जाता हुआ देखता रहा। जब वह 'बॉस' के कमरे में समा गया, तो उसने फुर्ती से बची हुई एक फाइल से चिट्ठी का ड्राफ्ट निकाला और इधर-उधर कमरे में नजर दौड़ाकर कोट की भीतर वाली जेब में ठूंस लिया। ऐसा करते में उसके हाथ कांपे थे। चेहरे पर अजीब-सी परेशानी उभर आयी थी। कहीं किसी ने देख तो नहीं लिया? जेब में कागज चला जाने के बाद उसने एक बार फिर कमरे में काम करते सभी लोगों की ओर देखा। और जब उसे विश्वास हो गया, उसकी चोरी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किसी ने नहीं देखी है, तब कहीं वह नॉर्मल हो पाया।

अब उसने अगली कार्यवाही की। फाइल उठायी, खुद उठा और चेहरे पर रूमाल फिराकर 'बॉस' के कमरे में आ गया।

"साहब !" उसने दरवाजा खोलते के साथ ही बात शुरू कर दी—"इस फाइल वाला ड्राफ्ट इसमें है ही नहीं ?···मेरा ख़याल है शायद इसका जवाब लिखा ही नहीं गया···" वह बगैर थमे बोलता गया, "मैंने अपनी सारी टेबुल और बाकी फाइलें भी ढूंढ़ डालीं···न जाने कहां चला गया ? शायद इसका ड्राफ्ट तैयार ही नहीं हुआ।···" बात समाप्त कर उसने निरीह भाव से 'बॉस की ओर देखा, जिसने उत्तर में फाइल लेने को उसकी ओर हाथ बढ़ा दिया था। आहूजा ने फाइल दे दी।

'अनिवार्य !' फाइल पर पर्ची लगी हुई थी। आहूजा चेहरे पर एक मासूम बच्चे जैसे भाव पैदा कर अटेंशन के पोज में खड़ा रहा।

बॉस ने फाइल लौट-पलटकर देखी, फिर उसकी मोटी-मोटी अंगुलियां घंटी पर गयीं। एक कर्कश ध्वनि गूंजी और चपरासी सामने आ खड़ा हुआ।

"नीलकण्ठ को बुलाओ।" फाइल लौटते-पलटते हुए मैनेजिंग डायरेक्टर का आदेश छूटा।

चपरासी वापस हो गया। आहूजा का मन हुआ था, कुछ देर और खड़ा रहे, पर वह अनुभव कर रहा था जैसे उसके पैर साथ नहीं देंगे। अभी नीलकण्ठ आयेगा। रिटायरमेंट की उम्र पार कर गया है, पर प्राइवेट आफिस में कोई कानून लागू नहीं होता। आहूजा ने महसूस किया जैसे उसके पैर के टखनों में दर्द हो आया है। वह बूढ़े नीलकण्ठ को डांट खाते नहीं देख सकेगा—खासतौर से उस हालत में जबकि वह कसूरवार नहीं है !···आहूजा ने कमरे का दरवाजा खोला और अपनी टेबुल पर चला आया।

टेबुल पर आते समय उसने देखा था, नीलकण्ठ बाबू अपने झुर्रियों भरे चेहरे पर ऐनक संभालता हुआ मैनेजिंग डायरेक्टर के कमरे की ओर चला जा रहा था। उसकी चाल में तेजी जरूर थी, फिर भी वह उसके बुढ़ापे का एहसास कराती थी। आहूजा ने चोर-नजरों से उसे देखा। न जाने क्यों वह अनुभव कर रहा था, जैसे नीलकण्ठ के बुढ़ापे का कारण वही है। जब नीलकण्ठ मैनेजिंग डायरेक्टर के कमरे में चला गया, तो आहूजा चुपचाप अपनी जगह पर आ बैठा। लंच का समय हो जाने के बावजूद उसकी इच्छा लंच पर जाने की नहीं हुई। कुर्सी पर बैठा-बैठा वह 'बॉस' के कमरे के दरवाजे पर आंखें गड़ाये रहा। वह जानता है, अभी नीलकण्ठ निकलेगा। उसके चेहरे पर झुर्रियां पहले की अपेक्षा कई गुना बढ़ गयी होंगी और चाल में हर कदम के साथ बुढ़ापा दुगुना हो रहा होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देर तक आहूजा उस दरवाजे की ओर देखता रहा। उसे अचरज था, अब तक नीलकण्ठ बाबू बाहर क्यों नहीं आया? मैनेजिंग डायरेक्टर का स्वभाव वह जानता है। नीलकण्ठ पहुंचा होगा और उससे सवालों की झड़ी लग गयी होगी। मैनेजिंग डायरेक्टर ने एक झटके के साथ उसके सामने फाइल फेंक दी होगी। गुर्राकर सवाल किया होगा—इस लैटर का जवाब कहां गया?···तुम सोते-सोते काम करते हो!···तुम्हें पता नहीं यह लैटर कितना जरूरी है? मैं समझता हूं, अब तुमसे काम नहीं बनता, नीलकण्ठ बाबू!···तुम अजीब आदमी हो जी?··· जब लेटर फाइल में लगा हुआ था तो कहां गया?···कागज के पैर तो होते नहीं?···भई, इस तरह काम नहीं चलेगा!···आहूजा सोचता गया, नीलकण्ठ चुपचाप खड़ा रहा होगा। वह नीलकण्ठ का स्वभाव भी जानता है। वह उन आदमियों में से है, जो बहस नहीं करते या यों कि उन्हें बहस करना ही नहीं आता। यह मौन बहुत खतरनाक होता है। ऐसे मौकों पर अपनी बला दूसरी जगह टालनी चाहिए। खासतौर से बाबू लोगों को। अगर ऐसा कोई तरीका न दिखे, तो मासूमियत के साथ साहब के सामने घिघियाना चाहिए। पर आहूजा जानता है, नीलकण्ठ ऐसा कुछ भी नहीं करेगा। वह मौन हो गया होगा और मौन बहुत खतरनाक होता है।

दरवाजा खुला। आहूजा के सोचने पर ब्रेक लग गया जैसे। उसने देखा, नीलकण्ठ आ रहा था। उसकी चाल में पूर्वापेक्षा कहीं ज्यादा तेजी थी और चेहरे पर एक ऐसी गम्भीरता, जिससे कमजोरी या बुढ़ापे का तनिक भी एहसास नहीं हो सकता। आहूजा हैरान रह गया। नीलकण्ठ का आना निहायत अस्वाभाविक ढंग से हुआ। कुछ इस तरह कि आहूजा को सोचना पड़ा, क्या सचमुच बूढ़ा नीलकण्ठ बाबू यही है?

नीलकण्ठ जब अपनी जगह जा बैठा और कुछ लिखने में लग गया, तो आहूजा के दिमाग में एक साथ कई सवाल घूमने लगे। या तो इसने अपनी बला किसी के सिर टाल दी है या फिर नीलकण्ठ के बुढ़ापे पर तरस खाकर मैनेजिंग डायरेक्टर ने उससे ज्यादा कुछ कहा-सुना नहीं।···जो भी हो, नीलकण्ठ बच गया है। आहूजा ने तसल्ली की एक सांस खींची। वह नीलकण्ठ को तंग नहीं करना चाहता था। अगर मैनेजिंग डायरेक्टर ने उससे लंच के पहले उन ढेर-सी चिट्ठियों के टाइप कर देने की फरमाइश न की होती, तो शायद उसे यह चालाकी नहीं करनी होती। वह अपनी जगह छोड़कर लंच के लिए निकलने ही वाला था कि उसने देखा, नीलकण्ठ पुनः मैनेजिंग डायरेक्टर के कमरे में चला गया है। उसकी चाल में पहले जैसी ही फुर्ती थी। आहूजा को कुछ भी विचित्र नहीं लगा। दिन में कई-कई मौके आते हैं, जब उस कमरे में जाना होता है। बात मौके-मौके के फर्क की है। आहूजा ने टेबुल की दराज से लंच का डिब्बा निकाला और बाहर चला आया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लंच का आधा वक्त व्यर्थ की उलझनों में निकल गया था। आहूजा को जल्दी ही निबटना पड़ा। जब तक वह वापस आया, तब तक आफिस ढंग से प्रारम्भ हो चुका था। उसने डिब्बा पुनः टेबुल की दराज में बन्द किया और टाइपराइटर पर कागज चढ़ा दिया। अभी वह 'की बोर्ड' पर अंगुलियां दौड़ाने ही वाला था कि नीलकण्ठ सामने आ खड़ा हुआ। "···आहूजा बाबू !" एक फीकी-सी हंसी हंसकर उसने कहा—"मैं जा रहा हूं। अब इस आफिस में नहीं, कहीं बाहर मुलाकात होती रहेगी।"

आहूजा ने हैरानी और चिन्ता के भाव से नीलकण्ठ का चेहरा देखा। वह विदा लेने के लिए आहूजा की ओर हाथ बढ़ाये हुए था। आहूजा के लिए यह सारी घटना इतनी चौंकाने वाली थी कि वह एक क्षण के लिए बिलकुल हक्का-बक्का रह गया। वह सामान्य शिष्टाचार के नाते न तो उठकर खड़ा ही हो सका और न ही उसने नीलकण्ठ के खाली हाथ में अपना हाथ दिया। कुछ टूटते-से शब्दों में उसने सवाल कर दिया—"···क्यों ?"

नीलकण्ठ जैसे जबर्दस्ती हंसा···"मैंने रिजाइन कर दिया है। बूढ़ा हो गया हूं न···?" उसके शब्द भी टूटे—"काम नहीं संभाल पाता।"

ब-मुश्किल आहूजा खुद को संभाल सका। उसे शिष्टाचार का ख़याल आया। उठकर खड़ा हो गया।

नीलकण्ठ ने खाली हाथ खींच लिया। आहूजा की हैरानी उसे अस्वाभाविक नहीं लगी। "अच्छा, आहूजा···!" उसने उखड़े-से शब्दों में कहा और अगली टेबुल के क्लर्क से विदा लेने आगे बढ़ गया।

आहूजा खड़ा हुआ था। देर तक खड़ा रहा। तब तक, जब तक कि बूढ़ा नीलकण्ठ एक के बाद एक टेबुल से विदाई लेता हुआ आफिस से चला नहीं गया। बीच में एक बार आहूजा की इच्छा हुई थी, जेब में रखा हुआ ड्राफ्ट ले जाकर मैनेजिंग डायरेक्टर के सामने रख दे और कहे—"नीलकण्ठ को रोक लीजिए साहब !···उस बूढ़े आदमी का कोई कसूर नहीं है !·· " पर चाहकर भी आहूजा ऐसा नहीं कर सका। उल्टे वह तेजी से आफिस के बाहर सड़क तक आया। उसने चोर-नजरों से अपने इर्द-गिर्द देखा और जब जान लिया कि कोई नहीं है, तो जल्दी से अन्दर वाली जेब से वह बिना टाइप की हुई चिट्ठी निकाली और टुकड़े-टुकड़े कर पास के गन्दे नाले में फेंक दी। एक बार पुनः चोर जैसी घबराहट से उसने चारों ओर देखा, फिर आश्वस्त होकर धीमे-धीमे कदमों से आफिस की तरफ वापस हो लिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खिड़कियों में झांकते चेहरे

कल्याणसिंह सिकुड़कर बैठ गया, हालांकि सीट काफी चौड़ी थी, उसके ऊपर स्पंज की मोटी-मोटी गद्दियां फिट थीं और सबसे बड़ी बात यह कि उसके टिकट नम्बर के अनुसार जहां तक वह जा रहा था, इस सीट पर उसका सर्वाधिकार था। तीसरे दरजे के साधारण डिब्बे की तरह उसकी सीट किसी की भी नहीं हो सकती थी। कल्याणसिंह को मालूम था, यह सीट उसी की है—सिर्फ उसी की। इस पर और कोई आदमी नहीं आ सकता। अभी-अभी स्वयं टिकट बाबू आकर उसे बता गया था—'यह सीट आपकी है।' कल्याणसिंह ने कुछ संकोच किया था। कभी सीट की ओर देखा था, कभी बाबू की ओर। "बैठिए, बैठिए, वह सीट आपकी ही है। आपके टिकट पर उसका नम्बर है। उस पर और कोई नहीं बैठेगा।" कल्याणसिंह ने हिम्मत कर ली। बक्सा उसने सीट के आगे, नीचे की खाली जगह पर रखा और सीट पर जा बैठा। बगल वाली दोनों सीटें खाली थीं। कल्याणसिंह ने उनकी ओर देखा, फिर आश्वस्त होकर एक गहरी सांस खींची, पीठ पीछे टिका दी। कितनी आरामदेह कुर्सी है, उसने सोचा और ईश्वर को अनजाने ही धन्यवाद दिया। पैसा ज्यादा लगे, पर आराम कितना मिलता है। उसने शरीर और ढीला किया, हत्थों पर कोहनियां आज़ादी से छोड़ दीं और पैर सीधे करने चाहे तो सामने रखे बक्से से अटक गए। मन हुआ था, बक्सा कहीं दूर हटाकर रख दे, पर दूसरे ही क्षण उसने इस विचार को पचा लिया। सामान आंख के आगे और हाथ के पास रहे, सफर में यही अच्छा रहता है। दस किस्म के लोग गाड़ी में उतरते-चढ़ते हैं।

ट्रेन ने अभी स्टेशन नहीं छोड़ा था, फिर भी कल्याणसिंह को लग रहा था, जैसे वह स्टेशन के उस हंगामे से बहुत दूर है। इस एयर-कन्डीशन्ड कम्पार्टमेंट से प्लेटफार्म की कोलाहलभरी जिन्दगी तिरस्कृत हो जाती है। कल्याणसिंह ने अनुभव किया जैसे इस ट्रेन में क्या सवार हुआ, गजानन बाबा की कुटिया पर आ गया है। सब ओर खामोशी और चुप्पी! गजानन बाबा की कुटिया का माहौल भी कुछ ऐसा ही है। वहां भी चतुर्दिक खामोशी फैली रहती है—यहां भी फैली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुई है। उसे उन शांत और चुपचाप खड़े पेड़ों का ख़याल आया। वे यहां के लोगों से कितने मिलते-जुलते हैं ?

सामने वाली सीटों पर चौथी कतार में कोई सूटेड-बूटेड सज्जन अंग्रेज़ी अखबार में समाए हुए थे। उनकी बगल में बैठी महिला स्वेटर बुन रही थी। आधी से ज्यादा सीटें खाली पड़ी हुई थीं और हर पहला आदमी दूसरे आदमी से बेखबर अपने मनचाहे-मनपसन्द संसार में खोया हुआ था। कल्याणसिंह ने देखा, एक सज्जन आंखों पर चढ़े चश्मे को कई-कई बार नाक पर संवार चुके थे। या तो उन्होंने नया-नया चश्मा लगाया होगा, या फिर यह उनकी आदत रही होगी।

कल्याणसिंह का ध्यान खाली सीटों की ओर गया। शायद ज्यादा किराए के डर से लोग इस ऊंची क्लास में सफर करते कतराते हैं। वे यह नहीं सोचते कि कितना आराम मिलता है ? उसने अपने बारे में सोचा। अदालत में तारीख न होती, और उसे इतनी जल्द न जाना होता तो शायद वह भी इस ऊंची क्लास में बैठना पसंद न करता। इतना किराया न देता। पर जरूरत की जल्दी ने उसे यहां ला बिठाया। और अभी यहां आकर बैठा ही है कि लगने लगा है, जैसे बहुत समझदारी की है। सरकार चार पैसे ज्यादा भले ले-ले, पर कितनी सुविधा देती है ? अभी नीचे दरजे वाले थर्ड-क्लास डिब्बे में चढ़ता तो ऐसे बैठ सकता था ? नीचे-ऊपर आदमी चढ़े-बैठे होते। कोई सिर के ऊपर वाली बर्थ पर खांस रहा होता और नीचे बैठे कल्याणसिंह को डर लगा रहता, कहीं कमबख्त थूक न गिरा दे ? चौतरफा की हवा बन्द हो गई होती। भीड़ हवा आने दे, तब न ? कल्याण-सिंह का दम घुटने लगता। वह बेचैनी से दाएं-बाएं गर्दन हिलाता, कमीज के बटन खोल लेता, जो पसीने से भीग गई होती। उसे आसपास खड़े लोगों पर क्रोध आता। मुमकिन है उसे एकाध को डांटना भी पड़ता—"ऊपर क्यों चढ़ा चला आता है ? ठीक से खड़ा रह !" अगर भला आदमी होता तो ठीक, नहीं तो वह भी चिल्लाकर जवाब दे देता, फिर कल्याणसिंह को भी क्रोध आ जाता। वह गरजता। जोश में सामनेवाला कोई गाली देता और कल्याणसिंह मार-पीट करने को तैयार हो जाता।...कल्याणसिंह ने सोचा तो उसे खुशी हुई। उसे ज्यादा पैसे खर्च होने का ज्यादा कोई दुःख नहीं रहा था। कितनी परेशानी से बच गया वह ? उसे रह-रहकर तीसरे दरजे का ख़याल आ रहा था। अपनी पिछली यात्राओं की याद आ रही थी। हर यात्रा में उसे भारी तकलीफ उठानी पड़ी थी। लोग ट्रेन रुकते ही भूखे गिद्धों की तरह हमला कर देते हैं। अगर कहीं डिब्बे में चढ़ना है तो दंगल करो। ट्रेन में चढ़ा-उतरी का यह दौर ही अजीब रहता है। आदमी बदन का कमजोर हो तो भी उसमें न जाने कहां से अजीब-सी शैतानी ताकत आ जाती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। इस जोर से ट्रेन पर हमला करेगा कि उतरनेवाले भीतर ही रह जाएं, अगर दरवाजे से न घुस सका तो खिड़की पर हल्ला बोल देगा।

यही सब सोचते-सोचते कल्याणसिंह ने डिब्बे की खिड़कियों पर नजर दौड़ाई। कोई भी खिड़की खुली हुई नहीं थी। हर खिड़की में मोटे-मोटे कांच जड़े थे और कांचों के ऊपर परदे लगे हुए थे। कल्याणसिंह ने देखा, सामने वाले सज्जन ने परदे को खींचकर मनचाहा ऊपर-नीचे कर लिया। शायद वह बीच में कहीं भी अटकाया जा सकता था। पास की खिड़की को उसने देखा तो पाया, वह खुल ही नहीं सकती थी। मोटा कांच उस पर लगा था, इस तरह कि हटाया ही नहीं जा सकता था। कल्याणसिंह का मन हुआ था, यहां-वहां से हिला-डुलाकर देखे, पर चाहकर भी वह ऐसा नहीं कर सका। अगर कहीं ये खुलनेवाले कांच न हों तो देखने वाला कहेगा, गंवार है। पहले कभी ऊंचे दरजे में सफर नहीं किया। मन मसोसकर रह गया वह। वह लोगों के सामने यह प्रकट नहीं होने देना चाहता था कि इससे पहले उसने कभी ऊंचे दरजे में सफर नहीं किया।

ट्रेन ने प्लेटफार्म छोड़ा तो कल्याणसिंह भौंचक्का रह गया। अभी तीसरे दरजे में होता तो अजीब शोरगुल मच गया होता। बाहर वाले एक बार पुनः भूखे गिद्धों की तरह टूट पड़े होते, रेल की कर्कश सीटी कई-कई बार कानों के परदे चीर गई होती। तमाम डिब्बे और सवारियों में हड़कम्प मच गया होता। पर यहां ऐसा कुछ भी नहीं हुआ था। एक हल्की-सी सीटी सुन पड़ी थी और फिर कांच-बन्द खिड़कियों से सारा शहर-स्टेशन कल्याणसिंह को कागज की एक नाव की तरह बे-आवाज बहता दीखने लगा था। कल्याणसिंह ने तसल्ली की एक सांस खींची, शरीर को ढीला छोड़ दिया, पर वह अधिक देर तक इस हाल में नहीं रह सका। उसने देखा, कुछ ही देर में डिब्बे के दोनों ओर के हवा-बन्द दरवाजे धीमे-से खुलने लगे थे, और फिर एक के बाद एक पढ़े-लिखे औरत-मर्द भीतर आने लगे थे। करीब-करीब हर औरत उम्र से बेपरवाह, इस तरह सजी-संवरी हुई जैसे नयी दुलहन सजती है, और हर मर्द इस करीने से कपड़ पहने हुए जैसे अभी-अभी कार से उतरकर किसी ऊंची दुकान में पुस्तक खरीदने जा रहा हो। कल्याणसिंह तो हैरानी से देखता रह गया। अभी-अभी उसके इर्द-गिर्द कितनी सीटें खाली दीख रही थीं? पर अब वे क्रमशः भरती जा रही थीं। भला ये सारे लोग अब तक कहां गए थे? कल्याणसिंह ने सोचा और जब हर बार उत्तर ढूंढ़ पाने में स्वयं को असमर्थ पाया तब ख़याल का गला घोंट दिया। होंगे कहीं भी, उसे क्या? वह आराम से गरदन पीछे लुढ़काने लगा तो उसकी दृष्टि ठीक उसी की ओर चली आ रहीं दो लड़कियों पर जा पड़ी। वे तंग कुरती पहने हुए थीं, और उनके बाल किसी बहुत नये फैशन में बने हुए थे—ऐसे फैशन में जिसे अब तक कल्याणसिंह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ने निश्चय ही नहीं देखा था। वे आपस में गप्पें हांकती उसी की ओर चली आ रही थीं, जैसे ट्रेन में नहीं थीं, किसी बड़े शहर के फुटपाथ पर चहलकदमी कर रही थीं।

कल्याणसिंह ने घबराकर अपनी बगलवाली दोनों खाली सीटों की ओर देखा। शायद वे यहीं आ रही हैं। और तो कोई खाली सीट नहीं दीखती, उसने सोचा। फिर यह ख़याल कि दो औरतें उसके पास बैठेंगी, उसने तमाम बदन में सिहरन अनुभव की। उसने इस तरह बदन सिकोड़ लिया, जैसे वह तीसरे दरजे में बैठा हुआ था और चारों ओर से लोग उसे घेरे हुए थे। दोनों लड़कियां पास आ गयीं। कल्याणसिंह लगातार उन्हें देखता रहा था। तंग कुरती में उनके अंग जैसे फटे पड़ रहे थे, और कल्याणसिंह को लग रहा था जैसे वे कुछ भी पहने हुए नहीं हैं। हर कदम के साथ शरीर फुर्तीली मछली की तरह तड़पता था और कल्याण-सिंह अपनी प्रखर कल्पनाशक्ति से हर क्षण उन कपड़ों को पारदर्शक पा रहा था। वह भीतर ही भीतर घुटने-सा लगा। कितने अजीब कपड़े पहने हुए हैं? कितनी लापरवाह हैं? और यह ख़याल कर तो वह शर्म में डूब गया कि वे उसके पास बैठने वाली हैं। लड़कियां उसके सामने आ खड़ी हुईं, और इससे पूर्व कि संभावना को ध्यान में रखते हुए वह उन्हें पैर सिकोड़कर अपनी सीट पर पहुंचने की जगह बनाए, निहायत बेतकल्लुफी से उन्होंने अपनी टांगें एक के बाद एक उछालीं और कल्याणसिंह के फैले पैरों को लांघती हुई अपनी सीटों पर जा बैठीं। ओह! कल्याणसिंह सांस साधे रह गया। बला की हिम्मत है? उसे अपने गांव की लड़कियों का ख़याल आया, बचपने की बात और है, पर लड़की को जहां मालूम पड़ने लगे कि वह जवान हो रही है, संकोच से हर क्षण दबी रहती है। खुद उसी की लड़की है पारबती। अभी पन्द्रह शुरू ही हुए हैं। चार जगह नाते-रिश्ते की बात चली है और वह पिंडली से लेकर सिर के बालों तक कपड़ों को इस तरह संभाले रहती है जैसे कपूर डिब्बी में बन्द रखा हो, जरा उघरा कि महक पड़ेगा। लाज-मरजाद की बात ऐसी ही है।

कल्याणसिंह ने धीरे-से एक श्वास खींची और हवा बाहर उगल दी। पास बैठी दोनों लड़कियों की ओर उसने थोड़ी गरदन मोड़कर देखा और जब पाया कि वे भी उसे देख रही हैं, कल्याणसिंह ने स्वयं को बेहद कष्टदेह स्थिति में बैठे अनुभव किया। उसने उनकी ओर वाली सीट के हत्थे से कोहनी हटाकर हाथ अपने पैरों पर रख लिया था। उसकी सीट का अलग अस्तित्व था। फिर भी कल्याणसिंह को लगा जैसे उसकी अपनी सीट का आधा हिस्सा उनके हिस्से में चला गया है। उसने एक ओर से कंधे सिकोड़कर थोड़े सरका लिये और उनके और अपने बीच काफी फासला पैदा किया। वह सोच रहा था, तीसरे दरजे में कम से कम ऐसी स्थिति तो नहीं ही होती।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सामने वाली सीट पर एक जोड़ा आ बैठा था। वे आपस में अंग्रेजी बोल रहे थे, अंग्रेजी पत्रिका पढ़ रहे थे, जिसमें लगभग अधनंगे औरत-मर्दों की रंगीन तसवीरें थीं। कल्याणसिंह गुमसुम कभी उस जोड़े को और कभी उस पत्रिका को देखे गया। मर्द पत्रिका का पृष्ठ लौटता, किसी अधनंगी औरत की तसवीर औरत को दिखाता। पत्नी उसे किसी तन्दुरुस्त मर्द की तसवीर दिखाती, दोनों आपस में मुसकराते और पत्रिका का तीसरा पृष्ठ लौट लेते। क्या इनको मालूम नहीं होगा कि पीछे भी सवारियां बैठी हुई हैं।···फिर यह बेशर्मी? कल्याणसिंह ने सोचा, फिर उधर देखना बन्द कर दिया।

पास वाली दोनों लड़कियां आपस में चहक रही थीं। कल्याणसिंह ने कान उधर दिए, और अनचाहे ही आंखें कम्पार्टमेंट में यहां-वहां उलझाने की चेष्टा की। लड़कियां शायद होंठों पर लगाए जाने वाली लाली की बात कर रही थीं। कल्याणसिंह उनकी ऐसी बातें नहीं सुनना चाहता था, पर उसने अनुभव किया जैसे उसके कानों ने उसके दिमाग का निर्देश मानने से इनकार कर दिया है, और वे बराबर उनकी बातें सुने जा रहे हैं।

अनचाहे ही उसने सुना।

पहली लड़की जो रंग में थोड़ी सांवली थी, निहायत गंभीर स्वर में दूसरी को सलाह दे रही थी—"माइरो लाली ठीक रहती है। वह होंठों से जल्दी-जल्दी नहीं उखड़ती। तुम वह क्यों नहीं इस्तेमाल करतीं?"

"हमारी प्रोफेसर का कहना है, वह पहले यही लगाती थीं, पर उनका कोई अच्छा एक्सपीरियंस नहीं था।"···दूसरी सफाई दे रही थी।

"हिश्श!" पहली ने कहा, "तुम्हारी प्रोफेसर बड़ी अजीब हैं। मुझे लगता है, वह अपने होंठों का रंग दूसरे होंठों पर छोड़ देती होंगी, फिर भला 'नेचुरल रंग' कहां से आएगा!"

"हट्!" दूसरी ने कहा और हंस पड़ी। पहली ने भी एक खुले ठहाके से उसका साथ दिया।

कल्याणसिंह तो जैसे सुलगकर बुझ गया। उसने उन्हें घूरकर देखा, दोनों के माथे सूने थे, दोनों की मांगें अनभरी। अभी कुंवारी हैं, पर बातें कैसी करती हैं? छि:-छि: ! कल्याणसिंह को लगा जैसे उन दोनों में अश्लील संभाषण नहीं हुआ था, बल्कि उसका अपना कोई रहस्य बेपर्दा हो गया है। वे कितनी जोर से हंसी थीं? कल्याणसिंह उतने ही गहरे तक लज्जा में डूब गया। उसने हर क्षण एक ऊब और थकान का अनुभव किया।

शाम झुकती जा रही थी और उसके साथ ही सारे कम्पार्टमेंट की जिन्दगी में एक नया परिवर्तन होने लगा था। आधे से अधिक लोगों ने अपने-अपने बैग या अटैचियां खोलकर कपड़े बदल डाले थे। कल्याणसिंह को यह सारा परिवर्तन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बनावट से भरा हुआ लगा। उसने दायीं ओर नजर घुमाई तो देखा एक पंजाबी जोड़ा एक-दूसरे की गर्दन में पीछे की ओर से हाथ डाले, गपशप करता जा रहा था। कल्याणसिंह को अच्छा नहीं लगा। उसे लगा, वह जिन्दगी से दूर अजूबों में जी रहा है। क्या सब कुछ सचमुच ऐसा ही है ? ऐसे ही भुगता जाता है ? उसने सोचा और फिर जल्दी ही उसे लगा जैसे वह आरामदेह सीट गड़ने लगी है, तीसरे दरजे की नंगी सीट से भी कहीं ज्यादा···

कम्पार्टमेंट की बत्तियां जलने लगीं और कुछ ही देर में डिब्बे में कोई गीत गूंजने लगा। कल्याणसिंह अपनी सीट पर बैठा सिकुड़ा-सिमटा परेशान-सा सोचे गया, कितनी अजीब बात है ? इस माहौल में भी लोग इस मुलायम गीत का मजा ले लेते हैं ?

उसके ठीक पीछे वाली सीट पर दो नेता बैठे हुए थे। अभी कुछ ही देर पहले उन दोनों में परिचय-चर्चा हुई थी।

"आप···?"

"जी, मैं महेन्द्रगोपाल हूं। यू० पी० असेम्बली के लिए विधान सभासद··· और···"

"जी, मैं श्यामलाल हूं, मध्यप्रदेश में एम० एल० ए०। क्या इत्तिफाक है ?"

"वाह साहब ! यह मुलाकात खूब रही।"

थोड़ी ही देर में वे घुल-मिल गए थे और अब कल्याणसिंह ने ध्यान दिया तो पाया कि वे समाजवाद पर बातें कर रहे थे। बीच-बीच में वे विरोधी दलों को कोसते, फिर ऊंच-नीच, छोटे-बड़े के भेदभाव को समाप्त करने की योजना बनाने लगते। अनचाहे ही कल्याणसिंह को उन पर क्रोध आया। नकली जिन्दगी में जीकर भेद-भाव मिटाने चले हैं। उसे जीवन के प्रति इस अनोखे व्यंग्य से कुढ़न हुई। लगा, जैसे वह इस कम्पार्टमेंट की किसी सीट से नाता नहीं जोड़ सकेगा। उसने प्रतिक्षण अनुभव किया जैसे वह अकेला है और इस एअरकंडीशंड कम्पार्टमेंट की हवा विषाक्त हो गई है। इतनी कि वह ढंग से खुली सांस भी नहीं ले पाता। पास बैठी दोनों लड़कियों में से एक ने सावधानी से उठकर अपनी अटैची उतारी और उसमें से स्नो-पाउडर, साबुन, तौलिया आदि लेकर कल्याणसिंह के पैर लांघती कम्पार्टमेंट के बाहर चली गई। कल्याणसिंह को उसका यों बेमौके साबुन-तौलिया लेकर बाहर जाना अस्वाभाविक-सा लगा था, इच्छा हुई थी पैर सिकोड़ ले, पर न जाने क्यों उसने ऐसा नहीं किया। वह पैर फैलाए रहा। यही नहीं, उसने संकोच त्यागकर शरीर को सीट पर पुनः पहले की तरह ढीला छोड़ दिया। उसके हाथ पास बैठी लड़की के पल्लू को छू रहे थे। एक क्षण उसने सारे बदन में सुरसुरी-सी अनुभव की, किन्तु हाथ वहां से हटाया नहीं। थोड़ी देर में सुरसुरी गायब हो गई और उसके दिमाग ने पल्लू की अनुभूति करनी छोड़ दी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाथरूम में गई लड़की लौट आयी थी। कल्याणसिंह ने देखा, उसका चेहरा पहले से कहीं ज्यादा निखरा हुआ था, बाल संवर गए थे और बदन से भीनी-भीनी महक छूटने लगी थी, यों जैसे गुलाब की क्यारी के पास आ बैठा हो कल्याणसिंह। कुछ क्षणों तक वैसे ही खुला-खुला बैठा रहने के बाद वह उठा। सामने रखा सन्दूक उठाकर उसने सामान की जगह पर रखा, और फिर कम्पार्टमेंट के बाहर बाथरूम के पास आ खड़ा हुआ। दो-एक सूटेड-बूटेड लोग यहां खड़े सिगरेट के हल्के-गहरे कश खींच रहे थे। कल्याणसिंह शीशे में कैद खिड़की से झुक-झुककर बाहरी जिन्दगी देखता रहा। उसने कम्पार्टमेंट की अन्दरुनी जिन्दगी पर एक उपेक्षा छोड़ दी। उसने एक बीड़ी सुलगाई और धुआं फेफड़ों तक उतारा। वह जानता है, कैंसर जैसा खतरनाक रोग सिगरेट या बीड़ी के धुएं से ही होता है, पर वह अनुभव कर रहा था, जैसे उसे तसल्ली मिल रही है। कभी-कभी जहर भी कितना मीठा और अच्छा लगता है? पास खड़े लोगों ने उसे घूरा। शायद वे उसकी बीड़ी पसन्द नहीं कर पा रहे थे। कल्याणसिंह ने उत्तर में उन्हें अधिक वक्र दृष्टि से देखा और जब सकपकाकर उन्होंने आंखें झुका लीं तब कल्याणसिंह को अधिक शांति मिली। उसने एक सस्ता-सा फिल्मी गीत गुनगुनाया, फिर पड़ोसी साहबों की ओर देखा, वे उसकी गुनगुनाहट सुन पा रहे थे, फिर भी उन्हें उसकी परवाह नहीं थी। न जाने कब तक गीत गुनगुनाता रहा कल्याणसिंह।

ट्रेन की गति मंद हुई थी। सीटियों के कुछ रुंधे स्वर कल्याणसिंह के कानों से आ टकराए थे। उसे बहुत अच्छा लगा, यह सोचकर कि कोई स्टेशन आने वाला है। ट्रेन ने शहरी जिन्दगी छूनी प्रारम्भ कर दी।

कल्याणसिंह प्रतिक्षण जैसे तमाम जिस्म में एक नयी जिन्दगी अनुभव करने लगा। और जब ट्रेन प्लेटफार्म पर लगी तब फुर्ती से उसने दरवाजा खोल दिया। उतरा और तेज चाल में जाकर उसने एक दुकान से सिगरेटों का पैकेट खरीदा। प्लेटफार्म पर ही खड़े होकर उसने एक सिगरेट सुलगाई और धुआं उगलते हुए उसकी नजर जब ट्रेन के आखिरी हिस्से में लगी तीसरे दर्जे की बोगी पर जा ठहरी तब झल्लाहट से मन भर आया उसका। तीसरे दर्जे के दरवाजे पर भीड़ टूट पड़ी थी, भूखे गिद्धों की तरह···। कल्याणसिंह कुछ क्षण देखता रहा, फिर उपेक्षापूर्वक उसने उधर देखना बन्द कर दिया और अपने ऊंचे दर्जे के डिब्बे में आरामिया चाल से जा चढ़ा।

१९६५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किनारों के बीच

आंगन में शोर होता है। जया भीतर वाले कमरे से निकलकर देहरी पर आ खड़ी होती है। उसके तीनों बच्चे पीछे-पीछे आते हैं। मंझला आंगन में दौड़ने लगता है। सबसे बड़ा धूप में जाकर खड़ा हो जाता है। वह उदास आंखों से छांह में बैठी मकान-मालिक की लड़की को देखता है। वह धूप की मोहताज नहीं है। अभी-अभी उसकी मां ने उसे नया स्वेटर बुन दिया है। सबसे छोटा, जया की धोती में लटकता हुआ करीब-करीब उसके पांवों के बीच समा जाना चाहता है। जया झिड़क देती है—"हट ! हट !!"

छोटा नहीं मानता।

जया फिर उसे नहीं झिड़कती। वह पड़ोस वाली गायत्री की ओर देख रही है। उसने रोज की तरह उजली साड़ी पहन रखी है। उसके हाथ में प्लास्टिक का खूबसूरत थैला है। उसके दोनों बच्चे उसके इर्द-गिर्द मंडराते हैं। शायद वे उसके साथ जाना चाहते हैं।

गायत्री उन्हें समझाती है--"तुम यहीं रहो ! ऐं ! मैं तुम्हारे लिए बिस्कुट लाऊंगी। हूं। प्चु ! प्चु !"

बच्चे नहीं बहलते। बड़ा फरमाइश करता है—"मेरे लिए गुब्बारा लाना !"

गायत्री कुछ कहे, इसके पूर्व ही उसके घर के भीतर से एक मर्दाना स्वर सुनाई देता है—"हां-हां, भई ! गुब्बारा भी लाएंगी। अब तुम लोग भीतर आ जाओ।"

दोनों बच्चे भीतर चले जाते हैं। कितने अच्छे बच्चे हैं ? जया सोच रही है। छोटा अब भी उसकी साड़ी खींच रहा है। जया की कमर पर से साड़ी उखड़ती-सी लगती है। वह उसे जोर से झिड़क देती है—"हट !··· परे हो !"

छोटे पर कोई असर नहीं पड़ता।

जया कुछ नहीं कहती। वह साड़ी संभालती है और उसकी आंखें फिर गायत्री पर जा टिकती हैं। वह ऊनी शाल ऊपर ओढ़ रही है। कश्मीरी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शाल है। उसकी काली धरती पर पीला जरीवाला काम बड़े करीने से हुआ है। गायत्री उसका पल्लू कंधे की ओर उछालती है, तो धूप में जरी के फूल पीले सितारों की तरह चमककर एक क्षण को जया की आंखें चौंधिया जाते हैं। गायत्री फुर्ती से बाड़े के बाहर आ जाती है। जया जानती है, गायत्री सब्जी लेने गई है। उसके यहां दो सब्जियां और दाल रोज बनती है। एक दिन वह कह रही थी—'हमारे यहां दाल के साथ दो सब्जियां न हों तो चलता ही नहीं।'

जया एक गहरी सांस खींचकर बोली थी—'पहले तो हम भी दाल के साथ कम-से-कम एक सब्जी बनाते थे, पर जब से यह मंहगी हो गई हैं, दाल तक नहीं पुराती···।' अर्सा हो गया महाराष्ट्र में रहते। जया की हिन्दी में मराठी का बहुत दखल है।

गायत्री ने भिनभिनाकर जवाब दिया था—'हमारे यहां तो नहीं चल सकता। बच्चे ऐसे जिद्दी हैं कि पूछो नहीं। सिद्दू तो कौर गले से नहीं उतारता। उसके लिए खासतौर से सब्जी बनानी होती है।'

जया चुप हो गई थी। उसने गले का थूक निगल लिया था। मन हुआ था, कह दे—अपनी-अपनी चादर की बात है, गायत्रीबाई, पर उसने कुछ कहा नहीं था।

देहरी पर से हटने को हुई जया, तो छोटा उसके पैरों में यों लिपटा हुआ था जैसे पिण्डलियों पर रस्सी कसी हो। जया ने उसे फिर झिड़का और भीतर चली आयी। अभी सारा का सारा काम पड़ा हुआ है। न बिस्तरे उठे हैं, न रसोई साफ हुई है। जब तक बिस्तरे नहीं उठते, घर में ढंग से बैठने को भी जगह नहीं निकलती। किस शहर में तबादला हुआ है! मकान ऐसे कि चूहों के-से बिल, तिस पर छतें एस्सबेस्टस की। धूप-भरी गरमी के मौसम में लगता है, जैसे सूरज कहीं बगल में ही उगा है। और ठंड में ऐसे कोहरा बरस रहा हो।···जया बिस्तरे उठाने लगती है। छोटा रजाई में घुसा जा रहा है। जया उसे दुत्कारती है—'चल, हट!··हट···!' वह रजाई से नहीं निकलता तो···'हट रे!' कहती हुई जया रजाई खींच लेती है। छोटा धरती पर आ गया है। उसका सिर सीमेंट के ठंडे फर्श पर ऐसे बज जाता है जैसे रेक से मोटी जिल्द वाली कोई किताब धरती पर आ गिरी है। वह थोड़ा रुआंसा होकर उठ खड़ा होता है। जया परवाह नहीं करती। वह जल्दी-जल्दी बिस्तरे समेटती है। उन्हें एक के ऊपर एक तहबन्द वहीं चारपाई पर सहेज देती है। ऊपर से उनके ऊपर एक खूबसूरत चादर बिछाती है। छोटे घरों और बड़े शहरों में रहने के कई तरीके उसने सीख लिये हैं।

कुल जमा दो कमरे हैं। बड़े कमरे में सामान कम है और जितना है सब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करीने से सजा हुआ है। उसमें आने वालों की मेहमानी भी हो जाती है; बैठने, उठने और सोने के काम भी वही आता है। बचा रसोई का कमरा, उसमें स्टॉक रूम भी है, स्टॉक भी, रसोई भी और मौका पड़ने पर वह जनानखाने का भी काम देता है। कोई मेहमान आ जाए तो जया तीनों बच्चों को लेकर इसे शयनागार भी बना लेती है। जया बड़े कमरे की सफाई से निबटकर छोटे में आ गई है। वह रात के जूठे बर्तन इकट्ठे करती है। छोटा उसके पीछे-पीछे घूम रहा है। कभी-कभी जया को उस पर चिढ़ हो आती है—पीछे-पीछे लगा घूमता है, दूसरे बच्चों के साथ नहीं खेलता। पर इस ख़याल के साथ ही उसे उस दिन की घटना याद हो आती है। जया ने उस दिन छोटे के मुलायम-मुलायम गालों पर कई तमाचे कसे थे—सिर्फ इसलिए कि वह अपने घर में नहीं खेलता। दूसरे बच्चों के साथ मिल-कर पराए घरों में शैतानी करता है। उस दिन वह गायत्री के बच्चों के साथ उसके घर में खेल रहा था। उसने मेज पर से गुलदस्ता गिरा दिया था और गायत्री बुदबुदाती हुई उसे जया के घर में छोड़ गई थी—'बहुत ऊधम मचाता है, जया! अब देखो, वहां गुलदस्ता तोड़ आया। हमारे घर में तो पचास किस्म का कांच का सामान है।'

जया को बेहद गुस्सा आया था। उसे गुस्सा इस बात का नहीं था कि छोटे ने गायत्री के घर का गुलदस्ता तोड़ दिया, बल्कि उसे गुस्सा इस बात का था कि उसके घर में पचास किस्म का कांच का सामान नहीं है।·· और जया ने निश्चय किया था, इस माह की पगार में से पचास नहीं, तो पांच किस्म का सामान जरूर ले आएगी। गायत्री व्यंग्य न भी करती तो उसे सामान तो लाना ही है। घर में दस आने-जाने वाले होते हैं। ढंग के कप-प्लेटों की चार जोड़ियां भी नहीं हैं।

जया निश्चय करती है, निबाहने में भी कोई कसर नहीं छोड़ती, पर अगर तकदीर ही तिरछी-तिरछी चले तो क्या इलाज? उस महीने की पगार वाले दिन उसने ढंग की कप-प्लेटों के नाम के छह रुपए अलग रख छोड़े थे पर ऐन वक्त पर छोटे को ब्रोन्काइटिस हो गया! वे छह गए सो गए, छह और चुकाने हैं। दवाओं के रिश्ते बड़े महंगे हैं। सिरदर्द की गोली मिलती है चार आने में और छोटे के पिता की वार्षिक वेतन-वृद्धि होती है चार रुपया।

रसोईघर की साफ-सफाई से निबटकर जया बाहर चौक में आ जाती है। छोटा मिनमिनाता हुआ उसके पीछे-पीछे जाता है। वह जूठे बर्तनों को मलने लगती है। छोटा पास आ बैठता है। इस जगह धूप नहीं आती और धरती पर बिखरे पानी में पैर गलते-से लगते हैं। छोटा कहता है—'ठंड लगती है, मां!' उसके मुंह से हर शब्द के साथ भाप निकलती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जया खीझ पड़ती है—"यहां क्यों बैठा है, जा···विनोद के साथ धूप में खड़ा हो जा।"

छोटा नहीं हटता।

जया बड़े को आवाज देती है—"इसे बुला ले, विनोद !"

"आ जा," विनोद बुला रहा है। धूप में उसकी आंखें मिचमिचा रही हैं।

"मैं तुम्हारे पास ही बैठूंगा।" ठंड से सिकुड़ता, कसमसाता छोटा जिद कर रहा है।

जया झल्ला पड़ती है—"तो मर यहीं !" वह ठिठुरते हाथों बर्तन मले जाती है। राम-राम ! नागपुर की सर्दी का यह हाल है तो हिमाचल पर तैनात सिपाहियों का क्या हाल होगा ?···जया के घर में रेडियो नहीं है, पर गायत्री के घर का रेडियो हर रोज़ ऐसे बोलता-गाता है कि सारे मोहल्ले को रेडियो की कमी नहीं खटकती। जया सोचती है। बरबस ही उसे गायत्री के घर की याद हो आती है। छोटा-सा घर है पर सजाया ऐसे है जैसे राजमहल हो। तीन-तीन अलमारियां हैं। सब सामान करीने से लगा रहता है। अभी हाल में एक दिन कह रही थी—'स्टील की एक बड़ी अलमारी और लानी है। सिद्दू के पापा कह रहे थे। दिनभर धूल पड़ती है, कपड़े गन्दे हो जाते हैं।'

अनचाहे ही जया ने पूछ लिया था—'कितने की आती है ?'

'अरे, पूछो नहीं,' गायत्री बोली, 'आती तो बड़ी मंहगी है, पर जरूरत है तो लानी ही पड़ेगी। साढ़ चार सौ की आती है। ऊपर की तरफ कपड़े टांगने के लिए दो लम्बे खाने होते हैं, नीचे की तरफ साड़ियां रखने को दो खाने।'

गायत्री ने आगे कुछ नहीं पूछा। जो बात कभी सपने में भी न आयी हो, उसके बारे में सोचना बेकार है।

गायत्री कह रही थी—'बस, इसी महीने ले आएंगे।'

जया का मन हुआ था, पूछे—गायत्रीबाई ! तुम्हारे यहां इतनी पगार तो आती नहीं है कि एक ही महीने में इतनी बड़ी चीज़ खरीद कर लो ?···पर, उसने नहीं पूछा। वह जानती है, गायत्री के यहां ऊपर की कमाई बहुत है। उसका घर वाला ओवरसियर है और बड़े-बड़े ठेकेदार उसके यहां चक्कर काटते हैं। वह खराब इमारतों को अच्छी बताकर सरकारी तौर पर उन्हें स्वीकृत करवा देता है और खुद खासे अच्छे पैसे ले लेता है।

'तुम छोटे के पापा से क्यों नहीं कहतीं ?' गायत्री कुछ उलझन-भरे स्वर में कहे जा रही थी—'घर में स्टील की नहीं तो काठ की अलमारी तो होना ही चाहिए। वक्त पड़े दस काम आती है।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जया चाहकर भी कुछ नहीं बोल पायी। उसने एक गहरी—आत्मा तक गहरी सांस खींची और होंठ काटकर रह गई। वह जानती है, गायत्री ऐसी बातें करके उसकी फटी साड़ी के पैबन्द खोल देती है—बात-की-बात और हंसी-की-हंसी। उसे हर बार गायत्री से चिढ़ होती है। क्रोध भी आता है उस पर। किन्तु क्या कहे ? वह बात ऐसी करती है कि सामने वाले की गर्दन पर मुलायम तकिया लगा रही हो और सामने वाला महसूस करता है जैसे उसने अपनी गर्दन सख्त पत्थर पर रख दी है।

जया रह-रहकर सोचती रही थी और एक मशीन की तरह उसने घर का काम-काज कर लिया था। उसने निश्चय किया था, जैसे भी हो इस माह जरूर कोई ऐसी चीज़ ले लेगी कि घर में वक्त-जरूरत आने-जाने वालों को लगे, कोई चीज़ है। ऐसी चीज़ क्या हो सकती है भला ? उसने सोचा। अलमारी ?···पर दूसरे ही क्षण उसका दिमाग बुझने लगा था। अलमारी साढ़े चार सौ की आती है। और ठीक तभी उसके दिमाग में एक नया खयाल आया था। गायत्री ठीक ही तो कहती है घर में स्टील की नहीं तो काठ की अलमारी जरूर होनी चाहिए। उसने निश्चय कर लिया। वह इस माह जैसे भी हो, काठ की अलमारी ले लेगी। ···पर कहीं छोटे के पापा ने नहीं माना तब ? जया ने सोचा। उसके पति रामलाल का अजीब स्वभाव है, जया प्रस्ताव रखेगी और वह टालमटोल कर देगा। एक बार नहीं, कई बार यही होता है।

तभी उसे याद आया, एक बार ऐसे ही जया ने निश्चय किया था—जैसे भी हो, रामलाल को लाचार कर देगी, वह नया जूता खरीद ले। एक पुरानी चप्पल है, जिसे पिछले तीन सालों से वह रगड़े जा रहा है। हर तने पर दस कीलें ठुक गई हैं, पर रामलाल है कि आज तक उसे जोते जा रहा है। बीच में जब रामलाल के सामने उसने प्रस्ताव कर दिया था—'ये चप्पल बदल लो।' तब उसने बात हंसी में टाल दी—'अगले महीने बदलूंगा।' फिर अगला महीना आया और रामलाल ने हमेशा की तरह हंसकर फिर बात उड़ा दी—'इस महीने तो तू चावल खरीदकर डाल ले। सस्ते हैं, फिर भाव चढ़ जाएगा। चप्पल अभी एक महीना और काट देगी।' अगले तमाम महीने इसी तरह कटे थे और रामलाल ने चप्पल नहीं बदली थी। जया ने निश्चय किया, इस बार टालमटोल नहीं होने देगी। रामलाल आया कि उसने प्रस्ताव रखा। वह बात इस तरह शुरू करेगी, कि वह एक शब्द भी बोल न पाए। उसने यहां तक सोच लिया कि उसे क्या कहना होगा ? उसने याद कर लिया। वह कहेगी—मैं दूसरी बात नहीं सुनना चाहती, तुम अभी मेरे साथ चलो। लकड़ी की एक छोटी अलमारी खरीद लेंगे। दूध वगैरह रखने के लिए उसकी खास जरूरत होती है। वह एक नहीं, सौ ढंग से रामलाल को लाचार कर देगी। कहेगी—तुम टालमटोल नहीं कर सकते।···मैं कुछ नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुनना चाहती।···आखिर घर में कोई ऐसी चीज़ तो होनी चाहिए कि लगे कोई चीज़ है।···और भी न जाने क्या-क्या उसने सोचा।

शाम हुई तो रामलाल आया। जया निश्चय किए बैठी थी। वह थका हुआ था और ठंड के मौसम के बावजूद उसके माथे पर पसीने की हल्की-हल्की बूंदें थीं। उसने आते ही कपड़े बदले थे। फैक्टरी वाले भी इतने कंजूस हैं कि साल में एक ड्रेस के अलावा दूसरी नहीं देते तिस पर शर्त यह कि काम पर आओ, तो हर रोज ड्रेस में आना जरूरी है। रामलाल का नियम था, वह रोज ड्रेस संभालकर रखा करता और साप्ताहिक छुट्टी के दिन उसे धो लिया करता, ताकि वह अगले सप्ताह फिर काम में आ सके। जया चुपचाप देखती रही। रामलाल ने ड्रेस को उतारा और हाथ-मुंह धोने चला गया। जया सोचे हुए थी, जरा हाथ-मुंह धो ले तो प्रस्ताव रखे—'इस बार अलमारी जरूर लेगी!' रामलाल हाथ-मुंह धोकर लौटा तो जया ने चाय बनाकर उसे दी। वह उसके सामने आयी तो मन हुआ था कह दे···पर दूसरे ही क्षण उसने स्वयं को रोक लिया। हारे-थके आदमी का मन जब ठीक हो तो ऐसी बातें करनी चाहिए। यह चाय पी ले, फिर कहेगी जया।

रामलाल ने तसल्ली से चाय पी। इस बीच वह बच्चों से भी खेलता रहा था। बीच-बीच में जया और उसके बीच यहां-वहां की बातें भी हुई थीं, जिनसे घर की जरूरतों का कोई संबंध नहीं था। जब उसने खाली कप-प्लेट जया के हाथ में दिए, तब जया का मन हुआ अब कह दे··। पर फिर वही बात। मन का सोचा होंठों तक आते-आते रुक गया। हारा-थका काम से लौटा आदमी है। घर में चार घड़ी आराम से तो बैठने को मिले। जया अभी कह देगी तो उसका सिर घूमने लगेगा। सिर में ढेर-सी बातें घूमने लगेंगी— यह चाहिए, वह चाहिए। इसके बगैर नहीं चलता, उसके बगैर नहीं चलता।···नहीं। जया ने इरादा पुनः बदल दिया। ऐसा नहीं करेगी वह।···अभी खाना खा ले तो सोने से पहले धीरे-से रामलाल को बता देगी—'मुझे लकड़ी की एक छोटी अलमारी लेनी है।'···वह खाली कप-प्लेट लेकर बाहर चली आयी। लौटकर उसने जल्दी-जल्दी खाना तैयार किया। इस बीच रामलाल बच्चों को खिलाता रहा। जया और रामलाल जिस समय खाना खाने बैठे, उस समय भी जया के मन में विचार जन्मा था। अभी कह दे, पर फिर वह नहीं कह सकी। खाना खाते वक्त तो आदमी का मन चिन्ताओं से खाली रहना चाहिए। उसकी बूढ़ी सास जिन्दा थी तब कहा करती थी—'अगर खाते-पीते आदमी को चिन्ता लगी हो, तो अन्न का एक ग्रास उस के अंग नहीं लगता।' जया के मन में यह विचार आया और उसने कुछ नहीं कहा।

खाना खा चुकने के बाद रामलाल चारपाई पर जा लेटा था। वह बहुत थक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाता था और खाना खाने के बाद वैसे भी आलस घिर आता है। जया जब रसोई की साफ-सफाई से निबटकर उसके पास पहुंची, तब तक वह आलस में डूबा-डूबा लगभग आंखें झपकाने लगा था। जया का मन हुआ था कह दे, पर फिर किसी अज्ञात शक्ति ने उसे रोक दिया। उसने मुसकराकर मन की पीड़ा छिपा ली। वह चुपचाप रसोई वाले कमरे में लौट आयी। उसने देखा—गायत्री और उसका पति बाजार से लौटे थे। पीछ-पीछे कुछ आदमी चले आ रहे थे—कुली। उनके सिर पर स्टील की भारी-भरकम अलमारी रखी हुई थी। जया बाहर आयी। उसने जी भरकर उस अलमारी को देखा और जब उसे गायत्री के कमरे में पहुंचाकर कुली वापस हो गए, तब जया तृप्ति और अतृप्ति के दो किनारों के बीच किसी डोर से झूलती हुई, गले का थूक निगलकर चारपाई पर आ बैठी। उसने बच्चों के सिर पर हाथ फिराया, माथा दुलराया और फिर पास की चारपाई पर लेटे रामलाल की ओर देखा, जो अब गहरी—खूब गहरी नींद में सो रहा था। जया अनचाहे ही मुसकरा उठी। कितनी गहरी नींद ले रहा है वह? अभी जया अलमारी वाली बात कह देती, तो चिन्ता उसे यह शानदार नींद लेने देती? उसने सोचा और और वह चारपाई पर बची थोड़ी-सी जगह में, बच्चों के बीच सिकुड़कर लेट गई।

१९६५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बूंद-बूंद सागर

वह ऊपरवाली बर्थ पर फैलकर लेटा हुआ था। हर स्टेशन पर नयी-नयी सवारियां चढ़तीं, उसे घूरतीं — वह कितनी जगह घेरे हुए है? पर उसे उनकी किसी बात की कोई परवाह नहीं थी। वह सोच रहा था, धीरे-धीरे उसके गांव की दूरी कम होती जा रही है और वह हर क्षण एक के बाद एक सवाल उगाता हुआ उलझता जा रहा है।

गांव ?··· वह देर से सोच रहा था।

गांव जा रहा है। बहुत से लोग हैं, जो उसी की तरह अपने-अपने गांव-शहर जा रहे हैं। उसके अपने हमपेशा। फौजी···। कितने हैं, जो अपने-अपने गांव जा रहे हैं। लम्बी छुट्टियों पर। एक माह से दो माह तक के लिए। पर उनमें से शायद ही कोई उसकी तरह गांव जा रहा होगा···? उसने ख़यालों में अनचाहे ही मोड़ दिया।

कम्पार्टमेंट में कोलाहल था। बीच-बीच में वह करवट बदलकर नीचे की ओर देख लेता। कई-कई वेशभूषाएं···हर चेहरा एक-दूसरे से अपरिचित···। भूले-भटके वे टुकड़ों में एक-दूसरे से बातचीत कर लेते और फिर चुक जाते।

"कहां जा रहे हैं आप ?" एक अधकचरे अंग्रेज़ी कपड़े पहननेवाला बाबू पास बैठे ग्रामीण से सवाल कर रहा था।

"मुलताई।" ग्रामीण जवाब दे रहा था।

"वहां क्या करते हैं आप ?"

"खेती-बाड़ी।"

जवाब दिया जा रहा था, "मुलताई के पास एक खेड़े (गांव) में हमारी खेती है।"

"खेड़ा ?···"

"खेड़ा माने गांव।" ग्रामीण ने अपना उत्तर स्पष्ट कर दिया।

"हूं···।" बात खत्म हो गयी।

ऊपरवाली बर्थ पर लेटा उदय सिकुड़कर उठ बैठा। वह गरदन झुकाये हुए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था। उसने उन दोनों की बातें ध्यान से सुनी थीं। वह गांववाला अपने 'खेड़े' जा रहा है। वहां उसकी खेती है।

खेड़ा···? खेड़ा माने गांव।···उसके जहन में सवाल फिर हरिया गया और कई कोपलें उग आयीं···कई सवाल···।

उदय भी तो गांव जा रहा है।

पर कई बार गांव जाने-जाने में भी कितना फर्क होता है ? उसने सोचा। इस गांववाले की खेती है···घर भी होगा। नाते-रिश्तेदार भी होंगे, इसलिए वह गांव जा रहा है···पर मैं क्यों जा रहा हूं ?···पिछली तमाम बार की तरह ही इस बार भी वही सवाल सामने था।

कौन है वहां, जिसके लिए मैं जा रहा हूं ?

मां ?

पिता ?

भाई ?

कोई नहीं। उदय का कोई नहीं था। फिर भी वह गांव जा रहा है। किसके लिए ?

उसे खुद पर चिढ़ हुई। उसे छुट्टी मिली है, जैसे हर जवान को छुट्टी मिलती है। पर वह हर जवान की तरह घर नहीं जा सकता।

घर···? उसे ख़याल आया। गांव में घर है उसका। पक्की दो मंजिलों में नीचे तीन कमरे, ऊपर दो कमरे। बाहर आंगन, पर उदय को कभी उसकी याद नहीं आयी।···क्यों नहीं आयी ? असल में घर होते हुए भी उदय आज तक उसे घर नहीं मान पाया। आज भी नहीं मानता। माता-पिता, भाई-बहन, किसी के न होने पर भला कोई घर हुआ करता है।···ईंट-पत्थर की दीवारों-कमरों का मतलब घर तो नहीं है ? उसने तर्क पेश किया।

वह घर नहीं है। उसने तर्क पर जोर डाला और सवाल पुनः जिन्दा हो गया···फिर वह क्यों गांव जा रहा है ?

शायद बेकार ही। वह एक झल्लाहट के भाव में घिर गया। उसे खुद पर चिढ़ हुई। लड़ाई खत्म हुई थी और उसे कई जवानों की तरह छुट्टी मिलना मुमकिन हो गया था। उसने छुट्टी ले ली थी। उसे लगा, बेकार ही उसने छुट्टी ली और हमेशा की तरह फिर वही प्रश्नवाचक चिह्न उठ खड़ा हुआ···वह क्यों जा रहा है ? उसका कोई अपना नहीं है···गांव होते हुए भी गांव नहीं है·· घर होते हुए भी घर नहीं है···!

पिछले चार साल से वह फौज में है, पर किसी साल उसने गांव के बारे में नहीं सोचा···घर की याद नहीं की···हर साल छुट्टियों का वक्त आता है··· निकल जाता है। पर उसे कोई अफसोस नहीं होता। उलटे, वह खुश होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह एक बड़ी आबादी के गांव में न होकर भी यहां अकेला नहीं है। यहां ढेरों सिपाही हैं···अपनों से दूर, पर एक-दूसरे से बंधे हुए। अपने।

उसे ख़याल आया। वह गांव में होते हुए भी अकेला था। घर, खेत, जाने-पहचाने चेहरे, फिर भी उदय हमेशा अकेला रहा। यही नहीं, वह ऊब गया था बिलकुल··· इतना कि एक दिन भाग खड़ा हुआ था वहां से। लगा था, जैसे वह बेकार ही जिन्दा है···न उसका कोई घर···न उसका कोई अपना···

उसे ख़याल आता है, यही ठंडी के दिन थे। वह बीमार हो गया था। फ्लू हुआ था उसे। तीन दिनों तक सारे हाथ-पैर टूटते-से रहे थे और बुखार उसके शरीर से यों चिपका रहा था, जैसे बगल में ही कहीं सूरज उग आया है। सारी देह झुलसी जाती थी। पर ढेर से पास-पड़ोसी होते हुए भी कोई उसकी खोज-खबर लेने नहीं आया था। जैसे-तैसे वह बीमारी काटकर बेशरमी से उठ खड़ा हुआ था। उसे खीझ हुई थी, वह क्यों जिन्दा रहा?—कई-कई बार जिन्दगी से भी कितनी ऊबन होती है। आदमी का जिन्दा रहना भी एक समस्या बन जाता है।

उदय ने सोचा तो एक बार मन फिर उदासी और झल्लाहट से भर गया। ऐसी एक नहीं, कई घटनाएं घटी थीं और वह गांव से ऊबने लगा था। अब, जब उन दिनों की याद ताजा हुई है, तो एक-एक कर सभी दिमाग में मंडराने लगी हैं।

उसे याद आता है— बालाजी, उसका बचपन का दोस्त। पौधे से झाड़ की उम्र तक दोनों साथ-साथ बढ़े-पनपे थे। पर जब कहते हैं, समझदारी की उम्र आयी, तो उदय ने पाया था, साझीदार झाड़ उससे दूर हो गया था। पास होते हुए भी दूर।

बालाजी, जात का मरहठा। आंख, नाक, शरीर— सब कुछ उदय जैसा था। फिर भी उसके रिश्ते टूट गये थे। बात इतनी-सी थी कि उदय की मां मरहठिन थी और बाप ठाकुर, इसलिए गांववालों की नजर में उदय न मरहठा था, न ठाकुर। और तो और, वे उसे आदमियों का दर्जा देने तक को तैयार न थे।

उदय को अपने माता-पिता पर क्रोध आता है। वे जिन्दा नही हैं, पर उदय को भी जिन्दा हालत में नहीं छोड़ गये हैं।

बालाजी के ब्याह में उदय को आने की मुमानियत हुई थी। इसलिए कि वह न ठाकुर है, न मरहठा। और उदय दूर पीपल के झाड़ तले खड़ा-खड़ा अपने साथी की जिन्दगी का सुनहरा वर्क देखता-पढ़ता रहा था। ऐसी कई घटनाएं थीं, जो उदय की पिछली जिन्दगी से बंधी हुई थीं और उदय को लगता है आज भी वह उनके बंधाव से नहीं छूटा है। गांव में उसका कोई अपना नहीं है···दोस्त और पड़ोसी तक नहीं! फिर वही सवाल उग आता है— वह क्यों जा रहा है गांव?

उदय बेचैन हो उठा। पिछली जिन्दगी के दलदली दिनों से कई गुना बेचैन!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन हुआ, स्टेशन से लौट जाये। उसके पास काफी रुपये हैं। किसी शहर में होटल आबाद करे, शराब पिये और गांव के हर ख़याल को नशे में डुबो दे। गहरे, खूब गहरे—इस तरह कि वह मुरदा हो जाये। जैसे गहरी नदी में समाकर आदमी मुरदा हो जाता है। उदय देर तक निश्चय करता रहा। अगला स्टेशन आते ही वह उतर पड़ेगा। आखिर क्या तुक है गांव जाने में···?

अगला स्टेशन आया और जब उदय उतरा, तो उसे अपने निश्चय का ख़याल ही नहीं रहा। वह एक सामान्य यात्री की-सी चाल में उतरा। उसने एक प्याला चाय पी और प्लेटफार्म पर निरुद्देश्य चहलकदमी करते रहने के बाद जैसे ही गाड़ी ने रवानगी का इशारा दिया, वह भी औसत आदमियों की तरह अपने कम्पार्टमेंट में घुस आया।

कम्पार्टमेंट में आने के बाद उसने बर्थ पर पड़ा बिछौना साफ किया और चुपचाप उस पर लेट गया। फिर उसे एकाएक ही निश्चय याद आया। अरे, उसे तो उतर जाना था···? और फिर वह झल्ला उठा।

पहले तो ऐसा भुलक्कड़ कभी नहीं रहा? उसने सोचा। और फिर सोचता ही चला गया—खुद पर झुंझलाता हुआ।

इसी तरह की गलती उसने उस समय की थी, जब लड़ाई से छुट्टी पाकर वह वापस कैम्प पर भेज दिया गया था। वह उस दिन बहुत परेशान रहा था। अब जिन्दगी फिर पुरानी यादों और पीड़ाओं से घिर गयी है। वह फौज में इसीलिए तो भरती नहीं हुआ था कि लड़ाई शुरू हो, खत्म हो जाये और वह जिन्दा रहे? जिन दिनों लड़ाई चल रही थी, वह बहुत खुश रहता था। हर दिन, हर क्षण पहले से अधिक उत्साहित। उसकी अपनी टुकड़ी के साथी हैरान होते थे?···अजीब आदमी है वह! ट्रेनिंग और कैम्प के साथ के दिनों उन्होंने उदय को कभी उतना खुश नहीं देखा था, जितना खन्दकों में पड़े या मौत से जूझते हुए वह खुश नजर आता था? वे आपस में अकसर उसके बारे में बातें करते थे और उदय मन-ही-मन उन पर हंसता था। ये भला क्या समझेंगे, उसे ऐसे ही मौकों की तलाश है···जब गोले बरस रहे हों···गोलियां कनपटियों के पास से सनसनाती निकल जाती हों और मौत सिगरेट के पैकेट की तरह जेब में पड़ी हो। जब इच्छा हो सिगरेट जलायी जाये और याद के नाम पर गुल धरती पर छोड़ दिया जाये। लड़ाई के उस तमाम दौर में उदय ने जिन्दगी को सिगरेट की तरह जिया···। वह चाहता था सिगरेट जले और यादों के नाम पर सिर्फ गुल रह जाये···।

पर, उसे अफसोस है ऐसा नहीं हो पाया। लड़ाई खत्म होने के बाद उसे बहुत खला था। आखिर लड़ाई क्यों खत्म हो गयी है और उस दिन उसे लगा था जैसे ईश्वर शरारतन उससे खेल रहा है—एक खिलौने की तरह, जिसमें चाबी भर दी जाती है और वह करतब दिखलाता है और फिर खामोश हो जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लड़ाई शुरू हुई थी। उदय सोचता है। लड़ाई क्या शुरू हुई थी, खिलौने में कुछ देर के लिए चाबी भरी हुई थी। वह करतब दिखलाने लगा था···खन्दकों और मोर्चों से कहीं आगे बढ़कर वह दुश्मन के टैंकों के सामने तक चला जाता था और फिर मशीन की तरह फुर्ती से जिन्दगी दांव पर लगाकर उन्हें तोड़ डालता था। उसके साथी हैरान होते थे। अफसर चिल्लाते थे—होशियारी से काम करो। संभलकर···उदय उपेक्षा भाव के साथ सारी सलाहें सुन लेता। कई बार उसने इस तरह मोर्चे संभाले थे कि समझा गया वह इत्तिफाक से ही बच गया है। और टुकड़ी आगे बढ़ती गयी थी···दुश्मन धकिलता चला गया था।··· मील···दो मील···चार मील···छः मील···न जाने कितने मील तक···और इसी के साथ उदय का चेहरा अफसरों के बीच पहचाना जाता रहा था···कैम्प आफीसर···मेजर···ब्रिगेडियर···आफीसर कमांडिंग हेडक्वार्टर—फिर इस सबको पार करता हुआ अखबारों के पन्नों तक···।

उदय को मोर्चे पर ही तरक्कियां मिलती गयी थीं···वहीं पर खबरें···पर, उसे लगा था जैसे सब उलटा हो रहा है।···वह सब, जिसे वह नहीं चाहता।

वह हर सुबह···हर रात···और लड़ाई के सारे दौर में कुछ और ही चाहता था।···वह चाहता था जेब में पड़ी हुई सिगरेट जले और गुल रह जाये।··· करोड़ों मील और करोड़ों सिगरेटों में अस्तित्वहीन होकर। ठीक उसी तरह जिस तरह उदय है। गांव···घर···समाज···देश और करोड़ों आदमियों की मौजूदगी के बावजूद अकेला।···एक बड़े सागर में बूंद की तरह। अस्तित्वहीन।

वह यही सोचता था, आज भी सोचता है। समुन्दर में एक बूंद हुई-न-हुई, क्या फर्क पड़ता है? और शायद सचमुच कोई फर्क नहीं पड़ता। उसने देखा था। मोर्चे पर उसके आजू-बाजू चलने वाले कितने ही साथी क्षणों में खत्म हो गये थे और अब उनके नाम भी ठीक से वह याद नहीं कर पाता है।

और ठीक भी है। यह कैसे मुमकिन है कि उनको अलग से गिना ही जाये? करोड़ों मील तक फैली धरती पर सिगरेट के बिखरे हुए थोड़े से गुल को ढूंढ़ पाना क्या सम्भव है?

सोचते-सोचते बरबस ही उदय फिर पुरानी जगह लौट आया। वह गांव जा रहा है? क्यों जा रहा है? समुद्र में कोई बूंद कभी अलग तो देखी-पहचानी नहीं गयी। तब क्या जरूरत है वह उसमें मिली ही रहे?

उस दिन उसने गलती की थी। उसे याद आया। वह न जाने किस यांत्रिकता में बंधा हुआ गांव जाने का वारण्ट ले आया था। फिजूल!

उसने निश्चय फिर पुख्ता किया। उसे लौट जाना चाहिए। अगले स्टेशन से ही लौट जायेगा।

और अगला स्टेशन मिला। उदय बिलकुल उतर जाने के मूड में था, पर न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाने कैसे कोई भारी ख़याल आया था उसके दिमाग में और पिछले हर ख़याल को दबाकर सवार हो गया था।

"क्या हर्ज है अगर वह गांव पहुंचकर लोगों से मिल-जुल ही ले ?"

"बेकार बात है ! उनसे मिलने का क्या सवाल, जिन्होंने उसके जिन्दा रहते भी कभी महसूस नहीं किया कि वह जिन्दा है ? उनके लिए उदय का होना-न होना बराबर है।"

"फिर भी, आखिर वे देखेंगे। कितनी जबरदस्त लड़ाई के बावजूद उदय जिन्दा है !"

"बहुत से लोग जिन्दा हैं !···यह कोई तर्क नहीं है।" और उदय ने फिर चाहा था, वापस हो जाये। पर, अब मुमकिन नहीं है। ट्रेन स्टेशन छोड़ चुकी है। वह बेबसी की हालत में चुपचाप लेटा रहा।

अब कुछ नहीं हो सकता। उदय ने एक गहरी, दर्द में डूबी हुई श्वास खींची और हवा मुंह और नथुनों से बाहर उगल दी। अब तो अगला स्टेशन उसका गांव ही है।

फिर कुछ क्षणों तक उसका दिमाग अजीब-से ज्वार-भाटे में फंस गया—उसका गांव···वह···सागर···बूंद···

वह कुछ सोच नहीं पा रहा था। पलकें बार-बार झपकायीं उसने। कुछ लाल-पीले डोरे आंखों के सामने उभरते थे। लगता था दिमाग जवाब दे गया है—बूढ़े शरीर की तरह।

जब जागा तो उनींदी आंखों से उसने देखा, निचले बर्थ वाला आदमी बिस्तरा लपेट रहा था।

इसका मतलब है अगले स्टेशन पर ट्रेन पहुंचने वाली है। अगला स्टेशन—उसका गांव।

उदय फुर्ती से उठ पड़ा। उसने सामान संभालना चालू कर दिया। कुल दो मिनट ठहरती है गाड़ी। ठीक से सामान उतारने-उतरने का भी मौका नहीं मिलता।

होल्डाल बांधते वक्त उसकी एक पट्टी टूट गयी, तो उदय हमेशा की तरह फिर झुंझला गया था।···"स्साली तकदीर !" उसने कभी खुद को और कभी ईश्वर को कोसा। जिन्दगी भी तसल्ली की नहीं, मौत भी आसान नहीं !

जब सामान बंध चुका, तो उदय फिर पुराने ख़यालों में उलझने लगा था। वह डरा भी था···कई साल पहले की वह उपेक्षा···क्या अब भी जिन्दा होगी ?

"होगी !"

ट्रेन की गति धीमी हो गयी। कम्पार्टमेंट में कोलाहल बढ़ा। उदय ने बर्थ से सिर नीचे की ओर लटकाया। गांव आ गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह फुर्ती से नीचे उतरा। सामान एक-एक कर कम्पार्टमेंट के दरवाजे तक पहुंचाया। फिर अपनी कमीज पैंट में दबायी, जो लगातार बैठे या लेटे रहने से पैंट के ऊपर तक खिसक आयी थी।

गेट खोलकर वह बाहर देखने लगा। ट्रेन लगातार धीमी होती हुई प्लेटफार्म की ओर बढ़ रही थी।

उसने दूर-दूर तक फैले हुए खेत देखे। न जाने क्यों गुदगुदी-सी होने लगी उसके मन में। फिर जब उसने प्लेटफार्म की ओर देखा, तो आश्चर्य से देखता ही रह गया।

इतनी भीड़ ?···उसके गांव के स्टेशन पर इतनी भीड़ ?···बिलकुल शहर के स्टेशन की तरह ?···ऐसा तो कभी देखा ही न था उसने ? फिर उसे खयाल आया—कोई फैक्टरी चालू होने वाली थी। कितने साल हो गये हैं उसे गांव छोड़े ? बिलकुल एक युग की तरह और उसने आश्चर्य त्याग दिया। इतने अरसे मे एक गांव, शहर नहीं तो परगना जरूर हो सकता है।

ट्रेन रुक गयी। फुर्ती से उदय ने सामान उतारना चालू कर दिया।

भीड़ उसी की ओर उमड़ पड़ी। कुछ लोगों ने आगे बढ़कर उसका सामान उतार दिया।

उदय समझ नहीं पा रहा था, क्या हो गया है। वह अवाक् भीड़ के लोगों के चेहरे देखता रह गया। वे सभी खुश थे। बूढ़े, जवान, बच्चे···उदय ने उनमें से कुछ को पहचाना। कुछ ग्रामीण···सरकारी अफसर···

एक वृद्ध बढ़ा। उसने बुत की तरह खड़े हुए उदय को झुर्रियोंदार बाजुओं में कस लिया।···"वाह मेरे बेटे !···तूने सारी दुनिया में अपने गांव का नाम ऊंचा कर दिया।"

और बच्चे शोर मचाने लगे···जवानों ने उसका नाम ले-लेकर जय-जयकार किया।···कुछ लोग उसका सामान उठाकर आगे बढ़ गये। और न जाने कितने बाजुओं ने उदय को सीने से लगाया···भीगी आंखों ने उसका स्वागत किया··· और इस सारे क्रम में उदय सिर्फ इतना ही सोच सका कि वह बहुत थक गया है--बहुत···और एक शानदार नींद अपने पुराने घर में ले लेने को उसका मन हो रहा है। उसने महसूस किया जैसे दूर-दूर तक उसका घर फैला हुआ है···एक सागर की तरह और सब उसका है।

१९६६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

झूठ के कमरे में एक सच

स्टूडियो के सस्ते कैण्टीन में नयना झवेरी अकेली बैठी हुई थी। उसे दुबे ने सात बजे शाम का टाइम दिया था और इस वक्त सात बजने में कुछ मिनट कम थे।

कैण्टीन के दो हिस्से थे—एक बाहर, एक भीतर। भीतर वाले हिस्से में टेबिल-कुर्सियां करीने से लगी हुई थीं जबकि बाहर वाले हिस्से में बेतरतीबी से कुछ पुरानी किस्म की टेबिल-कुर्सियां पड़ी हुई थीं। जब भीतर वाले हिस्से का फर्नीचर पुराना और कालिख वाला हो जाया करता था, तो मालिक उसे अगले हिस्से में भेज देता, जो पीछे वाले हिस्से से कई गुना लम्बा-चौड़ा था तथा भीतर के लिए नयी कुर्सियां और टेबिलें बनवा देता। यहां असिस्टेण्ट डायरेक्टर्स, कैमरामैन और टेक्नीशियंस आया करते थे जबकि बाहर वाला हिस्सा कम औकात वाले लोगों का था। वहां एक्स्ट्रा मर्द-औरतों के अलावा वे नये चेहरे आया करते थे, जो कुछ दिनों या महीनों तक हीरो या हीरोइन बनने का रंगीन सपना संजोये रहते थे और फिर जल्दी ही किसी छोटे-मोटे काम में लग जाते थे।

नयना झवेरी अभी नयी आयी थी। उसे हीरोइन बनना था और चूंकि अभी उसके पास पैसा बकाया था इसीलिए इस कैण्टीन के भीतर वाले हिस्से में बैठी हुई थी। उसने वक्त काटने के लिए एक चाय का आर्डर फेंक दिया था और फैली-फैली आंखों से स्टूडियो की जिन्दगी देखती जा रही थी। आसपास के टेबिलों पर चल रही बातों पर भी वह ध्यान दे लेती और हर क्षण अपने आपको उस माहौल में फिट करने की कोशिश करती।

उसे फिट होना ही पड़ेगा। हालांकि इन दो दिनों में ही उसे लगा था, जैसे इस माहौल में खुद को चलाये जाना बेहद कठिन होगा, फिर भी वह चला रही थी। किस-किस तरह की बातें होती हैं यहां? उसने पास वाले टेबिल की ओर कान दिये। वहां कुछ पढ़े-लिखे-से लगने वाले लोगों का जमघट था। कुछ लोग थे जो अंग्रेज़ी-हिन्दी एक साथ बोल रहे थे। बीच-बीच में कोई ऐसी भाषा भी आ जाती थी, जिसे अब तक नयना ने कभी कहीं नहीं सुना था। वह हिन्दी थी, फिर भी नयना को लगा था, वह हिन्दी नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नयना झवेरी ने सुना। शायद वे उसी के बारे में बातें कर रहे थे।

"हीरोइन बनने के मूड में है।" एक कह रहा था।

"नमक तो है।" दूसरे ने राय पेश की।

"तब तो बन लेगी।" पहला मचलकर पुनः बोला।

नयना को अजीब-सा लगा। वे कितनी नंगी-सी बातें कर रहे हैं। क्या सचमुच यह दुनिया इतनी ही नंगी है? उसने सोचा, फिर ख़याल दूसरी ओर लगा दिया।

उसके इर्द-गिर्द के और टेबिल भी गरमागरम बातों में लिपटे हुए थे। कुछ टेबिलों पर औरतें भी थीं। नयना झवेरी ने आंखें गड़ाकर देखा और यह देखकर बहुत हैरानी हुई कि वे औरतें भी मर्दों से उतनी ही खुली-खुली बातें कर रही थीं। उनकी आंखों में कुछ विचित्र-सी सफेदी थी और शब्दों में सूखापन, इस तरह जैसे पुतली पर लाज का कोई परदा शेष नहीं रहा है। वे अपने देखने-सोचने के हर ढंग में, नयना को लगा, नंगी हैं, ठीक उसी तरह जिस तरह पीठ और सीने पर नाम मात्र को चिपके उनके ब्लाउज नंगेपन के बहुत करीब थे। उस समय तो वह और परेशान हुई जब उसने देखा कि किसी मर्द के साथ बड़ी बेशर्मी से खिलखिलाती हुई एक जवान लड़की ने उसके टेबिल पर रखे सिगरेट के पैकेट से एक सिगरेट निकालकर निहायत बेतकल्लुफी से जलायी और धुएं के छल्ले हवा में छोड़ने प्रारम्भ कर दिये।

गिलास एक-दूसरे से बजाता हुआ बेयरा नयना के टेबिल पर आ खड़ा हुआ। जाहिर था, वह कोई और आर्डर चाहता है और यहां बैठने के लिए उसे कोई आर्डर देना ही पड़ेगा। उसने एक बार बेयरे की ओर देखा जो आंखों-ही-आंखों में उससे पूछ रहा था, "क्या लाऊं?" फिर अपनी कलाई पर बंधी घड़ी पर नजर डाली। सात बज रहे हैं। दुबे ने कहा था, वह ठीक सात बजे आ जायेगा।·· बस, आने को ही होगा। मन हुआ था, बेयरा को कुछ समय के लिए टरका दे पर इस बार नयना यह नहीं कर सकी। इससे पहले भी वह उसे इसी तरह 'कुछ देर बाद आना' कह वापस कर चुकी है। इस बार अजीब लगेगा। उसने आर्डर दिया, "एक कॉफी लाओ।"

बेयरा चला गया तो नयना ने पुनः घड़ी देखी। सात बजकर पांच मिनट होने को हैं और दुबे···न जाने दुबे कहां अटककर रह गया। यहां के लोग वक्त की कीमत नहीं जानते। उसने मन-ही-मन झल्लाकर दुबे को कोसा, फिर एकाएक ही उसने खुद को इस तरह सोचने से रोक भी लिया। उसके ख़याल पर दूसरी परत चढ़ी। दुबे असिस्टेण्ट डायरेक्टर है। नयना से कोई परिचय न होते हुए भी उसने उसे कितना ढाढ़स बंधाया था, वरना वह तो कभी की निराश होकर इस फिल्मी वाही-तबाही से निकल भागी होती। उसने सुन रखा था, इस दुनिया में हर कदम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर कीचड़ है और मंजिल तक पहुंचने के लिए बगैर कीचड़ में पांव दिये कदम नहीं बढ़ता। पर वह भाग्यशाली मानती है खुद को। यहां आते ही उसकी मुलाकात दुबे से हो गयी, और वह कीचड़ में शायद एकमात्र ऐसा सहारा है, जो अब तक ठोस पत्थर की बुनियाद बनकर उसके कदम मंजिल तक पहुंचा सकता है। नयना ने उसके बारे में सोचा और राय बदल दी। अब समय सात बजकर दस मिनट तक जा पहुंचा था पर नयना नाराजी के किसी भुलावे को नहीं ओढ़ना चाहती थी। वह जानती है, दुबे बहुत व्यस्त आदमी है। उसके इर्द-गिर्द सैकड़ों जिम्मेदारियां लिपटी रहती हैं। दस-पांच मिनट इधर-उधर हो सकते हैं। उसने दुबे को माफ कर दिया। आखिर असिस्टेण्ट डायरेक्टर है। असिस्टेण्ट डायरेक्टर यानी डायरेक्टर के बाद दूसरा नम्बर।···डायरेक्टर कितना जिम्मेदार आदमी होता है किसी फिल्म के लिए, नयना जानती है। और असिस्टेण्ट डायरेक्टर···? डायरेक्टर के बाद दूसरा जिम्मेदार आदमी।···नयना ने दुबे को सिर्फ माफ ही नहीं किया बल्कि खुद पर झुंझलायी। वह कितनी स्वार्थी है!···उसे अपने टाइम का ख़याल है, पर उस आदमी के बारे में उसे तनिक चिन्ता नहीं। उसके भी कुछ काम हो सकते हैं।

बेयरा कॉफी ले आया था। जब उसने उसे टेबिल पर एक आवाज के साथ रखा तब कहीं नयना का ध्यान हट पाया। उसने घड़ी देखी, दुबे लगातार लेट होता जा रहा है। उसे इस बात का अफसोस नहीं था कि उसको यहां इन्तजार करना पड़ रहा है। वह डर रही थी, कहीं डायरेक्टर न निकल जाये, जिसके यहां दुबे के साथ वह जाने वाली है। उस दिन प्रोग्राम तय हुआ था। नयना को याद आया। खुद दुबे ही बोला था, "सात बजे तुम मोहन की कैण्टीन पर पहुंच जाना। वहां मैं मिल जाऊंगा। फिर मैं तुम्हें साथ लेकर डायरेक्टर महाजन के पास जाऊंगा। बहुत अच्छा आदमी है। हर प्रोड्यूसर उसकी गुलामी करता है। अगर सितारे अच्छे हुए, तो बात बन ही जायेगी।"

नयना ने स्वीकार कर लिया था, "हां, मैं ठीक सात बजे कैण्टीन पर पहुंच जाऊंगी।"

"बस।" दुबे बोला, "मैं भी पहुंच जाऊंगा।"

और नयना सात बजने से कुछ मिनट पहले ही इस कैण्टीन पर आ गयी थी। और दुबे है कि अब तक पता नहीं है। उसने कॉफी की दो-एक चुस्कियां लीं और बेसब्री से इधर-उधर नजरें फिरायीं। कहीं ऐसा तो नहीं है कि दुबे आ गया हो और भटक रहा हो?

दुबे नहीं आया था। नयना की नजरें खाली गयीं।

वह कॉफी की चुस्कियां लेती रही। हर चुस्की के साथ उसका ध्यान घड़ी की ओर गया। सात बजकर दस मिनट···ग्यारह···बारह···सात बजकर पन्द्रह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिनट हो गये हैं।

नयना के दिमाग में बरबस ही एक संशय उठ खड़ा हुआ। कहीं दुबे उसी किस्म का आदमी तो नहीं है, जैसे उससे पहले उसे मिले थे। और इस ख़याल के साथ ही कुछ दिन पहले की एक घटना उसके दिमाग में ताजा हो गयी। एक चेहरा उभरा—लम्बा-चौड़ा, सुगठित शरीर···करीनेदार कपड़े···मीठी जबान। यह मलहोत्रा का चेहरा था। और मलहोत्रा इण्डस्ट्री के सबसे ज्यादा बदमाश आदमियों में था। लोगों की राय थी, वह औरत और शराब सूंघते-सूंघते आधी से ज्यादा जिन्दगी निकाल चुका है। एक्स्ट्रा लड़कियों से लेकर हीरोइनों तक ने उसे भुगता था और ठर्रा से लेकर ऊंची-से-ऊंची विदेशी शराब उसके गले उतरी थी।

कहीं दुबे भी तो वैसा ही आदमी नहीं है? नयना झवेरी ने सोचा और उसके मुलायम चेहरे पर शबनम-जैसा पसीना उभरने लगा। उसने यह गन्दा ख़याल दिमाग से निकाल फेंका। छि:!···उसे दुबे के बारे में इस तरह नहीं सोचना चाहिए। कहां मलहोत्रा और कहां दुबे! अनचाहे ही नयना का दिमाग दो पलड़ों की शक्ल में मलहोत्रा और दुबे को तौलने लगा।

मलहोत्रा···। कहते हैं, बड़े-बड़े डायरेक्टरों और प्रोड्यूसरों से उसकी मुलाकात है। मुलाकात क्या, बिलकुल एक पेग में शामिलात है।

नयना से यों ही स्टूडियो में चलते-फिरते मुलाकात हो गयी थी उसकी।

और पहली मुलाकात में ही मलहोत्रा ने उसे बहुत प्रभावित किया था। नयना ने उस दिन खुद देखा था, मलहोत्रा को छोटे से लेकर बड़े तक आगे होकर सलाम किया करते थे। और नयना को लगा था, उसे सही सहारा मिल गया है। उसे मालूम था, फिल्म-इण्डस्ट्री में या तो सही आदमी नहीं मिलता और अगर मिल जाये तो सितारे बुलन्द होते जाते हैं। नयना ने मलहोत्रा से मुलाकात होते ही समझ लिया था, सही आदमी मिल गया है और अब सितारे बुलन्द होते जायेंगे। एक-दो मुलाकातों में ही वह उससे घुल-मिल गयी थी। वे साथ-साथ जुहू के किनारे घूमे थे। 'सन एण्ड सैण्ड' होटल में शामें गुजारी थीं। मलहोत्रा ने सैकड़ों वायदे दिये थे, "मैं तुम्हें पंचोली से मिला दूंगा, मोहनकुमार से मेरा बिलकुल घरोबा है। परदे पर उतरोगी तो साधना धरी रह जायेगी। मैं तुम्हारी बात सुबोध मुखर्जी से भी पक्की करा दूंगा···"

नयना गुलाबी यादें लेकर उन दिनों सोती थी। रात को सपने देखती। सुनहरे ख़यालों में लिपटे हुए ये सपने हर क्षण उसके दिमाग में किसी फिल्म की तरह घूमते रहते। वह पंचोली से मिल रही है···मोहनकुमार ने अगली फिल्म में उसे चांस देने का वायदा कर दिया है···सुबोध मुखर्जी से बात पक्की हो चुकी है···साधना धरी रह जाती है और हर शहर की दीवार पर रोते, नाचते,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुसकराते उसका चेहरा पोस्टर बनकर जा चिपका है। और···

पर कुछ नहीं हुआ था। हुआ सिर्फ यह था कि मलहोत्रा ने एक शाम को जुहू पर घूमते हुए उसके मुलायम हाथ अपने हाथों में दबा दिये थे···एक होटल के भीतर केबिन में ले जाकर 'रम' पीने की कसमें डाली थीं और अन्त में कहा था, "हीरोइन बनना है, तो यह सब करना पड़ेगा, नयना !···"

नयना सकुचायी। उसके तमाम शरीर में रोयों की खाली जगहें झनझनी से भर गयीं।

"सच कह रहा हूं।" मलहोत्रा ने रम के अब तक तीन पैग खाली कर दिये थे और चौथा भर रहा था, "यह सब करना पड़ेगा।···सब ! फिर मैं पूछता हूं, इसमें बुरा भी क्या है ?···क्या बिगड़ता है इसमें ?···फिर सच्चाई तो यह है कि जिस्म एक किस्म का कलईदार बरतन है। या तो यह बरतन इस्तेमाल हो जाये या फिर पड़े-पड़े इसकी कलई उड़ जाये।···पर यह तो है कि एक-न-एक दिन इसकी कलई जरूर उड़ जायेगी।···"

नयना का मन मितलियां लेने लगा। मलहोत्रा के चेहरे से शराब की दुर्गन्ध रिसने लगी थी। वह झूम रहा था और कहे जा रहा था, "सच कहता हूं, इसमें कुछ नहीं बिगड़ता। ये जो परदे पर बड़े-बड़े नामों वाली दीखती हैं न, सबने यही किया है। मां कसम, सबने यही किया है।···मजे की बात है कि इसके बावजूद वे तमाम हिन्दुस्तान के सिर चढ़ी हुई हैं।···सही बात तो यह है कि इसमें कुछ नहीं बिगड़ता।···कुछ नहीं !···" वह कहते-कहते रुक गया था। कुछ हिचकियां आ गयी थीं उसे।

नयना कुछ देर बर्दाश्त करती रही थी, फिर एकाएक ही वहां से चल देने के लिए उठ खड़ी हुई थी।

मलहोत्रा ने पूछा था, "कहां जा रही हो ?"

नयना ने कोई जवाब नहीं दिया।

मलहोत्रा शराब में डूबा होने के बावजूद समझ गया था। "ठीक है।" वह बोला, "जाना है तो जाओ।···पर खयाल रखो, इस तरह तुम्हें अक्खी फिल्म-इण्डस्ट्री में कोई नहीं पूछेगा।···कैमरामैन से लेकर असिस्टेण्ट डायरेक्टर तक नहीं।···कोई नहीं पूछेगा।"

नयना जाने लगी थी।

"अख्ख !···थूप्फू।···" मलहोत्रा ने ढेर-सा थूक दिया था वहीं। नयना चली आयी। उसने उस दिन निश्चय कर लिया था, वह यहां नहीं रुकेगी। बहुत से लोग हैं जो मनचाहा काम चाहते हैं पर हर किसी को मिल ही जाये, यह जरूरी नहीं होता। पर उसी दिन दुबे से उसकी मुलाकात हो गयी थी और आशा के मुरझाये हुए पौधे फिर जिन्दगी पा गये थे। दुबे का चेहरा-मोहरा, बातचीत का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ढग, सारी बातों से वह प्रभावित हुई थी। निश्चित ही वह शरीफ और भला आदमी है। न चाहकर भी नयना को भरोसा करना पड़ा था। मलहोत्रा के अनुभव ने उसे फिल्मी दुनिया के हर मर्द से खबरदार रहने का सबक दे दिया था। इसके बावजूद वह दुबे के नजदीक आ गयी थी। हर आदमी तो मलहोत्रा नहीं हुआ करता।···उसने लौटते-लौटते यहां से वापसी का निर्णय बदल दिया था। एक बार वह फिर भाग्य की अजमाइश कर लेगी।

उसने तुलना की मलहोत्रा और दुबे के वायदों में। मलहोत्रा जितनी लम्बी-चौड़ी बातें उछलता था, दुबे उतनी ही कम बात करता था। असल में दुबे और मलहोत्रा में जमीन-आसमान का फर्क है। उसने एक पुरानी कहावत याद की—गरजने वाले बरसते नहीं हैं। मलहोत्रा गरजता था, पर उसे बरसना नहीं आता था।

उसने कलाई घड़ी पर एक बार पुनः नजर ठहरा दी।···आठ! आठ बज गये हैं और दुबे का अब तक पता नहीं है। उसने निश्चय किया, दस मिनट और इन्तजार कर लेगी। अगर नहीं आया, तो वह लौट जायेगी। जिस चाल में उसे रहने की जगह मिली है, वहां के लोग अजीब-से हैं। सूत का एक धागा हो तो रस्सा बना देते हैं।

कॉफी खतम हो गयी थी। नयना ने सोचा, अब उसे यहां से उठ जाना चाहिए। वह बैठे-बैठे न सिर्फ बोर हुई थी बल्कि उसे टांगों में दर्द महसूस होने लगा था। वह उठ पड़ी। बेयरा ने आवाज दी, "पचास पैसा।" उसने पचास पैसे चुकाये और बाहर आ गयी।

स्टुडियो के बाहर वाले हिस्से में वह चहलकदमी करने लगी। इधर-उधर के सेट टूटे या अधबने पड़े हुए थे जिनकी शूटिंग या तो हो चुकी थी, या होने वाली थी। उसने अजीब-सी ललचायी निगाहों से स्टूडियो की हर चीज़ को देखा। फिल्म लाइन से उसे बहुत लगाव है। अगर लगाव न होता, तो शायद इस तरह भागकर न चली आती। उन दिनों की याद आयी, तो नयना जैसे कुछ पीड़ा अनुभव करने लगी। वे लोग, उसके घरवाले, नाते-रिश्तेदार, जानने-पहचानने वाले उसके बारे में क्या सोचते होंगे?···नयना—एक आवारा लड़की! भाग गयी! उसके घरवालों को यह सब बिलकुल पसन्द नहीं था। फिल्म तो बहुत बड़ी बात है, वे नयना को किसी भी तरह लोगों के सामने नहीं आने देना चाहते थे। कॉलेज गैदरिंग में नयना ने एक ड्रामे में एक्टिंग की थी, तो उसका भाई किस कदर झल्ला पड़ा था! उसने नयना की शील्ड तोड़ डाली थी, जिसे वह बेस्ट ऐक्टिंग की प्राइज में कॉलेज से हासिल कर लायी थी। वह उसे मारने तक पर उतारू हो गया था।···उन दिनों की स्मृतियों ने उसे घेर लिया, तो वह अनजानी-सी टीस पीने लगी। कितनी अच्छी एक्टिंग करती थी वह! लड़के-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लड़कियां वाहवाही करते थे। वे उसके इर्द-गिर्द मंडराते। लड़के किसी-न-किसी बहाने उससे बात कर लेना चाहते थे और लड़कियां उससे मैत्री को गौरव समझा करती थीं। उसे ख़याल आया, ड्रामे की प्राइज देते समय प्रिंसिपल ने कहा था, "मुझे भरोसा है···हण्ड्रेड परसेण्ट भरोसा है, अगर नयना झवेरी इसी तरह एक्टिंग करती रहीं, तो वे एक दिन फिल्माकाश तक सबसे ऊंचे सितारे की तरह चमकेंगी।···"

क्या वाकई यह मुमकिन है? उस दिन उसने अपने-आपसे सवाल किया था।···कुछ संकोचपूर्वक उसने सहेलियों से भी यही पूछा था। सभी की राय थी, वह एक शानदार हीरोइन के लायक है। और उसने लक्ष्य निश्चित कर लिया था, वह हीरोइन बनेगी।···भले इसके लिए उसे कितनी भी कठिनाइयां क्यों न उठानी पड़ें!···वह एक दिन सर्टिफिकेट और थोड़ा-सा सामान लेकर निकल भागी थी घर से।

तब से तीन माह हो चुके हैं। घरवाले शोर मचाकर शायद चुप भी हो चुके होंगे—नयना ने सोचा। वह जी-तोड़ कोशिश कर रही है। एक विश्वास है मन में, बस, एक बार चांस भर मिल जाये, फिर तो सब कुछ हो जायेगा। वह बिका हुआ जेवर एक घंटे में वापस हो जायेगा, जिसे इन तीन महीनों की भूख के दौरान नयना कुरबान कर चुकी है।

दुबे अब भी नहीं आया था। नयना ने घड़ी देखी, आठ बजकर पांच मिनट हो चुके हैं। फिर संशय ने आ घेरा था उसे। क्या सचमुच दुबे भी वैसा ही आदमी है, जैसा मलहोत्रा था। उस बूढ़े चौकीदार ने बतलाया था।

'नहीं-नहीं! ऐसा नहीं हो सकता। दुबे वैसा आदमी नहीं लगता। वह बूढ़ा चौकीदार गलत कहता था। हर आदमी एक ही किस्म का तो हुआ नहीं करता। कोई जरूरी नहीं है कि दुबे खराब आदमी ही हो?' मन के इस अन्तर्द्वन्द्व के बावजूद नयना को उस बूढ़े चौकीदार की बातें याद हो आतीं, जिसने उसे बार-बार इस स्टूडियो के चक्कर लगाते देखकर एक दिन पूछ लिया था, "कहां से आयी हो, बाई?"

नयना ने झूठ बोला था, "कानपुर से!" हालांकि वह नागपुर से आयी थी। जब-जब कोई आदमी उससे इस तरह के सवाल करता था, नयना अपना पता गलत बतलाया करती थी।

"क्या चांस-वांस के चक्कर में हो या मिल गया है?" बूढ़े चौकीदार ने बात बढ़ायी थी।

इस बार नयना चाहकर भी झूठ नहीं बोल सकी। वह जानती है, फिल्म में कौन आदमी कब क्या कर सकता है, इसका कोई ठिकाना नहीं। उसने स्वर में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विनम्रता घोलकर जवाब दिया था, "हां, चांस ही चाहती हूं। फिलहाल मिला नहीं है, पर उम्मीद है।"

"किसी ने वायदा दिया है ?"

"हां।"

"किसने ?"

"दुबे साब ने !" नयना नहीं बतलाना चाहती थी पर वह चौकीदार हर सवाल इस मिठास और सरलता से कर रहा था कि नयना सच बोलने पर बाध्य हो गयी।

"कौन दुबे ?" चौकीदार ने माथे पर कुछ सलवटें पैदा कीं, फिर सवाल किया, "वह आहलूवालिया साब के असिस्टेण्ट ?"

"हां।" नयना बोली, "वही। पर वे आजकल चक्रवर्ती साहब के साथ काम कर रहे हैं।"

"हूं, मुझे मालूम है।" चौकीदार गम्भीर हो गया।

नयना को लगा था, बात खत्म हो गयी है। वह वहां से चलने लगी थी, तो चौकीदार ने रोक लिया था। "बाई !" वह बोला था, "बुरा न मानो तो एक अरज करूं ?"

"बोलो।"नयना रुक गयी।

"तुम किसी भले घर की मालूम होती हो। फिल्म लेन बहुत खराब है। कौन कैसा आदमी है, तुमको मालूम नहीं।"

"क्या मतलब ?" नयना ने भवें तरेरकर पूछा था। वह दुबे के बारे में ऐसी कोई बात सुनने को तैयार नहीं थी।

"मतलब कुछ नहीं।" चौकीदार ने दबी आवाज में कहा था, "मेरा मतलब दुबे बाबू के लिए नहीं है। मैं तो पूरी फिल्म लेन की बात के रया हूं। दुबे साब-जैसे लोग चाहें तो सब कुछ कर सकते हैं, पर···" वह बोलते-बोलते कुछ सकुचाया, तो नयना ने उसी तरह आंखें चढ़ाये हुए उसे कुरेदा था, "हां-हां, बोलो।"

"बात ये है, बाई !" चौकीदार की झुर्रियां फिर मिटीं-बनीं, "जमाना खराब है। सरकारु आफिस पैसा लेते हैं—फिल्म लेन आबरू ले लेती है। यहां बात यों ही बनती है !"

नयना का मन हुआ था चौकीदार को न सिर्फ फटकारे बल्कि उसके बूढ़े चेहरे पर तमाचे कसे। नीच कहीं का, उसे उससे इस तरह की बात कहने में भी कोई संकोच नहीं हुआ !

"माफी देना, बाई ! धरम की बात है। दुबेजी आपने पकड़े तो खूब हैं, पर वे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तब तक चरका ही देते रहेंगे, जब तक उनकी फीस नहीं मिल जाती···।" चौकीदार ने इस बार बेशर्मी से खीसें निपोरीं।

नयना को आज भी अचरज है। उस दिन न जाने कैसे वह यह बर्दाश्त कर गयी थी। वह चुपचाप चली आयी थी वहां से। जब-जब उस बूढ़े की बात का ध्यान आता है, नयना का मन होता है, उसके पास पहुंचे और तड़ातड़ उसके चेहरे पर जूतियां कसे। कमीना कहीं का! उस दिन नयना के मन में आया था, दुबे को बतला दे। वह खुद निबट लेगा। पर उसने कुछ नहीं कहा था। वह नहीं चाहती, एक गरीब आदमी किसी तरह का नुकसान उठा जाये। वह पी गयी थी।

आठ बजकर दस मिनट हो चुके थे। नयना ने उदास नजरों से चारों ओर देखा और धीमे कदमों स्टूडियो के फाटक की ओर बढ़ चली। न जाने क्यों वह चाहकर भी चौकीदार की बात का एक टुकड़ा दिमाग से बाहर नहीं निकाल सकी थी, "···दुबेजी आपने पकड़े तो खूब हैं पर वे तब तक चरका ही देते रहेंगे, जब तक उनकी फीस नहीं मिल जाती···।" मन लगातार करवटें ले रहा था— नहीं, नहीं। ऐसा नहीं है।"···पर फिर वही शब्द चक्कर लगाते।

"आ'म वेरी सॉरी, नयना!···"

नयना ठिठककर रुक गयी। दुबे सामने आ खड़ा हुआ था। उसकी आंखों में झेंप का भाव था। वह उसकी ओर कुछ इस ढंग से देख रहा था, जैसे बार-बार माफ़ी की अपील कर रहा हो। नयना कुछ नहीं बोली।

"मुझ देर हो गयी।···" दुबे ने दोबारा माफी के लहजे में कहा, "आ'म वेरी सॉरी!···मैं क्या बतलाऊं, कुछ इस किस्म के लोग आ गये थे जिन्हें वक्त देना ही पड़ा।···तुम तो जानती ही हो, मैं कितने लफड़ों में फंसा रहता हूं।"

नयना ने कोई जवाब नहीं दिया। चौकीदार की बात अब भी उसके दिमाग में चक्कर लगा रही थी।

दुबे ने महसूस किया, जैसे वह नाराज हो गयी है। उसने कहा, "हां, मैं तुम्हे एक खुशखबरी सुनाऊं। मुझे भरोसा है, वह सुनकर तुम सारी नाराजगी भुला दोगी।"

नयना अब भी चुप रही। वह सोच रही थी, क्या वाकई हर जगह बात बनाने के अपने-अपने तरीके होते हैं। उसे मलहोत्रा का ख़याल आया···इसमें कुछ नहीं बिगड़ता! मां कसम, इसमें कुछ नहीं बिगड़ता!···

दुबे बोला, "मैंने डायरेक्टर आहलूवालिया से तुम्हारा जिक्र चला दिया है। उसने तुम्हें देखा भी है। मैंने बात की तो तुम्हें फौरन पहचान गया। बस, अब एक दिन उसके यहां चलना पड़ेगा। मैं समझता हूं, कल ही चलो!"

नयना का ख़याल टूटा, "क्या?" उसने पूछा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"आहलूवालिया से तुम्हें मिलवा दूंगा। मेरा खयाल है, यहां सौ फीसदी तुम्हारा काम जम जायेगा। कल शाम को वक्त निकाल सकती हो?..."

"कल...?"

"हां, कल!" दुबे बोला, "मैं समझता हूं, कल ही तुम्हें ले चलूं। तुम शाम को मेरे कमरे पर आ जाओ, साथ चल चलेंगे!"

नयना ने दुबे की आंखों में झांककर कुछ कुरेदती-सी नजरों से उसे देखा। दुबे ने फौरन आंखें चुरा लीं। कुछ कांपती-सी आवाज में बोला, "क्या नहीं आ सकती हो?"

"आ जाऊंगी!" नयना ने जवाब दिया।

"फिर तय रहा।" दुबे ने उत्साहपूर्वक बात आगे बढ़ायी, "मैं तुम्हारा इन्तजार करूंगा। शाम को सात बजे ठीक रहेगा ना?"

"ठीक है।" नयना ने एक मशीन की तरह जवाब दिया।

अब दोनों के बीच कोई बात शेष नहीं थी। कुछ देर वे एक-दूसरे के सामने चुप्पी की हालत में खड़े रहे। फिर नयना ने पहल की, "तो, मैं जाती हूं।"

"ठीक है।" दुबे बोला, "मैं कल तुम्हारा वेट करूंगा। ईश्वर ने चाहा तो मामला तय ही है!"

नयना ने कोई उत्तर नहीं दिया। चली गयी।

दुबे ने गहरी श्वास खींचकर सिगरेट जला ली। वह कुछ देर तक कश खींचता हुआ वहीं खड़ा-खड़ा सामने जाती हुई नयना को देखता रहा। लगता था, अजन्ता की कोई तराशी हुई प्रतिमा पैदल चली जा रही है। उसने रोशनी में नयना के गसे हुए अंग-प्रत्यंग को खूब नजरें भरकर देखा। कितना नशीला बदन है! वह खुश था, नयना ने उसके कमरे पर आना स्वीकार कर लिया है। कुछ क्षणों में ही जब वह आंखों से ओझल हो गयी, तो दुबे ने वह जगह छोड़ दी।

नयना दुबे के दिये हुए वक्त से कुछ पहले ही जा पहुंची, "अरे, तुम तो जल्दी आ गयीं!" कुछ हैरानी और हर्ष मिश्रित स्वर में दुबे ने दरवाजा खोला, "आओ! आओ!" वह उसे भीतर ले आया।

नयना सोफा चेयर पर आराम से जा बैठी।

"वहां नहीं।" दुबे बोला, "वहां।...पलंग पर। आराम से बैठो ना।"

नयना ने कोई जबाब नहीं दिया। उठी और पलंग पर जा बैठी।

दुबे ने कुछ परेशान होकर उसे देखा। लगा, जैसे कुछ अस्वाभाविक देख रहा है। नयना का ऐसा स्वभाव तो नहीं है। वह पिछले कई दिनों से देख रहा है उसे। बहुत संकोची और मासूम-सी लड़की है। हर बात में उसने खतरा अनुभव किया है, लज्जा ने उसे घेर लिया है। ऐसे कैसे अस्वाभाविक व्यवहार कर रही है?...

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ देर वह नयना की ओर देखता रहा। फिर उसके हर ख़याल को उपेक्षा के साथ घोंट दिया। वह उठा और दरवाजों की सिटकनी चढ़ा आया।

"मैं लेट सकती हूं ?" नयना मुसकरा रही थी।

"ऐं···?" दुबे चौंका। फिर संयत हो गया, "क्यों नहीं ? क्यों नहीं ?" उसने कहा। एक बार फिर आश्चर्य के ज्वार-भाटे में फंस गया वह। लगा, जैसे सामने वाली लड़की नयना नहीं, कोई और है। उसके पास कोई बात नहीं थी जिसे नयना से किया जाता। उसने जबरदस्ती बात प्रारम्भ की, "मैंने आहलूवालिया को फोन करके नौ बजे का टाइम ले लिया था। अभी तो बहुत देर है। हम लोग कुछ देर से चलें, तो तुम्हें एतराज तो नहीं ?"

"नहीं-नहीं।" नयना ने एक करवट बदली। साड़ी का निचला हिस्सा पिण्डलियों से काफी ऊंचाई तक उठ गया। दुबे ने देखा, थूक निगल लिया। उसकी सांस जोरों से चलने लगी। बात फिर चुक गयी थी। "एक मिनट।" कहकर वह भीतर चला आया। उसने अलमारी के पिछले हिस्से से रम की शीशी निकाली और दो घूंट ले लिये। नयना, उसकी उभरी हुई पिण्डलियां···दुबे स्वयं को अजीब कश्मकश में गिरफ्तार अनुभव कर रहा था। जब रम के चुभते हुए घूंट उसके गले से उतर गये, तो हर संकोच और ख़याल जल गया। उसने अनुभव किया, जैसे वह ताजा हो गया है। अब वह हिम्मत के साथ नयना के पास तक पहुंच सकेगा। उसने तमाम बदन में फुर्ती महसूस की।···वह गठा हुआ बदन ···मुलायम कलाइयां···अजन्ता की मूरत···।

दुबे कमरे में आया। अभी उसकी चाल स्वाभाविक थी। फिर भी एकाएक वह स्वयं में कुछ डर और नशा महसूस करने लगा था।···इस कमरे में कदम रखते ही उसे विचित्र-से डर ने घेर लिया। खासतौर से उस समय तो वह लगभग चीख ही पड़ा, जब उसने देखा, सामने के पलंग पर नयना निर्विकार भाव से लेटी हुई थी। उसकी साड़ी पलंग के नीचे पड़ी हुई थी और ब्रेसरी टेबिल पर रखी हुई थी।

दुबे ने आंखें फाड़कर उसे देखा। वह हक्का-बक्का रह गया।

"आओ !···" नयना ने उसी तरह सपाट चेहरे से एक धीमी आवाज उगली।

दुबे के पैर कांपने लगे। उसने नयना को इसीलिए बुलाया था पर यह सब इस अस्वाभाविक ढंग से होगा, इसकी कल्पना भी नहीं कर सकता था वह।

"मैं जानती थी, दुबेजी, यह होने वाला है।···मैं तैयार हूं।" नयना बगैर किसी संकोच या परेशानी के उठ बैठी, "पर मुझे चांस चाहिए। चांस···फिर इसमें बिगड़ता ही क्या है !···मां कसम ! इसमें कुछ नहीं बिगड़ता !···"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दुबे को लगा, गिर पड़ेगा वह। एकाएक चीख पड़ा, "नहीं-नहीं। मैं यह नहीं चाहता !···मैं यह नहीं चाहता ! ··ईश्वर के लिए तुम यहां से चली आओ ! ···आहलूवालिया से मेरी कोई बातचीत नहीं हुई है।···मैंने झूठ कहा था। मैं तुम्हारे लिए कुछ नहीं कर सकूंगा !···कुछ नहीं !" वह बात समाप्त कर फुर्ती से भीतर वाले कमरे में चला गया। उसने एक आवाज के साथ किवाड़ बन्द कर नयना वाले कमरे से रिश्ता तोड़ लिया और देर तक, उस समय तक तोड़े रहा जब तक कि उसने पहले कमरे से किसी के चले जाने के स्वर न सुन लिये।

१९६६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अस्तित्व-बोध

अभी-अभी उसका सबसे छोटा लड़का सामने से निकल गया है, इस तरह जैसे उसके सामने कुछ नहीं था। न चारपाई, न उस पर बैठा हुआ आदमी। उसने जरा भी गरदन नहीं मोड़ी, बिलकुल नहीं ठिठका, कमरे में घुसा और सीधा उस दूसरे दरवाजे तक पार कर गया। यह कल भी इसी तरह निकल गया था, रोज इसी तरह निकल जाता है। उसने एक गहरी, खूब गहरी सांस खींची और इस उपेक्षा को हमेशा की तरह घोटकर पी गया।

उसने तमाम बदन में टूटन महसूस की। वैसे बुढ़ापे ने उसे तोड़ दिया है और यह टूटन स्थायी होकर रह गयी है, फिर भी वह इसे महसूस तभी करता है जब सामने कोई ऐसी बात हो जो उसे याद दिला दे कि वह बूढ़ा हो चुका है। यह छोटा लड़का, जो किसी ऑफिस में साधारण-सी क्लर्की कर रहा है, बड़ी चुस्त पैण्ट पहनकर हर रोज सुबह, इसी तरह उसका बगैर नोटिस लिये, काम पर चला जाता है। उसके कदमों में गजब की फुर्ती होती है और चाल में तेजी। रामजीवन चारपाई पर बैठा-बैठा टूटने लगता है। क्या वाकई वह सिर्फ इस काबिल रह गया है कि चारपाई पर बैठा रहे—खामोश, एक बुत की तरह··· और उसे लगता है, उसे खामोश ही रहना चाहिए। वह उस चाल को नहीं पकड़ सकता, उस उम्र को नहीं ला सकता, वे उमंगें नहीं लौट सकतीं जो छोटे लड़के में हैं और एक लम्बे अरसे पहले उसमें थीं। वह सच्चाई जानता है, फिर भी न जाने क्यों इस खयाल से समझौता नहीं कर पाता। वह भीतर-ही-भीतर उबलने लगता है, क्रोध से उसके कमजोर शरीर में पीड़ा भर जाती है और एक चीख मुंह से निकलते-निकलते गले में ही अटकी रह जाती है—"मैं जिन्दा हूं !···क्या तुम नहीं देखते कि मैं जिन्दा हूं !···"

पिछले कई माहों से यह चीख उसके गले में अटकी हुई है। एक ऐसी याददाश्त की तरह जो याद होने के बावजूद मुंह से नहीं निकल पाती।

रामजीवन लगातार कुढ़न में जलता हुआ, बे-मन चारपाई से उठ पड़ता है। धीमे-धीमे कदमों वह बेसिन तक पहुंचकर हाथ-मुंह साफ करता है। ठोढ़ी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और गालों पर उसे खुरदुरापन लगता है, और उसे याद आता है, पिछले दो या शायद तीन दिनों से उसने दाढ़ी नहीं बनायी है। पहले, एक अरसे पहले, ऐसा नहीं होता था। रामजीवन अपनी दाढ़ी और पूरे चेहरे की साज-संभाल के प्रति बहुत खबरदार रहता था। हर सुबह के साथ ही लोग उससे मिलने आने लगते थे और फिर शाम तक यह सिलसिला खत्म नहीं हुआ करता था। वह उन दिनों की यादों से घिर गया।

तब इस शहर में कॉलेज अंगुलियों पर गिने जाते थे और वह डॉक्टर-जैसी कुर्सी पर बैठा हुआ रहता था। अकसर सभा-सोसायटियों में उसका आना-जाना होता रहता था और उसे शक्ल-सूरत, कपड़े-लत्ते हर चीज़ की ओर से एक खास किस्म की मुस्तैदी बरतनी पड़ती थी। तब उसे गिना जाता था। उसी तरह जैसे कॉलेज अंगुलियों पर गिने जाते थे। और अब···? रामजीवन चेहरे पर हाथ फिराते-फिराते जैसे चौंक पड़ा। अब···? कभी कोई कार्ड नहीं आता, कभी कोई मिलने नहीं आता। जो आते भी हैं, वे उसके बेटों से मिलने आते हैं। क्या उससे मिलने कोई नहीं आ सकता···?

वह बेसिन से हट आया। तौलिया से मुंह पोंछता हुआ पुनः चारपाई पर आ बैठा।···अब उससे मिलने कोई नहीं आता। उसे सुबह का वक्त काटने के लिए अखबार में सिर खपा देना ही होता है। कई-कई बार तो यहां तक होता है कि वह समाचार तो समाचार, विज्ञापन तक पढ़ता रहता है और वक्त है कि फिर भी नहीं कटता। उन दिनों उसे इतने काम रहा करते थे कि अखबार की हेड लाइन तक पढ़ने के लिए तरस जाता था वह।

उसने तौलिया किनारे रख दिया। चाय का इन्तजार करने लगा। अब कितनी लेट बनती है चाय? उसने सोचा, उन दिनों वह नियमित कामों से निपट भी न पाता था कि चाय आ जाती थी। वह झुंझला उठा।

"अरे भई, चाय लाओ!" न जाने कैसे वह बोल गया।

'कुछ रुको!" भीतर से जवाब फिंका, "बच्चे स्कूल जा रहे हैं। उन्हें तैयार हो जाने दो!"

रामजीवन का मन हुआ था, उसी तरह तीखी आवाज में जवाब दे, "आखिर मुझे भी तो चाय चाहिए!···बच्चे तैयार हो रहे हैं उससे क्या?···"

चीख फिर गले से बाहर आ जाने के लिए मचल उठी थी—"मैं जिन्दा हूं! क्या तुम नहीं देखते कि मैं जिन्दा हूं!" पर रामजीवन चुप ही रहा।

अब चाय आयेगी, पर तब आयेगी जब बच्चे चाय पी चुके होंगे और भगोनी में तलहटी की चाय बच रही होगी। रामजीवन ने सोचा, कई बार तलहटी की चाय में नीचे की पत्ती भी चली आती है। चाय भी ढंग से नहीं पिलायी जाती। बोझ हो गया है क्या वह? और इस ख़याल के साथ ही उसे लगा, वह बोझ है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छोटे बच्चे, बहुएं, लड़के, यहां तक कि शायद उसकी पत्नी भी उसे बोझ ही समझते हैं। उसकी हर जरूरत घर में किसी एक्स्ट्रा काम की तरह महसूस की जाती है। रोजाना के काम के बाहर ही शायद उसकी जरूरतें गिनी जाती हैं और जिस तरह उपेक्षा के भाव से उन्हें पूरी करने की कोशिश की जाती है, वह खूब समझता है।

उसे एक और दिन का खयाल आया। कैसा अजीब-सा व्यवहार किया गया था उस दिन ! दाढ़ी बनाने के लिए ब्लेड मांगा था उसने। ब्लेड नहीं था। उसने छोटे लड़के से कहा था, "एक ब्लेड ला दो !···" और लड़के ने जवाब दिया था, "एक जरूरी काम से जा रहा हूं। कल ला दूंगा।" रामजीवन ने उसे बतलाया था, "मेरी पांच रोज की दाढ़ी बढ़ आयी है।"

"एक दिन और सही।" बड़े लापरवाह ढ़ंग से लड़का बोला, "कल बना लीजिएगा।"

वह खीझ उठा था। उसने कुछ ऊंचे स्वर में कहा था, मुझे बुरा लगता है। "पांच मिनट लगेंगे। तुम जाते-जाते सामने वाली किसी दूकान से खरीदकर देते जाना !"

लड़के ने उसकी झल्लाहट को तनिक भी महत्त्व नहीं दिया, "जहां मुझे जाना है, बहुत लेट हो रहा हूं। कल जरूर ब्लेड ला दूंगा !"

"पर···" उसने फिर कुछ कहना चाहा था।

"आपको कहां जाना है ?' लड़के ने उसकी बात अधूरी ही रहने दी थी। "सारे दिन घर ही तो रहते हैं आप !" वह चला गया था और रामजीवन देर तक पांच दिन की बढ़ी हुई दाढ़ी पर हथेली फिराता घुटता रहा था। क्या इसी दिन के लिए बच्चों को पाल-पोसकर बड़ा किया जाता है कि वे लाचारी की उमर को और लाचार कर दें। उस दिन उसका मन हुआ था, वह दाढ़ी बढ़ी रहने दे।··· खूब बढ़ जाने दे। इतनी कि उसके सीने से नीचे तक लटकने लगे। पर दूसरे दिन जब लड़का ब्लेड ले आया तो चाहकर भी वह अपना निर्णय नहीं निबाह पाया। उसने कांपते हाथों दाढ़ी बना ली थी। उसने कभी दाढ़ी नहीं बढ़ायी। कैसा अजीब-सा लगता है, जैसे चेहरे पर कुछ चिपका रखा हो।

उस दिन शायद पहली बार उसने महसूस किया था जैसे वह अनस्तित्व है। उसे कोई नहीं गिनता और बरबस ही वह आत्मा की गहराइयों तक एक जानी-अनजानी घुटन में घिर गया था। घर-बाहर सभी तरफ, जैसे वह, उसकी मौजूदगी, कहीं नहीं है। अगर होती तो लोग उससे मिलने आते, वह बाहर जाता। किसी सभा-सोसायटी में उसकी प्रतीक्षा की जाती। उसे उन दिनों की रह-रहकर याद हो आती है। ढेरों लोग हुआ करते थे जो उससे मिलने आते थे। वह उनके साथ फुर्तीली चाल से बाहर जाया करता था। कई बार यहां तक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होता था कि अगर किसी मीटिंग में वह नहीं जाता था तो दूसरे दिन उसे मालूम होता था कि वहां किस तरह उसकी जरूरत अनुभव की गयी थी, लोगों में चर्चा रही थी, 'डॉ० रामजीवन नहीं आये···!···तबीयत तो ठीक है ?···वह आते, तो मजा आता !···'

चाय आ गयी थी। सूखी चाय। रामजीवन ने माथे पर झुर्रियां घनी कर उसे देखा। क्या बिस्किट या नमकीन कुछ नहीं होगा इसके साथ ? शायद वह कह भी देता, पर रुक गया। उसने कुछ नहीं कहा। कुछ दिनों तक सूखी चाय पर ऐतराज किया करता था। असल में कभी उसने सूखी चाय नहीं पी, पर अब पी रहा है। उसे ख़याल है, कभी ऐतराज कर भी देगा तो जवाब मिलेगा, "आने-जाने वालों के लिए थोड़ा बहुत रखा हुआ है। घर में तो वैसे भी काम चलाया जा सकता है !"···फिर क्या कहेगा रामजीवन ? उसे सूखी चाय ही पीनी पड़ेगी। फिर सबसे बड़ी बात तो यह है कि वह कुछ भी नहीं मांगना चाहता। उसने घर में कभी कोई चीज़ नहीं मांगी। उसका अस्तित्व है, सभी लोग महसूस करते रहे थे पर शायद अब महसूस नहीं करते। क्या उसे मांगकर बतलाना चाहिए कि वह जिन्दा है !···उसे देखा जाये कि वह जिन्दा है !···

रामजीवन ने प्याली उठायी। उसकी आंखें अपनी कलाई पर जा ठहरीं। गोरा तो नहीं है वह पर गेहुंआ रंग है उसका। हथेली के आस-पास से मांस लटकने लगा है और इस मांस में से उसकी नसें और हड्डियों का उतार-चढ़ाव नजर आने लगा है। कैसा शरीर हो गया है उसका ! बरबस ही प्याली मुंह तक ले जाते-ले जाते उसकी नजरें दीवार पर टंगे हुए एक पुराने चित्र पर जा ठहरीं। मुश्किल से बीस साल पुरानी तसवीर होगी उसकी। ठोढ़ी पर हाथ टिकाये वह कुछ सोचता हुआ दीखता है उसमें। कलाई कितनी सुडौल थी उन दिनों··· कलाई ही क्या ? लोग कहते थे, 'रामजीवन का सारा व्यक्तित्व ही इतना प्रभावशाली है कि वह जहां हो वहां छाकर रह जाता है···' और अब ?··· रामजीवन ने जैसे चाय का घूंट नहीं लिया, कोई तीखा कसैला जहर पी गया। अब कभी वह कहीं नहीं छाता। पहले अनजाने ही वह छा जाता था और अब चाहे भी तो नहीं छा सकता।

"टिर्र् !···टिर्···!" एक कर्कश ध्वनि।

"हां, हां।···आते हैं, भई !···कौन है ?" उसने प्याली की चाय वैसी ही रहने दी। ब-मुश्किल उठा। दरवाजा खोला।

"कहिए ?" उसने सीधा और कुछ चुभने वाला सवाल किया।

"चन्दर बाबू हैं ?" सामने वाले ने कहा।

"नहीं, वे बाहर गये हैं।"

"कब तक आयेंगे ?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"कुछ कहा नहीं जा सकता।"

"खैर, कोई बात नहीं," सामने वाला बोला, "जब वे आ जायें तो कह दीजिएगा, कुमार बाबू आये थे।" वह वापस हो गया।

"ऊंह !"···एक झटके के साथ रामजीवन ने दरवाजा उढ़का दिया—"चले आते हैं !" वह बुदबुदाता हुआ चारपाई पर आ बैठा। प्याली की चाय ठंडी हो चुकी थी पर वह पीने लगा। उसे उस आने वाले पर क्रोध आया। कमबख्त !··· दिन में न जाने कितने आते हैं इस तरह और हर आदमी को जवाब देना पड़ता है उसे।···और फिर बरबस ही वह फिर किसी नयी उलझन में फंस गया।

पहले भी लोग आते थे—इसी तरह। वे पूछते थे, 'रामजीवन जी हैं ?···' उसने दरवाजे की ओर सूखी आंखों से देखा। अब उसे पूछने कोई नहीं आता। क्या इतना गैर-जरूरी है वह ?···नहीं, नहीं। ऐसा नहीं है। उसने धीरज लिया-दिया। नहीं आता है कोई उसके पास, तो न आये ! इससे रामजीवन का क्या बनता-बिगड़ता है ! इसका मतलब यह तो है नहीं कि रामजीवन है ही नहीं।

रामजीवन को गये दिन की याद हो आयी। तीन आदमी थे। इसी तरह घंटी बजायी थी उन्होंने और रामजीवन को दरवाजा खोलना पड़ा था।

"कहिए ?" उसने हमेशा की तरह एक रटा-रटाया-सा सवाल किया था।

"चन्दर बाबू नहीं हैं ?" उनमें से किसी एक ने पूछा था।

"जी हां, नहीं हैं। कब तक आयेंगे, यह भी नहीं बतला गये हैं। जब आयेंगे तो कह दूंगा—आप आये थे। आपका नाम क्या है ?" रामजीवन ने एक साथ उन्हें सारी जानकारी दे दी थी। वह जानता है, लोग इसी किस्म के सवाल करते हैं। और सारे दिन उसे इसी तरह जवाब देना पड़ता है।

आने वाले तीनों व्यक्ति रामजीवन के इस व्यवहार से कुछ सकपका गये। एक ने गले का थूक निगला, कहा "जब चन्दर बाबू आयें तो कह दीजिएगा, अनाथालय वाले ब्रह्मचारी जी आये थे। अच्छा, नमस्कार !" वे लौट गये।

जाते-जाते उन तीनों में से किसी ने फुसफुसाकर रामजीवन के बारे में पूछा था, "कौन हैं ये ?"

"चन्दर बाबू के पिताजी !" उनमें से किसी ने जवाब दिया था।

रामजीवन ने कुछ कुढ़ते हुए दरवाजा बन्द कर लिया था। उसने उन लोगों की बातचीत सुन ली थी और उस बातचीत को लेकर न जाने कब तक घुटता रहा था। अब उसे लोग इस नाते जानते हैं कि वह चन्दर का पिता है। इसके अलावा शायद कुछ नहीं है। चन्दर से अलग उसका अपना कोई अस्तित्व नहीं है···। अस्तित्व···? क्या सचमुच उसका अपना कोई अस्तित्व नहीं है ?

वे अनाथालय वाले थे। रामजीवन को याद आया और फिर हमेशा की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तरह किसी अनजानी कुण्ठा में घिर गया वह। बहुत पहले ऐसे ही अनाथालय या और-और संस्थाओं वाले उसके इर्द-गिर्द चक्कर लगाते थे, उसे ढूंढ़ते थे। रामजीवन उन्हें चन्दा देता था। अब वे चन्दर को खोज रहे हैं, रामजीवन नाम की किसी चीज़ की उन्हें जानकारी ही नहीं है···

और रामजीवन को लगा, वह कहीं है ही नहीं। होता तो क्या जिन्दगी इतनी खामोश होती ? खामोशी का मतलब है— मौत। खामोशी मरघट में हुआ करती है।

उसने अपने ठीक सामने रखे चाय के प्याले की ओर देखा—रीत गया है। और अब उसे उसका सामने रखा रहना भी खलने लगा है। कहीं रामजीवन भी इसी तरह किसी को खल तो नहीं रहा ?···न जाने कैसे वह उस रीते प्याले से खुद को तौलने लगा और जैसे-जैसे उसने यह तौल की, उसे लगा, वह प्याला अपने रीतेपन के बावजूद रामजीवन से कहीं अधिक कीमती है। रामजीवन दोबारा अपना विगत नहीं ला सकता पर यह प्याला चाय से दोबारा-तिबारा और कई-कई बार भरा जा सकता है।

उसने एक गहरी सांस खींची-छोड़ी। कितनी अजीब बात है। एक आदमी पत्थर से सस्ता हो गया है। और सिर्फ सस्ता ही क्या, अस्तित्वहीन हो गया है उसके सामने।

एक बार मन हुआ था रामजीवन का, चीख पड़े— खूब जोर से···इतनी जोर से कि सारा घर-मोहल्ला सुन ले। वह एक आदमी है, जिन्दा है···पर, रामजीवन ऐसे कैसे चिल्ला सकता है ?

फिर लोगों को मालूम कैसे हो कि एक आदमी है रामजीवन !···वह जिन्दा है···!···उसका अस्तित्व है !···

"पर, बिलावजह वह कैसे चीख सकता है ?" रामजीवन खुद से जवाब-सवाल करने लगा।

"क्यों नहीं चीख सकता ? वह जिन्दा है। और चूंकि वह जिन्दा है इसलिए चीखता है।"

हिश्श !···रामजीवन ने सोचा, लोग कहेंगे, वह पागल है !···ये चीखना···?

नहीं-नहीं ! उसे चीखना चाहिए ! उसने दूसरी करवट सोचना जारी रखा, भले वह पागल ही क्यों न समझा जाये। भले कोई कहे कि वह गलत है। उसे चीखना चाहिए; ताकि लोगों को मालूम हो कि एक आदमी है और उसका नाम रामजीवन है !···उसका अस्तित्व है !···लोगों को मालूम होना चाहिए।

और इस बोध के साथ ही रामजीवन खुश हुआ। उसे लगा, वह है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उस तमाम दिन वह खुश था। एक रास्ता मिल गया है जिसके जरिये वह यह जतला सकता है कि वह है। चन्दर ऑफिस से लौटा तो बूढ़े रामजीवन ने कमरे में पैर रखते ही जानकारी दी, "वह कुमार बाबू आये थे सुबह।"

"अच्छा!" चन्दर ने व्यग्रतापूर्ण उत्साह के साथ पूछा, "क्या कह रहे थे?"

"कुछ नहीं।" रामजीवन ने जवाब दिया, "आये, तुम्हें पूछा और जैसे ही मैंने बतलाया कि तुम नहीं हो, दरवाजे से ही लौट गये!"

"हैं···?" चन्दर अवाक् रह गया, "आपने उन्हें कमरे में भी नहीं आने दिया?···वे मेरे नये मैनेजर होने जा रहे हैं।"

चन्दर की बात अधूरी रह गयी। रामजीवन चीख पड़ा, "क्या समझता है तू मुझे?···मैं तेरा नौकर हूं क्या?···" आवेश में वह मुट्ठियां भींचता हुआ चारपाई से उठ खड़ा हुआ, "बहुत दिनों से बर्दाश्त कर रहा हूं। तुम लोग कुछ गिनते ही नहीं?···"

"पर···" चन्दर घबरा गया। रामजीवन को क्या हो गया है। वह हैरानी के साथ उसका चेहरा देखे जा रहा था।

रामजीवन ने कुछ नहीं सुना—"क्या समझते हो मुझे? यह घर मेरा है! ···इसे मैंने बनवाया था। मालूम है, पूरे पचास हजार खर्च किये थे···अभी चाहूं तो तीन मिनट में तुम सब को सड़क पर खड़ा कर सकता हूं!···" वह बोलते-बोलते हांफने लगा।

"पर मैंने तो अभी कुछ भी नहीं कहा···" चन्दर घिघियाने लगा था।

रामजीवन की पत्नी, बहुएं, नाती—सभी कमरे में घिर आये और सहमे हुए एक ओर खड़े रह गये। रामजीवन अब भी पहले की तरह चीख रहा था, "तुम समझते हो, मैं कुछ देखता-जानता ही नहीं हूं?···मैं सब समझता हूं, सब देखता···"

चन्दर अब भी हैरान उसे देखे जा रहा था। रामजीवन ने चीखना, गालियां उगलना जारी रखा तो वह सिर झुकाकर भीतर वाले कमरे में चला गया। पीछे-पीछे घर के अन्य लोग गये।

"कुछ समझते ही नहीं हैं?" रामजीवन अब भी बुदबुदा रहा था, "तीन मिनट में घर से निकाल बाहर करूंगा!···" वह चारपाई पर बैठ गया और जब उसने पाया कि उसे कोई उत्तर नहीं मिला है तो वह खुश हुआ। चीखते-चीखते वह थक गया था, फिर भी न जाने कैसे वह अपने बूढ़े जिस्म में एक खास किस्म की फुर्ती महसूस कर रहा था। उसे लगा, उसकी हर सांस के साथ एक धीमी-सी आवाज आती है—वह है···!···वह है!···वह है!···

१९६५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मोम की सुरक्षा दीवार

बहल को लगा था, वह किसी पराये मकान में बैठा हुआ है।

हर शाम की तरह आज भी बहल को कोहली का आना झेलना पड़ा था। वह आया था, दरवाजे में प्रवेश करते ही एक बेशर्म मुसकराहट के साथ उसने बहल से कुशल-क्षेम ली और भीतर चला गया था।

"ठीक हूं।" बहल ने मशीनी ढंग से जवाब दिया था और दूसरे ही क्षण उसे महसूस हुआ, जैसे यह उसकी अपनी आवाज़ नहीं है। फिर उसे लगा, यह घर भी उसका अपना नहीं है। बड़े बेगानेपन के भाव से उसने अपना कमरा और उसमें बिखरा हुआ सामान देखा—घड़ी, रेडियो, सोफा, वह पलंग जिस पर बहल बैठा हुआ है···कुछ भी उसका अपना नहीं है।

इस घड़ी में वह नियमित रूप से चाबी भरता था, रेडियो के कुछेक प्रोग्राम नियमित रूप से सुनता था। सोफे का हर हिस्सा उसका जाना-पहचाना था, फिर भी उसे लगा, जैसे ये सब उससे बहुत दूर की चीज़ें हैं, किसी पराये घर की। इस सब के साथ ही कोई चीख उठा था बहल के भीतर से, 'यह सब बहल का है! उसकी अपनी खून-पसीने की कमाई का है! रसीदें गवाह हैं!'

'नहीं!' कोई जवाब चीख के नजदीक ही उठता है, 'रसीदें मन की गवाह नहीं हुआ करतीं। यह सब पराया है! बिलकुल पराया!'

'नहीं, नहीं।' पहली चीख जैसे घिघियाने लगती है, 'ऐसा मत कहो, यह सब मेरा अपना है।'

दूसरी चीख उपेक्षा की एक दबी-सी हंसी हंसती है, 'बेवकूफ! कुछ नहीं है तेरा। होता, तो कोहली इस तरह भीतर न चला जाता!'

और बहल को मानना पड़ा था, दूसरी चीख सही है शायद। उसका अपना कुछ नहीं है। होता, तो कोहली इस तरह भीतर नहीं जा सकता था।

कोहली भीतर चला गया। रोज आता है और इसी तरह भीतर चला जाता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। और बहल हमेशा इसी तरह चुपचाप बैठा रहता है। इस चुप्पी के दौरान वह किसी शोर में घिरा होता है। चीखें दिमाग को नुकीले भालों की तरह छेदने लगती हैं और सुबह तक···तब तक, जब तक कि कोहली चला नहीं जाता, वे इसी तरह छेदती रहती हैं। एक के बाद एक सवाल उठते हैं और कानों के परदे चीखते हुए दिमाग पर बरसने लगते हैं।

'कौन होता है कोहली ?'

'···!'

'वह कैसे भीतर चला जाता है ?'

'···!'

'क्या बहल उसे रोक नहीं सकता ?'

'···!'

'आखिर यह घर बहल का है !'

'···!'

'यह सब कुछ···घर, फर्नीचर, बच्चे और प्रभजोत···!'

'···!'

हर जवाब खाली, इस तरह जैसे प्रश्न न हों। पर प्रश्न हैं। हर शाम के साथ ये सवाल एक शोर बनकर बहल के दिमाग को घेर लेते हैं और बहल है कि हर बार उत्तरों से खाली रहता है। कई बरस हो गये, यह शोर अब भी जिन्दा है और बहल के जवाब मुरदा हैं !

पर न जाने कैसे आज कौंध गया था बहल। उसका मन हुआ था, पलंग से उठे और कोहली को बांह पकड़कर रोक ले। उससे पूछे, तू कौन है मेरा ?···घर में भीतर तक कैसे चला जाता है ?···आखिर यह घर मेरा है···यह सब कुछ—घर, फर्नीचर, बच्चे और प्रभजोत···!' उसकी बांह पकड़कर मोड़ दे, इस तरह कि वह पुराने टूटे हुए, जंग खाये तार की तरह टुकड़े-टुकड़े होकर गिर पड़े। आखिर समझता क्या है कोहली ?

पर कुछ नहीं कर सका था बहल। कौंध जिस तरह उठी थी, डूब गयी थी। ऐसे में कई बार कौंधता था बहल और यह कौंध पिछले कई बरस से इसी तरह उठती थी, डूब जाती थी। किसी बार, कुछ भी नहीं कर सका था वह।

क्यों नहीं कर सका था वह ?

बहल के पास कोई जवाब नहीं है। यों जवाब ढूंढ़ना ही चाहे तो कह सकता है, वह नहीं चाहता, घर में कलह हो। पर शायद यह अच्छा और समाधानकर जवाब नहीं है। होता, तो बहल को पिछले कुछ वर्ष इस तरह कौंधते और घुटते हुए न काट देने होते। बर्दाश्त की भी एक हद होती है। कोहली गये कई सालों से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसके सीने पर घाव बनकर रखा हुआ है और बहल है कि उसे लगातार बर्दाश्त किये जा रहा है। क्या सिर्फ इसीलिए कि वह नहीं चाहता, घर में कलह हो।

और इस ख़याल के साथ ही बहल को लगा, जैसे वजह यही नहीं है—कुछ और है। कुछ···? यह कुछ क्या हो सकता है? जैसे बहल के भीतर उसके अतिरिक्त कोई और भी है जो कई सालों से लगातार जवाबतलब कर रहा है। कई बार वह ऐसे-ऐसे सवाल उठा देता है कि बहल अपने आप पर झल्ला उठता है। इस भीतर वाले ने उसे कभी सवालों से खाली नहीं छोड़ा। हर बार, हर सांस के साथ वह उसे कुरेदता ही रहा है। आज भी कुरेद रहा था। कुछ···? यह कुछ क्या हो सकता है?

कहीं वह नामर्द···नहीं, नहीं! बहल कांप उठा। मन हुआ, रो दे। ऐसा नहीं है···ऐसा बिलकुल नहीं है!

फिर यह चुप्पी···पांच सालों से उठती और डूबती रही कौंध···यह दबी हुई चीख···कुरेदन गहरी होती चली गयी थी, और बहल हर बार निरुत्तर हो रहा था।

सोते-जागते वह हर क्षण इस कौंध को महसूस करता था। और इसके साथ ही जुड़ी हुई ढेर-सी घटनाएं क्रमवार उसके दिमाग में घुस आयी थीं।

आज भी वह घिर गया था उन घटनाओं से। कितनी ताजा हैं सब—जैसे अभी, बिलकुल अभी घटी हों।

उसे याद आया, उस दिन भी कोहली इसी तरह आया था···वह मनहूस दिन।···बहल ने दांत भींच लिये। वह उस दिन को कभी नहीं भूल सकता। पांच साल पुराना वह दुर्भाग्यशाली दिन, जब पहली बार कोहली ने इस देहरी को लांघा था।···बहल खुद ही ले आया था उसे।

प्रभजोत भीतर वाले कमरे में थी।

बहल ने कोहली के कंधे पर हाथ रखे हुए घर में प्रवेश किया था। "प्रभजोत! ···ओ प्रभजोत···!" वह घर में आते ही उसे पुकारने लगा था, "देख तो सही कौन आया है?···" और प्रभजोत के आते-न-आते उसने उसी तरह चीखकर बतलाया था, "कोहली आया है। अपना जुगिन्दर···।"

उसने कोहली को आराम से बैठने के लिए कहा था। वह उस दिन कितना भला लग रहा था जैसे अभी-अभी पैदा हुआ है। मासूम···उस बच्चे की तरह, जो पूरी तरह मां या आया की मर्जी पर निर्भर होता है।

बहल ने एक सिगरेट सुलगा ली थी। कोहली कमरे में इधर-उधर नजरें घुमाता रहा था। बहल ने उससे घर-बाहर के समाचार पूछने शुरू कर दिये थे, "चाचा कैसे हैं?···चाची···? उनकी गठिया का इलाज चल रहा है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न ?…"

कोहली ने क्रमवार उत्तर दे दिये थे।

बहल कुछ और पूछे इससे पूर्व ही प्रभजोत आ गयी थी। उसने पहले बहल को और फिर कोहली को देखा था।

बहल हंसा। "हैरान मत हो," उसने कहा, "जुगिन्दर काम पर आया है। मेहमानी करने नहीं आया।"

प्रभजोत मुसकरा दी। बहल को याद है प्रभजोत की वह मुसकराहट…ऐसे, जैसे पहली बार किसी ने छुआ हो उसे।

कोहली कुछ झेंपा-सा कभी उसे और कभी बहल को देख लेता। बहल ने अपने पहले संवाद को स्पष्ट किया था, "मेरा मतलब है, जुगिन्दर, दिल्ली में मेहमानी करना अखर जाता है और तुम तो जानते ही हो…ऐसे शहर में मेहमानों की कमी नहीं रहती ! प्रभजोत तो खातिर करते-करते थक गयी है, इसीलिए बात साफ कर दी मैंने !"

बात समझ में आयी तो कोहली हंस दिया था, वही झेंपी-झेंपी-सी हंसी।… आज सोचता है तो विश्वास नहीं कर पाता है बहल। क्या सचमुच वह हंसी कोहली की ही थी ?

थोड़ी देर बाद प्रभजोत भीतर चली गयी थी।

कोहली और बहल इधर-उधर की बातचीत करने लगे थे। बहल ने प्रस्ताव किया था, "मकान कहीं किराये पर लेने का मतलब है कम-से-कम एक कमरे का पचास रुपया। तुम मेरे साथ ही क्यों नहीं रहते ? यह मकान कुल साठ रुपये का है। बाथरूम, लैटरीन सब कुछ ! दिल्ली में इससे सस्ता मकान मिल ही नहीं सकता। तुम चाहो तो किराये का तीसरा हिस्सा दे सकते हो !"

"पर तुम डिस्टर्ब हो जाओगे !" कोहली ने कुछ असमंजस में पड़कर कहा था।

बहल से भूल हो गई थी एक। क्यों नहीं उस दिन वह चुप हो गया था ? बात यहीं खत्म हो जाती। पर उसने कहा था, "डिस्टर्ब क्या होऊंगा ? मैं हूं, प्रभजोत है और बिल्ली है। बस। यह मकान ढाई आदमियों के लिए बहुत बड़ा है। तुम्हारे रहने से कोई फर्क नहीं पड़ेगा।"

"मगर…"

"मगर-वगर क्या ?" बहल बोला, "इसमें मेरा स्वार्थ भी है। कई-कई दिनों के लिए बाहर जाना होता है। ये लोग अकेले रहते हैं। तुम रहोगे तो मैं निश्चिन्त रहा करूंगा।"

कोहली चुप हो गया था।

बहल ने कहा था, "बस, फाइनल हुआ। तुम आज ही अपना सामान यहां ले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आओ।"

कोहली फिर चुप हो गया था। जाहिर था, उसने बहल के साथ रहना स्वीकार कर लिया है। उस दिन वे खाने के बाद बातों में उलझे रहे थे। बहल प्रभजोत को हंस-हंसकर उन दिनों के कोहली के साथ वाले संस्मरण सुनाता रहा था, जब वे दोनों एक साथ पढ़ा करते थे। किस तरह कॉलेज की लड़कियों को छेड़ा करते थे ··अध्यापकों को तंग करते थे···।

प्रभजोत उस दिन बहुत कम बोली थी। बहल को जब-जब उन दिनों की याद आती है, वह हैरान हो जाता है। प्रभजोत उन दिनों कितना कम बोला करती थी? कोहली के घर में आ जाने के बावजूद वह कई दिनों तक खुलकर उससे बोली तक न थी। यहां तक कि अगर भूले-भटके अण्डरवियर पहने कोहली आंगन में प्रभजोत की मौजूदगी में निकल जाता, तो वह करीब-करीब भागती हुई रसोई में समा जाया करती थी। बहल को चिढ़ होती थी। यह क्या बात है? उसे यह दकियानूसी पसन्द नहीं है। उसने एक बार उसे टोक भी दिया था। कोहली के काम पर चले जाने के बाद उसने प्रभजोत से कहा था, 'तू इस कदर झेंपती क्यों है? वह कोई पराया नहीं है।···मेरा बचपन का दोस्त है। सोलह-सत्तरह साल तक साथ रहा है हमारा···।"

बहल को ख़याल आती है प्रभजोत की उस दिन वाली चुप्पी। वह जवाब में कुछ न कहकर कुछ कुरेदती आंखों से बहल की ओर देखने लगी थी जैसे उसका यह प्रस्ताव उसे पसन्द नहीं आया है।

"नहीं, नहीं!" मिनमिनाकर बहल ने कहा था, "यह मुझे बिलकुल पसन्द नहीं। कोहली मेरा जिगरी दोस्त है। उसे यह महसूस नहीं होना चाहिए कि वह पराये घर में रह रहा है। तू समझती नहीं है, तेरे झेंपूपन से वह हमेशा यह अहसास करता रहेगा कि वह पराये घर में रह रहा है।"

प्रभजोत चुप रही थी। संकोच को ऐसे कैसे किनारे कर दे? आखिर कोहली पराया ही है। अभी, कल ही अण्डरवियर पहने वह पानी पीने के लिए रसोई में चला आया था और अनचाहे ही प्रभजोत की आंखें उसकी नंगी जांघों से तैरती ऊपर तक चली गयी थीं। लगा था, जैसे प्रभजोत की जांघों पर किसी ने अंगुलियां डाल दी हैं। अजीब-सी गुदगुदी और सकुचाहट उसके तमाम जिस्म और मन में घुल गयी थी।

बहल ने उसे चेतावनी दे दी थी, "नहीं, अब अगर कभी मैंने देखा कि तू उसे परायेपन का अहसास दिलाती है तो···तो···" आगे कुछ नहीं कह सका था बहल। क्या करेगा वह···?···कुछ नहीं कर सकेगा। क्या कर सकता है?

"जो भी हो, तुझे उससे परायापन नहीं रखना चाहिए!" बहल ने बात खत्म

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर दी थी।

इस तरह बहल ने खुद ही कोहली और प्रभजोत के बीच वाले परदे हटा दिये थे। फिर क्यों तिलमिलाता, कौंधता है वह ?

और बहल इस याद के साथ ही खुद को कोसने लगता है। अगर उस दिन वह खुद जिद न करता तो शायद···पर, अपनापन जतलाने की भी कुछ सीमाएं हुआ करती हैं। प्रभजोत उस दिन के बाद किस तरह बदल गयी थी···! बहल ने उससे जो कुछ कहा था उसका मतलब यह तो नहीं था कि प्रभजोत अपने कपड़े उतार फेंके। बेशर्म ! उसने दांत भींचकर मन-ही-मन प्रभजोत के नाम पर एक गन्दी गाली सोची।

बिलकुल नंगी हो गयी थी वह। उसने कोहली और बहल के बीच जैसे फर्क करना ही छोड़ दिया था। बहल को याद है, यही गरमियों के दिन थे। वह ऑफिस से लौटा, तो उसने देखा, प्रभजोत और कोहली इसी कमरे में सीलिंग फैन खोले हुए एक बिस्तरे पर लेटे गपशप में मशगूल थे। उनके बीच बहुत थोड़ा फासला था। ऐसा कि नहीं के बराबर। वे कपड़ा पहने हुए थे, उनके चेहरे एक-दूसरे से दूर थे, फिर भी बहल को लगा था जैसे उनके बीच कोई दूरी नहीं है। उस दिन पहली बार यह कौंध उठी थी बहल के मन में जो अब स्थायी होकर रह गई है। वह उस तमाम रात सो नहीं सका था। हर बार उसे लगता, जैसे उसके सामने ही चिपके हुए हैं···उनके जिस्म पर कोई कपड़ा नहीं है···सब कुछ साफ···ऐसे ही जैसे कांच की दीवार के पार की चीज़ साफ होती है।

पहली कौंध उठी थी बहल के मन में। कितना कुछ सोच डाला था उसने। वह कोहली को बांह से पकड़कर घर से बाहर उछाल देगा···प्रभजोत के बाल पकड़कर उसे झिंझोड़ डालेगा, पर कुछ नहीं कर सका था वह।···उसने खुद ही तो कहा है प्रभजोत से, कोहली को परायापन नहीं लगना चाहिए।

कोहली को प्रभजोत ने बिलकुल पराया नहीं रहने दिया। उसने उसे इस कदर अपना लिया था कि बहल को लगने लगा, जैसे वह पराया है। उसे एक और दिन का खयाल आया। तीन दिन बाद लौटा था वह घर। उसे दौरे पर जाना पड़ा था। उम्मीद थी, एक सप्ताह लग जायेगा। पर वह जल्दी ही लौट आया था। रात थी। घर में कदम रखते ही बहल सिटपिटाया-सा खड़ा रह गया था।

आंगन का दरवाजा शायद भूल से प्रभजोत ने खुला छोड़ दिया था। बहल ने खटखटाने के लिए जैसे ही हाथ लगाया था कि पल्ले खुल गये थे। बहल ने फिर आवाज लगाने की जरूरत ही नहीं समझी थी, वह सीधा चला गया था।

आंगन पार करते हुए एक क्षण के लिए एक झुरझुरी हुई थी उसके दिमाग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में—कितनी बेवकूफ औरत है प्रभजोत !···न सिर्फ दरवाजा खुला छोड़कर सो गयी बल्कि कमरे की लाइट भी बन्द नहीं की उसने। वह कमरे में आ गया था··· अवाक्···हैरान ! उसके दिमाग ने सोचना बन्द कर दिया।

आज कांच की दीवार भी टूट गयी थी। प्रभजोत और जुगिन्दर निर्वस्त्र होकर एक-दूसरे से लिपटे हुए थे। वे उसे इस तरह यकायक सामने पाकर इतना घबरा गये थे कि उठ भी न सके। बहल ने एक क्षण के लिए सोचा था, यह सही नहीं है। वह उस आंख-देखे पर भी अविश्वास करना चाहता था पर लाचार हो गया था वह। जो सही था, उसे मानना पड़ा था। वह लौटकर आंगन में आ खड़ा हुआ था। उसके सारे शरीर में खून की रफ्तार तेज हो गयी थी। वह बेचैनी से हथेलियां मसलने लगा था। उसके सिर में अजीब-सा हड़कम्प पैदा हो गया था। समझ नहीं पा रहा था, क्या करे ?

प्रभजोत और जुगिन्दर अब तक भीतर वाले कमरे में सम्हल गये थे। वे कपड़े पहनकर आंगन में आ गये, तो बहल भीतर चला गया। उस रात जुगिन्दर कहीं और चला गया था। शायद किसी दोस्त के यहां सोया होगा वह। प्रभजोत अपने कमरे में चली आयी थी। बहल चुपचाप लाइट बन्द कर लेटा रहा था। उसने जबरदस्ती सोने की कोशिश की थी। पर हर कोशिश बेकार हुई थी। कितनी ही बार उसका मन हुआ था, प्रभजोत के कमरे में पहुंचे, उसके चेहरे पर कई-कई तमाचे जड़े, पर हर बार वह इस खयाल को घोंट गया था। प्रभजोत को तमाचे जड़ने से क्या होगा ?···यह मोहल्ला···रात का वक्त···एक शोर बरपा हो जायेगा सब तरफ ! फिर कौन-सा जवाब है बहल के पास ? क्या उन्हें यह बतला पायेगा वह कि प्रभजोत और जुगिन्दर—नहीं, नहीं ! बहल ऐसा नहीं कर सकता। उसकी भी सामाजिक सीमाएं हैं आखिर।

बहल उस रात नहीं सोया था। फिर कई रातों तक नहीं सोया था, और फिर एक दिन नींद ने लाचार कर दिया था उसे। वह सो गया था। कितना मन था, न सोये। वह जागे, जागता रहे और मर जाये। अब वह किसी रिश्ते, किसी सम्बन्ध को आंखें मूंदकर नहीं देखना चाहता। पर नींद भी कितनी बेशर्म होती है ? वह लगातार उपेक्षा के बावजूद उसकी आंखों में घिर आयी थी।

"सुरेन्दर !···ऐ···ऐ···ऐ सुरेन्दर !" कोहली भीतर, रसोई वाले कमरे से पुकार रहा था।

कितना चाहा था बहल ने, जवाब न दे। पर बोल उससे अलग किसी और शक्ति द्वारा संचालित होते हैं। उसने कहा था, "अभी आता हूं।" और यह कहने के साथ ही उसे लगा था, जैसे वह इस घर में मेहमान है। उसे खुद पर झल्लाहट हुई, फिर एकदम उसे पुरानी कौंध ने घेर लिया था। "कमीना !" बुदबुदाकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसने कोहली के नाम पर एक गाली वसीयत कर दी, 'बेशर्म !···जलील···!'

उस दिन सरासर चोरी पकड़े जाने के बावजूद वह फिर बहल के यहां आ गया था। बहल कुछ नहीं बोला था शायद, इसलिए···! नहीं, नहीं। बहल ने सोचा। कोहली न आता पर शायद प्रभजोत ने बुलाया होगा उसे। बहल ने अन्दाजा किया। उसने कहा होगा, "सुरेन्दर मुरदा है। वह कुछ नहीं कहता।" ···और कोहली फिर आ गया था उसके घर। कुछ दिनों वे तीनों एक-दूसरे से कतराते रहे थे, फिर यह कतराहट बेशर्मी बन गयी।

"पर बहल मुरदा नहीं है!" चीख पड़ना चाहता था वह, पर हमेशा की तरह घुट गया।···यह मोहल्ला···उसके परिचित लोग···एक क्षण में भीड़ इकट्ठी हो जायेगी! फिर क्या कहेगा वह?···कैसे बतलायेगा, क्यों चीख रहा है?

शायद इसीलिए वह बरसों घुटन पीता रहा है और मजा यह है कि शोर न हो, भीड़ न जुड़े, फिर भी उसके हर परिचित, मिलने-जुलने वाले की आंखें सवाल करती हैं।

बाहर जाकर किसी पड़ोस में वह ठीक से उठ-बैठ नहीं सकता। इर्द-गिर्द उभरी हर हंसी जैसे उसके चेहरे पर कुछ अंगारे फेंक जाती है। हर सवाल आंखों पर तिरता हुआ तीखी, नुकीली धार वाले हथियार की तरह उसे चुभने लगता है। पांच बरस हो गये। जिन्दगी एक खास शक्ल में ढलकर रह गयी है। यह कमरा···इसके चारों ओर खड़ी दीवारें और बहल···काम पर जाता हुआ बहल, वहां से लौटता हुआ बहल और फिर यह कमरा।

अब से पांच साल पहले कोहली नहीं मिला था, जैसे जनमकैद की सजा मिली थी। जिन्दा रहा, इसलिए कि मरने का साहस नहीं और मरता रहा, इसलिए कि जिन्दा रहने का दम नहीं।

एक बार मन हुआ था सुरेन्दर बहल का कि आत्महत्या कर ले। कैसे करे? ···रेल···नदी पर पुल···सड़क पर दौड़ती बस···जहर···नींद की गोलियां···? उसने हर रास्ते को देखा-पहचाना, पर जब-जब उस पर चलने का इरादा किया, किसी चीज़ ने उसे पीछे खींच लिया था। शायद प्रभजोत···बिल्ली···अब वह जवान होने जा रही है—उसकी बेटी। या शायद बहल के भीतर बैठा हुआ कमजोर आदमी। वह आत्महत्या नहीं कर सकता!···

एक बार प्रभजोत या कोहली में से किसी की हत्या कर डालना आसान है, पर आत्महत्या!···बहल कई कदम हट आया ख़यालों से। आत्महत्या, हत्या से कई सौ गुना साहस का काम है और उसमें तो हत्या करने तक का साहस नहीं है।

वह आत्महत्या नहीं कर सका था। चाहा था पर हो नहीं पाया था।

भीतर, रसोई वाले कमरे से प्रभजोत और जुगिन्दर की संयुक्त हंसी के स्वर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आ रहे थे। बहल फिर गाली देना चाहता था, पर मन मसोसकर रह गया। वह उठा और करीब-करीब लड़खड़ाती चाल में भीतर आ गया।

अंगीठी से रोटियां उतार रही थी प्रभजोत और जुगिन्दर नजदीक बैठा चुटकुलेबाजी कर रहा था। एक क्षण ठिठके रहकर सुरेन्दर बहल उन दोनों को देखता रहा। उसे लगा, वे दोनों पति-पत्नी हैं। उन्होंने उसका कोई नोटिस नहीं लिया है। बिलकुल औपचारिक ढंग से जुगिन्दर बोला था, "सुरेन्दर, खाना खा लो!"

"अयं···हां-हां!" बहल बाथरूम में हाथ धोने चला गया। लौटा तब तक प्रभजोत ने थाली परोस दी थी। बहल आ बैठा। सुरेन्दर भी खाना खा रहा था पर उसके खाने और सुरेन्दर के खाने में बहुत फर्क था। वह बीच-बीच में प्रभजोत से बात करता जाता था। बहल एक मशीन की तरह मुंह चलाता रहा था। बीच-बीच में जब उन दोनों की बातचीत में उसे सहयोग की जरूरत पड़ी थी, तो उसने हां-हूं की थी।

वह जल्दी ही खाना खाकर निपट गया। इन दिनों वह कम खाने लगा था। उसे कोई बीमारी नहीं थी, भूख खुलकर लगती थी। इसके बावजूद वह खा नहीं पाता था। क्यों नहीं खा पाता, यह वह खुद नहीं जानता।

वह थाली छोड़कर उठा, तो प्रभजोत ने आश्चर्य व्यक्त किया, "बस?"

"हां, बस।" बहल हाथ धोने चला गया। प्रभजोत ने आगे कुछ नहीं पूछा। बहल हर रोज़ इसी तरह अधभूखा उठता था और प्रभजोत उससे यही सवाल करती थी। वह जवाब दे देता था और बात खत्म हो जाती थी।

वे दोनों फिर बातें करने लगे थे। बाथरूम से लौटते में कुछ क्षण रुके रहकर बहल उन दोनों की बातें सुनना चाहता था, पर नहीं रुक सका। न जाने क्या सोचेंगे वे? वह उनसे डरने लगा है। जब-जब प्रभजोत और जुगिन्दर बातचीत कर रहे होते हैं, वह उनके बीच नहीं पहुंचता—ऐसे, जैसे पराया आदमी हो वह। कभी-कभी उसे लगता है, जैसे यह कितनी अजीब बात है कि वह दोनों से कतराता है पर फिर भी कतराना जारी रखता है। असल में वह उनके किसी नंगेपन को नहीं देखना चाहता। बर्दाश्त नहीं होगा उससे। पिछली घटनाएं ही इतनी हैं, जिन्हें वह भूल नहीं सका है और वे उसके माथे पर वजनी चीज़ की तरह बार-बार टकराती रहती हैं।

बहल कमरे में आ बैठा। उसने एक सिगरेट सुलगा ली और धुआं फेफड़ों तक खींच लिया। खांसी का पहला, दूसरा और तीसरा धसका उठा और फिर देर तक खांसी जारी रही। उसे लगता है, शायद दमा हो गया है। वह खांसता है तो देर तक खांसता ही रहता है और जब खांसी थम जाती है तो वह हांफने लगता है। किसी दिन इसी तरह खांसी उठेगी और वह फिर हांफने का मौका भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं पायेगा। कितना अच्छा होगा वह दिन ! बहल ने सोचा, तो खुश हुआ। उसे इस तरह की मौत पसन्द है। अनजाने ही मर जाना।

वह और भी सोचता पर कोहली के आने से उसकी विचारतन्द्रा भंग हो गयी।

वह कोई फिल्मी गीत गुनगुना रहा था। उसने तौलिया से हाथ-मुंह पोंछे और फिर चारपाई पर जा बैठा।

बहल सिगरेट धौंकता हुआ उसकी ओर बुझी-बुझी आंखों से देखता रहा।

कोहली ने बिस्तरे पर दो-तीन बार हथेलियां फिरायीं और लेट गया। उसने एक-दो करवटें लीं और बहल से सवाल किया, "तुम्हारे ऑफिस में एक काम करवाना है, करवा सकते हो ?"

बहल उससे नहीं बोलना चाहता पर उसने पूछा, "क्या ?"

"कुछ खास नहीं। एक दोस्त है, उसकी पेंशन फाइल रुकी पड़ी है। अगर आगे चलवा दी जाए, तो कार्रवाई पूरी हो जायेगी !"

बहल कहना चाहता था, 'मैं कुछ नहीं कर सकता।' पर इच्छा से अलग वह कुछ और बोला, "किसी दिन वक्त निकालकर उन्हें मेरे पास लेकर आना, देख लूंगा।"

"ठीक है। मंगलवार को लेकर आऊंगा।" कोहली ने कहा और करवट ले ली।

बहल को खुद पर क्रोध आया। वह कोहली से बात करना तो दूर, उसकी शक्ल तक नहीं देखना चाहता; पर जब-जब बात होती है वह उससे बोलने लगता है। उसी ढंग से, जैसे पांच साल पहले बोला करता था। शायद वह डरता है उससे !

"नहीं-नहीं !" वह बुदबुदाने लगा।

कोहली ने करवट ली, "भाभी !···"

"हरामी···!" बहल ने गाली चबाकर थूक निगल लिया। 'रिश्तों को बदनाम करता है स्साला !···भाभी ? प्रभजोत अब भी इसकी भाभी है !'

प्रभजोत आ गयी, "क्या ?"

बहल लहकती निगाह से उन दोनों को घूरता रहा।

"मेरा पानी···!" कोहली कह रहा था। उसे रात को पानी पीने की आदत है। प्रभजोत रोजाना उसके लिए एक लोटा पानी चारपाई के नीचे रख दिया करती है।

"अभी ला देती हूं। इतनी जल्दी भी क्या है ?" प्रभजोत कह रही थी, "अभी थोड़े ही मैं सोने जा रही हूं। रसोई साफ कर लूं जरा।" वह वापस चली गयी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोहली करवट बदलकर फिर गुनगुनाने लगा था। बहल कुछ देर उसे घूरता रहा। फिर ख़यालों में खो गया।

प्रभजोत कह रही थी कि अभी थोड़े ही मैं सोने जा रही हूं। बहल ने उपेक्षा के भाव से सोचा। जैसे यह सोने चली जायेगी तो कोहली से इसका रिश्ता टूट जायेगा। बदमाश कहीं की! उसे एक दिन की घटना याद हो आयी। उस दिन भी वे दोनों इसी तरह की बातें कर रहे थे और फिर जब लाइट बुझा दी गयी तो देर तक बहल सो नहीं सका था। पर कोहली ने समझा था, बहल सो गया है। वह उठा था और भीतर···प्रभजोत वाले कमरे में चला गया था।···और इस याद के साथ ही बहल को लगा, जैसे कोहली बिस्तर से उठ रहा है···वह प्रभजोत वाले कमरे में चला गया है।

कोहली सो गया था। बहल को विश्वास नहीं हुआ। हालांकि सामने वाले बिस्तरे से खर्राटों के स्वर आने लगे थे। बहुत चालाक है कोहली। बहाने बना रहा होगा, एक गाली के साथ बहल ने सोचा। प्रभजोत उसकी चारपाई के नीचे पानी का भरा लोटा रखने आयी थी।

"तुम नहीं सोये अब तक?" उसने पूछा।

"नहीं।" एक जमुहाई खींचकर बहल ने जवाब दिया।

प्रभजोत लौट रही थी पर रुक गयी, "अरे, हां, बिल्ली के हिस्से वाला दूध रखा है। ले आऊं?"

बहल कहना चाहता था, 'नहीं, मैं नहीं पीऊंगा।' पर न जाने क्या हो गया है उसे। चलने-फिरने, सोचने-समझने, हर मामले में बहुत ढीला हो गया है वह। वह फौरन जवाब नहीं दे पाया तो प्रभजोत उसकी चुप्पी को स्वीकृति मानकर दूध लेने चली गयी। बिल्ली, उसकी बेटी, इन दिनों मामा के यहां गयी हुई है। उसके हिस्से का दूध आजकल बहल पीता है।

प्रभजोत दूध-भरा गिलास ले आयी। उसने बगैर कुछ कहे उसे बहल की ओर बढ़ा दिया।

बहल ने मशीन की तरह हाथ आगे बढ़ाकर गिलास ले लिया। एक बार उसने प्रभजोत की ओर देखा, फिर गिलास के दूध की ओर। पूछना चाहता था, 'क्या है इसमें?'

"जल्दी पिओ।" प्रभजोत कह रही थी, "मुझे बरतन मांजने हैं।"

बहल ने गिलास होंठों से लगाया। उसे याद आया, कुछ दिन हुए अखबार में एक खबर पढ़ी थी उसने। एक बीवी ने अपने शौहर को रात के दूध के साथ जहर पिला दिया था। वह किसी पड़ोसी से इश्क करने लगी थी।··· बहल का हाथ कांपा। उसने कुछ भयातुर प्रभजोत की ओर देखा, फिर सामने सो रहे कोहली की ओर, और अन्त में दूध के गिलास की ओर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"क्या सोच रहे हो ?" प्रभजोत कह रही थी, "जल्दी करो।"

बहल बहुत कुछ पूछना चाहता था, पर कुछ नहीं पूछ सका। यह मुमकिन ही नहीं हुआ। उसने दूध गले में उड़ल लिया।

खाली गिलास लेकर प्रभजोत भीतर चली गयी।

बहल लेट गया। वह खबर अब भी उसके दिमाग से नहीं हटी थी। इसी तरह मुमकिन है प्रभजोत किसी दिन उसे जहर पिला दे। उसे लगा, जैसे अंतड़ियों के पास कुछ ऐंठन हो रही है और मन मितलियां खाने लगा है।···कहीं प्रभजोत ने भी···वह दूध···बहल ने शरीर में एक सिहरन अनुभव की। उसे लगने लगा था जैसे आज के दूध में कुछ था। कै करने की इच्छा हो रही है उसकी। वह तड़पकर उठ पड़ा बिस्तरे से। भीतर चला गया।

प्रभजोत बरतन रगड़ रही थी। बहल उसके सामने आ खड़ा हुआ। वह पूछना चाहता था, 'आज के दूध में क्या था ?'

प्रभजोत ने आश्चर्यपूर्वक उसकी ओर देखा। क्या चाहता है वह ?

आखिर कैसे पूछा जा सकता है कि दूध में क्या था ? बहल बार-बार अपने भीतर पैदा हुए सवाल को धकेलता हुआ मुंह से बाहर लाने की कोशिश करता रहा पर वह सवाल है कि जाम होकर रह गया है।

"क्या है ? तुम सोये नहीं अब तक ?" प्रभजोत पूछ रही थी।

"हूं ?" बहल जैसे चौंक गया, "हां-हां, सोता हूं।" वह लौट आया। बिस्तरे पर लेट गया। उसे अब भी लग रहा था, जैसे अंतड़ियां खिचने लगी हैं और मन मितलियां खा रहा है। खबर अब भी दिमाग में थी। वह थोड़ी देर बिस्तरे पर करवटें बदलता रहा, फिर सो गया।

अपना काम पूरा कर प्रभजोत देखने आयी थी, बहल सोया है या नहीं। वह गहरी नींद में था। प्रभजोत अपने कमरे में चली आयी। उसे लग रहा था जैसे अभी बहल जागेगा और उसके सामने आ खड़ा होगा। उसकी बुझी और थकी नजरें प्रभजोत को चेहरे से पैरों तक घूरेंगी और वह चुपचाप खड़ा रहेगा, इस तरह जैसे कुछ पूछना चाहता हो।

अभी-अभी जब वह बरतन रगड़ रही थी, बहल उसके सामने इसी तरह आ खड़ा हुआ था। कई बार वह इसी तरह आ खड़ा होता है। प्रभजोत को लगता है, वह कुछ पूछेगा, पर बहल किसी बार कुछ नहीं पूछता। कुछ देर वह टकटकी बांधे उसे देखता रहता है, वापस चला जाता है और प्रभजोत घुटकर रह जाती है।

ऐसे मौके पर जब बहल उसके पास या सामने होता, प्रभजोत के मन में ढेरों सवाल जनम आते। वे सब बहल के मुंह से आने वाले। एक वजनी और जबरदस्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ईंट की तरह एक दिन वे बहल के मुंह से बाहर आ गिरेंगे उस पर।

'मैं बहुत बर्दाश्त कर चुका हूं ! अब नहीं होता !' बहल कहेगा। प्रभजोत निरुत्तर हो जायेगी।

'आखिर तू समझती क्या है मुझे ? मैं तेरी बोटी-बोटी काट फेंकूंगा ! कमीनी !'

प्रभजोत सहम जायेगी। वह भयभीत आंखें बहल के चेहरे पर गड़ा देगी, जैसे कह रही हो, 'मुझसे गलती हुई है, माफ कर दो मुझे।'

'बेईमान !' बहल चीखेगा। फिर झपटकर प्रभजोत को कंधों से झकझोर डालेगा। उसके मुंह पर तड़ातड़ तमाचे बरसायेगा। कई गालियां बकेगा।

प्रभजोत रोयेगी। उसकी हिलकियां बंध जायेंगी। वह उसके पैरों पर गिर पड़ेगी। 'मुझसे गलती हुई है ! मैंने पाप किया है ! पर···पर मुझे माफ कर दो !'

बहल नहीं थमेगा। तब तक नहीं थमेगा, जब तक पीटते-पीटते थक न जाये।

पर किसी बार ऐसा नहीं हुआ था और प्रभजोत के मन का संशय हर बार उफान की तरह बैठ गया था। ऐसे हर मौके पर वह दो विपरीत प्रतिक्रियाएं अनुभव करती थी। एक ओर उसे लगता था, जैसे अच्छा ही हुआ है। दूसरे ही क्षण वह कुछ खालीपन अनुभव करती। उसे महसूस होता, जैसे उसके इर्द-गिर्द कोई सुरक्षा दीवार नहीं है। क्या इसी तरह कोहली या कोई और उसके पास तक पहुंच सकता है ? कभी-कभी उसे बहल पर खीझ आने लगती। आखिर क्यों नहीं कहता कुछ ?···वह उसके कंधे पकड़े, झकझोर डाले और उसके गालों पर लगातार तमाचे जड़े। इस जोर से कि चीख पड़े प्रभजोत।

उसे ख़याल आया। उस दिन बुखार आ गया था उसे। डॉक्टर बुलाया गया था और वह एक इंजेक्शन देकर लौट गया था। कुछ गोलियां भी दी थीं उसने। प्रभजोत इसी कमरे में पड़ी रही थी। उसका शरीर तप रहा था, जैसे कड़कड़ी धूप में बालू तप गयी हो। वह अर्द्धनिद्रित अवस्था में थी।

बहल अपने कमरे में सो रहा था। आधी रात के करीब वह उसके कमरे में आया था। प्रभजोत ने जीरो के बल्ब की रोशनी में साफ-साफ देखा था, वह एक क्षण तक चुपचाप खड़ा उसे देखता रहा था, फिर उसके नजदीक झुका था।

प्रभजोत का मन हुआ था, चीख पड़े। न जाने क्या करने वाला है बहल···? कुछ दिनों से उसे लगने लगा था, बहल के मन में एक समुद्र कैद है और किसी दिन उसमें ज्वार उठेगा और वह फट पड़ेगा। वह प्रभजोत की गरदन दबा देगा या उसके सीने में छुरियां मार देगा। उसे लगा था, बहल कुछ करने वाला है। पर इस भय के बावजूद वह कुछ नहीं बोल सकी थी। उसने आधी उठी पलकों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से देखा था, बहल उसकी ओर हाथ बढ़ा रहा था।

अभी उसकी अंगुलियां प्रभजोत की गरदन जकड़ लेंगी·· उनकी कसन बढ़ती जायेगी···प्रभजोत बिस्तरे पर छटपटाने लगेगी और फिर खामोश हो जायेगी···!

वह खामोश पड़ी रही थी। सहमी, डरी हुई, पर उस सबके अलग कुछ खुश।···बहल उसकी गरदन पकड़ ले···उसकी अंगुलियां सख्त होकर कस जायें···

बहल का हाथ हौले से उसके गले और फिर सीने पर आया था। वह बुखार देख रहा था उसका। एक क्षण चिन्तित मुद्रा में उसे देखते रहने के बाद वह वापस चला गया था।

प्रभजोत का मन हुआ था, रो दे। बहल उसे कितना चाहता है— कितना··· और एक वह है कि कोहली के हाथों खुद को इस तरह सौंप चुकी है, जैसे बहल को पहचानती ही न थी वह!

उसने बेचैनी में कई करवटें बदल लीं।

कमरे में जीरो के बल्ब की रोशनी फैली हुई थी। प्रभजोत निरुद्देश्य इधर-उधर नजरें दौड़ाती रही। नींद पलकों पर रखी हुई है पर उतरती ही नहीं।

"भाभी!" एक डूबता-सा स्वर गूंजा।

प्रभजोत ने जवाब में सामने देखा। कोहली था। वह मुसकराता हुआ उसके नजदीक झुक आया, "बहल सो गया है। खूब गहरी नींद!" वह फुसफुसा रहा था।

एक क्षण तक टकटकी बांधे उसे देखती रही प्रभजोत। आज उसे देखने में एक अजनबीपन का भाव था।

"भाभी···ई···ई···ई···" कुछ कामुकता के साथ कोहली ने शब्द भींचे और उसकी बांह पकड़ ली, "आज तुम बहुत अच्छी लग रही हो!"

प्रभजोत ने थूक निगल लिया। उसे न जाने क्यों कोहली पर क्रोध आने लगा। इसी ने उसे डुबाया है···उसने क्षण भर में बहल को उसके पास रखकर तोल दिया···एक यह है···भाभी शब्द के साथ पाप उगलने वाला और एक बहल···एक बार कहा था उसने, कोहली मेरा जिगरी दोस्त है। उसे यह नहीं लगना चाहिए कि पराये घर में रह रहा है!···वह अपनी जगह से हिली नहीं। आग्नेय दृष्टि से कोहली की ओर देखती रही।

कोहली ने उसकी बांह में कुछ ढीलापन अनुभव किया। उसे लगा, जैसे प्रभजोत के शरीर में उत्साह नहीं है। वह किसी मोम के खिलौने पर हाथ रखे हुए है। कुछ निराश स्वर में उसने सवाल किया, "तुम्हारी तबीयत तो ठीक है, भाभी?···तुम···"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोहली की बात अधूरी रह गयी। प्रभजोत ने दूसरे हाथ से धकेलकर उसे पीछे कर दिया।

कोहली इस अप्रत्याशित स्थिति के लिए कतई तैयार न था। वह सम्हल भी नहीं सका। उसका सिर एक ओर रखी सिलाई की मशीन से जा टकराया और माथे से रक्त की धार बह पड़ी।

"क्या हुआ···क्या बात है···?" हड़बड़ाहट में वह ठीक से बोल भी न पा रहा था।

"कुछ नहीं।" शान्त भाव से प्रभजोत उठ खड़ी हुई। उसने कुछ जलती निगाहों से कोहली की ओर देखा, "कुछ नहीं हुआ। तुम्हें अब इस घर से चले जाना होगा!···बस।"

"पर···" कोहली हैरान था।

"बाहर जाओ!" प्रभजोत ने बगैर विचलित हुए कहा तो रक्त की चेहरे पर बह आयी पतली-सी लकीर पोंछता हुआ कोहली गरदन झुकाये हुए बाहर चला गया।

प्रभजोत ने अनुभव किया, जैसे पलकों पर टंगी नींद नीचे उतरने लगी है पर तभी बाहर के कमरे से कुछ स्वर उभरने लगे और सहज उत्सुकतावश वह बाहर चली आयी।

कोहली ने सिर पर रूमाल बांध रखा था और वह अपना सामान जमा रहा था। बहल जाग गया था। कोहली ने जल्दी ही सामान लगा लिया और बगैर किसी से कुछ कहे-सुने, बाहर चला गया। प्रभजोत उसके पीछे-पीछे जाकर दरवाजे की कुण्डी चढ़ा आयी। लौटी तो देखा, बहल मुसकरा रहा था। उसे उसका इस तरह मुसकराना बड़ा अजीब लगा।

"मैं उससे कभी कुछ नहीं कह सकता था।" बहल बोला, "अच्छा हुआ तू खुद उबल पड़ी, वरना सच मान, मैं उससे कभी कुछ नहीं कहता!···मैं तुझे प्यार करता हूं और हर शर्त पर सिर्फ तुझे खुश देखना चाहता हूं!···" बात समाप्त कर वह भरी-भरी आंखों से देखता रहा···देखता रहा।

१९६६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बैसाखी

जया आज नीली साड़ी पहनकर गयी है···

उदासी में डूबी आंखों पर कई-कई बार पलकें झपकाकर कुलवन्ती ने याद किया और कंपाउण्ड में आ गयी।

उसने कलाई-घड़ी पर एक नजर डाली, पांच बज चुके हैं। जया का कॉलेज छूटता है साढ़े चार पर। बीस मिनट से ज्यादा का रास्ता नहीं है। उसने सोचा और कम्पाउण्ड की जर्जर किवाड़ी के सहारे आ खड़ी हुई, जो ठीक उसी तरह उदास और बुझी हुई-सी दीखती थी। यों कुलवन्ती का शरीर जर्जर नहीं था, पर वक्त पर ज़िंदगी की रौनक न रहने से जर्जर-सा दीखने लगा था। उम्र से फर्क नहीं पड़ता—भले एक जवान औरत हो या नया फर्नीचर। साज-सम्हाल न हों तो दोनों पुराने लगने लगते हैं।

कुलवन्ती अपनी हमशक्ल किवाड़ी पर कोहनियां टिकाए हुए सड़क पर दूर-दूर तक नजरें घुमाती रही। यह सड़क दोपहर में जितनी खामोश रहती है, शाम को उतने ही शोरगुल से भर जाती है। स्कूल, कॉलेज, ऑफिस, सिनेमा का मैटिनी शो सभी—एक के बाद एक—कुछ मिनटों के फर्क से छूटते हैं और रात में देर तक शोर-शराबा होता रहता है। कितनी ही बार जया ने कहा है, "यह मकान बदल लो। उधर शक्तिनगर में काफी फ्लैट खाली पड़े हुए हैं—ज्यादा आमद-रफ्त भी नहीं है। कम-से-कम इस शोर से तो फुरसत मिलेगी···" और हर बार कुलवन्ती गुमसुम रह गयी है।

एक बार तो जया झल्ला ही पड़ी थी, "तुम्हें न जाने कौन-सा लगाव है इन पत्थरों से? डेढ़ सौ तकलीफें हैं। दोनों तरफ की सड़कों पर सुबह-शाम शोर होता है। न मैं पढ़ ही पाती हूं, न चैन से सोना होता है। तुम खुद भी परेशान हो रही हो, पर न जाने क्यों इस मकान से चिपकी रहना चाहती हो!"

हमेशा की तरह कुलवन्ती चुप रही थी। उसकी चुप्पी से जया और चिढ़ी थी। उसने काम में व्यस्त कुलवन्ती का रास्ता आ रोका था, "अच्छा बताओ, तुम यह घर क्यों नहीं छोड़ना चाहतीं?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुलवन्ती रास्ता बदलकर हट गयी।

जया और झल्लायी। उसने चिल्लाकर कहा, "क्यों नहीं छोड़ना चाहतीं यह मकान ? यहां क्या सहूलियतें हैं ? मेरा कॉलेज दूर, आटे की चक्की दूर, सिनेमा-घर दूर, अस्पताल दूर ! कुछ भी तो नहीं है।"

कुलवन्ती फिर भी चुप रही थी। वह जया के मुंह नहीं लगना चाहती। जवान लड़की है। उसकी जिद कुलवन्ती को पसन्द नहीं है। वह अकसर जया के स्वभाव के बारे में सोचती थी और हर बार मन मसोस लेती थी। चेहरा-मोहरा सब कुछ कुलवन्ती जैसा है, पर स्वभाव बिलकुल बाप जैसा। और जब-जब उसे यह ख़याल आया, वह कांप उठी थी। कहीं जया भी···! उसका स्वभाव बिलकुल बाप जैसा है। कोई पुरानी याद कुलवन्ती के सीने में घाव बनकर कसमसाने लगती है और ब-मुश्किल वह खुद को संभाल पाती है। एक बार तो वह भी भड़क उठी थी जया पर।

"और मकानों में क्या सहूलियतें हैं ?" उसने चिल्लाकर पूछा था, "क्यों छोड़ दूं यह मकान ?" बीच में उसने जया की ओर देखा था। शायद वह कड़वाहट अनुभव कर रही है। उसने स्वर धीमा कर दिया—समझौते की आवाज में बोली, "हर बड़े शहर में यही होता है। हम जहां रह रहे हैं, वहीं ठीक हैं !" यह कहते हुए कुलवन्ती ने महसूस किया था जैसे वह जया को बहला रही है। उससे छिपा रही है कुछ। उसे लगा था, जैसे उसने चोरी की है। वह यह मकान नहीं छोड़ना चाहती, इसलिए नहीं कि बड़े शहर में जहां रह रही है—वह ठीक है—बल्कि इस मकान से उसे कुछ खास लगाव है। कैसा है, क्यों है, यह शायद वह खुद भी नहीं जानती।

वह उसी तरह कोहनियां चौखट पर टिकाये सड़क की ओर देखती रही। बीस मिनट से अधिक का रास्ता नहीं है और अब तो पांच से ज्यादा वक्त हो गया है। न जाने कहां रह गयी जया ? कई बार बस नहीं मिलती है। कंडक्टर ज्यादा भीड़ देखकर स्टॉप से कुछ आगे ही गाड़ी रुकवा लेता है ताकि उतरने वाली सवारियां तो उतर जायें पर चढ़ने वाली रह जायें। पांच से ज्यादा वक्त हो जाये तो कुल-वन्ती को चिन्ता होने लगती है। जया छोटी नहीं है। छोटी थी तब कुलवन्ती खुद उसे स्कूल तक छोड़ने जाती थी—लेने जाती थी। सड़कों पर इतना असंयत ट्रैफिक होता है कि पलक मारते ज़िंदगी और मौत का फैसला हो जाये। ट्रकवाले बिलकुल आंख मूंदकर ट्रक दौड़ाते हैं। कानून बना हुआ है कि शहर में पांच मील से ज्यादा रफ्तार से मोटर मत चलाओ, पर कानून किताबों में रहते हैं—मोटरें सड़कों पर। कोई किसी को नहीं पूछता-टोकता। कुलवन्ती इन मोटरवालों से बहुत डरती है। वैसे उसे कभी कोई खतरनाक अनुभव नहीं हुआ, फिर भी वह डरती है। क्यों डरती है, यह वह नहीं जानती। कभी-कभी उसे लगता है जैसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डर उसकी ज़िंदगी और ख़यालों के हर कोने में समा गया है। कभी-कभी वह जया से ही डरती है। जया किसी नयी साड़ी की फ़रमाइश करे तो कुलवन्ती को डर लगता है। वह पड़ोस के किसी स्टूडेण्ट से किताब मांगे तो कुलवन्ती को डर लगता है। मकान बदलने का प्रस्ताव सामने आये तो कुलवन्ती को डर लगता है। क्यों?···कई बार उसने सोचा है, धीरज बांधा है—वह व्यर्थ ही डरती है। फिर भी डर कायम है और उसी तरह हर क्षण उसके पास रहता है, जिस तरह विश्वास रहना चाहिए।

अब तक तो जया को आ जाना चाहिए था!

कुलवंती डरी। साढ़े पांच हुए जाते हैं। सामनेवाली दुकानों पर रंग-बिरंगी रोशनियां खिल उठी हैं। कुलवंती के मन का डर दुगुना हो जाता है। जया पैदल भी चली होती तो अब तक आ जाती। कुलवन्ती सड़क पर किसी नीली साड़ी की तलाश करती है। छरहरे बदन की आकृति, झुकी हुई गर्दन, हाथ में कुछ किताबें···इन दुकानों पर रोशनियां इतनी जल्दी होती हैं कि लोग बेकार को ही डरने लगें। रात हो रही है। समझ में नहीं आता इतनी जल्दी लाइट क्यों जला देते हैं ये लोग?

कुलवन्ती ने भीत-दृष्टि सामने की दुकानों पर सिलसिलेवार दौड़ा दी। उसे लगा जैसे दुकानों पर चमकती रोशनी उसे धमकी दे रही है, डरा रही है, रात हो गई है और जया अब तक नहीं आयी?

कुलवन्ती ने एक बार फिर कलाईघड़ी देखनी चाही। धुंधलका गहराने लगा था और घड़ी के छोटे-छोटे कांटे उसमें डूब गये थे। उसने बेचैनी से कंपाउण्ड के इर्द-गिर्द देखा। पड़ोस के एक घर का बरामदा मरक्युरी रोशनी में डूबा था। कुछ बच्चे थे जो शोर करते हुए खेल रहे थे। दूसरे घर में अब तक लाइट नहीं जली थी, हालांकि वह शाम के अंधेरे में करीब-करीब डूब चुका था।

क्या सचमुच इतनी रात हो गयी है, जितनी कुलवन्ती महसूस कर रही है? जया कहां रह गयी? कुलवन्ती ने कोहनियां चौखट से हटा लीं। देर तक एक ही ढंग से टिकी रहने के कारण उनके नीचे का मांस जलने लगा था। उसने बेसब्री से उन जगहों को मसला।

उसने घर की ओर मुड़ने से पूर्व एक बार फिर सड़क पर पुतलियां घुमायीं जो अब रोशनी में उभर आयी थीं···कोई नीली साड़ी···छरहरा बदन···उसने ढूंढ़ने की कोशिश की।

उसे स्वयं कॉलेज जाकर तलाश करना होगा। पर, इस समय वहां कौन होगा और इत्तफाक से अगर कोई हुआ भी तो हजारों लड़कियों की गिनती में जया को ही पहचानने वाला कोई मिल जाये, यह जरूरी नहीं है।

एक बार पहले भी इसी तरह जया को देर हो गयी थी और कुलवन्ती आज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही की तरह घबरा गयी थी। हालांकि बाद में उसका डर और वे ढेर-से संदेह बेकार निकले थे जिन्हें उसने कुछ ही मिनटों के बीच दिमाग में बुन लिया था। जया आयी थी और कुलवन्ती का हर संदेह टूट गया था। उस दिन कॉलेज में कोई मंत्री आ गया था और उसके भाषण में लड़के-लड़कियों को रुक जाना पड़ा था।

उस दिन कुलवन्ती ने जया को डांट दिया था, "इस तरह पहले से ख़बर किये बगैर कहीं रुका मत कर, मैं डर जाती हूं।" उसने पूरी बात करीब-करीब रूठने के 'टोन' में कही थी।

जया हंस पड़ी।

अजीब लड़की है! हिम्मत नहीं, यह एक किस्म की ढीठता है। कुलवन्ती को यह सब बिलकुल पसन्द नहीं। उसने मन को ढाढ़स देने की कोशिश की थी—चुप रह गयी थी।

शायद आज भी कोई मंत्री-वंत्री आ गया होगा। इन लोगों के कहीं आने-जाने का कोई वक्त तो होता नहीं? सरकारी कारें पास में होती हैं। जी चाहे तो कहीं मुआयना करने जायें, जी चाहे तो ससुराल के गांव का 'विजिट प्रोग्राम' बना लें।

जो भी हो, जया को इतनी देर कहीं नहीं रुकना चाहिए—भले मंत्री आये या प्रधानमंत्री। अजीब वक्त आया है, कुलवन्ती खीझने लगी। लड़के हों या लड़कियां—बीस साल क्या पार कर लेते हैं, समझते हैं हम दुनिया के सबसे ज्यादा बुद्धिमान आदमी हैं।

उस दिन जया रुकी तो थी पर इतनी देर तक नहीं। कुलवन्ती का डर फिर घना हो गया। उसे कॉलेज तक जाना ही पड़ेगा। वह फुर्ती से मुड़ी और आंखों पर काफी जोर देती हुई—अंदाज से अंधेरा पार करती, घर में आ गयी। उसने लाइट का 'स्विच' ऑन किया। साड़ी बदली और ताला-चाबी लेकर बरामदे में आ गयी।

"मां!"

कुलवन्ती ने पीछे मुड़कर देखा।

जया आ गयी थी।

"तुम कहीं जा रही हो?" जया ने आगे बढ़कर अधखुले दरवाजे से भीतर प्रवेश किया।

कुलवन्ती को बहुत क्रोध आया। इच्छा हुई जया को जोर से डांट दे। उसकी कोई सफाई न सुने। यहां तक कह दे, "अगर तेरा यही हाल रहा तो कॉलेज जाना बन्द कर दूंगी!" पर यह सब उसने सिर्फ सोचा—कहा कुछ भी नहीं। कितनी बड़ी हो गयी है जया! बिलकुल उसी के बराबर लंबी। उसकी पलकों पर लाज का बोझ चढ़ गया है और सीने पर दुपट्टा डालते वक्त बहुत खबरदार रहती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्या वह उसी की तरह नहीं सोचती होगी ? कुलवन्ती कुछ कहे इतनी बड़ी लड़की से, कुछ ठीक नहीं लगता ।

जया ने कपड़े बदले । कुलवन्ती ने उससे कुछ नहीं पूछा । यह भी नहीं कि वह इतनी लेट क्यों हुई, उसके इन्तजार में वह कितनी चिंतित हो गई थी ? और उसने यह भी नहीं बतलाया कि वह उसकी खोज में कॉलेज जाने वाली थी । वह काम में उलझ गयी । कितनी ही बार मन हुआ था उसका, पूछे—इतनी देर कहां हुई ?···पर उसने हर सवाल घोंट लिया । क्या जया को खुद नहीं बतलाना चाहिए कि वह कहां रुक गयी थी ? इतनी देर कैसे हुई ?

"तू चाय पियेगी ?" बीच में उसने जया से पूछा भी था । उसे लगा था, जया कहेगी, 'नहीं ! अब चाय का वक्त ही कहां रहा है ? अब तो खाना खाऊंगी । चलो, मैं तुम्हारा हाथ बंटाऊं···'शायद जया जवाब में यही बतलाने लगे कि आज उसे कॉलेज से लौटने में इतना वक्त कहां लग गया ? पर उसका हर ख़याल गलत निकला । जया ने सिर स्वीकारात्मक ढंग से हिलाया । कहा, "हां, पिऊंगी !"

कुलवंती चुपचाप उसे देखती रही । उसे फिर क्रोध आया । आखिर वह क्यों नहीं बतला रही है कहां रह गयी थी ? थोड़ी देर तक उसी तरह उबलती दृष्टि से घूरते रहने के बाद वह चाय बनाने चली गयी । स्टोव पर पतीली चढ़ाते समय वह भुनभुना रही थी । कितनी ढीठ है जया ! अभी न जाने कहां से लौटी है और आते ही किताब में सिर गड़ाकर रोबदाब कसने लगी ? इतनी बड़ी लड़की, क्या घर के काम में थोड़ा-सा हाथ नहीं बंटा सकती ? कुलवंती को याद आया । जब-जब जया कोई घरू काम-काज करना चाहती थी, वह उसे खुद रोक दिया करती थी, 'तू पढ़ाई में वक्त दिया कर ! घर का काम मैं निपटा लूंगी !' फिर भला जया को क्यों कोस रही है वह ? उसने खुद ही जया की आदतें खराब कर रखी हैं ।

"जया !" उसने अनचाहे ही आवाज दे दी ।

कुलवंती इस तरह काम करती रहे और जया बैठी रहे, कुलवंती यह बर्दाश्त नहीं कर सकती । घर का काम होता ही कितना है ? तिस पर आदमी हैं, कुल दो । पढ़ायी पर कोई असर नहीं होगा । वह जया से काम करवाया करेगी ।

जया आ गयी थी ।

"क्या कर रही थी तू ?" कुलवंती चाहकर भी उसके चेहरे की ओर नहीं देख सकी । एक दिन खुद उसे काम करने से रोका था और अब काम के लिए कहने वाली है । उसकी आंखें पतीली में उबलते पानी पर जमी रहीं ।

"पढ़ रही थी ।" जया ने बहुत संक्षिप्त-सा उत्तर दिया । कुलवंती कहना चाहती थी—पढ़ाई फिर करना, अभी काम कर···पर न जाने क्या हो गया है उसे ? होंठ खोल लेने के बावजूद वह कुछ नहीं कह पाती ।

"क्यों ?" जया पूछती है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुलवंती चाहती है— गर्दन उठाये, जया की ओर देखे, पर लगता है उसका शरीर मन से बगावत कर उठा है। वह उबलते हुए पानी को देखे जाती है। घर का काम होता ही कितना है जिसमें जया की मदद की जरूरत पड़े। वह बी० ए० फाइनल में है। इतनी बड़ी पढ़ाई के लिए वक्त चाहिए और कुलवन्ती चाहे तो उसे वक्त दे सकती है। यह जया के सारे जीवन का सवाल है।

"क्या बात है ?" वह पूछ रही है। उसके स्वर में झल्लाहट है। पढ़ते-पढ़ते बीच में उठा दिये जाने के कारण वह झल्ला उठी है।

कुलवंती कुछ नहीं कह पाती।

"तुम फालतू वक्त बरबाद करवाती हो !" चिढ़ती हुई जया अपने कमरे में वापस हो जाती है। उसे कुलवंती की यह आदत खलती है। इतनी बूढ़ी तो हुई नहीं है कि हर पिछला पल भूलने लगे ?

पतीली में उबलते पानी पर बुलबुले उभरने लगते हैं, फूट जाते हैं। कुलवंती एक मशीन की तरह उसमें शक्कर डालती है, चाय की पत्ती छोड़ती है। जया चाहती तो बतला सकती थी, उसे कॉलेज से लौटते में उतनी देर कैसे लगी ? पर नहीं बतलाया उसने। यह कुलवंती को पसंद नहीं है। ठीक जया के पिता जैसी···

प्यालियों में चाय उंडेलते समय उसके हाथ कांपते हैं। लगता है, अंगुलियां पत्थर की तरह सख्त हो गयी हैं। वे कुलवंती के चाहते मुड़ नहीं पातीं। जया का स्वभाव बिलकुल उसके पिता जैसा है। वह कांप उठती है। प्याली से चाय छलक-कर प्लेट में गिर गयी है। एक बार तो केतली की नली ही प्याली से टकरा गयी थी और कुलवंती ब-मुश्किल संभल पायी, वर्ना कप ही गिर जाता। यह महंगाई का वक्त। सबसे हल्की किस्म का प्याला भी आठ आने से कम का नहीं आता। उसे महंगाई से डर लगता है। उसे हर चीज़ से डर लगता है।

जया के लिए चाय लेकर कुलवंती उसके कमरे में पहुंची तो देखा— वह किताब में सिर गड़ाये हुए थी। जब कुलवंती ने उसके ठीक सामने टेबल पर प्याला रख दिया तब भी उसने किताब से सिर नहीं हटाया। ऐसा तो हो नहीं सकता कि उसने कुलवंती के आने की आहट न सुनी हो— कुलवंती ने सोचा। असल में जया ढीठ हो गयी है—बिलकुल अपने पिता की तरह। कुलवंती को याद है, इसी तरह दबे कदमों वह जया के पिता के कमरे में चाय लेकर पहुंचा करती थी और वह भी अपना ध्यान नहीं हटाता था। भले कोई किताब पढ़ रहा हो या जूते के फीते बांध रहा हो। वह कुलवंती की ओर देखता तक न था।

कुलवंती को चिढ़ होती थी। ज़िंदगी कितनी खामोश हो गयी है ? ठंड के मौसम वाली एक रात की तरह। न कोई आहट, न कोई हलचल। क्या सचमुच

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज़िंदगी उतनी ही खामोश हुआ करती है ?

तब उसके जहन में एक सवाल कौंध जाता था। शायद नहीं, ज़िन्दगी इतनी खामोश नहीं हुआ करती। अगर सचमुच ऐसा ही होता तो न सड़कों पर शोर उठता, न आदमी के दिमाग में ख़याल उभरते। असल में कुलवंती ही एक ऐसी खामोश औरत थी—जिसकी ज़िंदगी खामोशी में डूबी हुई थी। हर खामोशी एक किस्म की नहीं हुआ करती। कभी वह अच्छी लगती है, कभी ऊबन से भरी होती है—इतनी ऊबन से कि हर क्षण मातम के माहौल का अहसास होता है।

जया ने सिर अब भी नहीं उठाया था। चाय अगर ठंडी हो जाये, बर्फ की तरह, तो बनवायी ही क्यों जाती है? कुलवंती चिढ़ी। मन हुआ, चिल्लाकर उसका ध्यान तोड़ दे। वह बनावट, जिसे जया जबरदस्ती अपने इर्द-गिर्द फैलाये हुए है—ठीक अपने पिता की तरह।

शायद ध्यान नहीं गया उसका। कुलवंती व्यर्थ ही चिढ़ रही है। ऊंचे क्लास की पढ़ाई अगर इतना ध्यान लगाकर न की जाये तो सब आया-गया हो जाता है। फिर जया को लाना है डिवीजन। कम-से-कम सेकिंड डिवीजन। उस दिन कह रही थी, "एम० ए० में एडमीशन के लिए सहूलियत होगी।"···फिर जो लड़की लेक्चररशिप करने का फैसला किये हुए हो, उसका कैरियर ऊंचा ही रचना चाहिए वरना कॉलेज पहुंचकर पढ़ायेगी क्या?

"जया!"

"हूं?" जया का ध्यान टूटता है।

वह प्याला देखती है, जिस पर मलाई की एक पर्त उभरने लगी है। कितनी देर हो गयी है? कुलवंती को सामने खड़ी पाकर वह संकोच से भर जाती है। वह उसकी मां है, नौकरानी नहीं। जया की आंखों में क्षमा-प्रार्थना का भाव तैरने लगता है। जैसे कह रही हो, "यकीन करो, मां! मेरा ध्यान सचमुच चाय की ओर नहीं था।"

कुलवंती लौट पड़ती है। वह रसोईघर में आकर देखती है, उसकी प्याली पर मलाई की पर्त उभर आयी है। वह प्याली उठाती है और एक के बाद एक कई घूंट लेकर चाय पीने का एक वहम तैयार कर लेती है।

ठंडी, बेमजा और कसैली चाय गले में उंडेल लेने के बाद जब कुलवंती पुनः जया के कमरे में पहुंची तो उसने देखा, जया पड़ोसवाले वर्मा जी के सबसे बड़े लड़के से बातें करने में मशगूल थी। उसने जया की जूठी प्याली उठायी। कितना अशिष्ट है यह लड़का? कुलवंती को बिलकुल पसंद नहीं है। जया को कई बार, नजर और बातों के इशारों में उसने टोका भी है, नापसंदगी जाहिर की है, पर जया कुछ नहीं सोचती। वह अकसर इसी तरह उस लड़के से बातें करती है। बहुत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खुली-खुली। इतनी जैसे सीने पर पल्लू नहीं लिया हो उसने।

प्याली उठाकर एक क्षण खड़ी रही कुलवंती। वह इस लड़के की शक्ल तक नहीं देखना चाहती। जब-जब इसे देखती है, जैसे आंख में रेत का कोई टुकड़ा आ गिरा है। जलन होती है, किरकिरी लगती है, फिर भी कुलवंती रुक गयी है। क्यों? यह वह खुद नहीं समझ पाती।

प्रमोद! बहुत अशिष्ट है यह लड़का। ऊंचे क्लास में पढ़ने के बावजूद इसे इतनी भी तमीज नहीं कि बड़ों से कैसे सलूक किया जाता है? कुलवन्ती को बिलकुल पसन्द नहीं है।

यह क्यों आता है उसके घर? कुलवंती को सख्त एतराज है। शायद जया से बातें करने। वह भी ऊंची क्लास में पढ़ रही है।···पर, इससे क्या? जया और वह एक क्लास में तो हैं नहीं। जया बी० ए० फाइनल में है, प्रमोद वर्मा एम० ए० प्रीवियस में। इसका-उसका क्या जोड़? और एक क्लास में होते भी तो क्या मिलना जरूरी था? बहुत से लड़के हैं जो बी० ए० में पढ़ते हैं। कोई जरूरी नहीं है कि ऊंची क्लास में पढ़ने वाला हर लड़का जया से परिचित ही हो जाये? जो भी हो, उसे प्रमोद बिलकुल पसंद नहीं है।

जया उससे बातें किये जा रही है। कुलवंती को असह्य होने लगता है। तबीयत होती है, इस प्रमोद वर्मा को धक्के मारकर घर से बाहर कर दे। इसके अपने घर में बैठने को जगह नहीं है क्या? उसे जया पर भी क्रोध आता है। बेशर्म कहीं की! जानती है कि कुलवंती उसके बिलकुल पास खड़ी है, फिर भी वह प्रमोद से घुट-घुटकर बातें किये जा रही है! इस तरह, जैसे कुलवन्ती है ही नहीं। और अगर है तो जया के लिए अस्तित्वहीन है। उसे डर लगता है—क्या सचमुच अस्तित्वहीन हो गयी है? और बरबस ही उसके दिमाग में एक तड़प के साथ जया के पिता की याद हरी हो जाती है। वह भी ठीक यही करता था। बिलकुल इसी तरह···

कुलवन्ती उस समय भी इसी तरह खड़ी-खड़ी चुपचाप घुटती रहती थी—अस्तित्वहीन होकर।

पड़ोसवाली नयना घोष उसके घर में चली आती थी, ठीक इसी तरह जैसे प्रमोद आ जाता है। कितना मन होता था कुलवंती का, दुत्कार दे उसे, "तू क्यों आती है? तेरा अपना घर नहीं है?"

जया के पिता से नयना का भी कोई रिश्ता नहीं था, ठीक इसी तरह जैसे जया और प्रमोद के बीच मैत्री का कोई रिश्ता नहीं है। फिर भी वे दोनों रोज मिलते थे, रोज गपशप करते थे और कुलवंती रोज घुटती थी। एक-दो-बार दबे-मुंदे शब्दों में कुलवंती ने विरोध भी प्रकट किया था, "क्यों आती है नयना?···"

जया के पिता ने उसे घूरकर देखा था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुलवंती बुझ गयी थी।

वह डरती थी, आज भी डरती है। क्यों डरती है ? वह नयना को रोक नहीं सकती थी।···

क्या वह प्रमोद को भी नहीं रोक सकेगी ?

कई बार उसने सोचा है। मन के कोने में अनपेक्षित रूप से आ बैठी उस कमजोरी को झटक फेंकने की कोशिश की है जो नयना को नहीं रोकने देती थी और अब उसी के कारण प्रमोद को नहीं रोक पा रही है। अगर अभी दुत्कार दे प्रमोद को, "यहां मत आया करो ! क्या जरूरत है ?" तो क्या कर लेगा प्रमोद ? कुलवंती जानती है, वह कुछ नहीं कर पायेगा। क्या कर सकता है ? चुपचाप गर्दन झुकाकर चोर की तरह घर से बाहर चला जायेगा। वह चाहती तो इस तरह नयना घोष को भी निकाल सकती थी। क्या कर लेती वह ?···पर कुलवन्ती सैकड़ों बार यह निश्चय कर लेने के बावजूद नयना को नहीं निकाल सकी थी।

क्या वह प्रमोद को भी नहीं निकाल सकेगी ?

वे दोनों अब भी खुली-खुली बातें कर रहे थे और कुलवन्ती अब भी अस्तित्वहीन थी।

कुलवन्ती ने प्रमोद के कपड़ों पर एक नजर डाली। बिलकुल गुंडे-जैसे कपड़े पहनता है। एड़ी से कमर तक चिपकी हुई पतलून—कपड़ों के बावजूद लगता है जैसे आदमी नंगा है। कुलवन्ती को यह फैशन पसंद नहीं है। लड़कियों में बढ़ता जा रहा फैशन भी उसे बिलकुल पसंद नहीं है। इसके बावजूद उसने जया को स्लीवलेस कुरती, जो कूल्हों पर तंग होती है, बनवा दी है। जब पहले-पहल जया ने इसका प्रस्ताव रखा तो उसने अनिच्छा प्रकट की थी।

"मुझे वह पसंद नहीं है !"

जया ने मुंह बिगाड़ लिया था। जैसे कुलवन्ती ने बात नहीं कही थी, तमाचा मार दिया था।

लाचार कुलवन्ती ने जया का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। वह बेटी थी—मन के न जाने किस कोने से उसे लगता था, जया हर बड़ेपन के बावजूद छोटी है—कुलवन्ती के लिए अभी भी वह निरी बच्ची है।

पर अब ?··· जब-जब जया वे कपड़े पहनती है, कुलवन्ती को लगता है उसकी अपनी नंगी बांहें बेशर्मी से बाहर झांक रही हैं। उसके अपने कूल्हे उजागर हो रहे हैं। वह कैसे निकलेगी घर से बाहर ? पर जया निकल जाती है। इस तरह जैसे वह ढंकी हुई है। उसे कोई संकोच नहीं है। जिस पर यह प्रमोद···

कुलवन्ती ने दांत भींच लिये। वह सोच नहीं पाती क्या करे इसका ?

बीच में प्रमोद आंखें उठाकर कुलवन्ती की ओर देखता है और जब कुलवंती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसे देखती है तो न जाने क्यों वह आंखें चुराने लगता है। इतना क्यों कतराता है यह ? कुलवंती सोचती है। उसके मन में संदेह की कई परतें उभर आती हैं।

"अगर एकाध प्याली चाय बची हो तो प्रमोद को दे दो न, मां !" जया कहती है और कुलवंती अपने आप में सिकुड़ जाती है। यह लड़की कुलवंती को समझती क्या है—मां या आया ? पर, अभी ऐसा क्या कह दिया है उसने कि कुलवन्ती को इतना बुरा लग गया ? उसे खुद के स्वभाव पर झल्लाहट आती है। इस कदर चिड़चिड़ी हो गयी है वह कि बात न हो तो भी मीन-मेख निकालता रहता है उसका दिमाग। वह जलन पी जाती है। कहती है, "चाय बची तो नहीं है, पर बनाये देती हू !"

"अरे, रहने दीजिये, मां जी !" प्रमोद औपचारिकता निबाहता है।

कुलवंती कुढ़न से उसे देखती है। फिर वही चोर आंखें। जाने क्यों प्रमोद उसकी आंखें बर्दाश्त नहीं कर पाता। क्या कोई चोरी कर रहा है वह ?

"नहीं-नहीं, बनाने दो !" जया प्रमोद से कह रही है। फिर वह कुलवंती की ओर मुड़ती है, "बनो दो, मां !"

"हां, बनाये देती हूं !" अनचाहे ही कुलवन्ती को कहना पड़ता है। कभी-कभी नहीं, अकसर ऐसा ही होता है। जया की बात उसे इसी तरह पचानी पड़ती है। उसे याद आता है, जया के पिता की बात भी वह इसी तरह माना करती थी। फिर भी वह उसे खुश नहीं रख सकी। नहीं-नहीं, वह खयाल बदलती है। वह उसे खुश रखना चाहती थी, पर वह नयना घोष···और जैसे इस नाम के साथ ही कुलवन्ती के सीने को लपटें घेर लेती हैं। वह होंठ काट लेती है। एक गहरी और उदासी में डूबी सांस खींचकर जलन बर्दाश्त कर जाती है।

जया उसकी ओर देख रही है, प्रमोद भी। कुलवन्ती उन्हें इस तरह देखती पाकर कुछ घबरा-सी जाती है। शायद उन्हें उसका यों पास खड़े रहना पसन्द नहीं है। वह फुर्ती से रसोईघर की ओर लौट पड़ती है।

इसी तरह जया के पिता और नयना कुलवन्ती को बर्दाश्त नहीं कर पाते थे। नयना परायी थी, जैसे यह प्रमोद पराया है, पर कुलवन्ती को हमेशा महसूस होता है जैसे इस घर में वह खुद परायी है। जब-जब प्रमोद आता है, वह खुद को पराया और अकेला महसूस करती है। यह दखल कैसे हो जाता है ?

वह चाय बनाने लगती है। बीच में मुड़-मुड़कर रसोईघर के दरवाजे से सामने दीखते प्रमोद और जया को देख लेती है। गुंडा कहीं का ! क्यों आता है यहां ? फिर वही पुरानी शिकायतें उसके दिमाग में उभरने लगती हैं।

वह देखती है—जया टेबल पर झुकी हुई प्रमोद से कुछ कह रही है। शायद फुसफुसा रही है वह।

कुलवंती के मन में मुर्दा हो गया डर फिर जिन्दा हो जाता है, एक प्रेत की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तरह। प्रमोद भी फुसफुसा रहा है। क्या कह रहा होगा वह ? बेबसी से होंठ चबाती है कुलवंती। उसके माथे पर नसें उभर आती हैं— दिमाग में अजीब-सा तनाव फैला हुआ है। चाय के डिब्बे पर अंगुलियों की पकड़ कड़ी हो जाती है।

वे दोनों पहले की ही तरह फुसफुसा रहे हैं। इन्हें कुलवंती का डर नहीं लगता ?···उसे प्रमोद से क्या शिकायत हो सकती है भला ? उसे शिकायत है जया से। उसकी अपनी बेटी से। क्या वह खुद नहीं सोच सकती यह बेशर्मी है ! ···एक किस्म की चरित्रहीनता है। पर कितनी बेबस है कुलवंती ?···सब कुछ उसके सामने है। पहले भी था जब जया गोद की उम्र में थी और नयना उसके यहां आया करती थी···!

"कुलवंती !" जया का पिता आवाज देता था।

कुलवंती दौड़ी आती थी। कदमों में फुर्ती और उमर का जोश ! पर देहरी पर पैर रखते ही जैसे फालिज मार जाता था उसे। सामने नयना बैठी होती थी। जया और प्रमोद तो फिर भी एक-दूसरे से दूर-दूर बैठे हुए हैं—आमने-सामने। पर जया के पिता और नयना बैठते थे बिलकुल पास-पास। कुलवंती ने कई बार देखा था। नयना उसे सामने देखकर जया के पिता के अधिक समीप होती नजर आती थी, जैसे अंगारे फेंक रही हो कुलवंती पर !

"कुलवंती !" जया के पिता का आदेशपूर्ण स्वर छूटता था, "नयना के लिए एक प्याला चाय तो ले आओ !"

कुलवंती बेसब्री से गले का थूक निगलकर आदेश झेल लेती थी।

वह जाने लगती तो आदेश दोहरा हो जाता, "और सुनो, आज नयना अपने साथ ही खाना खायेंगी !"

कुलवंती सिर झुकाकर वह भी सह जाती। उसे नयना पर कितना क्रोध आता था ? फिर सोचती, उसे नयना पर क्रोध नहीं करना चाहिए। उसे शिकायत होनी चाहिए जया के पिता से। क्या वह खुद नहीं सोच सकते, यह बेशर्मी है !

इस तमाम सोच-विचार के बीच वह किसी मशीन की तरह चाय बनाये जा रही थी।

उसे जया से ही शिकायत होनी चाहिए। प्रमोद से उसका क्या सरोकार ? वह फिर सोचती है। मुड़-मुड़कर कमरे में देखती है। एक झुनझुनी-सी होती है उसके बदन में। वे दोनों एक-दूसरे को कैसे देख रहे हैं ? डर लगता है उसे। लपटें फिर भड़क उठती हैं सीने के इर्द-गिर्द !

कभी-कभी नयना और जया के पिता भी एक-दूसरे को इसी तरह देखते थे। उसका हृदय जोर-जोर से धड़कने लगता है। इच्छा होती है दौड़ती जाये और उन दोनों के बीच जा खड़ी हो— एक दीवार की तरह।···

दीवार···? वह उदास होकर मन मसोस लेती है। वह उनके बीच दीवार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं बनेगी। उसे याद आता है, एक बार वह पहले भी दीवार बनी थी नयना और जया के पिता के बीच और उन्होंने उसे तोड़ दिया था।

फिर घुटन पी लेनी होती है उसे।

वह प्याली में चाय उंडेलती है। उसी मशीनी ऐक्शन में। कई बार उसने अपनी यह मशीनी हालत अनुभव की है। पर हर बार लगा है जैसे कुछ नया नहीं है। अगर वह मशीन की तरह जी रही है तो अब से नहीं—एक अर्सा हो गया है इसी तरह। अब इसमें कुछ नयापन या अजूबा अनुभव नहीं होता उसे।

वह चाय लेकर कमरे में पहुंचती है। जया और प्रमोद कुछ सकपकाते है। वह प्याली टेबल पर रख देती है।

"अरे, एक ही कप?" प्रमोद हैरान होकर सवाल करता है, "तुम नहीं पिओगी, जया?"

"नहीं, नहीं।" जया इनकार करती है, "मैंने अभी-अभी पी है।"

"पर मैं अकेले कैसे पी सकता हूं?" प्रमोद कहता है, "तो फिफ्टी-फिफ्टी!" वह कप की आधी चाय प्लेट में उंडेल देता है।

"ओह, प्रमोद!" नखरे के साथ जया कुछ खास ढंग से मुसकराती हुई उसे देखती है। फिर प्लेट की चाय पीने लगती है।

कुलवंती पर बर्दाश्त नहीं होता। वह फुर्तीली चाल में बाहर चली आती है—बरामदे में। सड़क की ओर निरुद्देश्य देखती है। रंग-बिरंगी रोशनियां··· दौड़ती हुई कारें···स्कूटर···फुटपाथों पर पैदल चले जा रहे आदमी। उसका दिमाग आंखों की हर कार्रवाई से अलग कमरे में घूम रहा है। प्रमोद और जया के इर्द-गिर्द!

"आज की फिल्म अच्छी थी!" प्रमोद का स्वर है।

"हां।" जया का उत्तर।

कुलवंती को लगता है जैसे उसके कानों में किसी ने गर्म-गर्म सलाखें डाल दी हैं।

···तो जया के कॉलेज में आज कोई मंत्री नहीं आया था। वह फिल्म देखने गयी थी। कुलवंती होंठ चबा लेती है। बर्दाश्त की भी एक सीमा हुआ करती है। इच्छा होती है जाए और जया के गालों पर कई तमाचे कसे। उसे गालियां दे, बालों के झोंटे पकड़कर उसे झिंझोड़ डाले···बेशर्म!···कुलवंती यह आवारा-गर्दी बर्दाश्त नहीं करेगी। बिलकुल नहीं। वह लौट पड़ती है कमरे में। जया और प्रमोद के पास ही एक खाली कुर्सी पर बैठ जाती है। क्रमवार उन दोनों की आंखें देखती है।

"तुमने ग्रेगरी पैक की वह फिल्म देखी थी, जिसमें वह एक प्रेस-रिपोर्टर बनता है और एक राजकुमारी के साथ रोम में घूमता है?" प्रमोद का सवाल।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"हां, उसका क्या नाम था···?" जया फिल्म का नाम याद करने की कोशिश करती है। माथे पर कुछ सलवटें रेशमी साड़ी के मुड़े पल्लू की तरह बनती-मिटती हैं, "मुझे नाम याद नहीं रहा।"

"नाम तो इस वक्त मुझे भी याद नहीं है।" प्रमोद कहता है और फिर कुलवंती की ओर उसी तरह चोर-नजरों से देखता हुआ बात पूरी कर देता है, "फिल्म बहुत अच्छी थी।"

"हां!" जया दोबारा समर्थन करती है।

कुलवंती को वहां बैठे रहना अपमानास्पद-सा लगता है। उसे प्रमोद से नहीं, जया से शिकायत है। कम-से-कम उसे तो कुछ लिहाज करना चाहिए! वह उठने लगती है।

"मां!"

कुलवंती खड़ी हो जाती है।

"मैं प्रमोद के साथ एक पार्टी में जा रही हूं।" जया इस ढंग से कहती है जैसे पूछ नहीं रही बल्कि खबर कर रही है—सिर्फ कुलवंती की जानकारी के लिए।

कुलवंती का मन होता है, उसे डांट दे!

'नहीं, किसी पार्टी-वार्टी में नहीं जा सकती तू!' पर मन के ये सारे शब्द जैसे अटके रह जाते हैं। वह चाहे तो भी नहीं उगल सकती। उल्टे वह कहती है, "अच्छा, जल्दी आना।"

जया कपड़े बदलकर प्रमोद और उसके सामने आ खड़ी होती है।

"चलो!'

प्रमोद उठ जाता है। वे दोनों चोर-नजरों से कुलवंती की ओर देखते हुए चले जाते हैं। कुलवंती का मन होता है, उन दोनों के बीच पहुंचे और ठीक एक दीवार की तरह खड़ी हो जाये···

पर वह वहीं खड़ी रहती है। उन दोनों से अलग एक दीवार की तरह···

ऐसी दीवार की तरह जिससे इस घर की छत का कोई रिश्ता नहीं है।

अगर यह मकान बदल दिया जाये तो?

कुलवंती ने सोचा। शायद यही एक रास्ता था, जो जया और प्रमोद के बीच दूरियां पैदा कर सकता था, पर दूसरे ही क्षण उसे यह ख़याल दिमाग से बाहर कर देना पड़ा। मकान बदलने से दूरियां तो कम हो सकती थीं पर जया और प्रमोद एक-दूसरे से दूर हो जायेंगे, इस बात की कोई गारंटी नहीं थी। पत्थरों की दूरियों से मन की दूरियों का क्या रिश्ता?

जया जब चाहेगी, प्रमोद से मिल लेगी और प्रमोद भी जब चाहेगा उससे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिल लिया करेगा। शहर में दूरियां तय करने के सैकड़ों रास्ते हैं। बसें, मोटर, स्कूटर— थोड़े से समय में ही मीलों आया-जाया जा सकता है। जया के साथ कुलवंती उसकी परछाईं तो हो नहीं सकती ? फिर परछाईं भी तो पूरे वक्त आदमी का साथ नहीं पकड़े रहती ? जो भी हो, मकान बदलना जया और प्रमोद के बीच दूरियां पैदा करने का कोई अच्छा तरीका नहीं हो सकता। कुलवंती ने सोचा और सोचती चली गयी—फिर···?

परछाईं रहकर भी कुलवंती क्या जया को रोक सकती थी ? अगर ऐसा हो सकता तो फिर ये रिश्ते पैदा ही कैसे होते ? जया अगर चाहे तो आज भी इन रिश्तों में दीवार बन सकती है। ठीक उसी तरह जैसे जया के पिता और नयना घोष के बीच वह दीवार बन गयी थी, पर इस ख़याल के साथ ही हमेशा की तरह कुलवंती के सारे शरीर में झुरझुरी पैदा हो जाती है। दीवारों के रिश्ते अब मानता ही कौन है ? बंधन सूत के धागों की तरह होते हैं। मानना-न-मानना आदमी के हाथ की बात है। जया के पिता ने भी बंधन नहीं माने थे। उसने कुलवंती को झटककर दूर कर दिया था। इस तरह, जैसे सूत के धागे तोड़ दिए हों। जया भी इसी तरह बन्धन तोड़ सकती है। बीबी, मां, बहन-भाई हर रिश्ता ऐसे ही बन्धनों पर कायम रहता है। मन के बन्धन। सूत के धागे-जैसे।

कुलवंती—जया की मां है, सूत के एक धागे में बंधी हुई। मन के बन्धनों पर जिंदा !···कुलवंती सोचती है और कांप उठती है। वह इन धागों को तोड़ना नहीं चाहती। उसने तमाम जीवन धागों को टूटते देखा है और ऐसा हर धागा टूटकर कुलवंती के जीवन को कहीं-न-कहीं से रिक्त करता गया है। उसे याद आता है, नये बन्धनों और धागों को जोड़ने के सिलसिले में उसने अब से कई वर्ष पहले अपने माता-पिता के बन्धन भी तोड़ दिए थे।

वह भी कॉलेज में थी उन दिनों उसी तरह जैसे आज जया कॉलेज में है। उसकी भी मुलाकात एक लड़के से हुई थी—ठीक जया और प्रमोद की तरह। नये बन्धन कायम हुए थे और उनके बीच एक दीवार खड़ी हो गई थी—कुलवंती के अपने माता-पिता।

सोचते-सोचते फिर झुरझुरी उठती है कुलवंती के सारे शरीर में। इस तरह, जैसे बिजली के किसी नंगे प्लग पर भूल से हाथ धर गई हो वह।

दीवार बन गये थे उसके माता-पिता·· वे कुलवंती की तरह डरते नहीं थे। शायद उन्हें धागों से मोह नहीं था। और कुलवंती ने ठोकर मारकर एक ही झटके में दीवार हटा दी थी। सूत का हर धागा इस तरह टूट गया था जैसे कुलवंती और उसके माता-पिता के बीच वह था ही नहीं।

कुलवंती ने शादी कर ली थी। कोर्ट मैरिज ! वह हर पुराने बन्धन को तोड़-कर एक नये बन्धन में आ गयी थी। कुछ बरस ये बन्धन टिके थे···और फिर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एकाएक ही वे कमजोर होने लगे थे। कुलवंती को डर लगा था···कहीं टूट तो नहीं जायेंगे धागे? उसने अपनी ओर से हर मुमकिन कोशिश कर उन कमजोर धागों को जिंदा रखने की कोशिश की थी, पर यह एकतरफा कोशिश बेकार निकली। इस बार पहल की जया के पिता ने। उसने नयना और अपने बीच की दीवार को तोड़ दिया। कुलवंती से बंधे हर धागे को अस्वीकार कर दिया। ठीक उसी निर्मोह और जोश के साथ, जो कभी कुलवंती ने अपने माता-पिता के प्रति दिखाया था।

कुलवंती को उस दिन का हर क्षण याद है। वह सिहरन और घबराहट के साथ आज भी उस क्षण को इस तरह यादों में पाती है, जैसे सब कुछ आज का है, अभी—कुछ देर पहले का।

उन दिनों नयना रोज आने लगी थी उसके घर में। इसी घर में। इसी कमरे में वह बैठती थी। उधर, कमरे के दाएं कोने में।

कुलवंती उदास आंखों पर कई-कई बार पलकें झपकाकर कमरे के उस कोने को देखती है, जहां नयना आ बैठती थी। उन दिनों सोफा उसी कोने में पड़ा रहता था। यही सोफा। वह बेचैनी से सोफा चेयर के हत्थों पर हथेलियां फिराती है। आंखें कोने में टिकाये रहती है।

लगता है जैसे कोने की खाली कुर्सी आबाद हो गई है। नयना बैठी हुई है। किसी अंग्रेज़ी अखबार में सिर खपाये हुए। उन दिनों कुलवंती से उसकी बोलचाल कम हो गयी थी। ऐसी कि बिलकुल नहीं के बराबर। नयना आती थी और चुपचाप किसी अखबार में सिर देकर जया के पिता का इन्तजार करती थी। वह पहले की तरह ऑफिस में देर नहीं किया करता था। घड़ी गवाह है। यही घड़ी, जो आज भी कुलवंती के सामने दीवार पर टिकी हुई है। कांटा घूमता हुआ छह के अंक पर पहुंचता था और दरवाजे से जया का पिता प्रवेश करता था। नयना और उसकी नजरें मिलती थीं। कुलवंती सामने खड़ी भी हो, तो भी वह उसकी तरफ ध्यान नहीं दे पाता था।

"हलो नयना!···" वह बैग टेबिल पर रखता और नयना के पास जा पहुंचता।

उस दिन भी इसी तरह आया था वह। रोज इसी तरह आता था।

"हलो नयना···" उसने कहा था।

कुलवंती खड़ी हुई थी—उस तरफ। कुलवंती उदास आंखें फेरकर रसोईघर की ओर खुलने वाले दरवाजे की ओर देखती है। उन दिनों वहां एक गुलदस्ता रखा रहता था। कम्पाउण्ड आज की तरह वीरान नहीं रहा करता था। कुलवंती खुद उसकी हिफाजत करती थी। उसमें क्यारियां थीं और हर क्यारी रंग-बिरंगे खुशबूदार फूल जनमती थी, जिन्हें हर शाम कुलवंती गुलदस्ते में सजाया करती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थी। जया के पिता को फूल बहुत पसन्द हैं।'' हालांकि कुलवंती को उन दिनों कुछ अविश्वास-सा होने लगा था, जया के पिता पर। वह क्या फूल पसन्द करेगा? क्या वाकई उसे फूल पसन्द हैं?

अब रसोईघर के दरवाजे के पास वाला वह कोना खाली है। क्योंकि क्यारियां उजड़ गई हैं और जया का पिता इस घर में नहीं है, जिसे ताजे फूलों का गुलदस्ता पसन्द था।'''कुलवंती ने वह खाली गुलदस्ता भीतर वाले आंगन में फेंक रखा है। किस काम का? उसे वह वहीं अच्छा लगता है। क्यारियों के मिटते जा रहे निशान पसन्द आते हैं।

उस दिन कुलवंती ताजे फूलों को संवारकर गुलदस्ते में लगा रही थी।

जया का पिता यानी अभय मुखर्जी नयना के पास जा बैठा था। उसने जूतों के फीते खोले थे। पहले जब वह इस तरह आ बैठता था तो कुलवंती उसके पास जाकर फीते खोला करती थी। वह बीच में बातें भी करता जाता था--ऑफिस में आज क्या हुआ? जब बस सड़क से गुजरी तो उसने कुलवंती के लिए किस चीज़ को पसन्द कर लिया।'''पर कुछ दिनों से उसने बातें कम कर दी थीं। फिर एक दिन ऐसा आया था, जब से वह बिलकुल गुमसुम बैठा रहता था या नयना से बातें करता रहता था और कुलवंती जूतों के फीते खोलती रहती थी। '''और एक दिन उसने फीते खुलवाने से भी इनकार कर दिया था। क्या घंटा भर खराब करती हो तुम?'''रहने दो! मैं खोल लूंगा।'''एक झटके के साथ उसने उस दिन कुलवंती के हाथों से पैर हटा लिया था।

फिर वह अपने हाथों से फीते खोलता था।

उस दिन भी खोल रहा था।

नयना उसके सामने थी और कुलवंती कांपती अंगुलियों से गुलदस्ते में फूल रख पा रही थी। कुछ महीनों से उसका क्रोध इसी ढंग से प्रकट होने लगा था। उसे क्रोध आता था और हर काम गलत-सलत ढंग से करने लगती थी।

"फिल्म देखने चलोगी?" जया का पिता कुलवंती से नहीं, नयना से पूछ रहा था।

कुलवंती ने सुना। लगा, जैसे हजारों बिच्छुओं ने एक साथ डंक मारा है उसे। वह उबलने लगी थी। उसने जैसे-तैसे अपने आवेश पर काबू पाया था। एक बार फिर पिछली हजारों बार की तरह वह उपेक्षा से भरा हुआ जहर का प्याला गले में उंडेल गयी। उसने कोशिश की, धागें न टूटें। वह वहां से हट जाना चाहती थी, पर पैरों को उस दिन न जाने क्या हो गया था, जैसे गड़कर रह गयी वह।

उसे नयना की आंखों का ख़याल है। स्मृतियों में एक चित्र की तरह खिंच-कर रह गयी है। वह अभय को देख रही थी और दूर खड़ी कुलवंती को हर क्षण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसा लगा था, जैसे वह अभय से दूर—बहुत दूर होती जा रही है। नयना की वे उलझी आंखें? कुलवंती के बन्धन का हर धागा कितना कमजोर हो गया था उनके आगे?

"हां, चलूंगी।" नयना बोली और कुलवंती फिर कई प्याले हलाहल पी गयी। उसने देखा था, फिल्म देखने चलने की बात करते हुए वह कुलवंती की ओर मुसकरायी थी—एक तीखी मुसकराहट। और कुलवंती ने अनुभव किया जैसे उसके सीने के पास घाव है जिसे नयना कुरेदती है। मांस तड़कता है। एक छटपटाहट हुई उसके तमाम जिस्म में।

वे दोनों फिल्म देखने का प्रोग्राम बना चुके थे।

"कुलवंती!" अभय मुखर्जी ने उसे बुलाया।

नहीं जाना चाहती थी वह। उसकी इच्छा थी, एक बार अभय भी यह अनुभव करे, उपेक्षा का जहर कितना तीखा और कड़वा होता है। पर धागे? ...उन्हें कायम रखने के लिए कुलवंती ने क्या नहीं किया है?— उसे याद है। वह आवाज के साथ ही खिंची चली गयी थी—यों, जैसे वह औरत नहीं, एक पतंग है, जिसकी डोर अभय के हाथों में है और वह उसे अपनी इच्छा से जब चाहे—ढील दे सकता है, खींच सकता है।

"मैं आज खाना नहीं खाऊंगा।" अभय मुखर्जी ने आदेशपूर्ण स्वर में कहा था, "इन्तजार मत करना। आज हम लोग किसी होटल में खा लेंगे।"

हम लोग? कुलवंती के गले में कुछ अटका-चुभा और वह उसे निगल गई।

जूतों के खुले फीते अभय दुबारा बांधने लगा।

कुलवंती पर न जाने क्यों नहीं रहा गया था उस दिन। वह विद्रोह करने मचल उठी थी। यह जानते हुए भी कि वे दोनों फिल्म देखने जा रहे थे, उसने पूछा था—"कितनी देर में लौटोगे?"

अभय ने उसे घूरकर देखा। उन आंखों में एक सवाल था, जैसे पूछ रहा हो—तुझे मतलब? पर उसने कहा था—शायद आधी रात तक। मैंने कहा न तुम इन्तजार मत करना।

कुलवंती फिर नहीं संभाल सकी अपने-आपको। वह कहना चाहती थी—'सीधे-सीधे क्यों नहीं बतलाते, तुम फिल्म देखने जा रहे हो?' पर उसने बात दूसरे ढंग से की—"मैं भी चलूंगी!"

अभय ने नयना की आंखों में झांका। वह अकसर किसी तरह ऐसी हरकत करता था कि कुलवंती जल जाये। उसने भारी आवाज में पूछा था, "कहां चलोगी?"

"फिल्म देखने!" कुलवंती ने उतने ही भारी स्वर में जवाब दिया था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुलवंती याद करती है तो उसे हैरानी होती है। उस दिन उसमें इतनी हिम्मत कहां से पैदा हो गयी थी ?

"पर हम फिल्म देखने नहीं जा रहे हैं।"

इतना झूठ ! कुलवंती ने किसी धागे, किसी रिश्ते की परवाह नहीं की। उसके पेट में सैकड़ों प्याले जहर भरा था। सब एक साथ उगल दिया था उसने, "तुम नहीं जा सकते ! तुम मुझे धोखा नहीं दे सकते !"

अभय हैरान रह गया। शायद उसकी हैरानी ठीक थी। कुलवंती ने सोचा। वह जानता था कुलवंती ने ऐसी हरकत की है, जिसकी वह उससे कभी अपेक्षा करना तो दूर, अपेक्षा की कल्पना तक नहीं कर सकता था। उसने आंखें फैलाए अवाक् कुलवंती की ओर देखा था। उसकी आंखों में अविश्वास के भाव थे। वह, जो एकाएक ही उसका विरोध करने लगी है, क्या कुलवंती ही है ?···क्या सचमुच कुलवंती विरोध कर सकती है ?···वह लगातार उसे देखे गया।

उफान तेजी से आता है और जब आता है, एकाएक नहीं बैठता। कुलवंती उफनती चली गयी थी, "तुम मुझे धोखा नहीं दे सकते !"···उसने बुलंद आवाज में अपना संवाद दोहराया था—"मैं तुम्हारी पत्नी हूं और कोई पत्नी अपने अधिकार आसानी से नहीं छोड़ा करती !···तुम मेरे सामने नयना को लेकर सिनेमा नहीं जा सकते !···" वह अभय के ठीक सामने आ खड़ी हुई थी। और अभय अब भी हक्का-बक्का उसका चेहरा देखे जा रहा था। शायद वह अनुभव कर रहा था, जैसे वह कुछ ऐसा देख रहा है, जिसका हर दृश्य अविश्वसनीय है।

कुलवंती ने कहा था, "तुम मेरे सामने मेरे अधिकारों को चुनौती देते रहे हो ? मैं बर्दाश्त नहीं करूंगी !" उसकी आवाज भर आयी थी, "तुम मेरे रहते यह सब नहीं कर सकते !"

कुलवंती को याद है, इसके आगे शायद वह कुछ नहीं कह सकी थी। उसके आंसू बिखर पड़े थे और बरसों से पिघलता रहा दर्द बाहर आ गया था। उसने कितनी कोशिश की थी, रुलायी थामे। वह नहीं चाहती थी, अभय या नयना को यह मालूम हो कि वह कमजोर है। कमजोर और असहाय लोग रोते हैं। कुलवंती रोयी थी। जोर से रो पड़ी थी।

वह कमजोर भी थी—असहाय भी थी।

अगर ऐसा न होता तो उस दिन अभय उसे छोड़ने का निश्चय न करता। वह तसल्ली से फिर जूते खोलने बैठ गया था। कुलवंती को ऐसा देखकर बिलकुल अचरज नहीं हुआ। जब-जब अभय को क्रोध आता है, वह बोलना बंद कर देता है। कुलवंती उसका स्वभाव खूब अच्छी तरह पहचानती थी।

कुलवंती की उदास आंखें उस दिन के हर ख़याल के साथ नम हो जाती हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारा शरीर ढीला-सा महसूस होता है। थका हुआ। लगता है, जैसे पुरानी यादें नहीं की उसने—पचास मील पैदल चल ली है। सारे पांव भर आये हैं। बदन का हर जोड़ टूटने लगा है।

उस दिन अभय ने उससे विद्रोह कर दिया था। इतनी जल्द और फुर्ती के साथ, जैसे वह कितने ही दिनों से इस खास क्षण की प्रतीक्षा में था। उसने सामान लगाया था। सूटकेस में एक-एक कपड़ा डाला था—पतलून, कमीज, पाजामे, कुर्ते···सब कुछ।

नयना इस सारे समय चुपचाप खड़ी रही थी। कितनी बार मन हुआ था कुलवंती का, उसे धक्के मारकर बाहर कर दे। पर वह ऐसा नहीं कर सकती थी।···उसे अभय से शिकायत थी, जिसके साथ उसने धागे जोड़े थे, रिश्ते कायम किये थे।···नयना से उसका क्या सम्बन्ध ?

अभय ने अटैची तैयार कर नयना के कंधे पर हाथ रखा था, "चलो !" उसके चेहरे पर अजीब-सी कठोरता और दृढ़ता थी।

शायद वह घर से भाग रहा है। कुलवंती को छोड़कर !···नहीं-नहीं, धमकी दे रहा है ! वह चाहता है कुलवंती आत्मसमर्पण कर दे।···उससे क्षमा मांगे और स्वयं की हर आशा और विश्वास को उसके निष्ठुर और रूखे व्यवहार के सिपुर्द कर दे ··एक बच्चे की तरह खेलने के लिए। कुलवंती का स्वाभिमान उसके आड़े आ गया। उसने अपेक्षा और तिरस्कार के साथ अभय को देखा था।

अभय बाहर चला गया था।

कुलवंती देर तक गुमसुम बैठी रही थी। यों जैसे उसके सोचने-समझने की शक्ति चोरी चली गयी है।···कुछ देर बाद उसके ख़यालों को किसी ने तोड़ दिया था···

कुलवंती याद करती है—उस दिन उसकी बेहोशी किसने दूर की थी ? शायद जया ने। दस माह की थी तब जया। वह रोयी थी और कुलवंती चौंक पड़ी थी। उसने जया को उठाकर गोद में भींच लिया था। उसके मुलायम और रुई जैसे गालों को चूम-चूमकर सुर्ख कर दिया था।···कुछ धागे अब भी थे जिनके सहारे कुलवंती जिन्दा रह सकती है !···

और कुलवंती जिन्दा रही।···

एक बार फिर बेसब्री से वह कुर्सी के हत्थों पर हाथ फिराती है।···रूखे और कड़े हाथ।

कमरा पूर्ववत् मौन और एक विचित्र-सी मायूसी में घिरा लगता है और कुलवंती हर सांस के साथ तीव्र घुटन और अकेलापन महसूस करती है।·· ऐसा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आजकल क्यों होता है ? आखिर कौन-सी रिक्तता है, जो उसे हर क्षण खालीपन अनुभव कराती है ? शायद जया···! गये अठारह वर्षों से जया उसकी रिक्तता की पूर्ति थी पर अब—जब से प्रमोद उससे मिला है, वह रिक्तता की अनुभूति हुई जा रही है।

प्रमोद···! कुलवंती दांत पीस लेती है—जया और उसे कैसे दूर कर दिया जाये ? कुलवंती बार-बार सोचती है। वह जया को नहीं छोड़ सकती। भले उसे हर क्षण स्वाभिमान को कुचलता देखना पड़े। वह जानती है, जब तक बन्धन जिंदा है, जया और कुलवंती के बीच मोह के धागे हैं, कुलवंती नहीं मरेगी। वह रिक्त नहीं होगी। वह जिंदा रहना चाहती है और इसके लिए नाजुक सूत के मोह-बंधनों को जिंदा रखना होगा। किसी भी तरह। किसी भी शर्त पर।

जया और प्रमोद के बीच दूरियां पैदा करनी हैं उसे। वह सोचे जाती है।

मकान बदल देना तो कोई तरीका नहीं हो सकता इसका। फिर ?

वह जया को डांट देगी।···पर विद्रोह ? वह ऐसा नहीं करेगी। जब-जब उसने ऐसा किया है—कुछ बंधन टूट गये हैं। मन में रिक्तता आ समायी है।··· वह प्रमोद को डांटेगी···वह ऐसा भी नहीं कर सकती। इस हाल में भी शायद जया का विद्रोह सामने आयेगा ! ··तब क्या रास्ता हो सकता है ?

मोहताज है वह। कुछ रिश्तों और मन के धागों को जिंदा रखने के लिए जया की मोहताज है वह। उससे पहले वह जया के पिता की मोहताज थी···! बेचैन हो उठती है कुलवंती।···उसे लगता है, वह पंगु हो गयी है और ऐसे हर समय में उसे बैसाखी की जरूरत है—किसी के स्नेह और रिश्ते की बैसाखी। उसे खुद पर कुढ़न होती है, उसने अब तक जिंदगी की हर बैसाखी तोड़ी है और अब सिर्फ एक बैसाखी बची है—जया !···कुलवंती उसे नहीं तोड़ सकेगी।

उदास कमरे में तीखी रोशनी है—बिजली का साठ पॉवर का बल्ब···। खूबसूरत फर्नीचर और साफ-सफायी···इसके बावजूद वह कुलवंती के उदास मन से प्रभावित है।···यह उदासी किसी विधवा के मन से कम नहीं है।

एक बार न जाने कैसे उसके मन में एक सवाल पैदा हुआ था—प्रमोद को जया से दूर क्यों करना चाहती है वह ?···उसने सैकड़ों जवाब खोज लिये थे—बस, वह उसे पसन्द नहीं है।···पर यह जरूरी नहीं है कि जया उसी की पसन्द को पसन्द करे ?···वह जया की मां है।···मां होने का मतलब अपनी सन्तान के समस्त गुण-दोषों का उत्तरदायित्व ग्रहण करना है। हर संतान अपने मां-बाप की प्रतिकृति होती है। एक वजनी जवाब के साथ उसने मन का हर सवाल दबा दिया था, घोंट डाला था—जो भी हो, जया को वही करना चाहिए जो कुलवंती सोचे !···पर इसके बावजूद उसे लगा था, जैसे सच्चाई उन जवाबों में नहीं है, जो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसने खोज रखे हैं। सच्चाई कुछ और है, जो कुलवंती की रिक्तता से सीधा सम्बन्ध रखती है, जो कुलवंती की जरूरत है।

प्रमोद और जया को कैसे दूर कर दिया जाये ?

कुलवंती अब भी सोच रही है !···कई दिनों से सोच रही है पर वह बैसाखी की मोहताज भी है जो सिर्फ एक बची है।···सिर्फ एक !···

बैसाखी···!जो हर लंगड़े आदमी का पैर हुआ करती है। जया—जो कुलवंती की बैसाखी है।

१९६६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने घर का पराया फासला

किरपालसिंह सोच रहा था कि अभी कोई सामने वाली गली से आते-जाते निकलेगा और वह उससे पूछेगा—क्यों भाई, अपनी फौजें कहां तक पहुंचीं ?

शायद वह जवाब देगा—लाहौर तक ।

किरपालसिंह कहेगा—लाचार कर दिया था कमबख्तों ने ! हम न बढ़ते तो उनका इरादा तो दिल्ली तक जा पहुंचने का था । खैर, फिलहाल तो यह बताओ कि हम बर्की ले चुके या नहीं ?

जवाब मिलेगा—हां !

और किरपालसिंह जवान हो जाएगा । उसके चेहरे की हर झुर्री से मुसकराहट की रोशनी फूट निकलेगी ।

दो घंटे हो गए थे ।

गली से अब तक कोई नहीं निकला था । शाम का धुंधलका क्रमशः गली को लांघता हुआ बरामदे की ओर बढ़ा आ रहा था । कमजोर आंखों के कारण किरपालसिंह को देखने में कठिनाई होने लगी थी । कनपटियों के पास हल्का-सा दर्द उठ आया था । वह अपनी भौंहों पर काफी जोर डाल रहा था ।

कमाल है, अब तक कोई नहीं निकला ! गांव में भी लोग इतने व्यस्त होने लगे क्या ?

उसने अपनी आंखों की दुखती नसों पर फिर से जोर डाला और पहले से कहीं अधिक बेचैनी से गली की ओर देखना जारी रखा । "हां···कोई आ रहा है···" वह बुदबुदाया । शायद बालासिंह है । उसने आवाज लगा दी—"बाले !"

"आया !" गली से जवाब उछला और वह चेहरा ओझल हो गया ।

ऐसा ही होता है । अकसर किरपाल सभी को बुलाकर इतनी सारी बातें एकबारगी ही पूछ लेना चाहता है कि लोग ऊब जाते हैं । अब वे किरपाल से बुरी तरह कतराने लगे हैं ।

दूसरों की तरह बालासिंह भी चला गया । किरपाल जान भी गया कि बाला अब नहीं आएगा । किरपाल बुझ गया । लगा, जैसे वह बेकार ही जिन्दा है । उसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

याद आया, आज से कुछ वर्ष पहले जिन्दगी में यों गुलामी का अहसास नहीं होता था।

बंटवारे के समय उसके हाथ-पैरों में गजब की फुर्ती थी। दंगा हुआ था और वह मीलों अपने बेटे साहबसिंह को कन्धे पर चढ़ाए, दौड़ता हुआ पाकिस्तानी इलाके से बाहर निकल आया था। उन दिनों साहबसिंह छोटा था, लेकिन इतना छोटा नहीं कि चल न सकता। किरपाल ने ही उसे पैदल नहीं चलाया था। उसे कन्धे पर चढ़ाकर लम्बे-लम्बे डग भरता हुआ वह अपना गांव बर्की छोड़ आया था।

किरपाल की कल्पना में वह घर उभर आया, जिसे गांव से भागते समय उसे लाचारी में छोड़ना पड़ा था। काश ! मकानों के पैर होते और वे लोगों के साथ-साथ भाग सकते !

किरपाल ने बेचैनी से बिस्तरे का चादरा मुट्ठियों में कस लिया।

वह अकसर यह सोचकर हैरान होता था कि पाकिस्तान में छूटी तमाम जायदाद का यहां मुआवजा ले लेने के बावजूद वह क्यों उस घर की याद नहीं भूल पाता ? अठारह वर्षों में तो बड़े-से-बड़ा घाव भी भर जाता है, लेकिन···ये यादें ! ···ये उभरती हैं, तो उभरती ही चली जाती हैं ! एक के बाद एक ! सिलसिलेवार ! हर दृश्य दूसरे का पूरक। और हर दृश्य के साथ लगता है जैसे दिमाग में सुइयां चुभ रही हैं, शरीर में खून की रफ्तार तेज हो गई है।

मकान !···बिलकुल नया मकान ! तीन कमरे, रसोईघर, ऊपर छत, बाहर छोटा-सा आंगन। बारह तारीख को वह उस मकान में रहने आया था और सत्रह को उसे भागना पड़ा था।

याद करते ही लगता है, कानों के पास एक शोर उठ आया है। फिर से तसवीरें उभरने लगती हैं। एक के बाद एक···कैसा चमचमाता नया मकान···!

किरपाल ने गर्दन उठाकर देखा। साहबसिंह सामने खड़ा था। किरपाल समझ नहीं पाया कि दुकान में वह इतनी जल्दी कैसे आ गया।

"हमारी फौजें बर्की पार कर गई हैं।" साहबसिंह बोला, "कल सवेरे से लड़ाई भी बन्द हो गई है।"

"बर्की ?" किरपाल की आंखें चमक उठीं—"तूने पहले से खबर क्यों नहीं की ?"

"मैं 'पास' के लिए कोशिश करने गया था।" साहबसिंह पैताने पर बैठ गया।

"कैसा पास ?" किरपाल कुछ न समझ सका।

साहबसिंह ने बताया—"हमें अपना गांव देखना है तो सरकार से मंजूरी लेनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पड़गी। मंजूरी यानी पास।"

"मिल गई मंजूरी ?"

"हां ! सवेरे सब चलेंगे।"

किरपाल का मन हुआ कि पूछे, 'अभी नहीं चल सकते ?' पर उसने नहीं पूछा। वह जानता था, सरकारी कामों में कितनी दौड़-धूप और परेशानी होती है ? थक-कर आए बेटे को वह और परेशान नहीं करना चाहता था।

"बैलगाड़ी से चलेंगे !" साहबसिंह कह रहा था—"मैं खुद तरस रहा हूं।" उसकी आवाज में जोश था।

साहबसिंह को तो ठीक से याद भी नहीं होगा, कैसा था गांव ! कैसा अनोखा था वह नया मकान ! उसके तीन कमरे, रसोईघर, छत और आंगन ! सचमुच उसे कुछ भी याद नहीं होगा। इसके बावजूद वह बर्की जीतने की खबर मिलते ही दौड़-धूप कर सरकारी मंजूरी ले आया है।

सुबह जाना है बर्की ! किरपालसिंह की धुंधली रोशनीवाली आंखें कभी बरामदे में और कभी गली के अंधेरे में निरुद्देश्य दौड़ती रहीं, हालांकि चारों ओर अंधेरा-ही-अंधेरा था।

देर तक नहीं सो पाया किरपालसिंह। ख़यालों में ही डूबता-उतराता रहा। उसने साहबसिंह को सौ-सौ आशीष दिए। ईश्वर सबको एसा बेटा दे !

सुबह किरपाल और दिनों की अपेक्षा जल्दी जाग गया। साहबसिंह ने बैलगाड़ी तैयार करवा रखी थी। उसे उसने सहारा देकर गाड़ी में भी चढ़ाया था। सारा परिवार ही गांव देखने जा रहा था। किरपाल, उसकी पत्नी, बेटा, बहू —सब !

गाड़ी में सवार होते समय उसने पाया था कि पास-पड़ोस के मर्द-औरतें उन्हें देख रहे हैं।

साहबसिंह ने बैलों को थपकी दी। गले में बंधी हुई घंटियां झनकीं और वे चल पड़े।

किरपाल का मन हुआ, कोई गीत गुनगुनाए।

बैलों की रफ्तार बढ़ गई थी। वे अब कच्ची सड़क पर आ गए।

"तूने मंजूरी वाला कागज तो साथ में रख लिया था न ?" किरपाल ने पूछा।

"हां।" साहबसिंह ने कहा। वह गाड़ी हांकता रहा।

किरपाल जहां-जहां तक देख सकता था, देखता रहा। कुछ देर बाद एक कच्चा रास्ता पार करते समय साहबसिंह ने जानकारी दी कि बर्की की चौकी दिखाई दे रही है।

किरपाल ने आंखें फैला दीं। एक बड़ा-सा पत्थर गड़ा दीख रहा था। इर्द-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गिर्द मिलिटरी के तम्बू गड़े थे। फौजी वर्दी में कुछ जवान हथियारों से लैस खड़े थे।

साहबसिंह ने गाड़ी रोक दी और जेब से पास निकाला। दो जवान बैलगाड़ी के अगल-बगल आ गए। उन्होंने हर आदमी को घूरकर देखा।

"बर्की ! हमारा गांव !" उनमें से कोई बोला। यह उसकी अपनी जानकारी भी थी, सवाल भी, जवाब भी।

"हां, हम उसे देखने जा रहे हैं।" साहबसिंह ने मासूमियत से कहा।

"जा सकते हो।" सैनिक ने पास वापस करते हुए स्वीकृति दी, "अगली चौकी पर गाड़ी छोड़ दीजिएगा। वहां से आपके साथ फौजी जवान जाएंगे और गांव दिखा देंगे।"

"हम मोरचों की जगह भी देखना चाहते हैं सा'ब !" साहबसिंह ने नम्र स्वर में कहा।

"जरूर। आपको आसपास की वे जगहें भी दिखाई जाएंगी जहां से दुश्मन भाग गया।" वह जवान जिन्दादिली से हंसा।

साहबसिंह ने हाथ उठाकर सलाम किया और बैलों को थपकी दी।

अगली चौकी पर उन्होंने गाड़ी छोड़ दी। यहां से दो जवान उनके साथ हो लिये। उनमें से एक ने किरपालसिंह को सहारा दिया।

एक ओर एक अमेरिकी पैटन टैंक ध्वस्त पड़ा था।

जवान बोला—"हथियार कुछ नहीं होते। दिल चाहिए दिल। और चाहिए वतन से मुहब्बत। इस लड़ाई ने दुश्मन को यही सबक सिखाया है।"

"सही बात है।" किरपालसिंह ने बुलन्द आवाज में समर्थन किया—"किराए के टट्टुओं से लड़ाइयां नहीं लड़ी जातीं।"

गांव में पैर रखते ही किरपालसिंह हैरान रह गया। कुछ भी नहीं बदला था। वे ही पुराने टापरे, धूल भरे रास्ते ! किरपाल को बड़ा ही आश्चर्य हुआ। आजादी के अठारह सालों में भी इस गांव में कोई फेरबदल नहीं हुई ? क्या करती रही पाकिस्तान की सरकार ? भारत के जिस गांव में आज वह रह रहा है, वहां कितनी फेर-बदल हो गई है। पक्की सड़कें, नये-से-नये मकान, दुकानें—सब कुछ। यहां तक कि गये साल से सिनेमा भी चालू हो गया है।

किरपाल ने बर्की के उस रास्ते को पहचान लिया। यहीं···यहीं से···यहीं से उसका वह मकान···

झटपट चलता हुआ वह अपने मकान के सामने जा पहुंचा।

"साहिबे !" वह उत्साह में आकर जोर से बोला—"देख अपना घर।"

मकान पर एक अर्से से पुताई नहीं हुई थी। दरवाजे बहुत गन्दे थे।

जवानों ने एक बार मकान की ओर देखा, फिर किरपाल की ओर। किरपाल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

टकटकी बांधे मकान को घूर रहा था। उसकी आंखों में हर्ष-मिश्रित आश्चर्य था, जैसे कोई सपना सच हो गया हो।

"साहिबे !" उसने उस जवान की बांह का सहारा छोड़ दिया। वह आगे बढ़ा और आंगन में जा पहुंचा। यहां कभी उसने गमले सजाए थे, लेकिन आज···

साहबसिंह चुप था। सबकी तरह वह भी कभी अपने पिता की ओर देखता, कभी मकान की ओर।

किरपाल और आगे बढ़ा। उसने घर के बड़े दरवाजे को हल्का-सा धक्का देकर खोल दिया। दस-बारह दिनों से बन्द हवा की तीखी गन्ध चुभती हुई बाहर निकल आयी।

"साहिबे !" किरपाल आगे बढ़ा और कमरे को पार करता हुआ फटी-फटी आंखों से दीवारों, खिड़कियों और दरवाजों को देखने लगा।

"कैसे कंगाल रहते हैं यहां। ढंग से कभी पुताई भी नहीं करवाई। कितनी अच्छी हालत में छोड़ गया था मैं।" वह बुदबुदाता रहा।

उसने बेबसी के साथ पास के दरवाजे पर हथेलियां फेरीं। उसी तरह हौले-हौले जिस तरह कभी वह नन्हे साहबसिंह का सिर सहलाया करता था।

किरपाल के हाथ कांपने लगे। उसकी आवाज भर्रा गई—"अठारह साल में कुछ नहीं किया कमबख्तों ने। कुछ भी नहीं किया ! एक मकान की साज-सम्भाल भी नहीं !···" वह लगातार बड़बड़ा रहा था।

सब लोग चुपचाप उसे देखते रहे।

"कैसा चमचमाता छोड़कर गया था मैं···" वह लगभग रुआंसा हो चला था, "नया-निकोर···सजा-संवरा···!"

उसके दोनों हाथ दरवाजे से फिसले और लटक गए।

१९६६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उलझाव-सुलझाव

पीढ़ियों के नीचे उतरी फूला की मां तो उसके पैर लड़खड़ा रहे थे। सुबह हुई ही थी। सड़क पर ताजी-ताजी सफाई के कारण धूल का हल्का-सा गुबार तैर रहा था और चारों ओर दूर तक खामोशी फैली हुई थी। जमादार गनेशी ने अभी-अभी झाड़ू फेरी थी और अब एक मकान के चबूतरे पर उकड़ूं बैठा बीड़ी फूंक रहा था।

फूला की मां ने एक चौकन्नी नजर से उसे देखा। अभी मुसकरायेगा। कहेगा, 'फूला की मां, राम-राम !'

'राम-राम, गनेशी !' फूला की मां को जवाब देना पड़ेगा। इसके आगे गनेशी से उसकी बात नहीं होती है। बस, इतनी बात ! पिछले कई बरसों से फूला की मां इसी तरह मोहल्ले के घरों में काम करने अलस्सुबह आती है और गनेशी कहीं-न-कहीं इसी तरह मिल जाता है। कभी झाड़ू दे चुका होता है, कभी दे रहा होता है।

पर आज शायद इतनी ही बात नहीं होगी। इसके आगे भी कुछ कहेगा वह, शायद हैरान होकर पूछेगा, 'बड़ी जल्दी निबट आयी, फूला की मां ?'

क्या जवाब देगी वह ?···फूला की मां उससे कतराकर निकल जाना चाहती थी, पर···

"राम-राम, फूला की मां !"

"राम-राम, गनेशी !" फूला की मां ने गले का थूक निगल लिया। बस, अब वह पूछने ही वाला है, 'बड़ी जल्दी निपट आयी···?' पूछने-जैसी बात है। अभी-अभी फूला की मां इस मकान की सीढ़ियां चढ़कर ऊपर गयी थी और अभी ठीक से गनेशी सांस भी नहीं ले पाया कि वह नीचे उतर आयी है ?

पर नहीं पूछा गनेशी ने। पूछ ही नहीं सका।

"अक्खख···खुब्···अह हं···अक्ख···" और एक सिलसिला लग गया गनेशी के सीने से मुंह तक। धुएं ने खांसी को इस जोर से बाहर उछाला कि उसका सवाल भीतर ही घुटकर रह गया और फूला की मां गली पार कर एक ओर मुड़

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चली। एक और घर पहुंचना है उसे···फिर एक और घर···फिर एक और···

कितने घर बंधे हैं उसके हाथों से ? किसी घर झाड़-पोंछ, किसी घर बरतन-चौका, किसी घर कपड़े-धुलाई— पर इधर दो-तीन घरों से ऐसे खड़े-खड़े और लगातार जवाब मिले हैं कि फूला की मां डरने लगी है कहीं भुखमरी···

नहीं-नहीं, दो-तीन घरों का काम छूट जाय तो क्या होता है ? आठ, आठ दूनी सोलह और आठ चौबीस ! चौबीस कलदार टूट गये !···

चौबीस ? चौबीस बहुत होते हैं ? फूला की मां के पांव लड़खड़ा गये और एड़ी से सिर की नसों तक एक तनाव फैल गया। भुखमरी पक्की है ! पक्की है बिलकुल ! · ये चौबीस थे, तब तो रोटी-पानी छोड़कर चौबीस महीने में ठीक से एक धोती भी नहीं जुटा पाती थी फूला की मां, और अब ? अब तो ये भी टूट गये हैं ! फूला की मां तो मर जायेगी···भुखमरी !

फूला की मां की आंखों के आगे पीले-लाल-हरे डोरे फैल आये। क्या होगा अब ?

उसने आंखें मोड़ लीं। नये काम ढूंढ़ लेगी।

नये काम ? यह महंगाई और नये काम ?···पांच-पांच सौ माहवार कमाने वाले तो हाथ से काम करने लगे हैं—आठ-दस रुपये महीने हाथ से खिसक जायें, बहुत बड़ी बात है, फिर फूला की मां के हाथ से गये यह चौबीस माहवारी !···

तेरा नास जाय पारो ! हरामजादी !···फूला की मां बुदबुदाती हुई बढ़ गयी। उसी के कारण छूट रहे हैं ! तेरी जवानी में आग लगे ! वह चलती गयी।

अब दूसरा घर आने को है। वहां से भी कहीं···? नहीं-नहीं, हर जगह थोड़े ऐसा हो सकता है। पर उतरा मुंह लेकर फूला की मां वहां पहुंचेगी ? सवेरे-सवेरे 'चढ़ा मुंह' देखे तो सामने वाले का मन खराब हो जाता है—कहीं उस घर वाले फूला की मां को यों देखकर ही न कह दें, 'अब तुमसे नहीं बनेगा बाई !' नहीं-नहीं, ऐसा नहीं हो सकता।

फूला की मां ने जबरदस्ती मुसकराने की कोशिश की। वह यह भी नहीं चाहती कि लोग समझ लें, वह क्रमशः बेकारी की तरफ बढ़ रही है, मगर गनेशी जमींदार तो समझ गया होगा ? समझ जाय, उसकी बला से !

यह सोच लेने के बावजूद फूला की मां को अफसोस था। लोग जानने लगे हैं कि वह बूढ़ी हो गयी है। उसमें पहले-जैसी फुर्ती भी नहीं रह गयी है और अब वह (पहले की तरह) अगर चाहे तो किसी भी नये बाबू का काम चुटकी बजाते नहीं हथिया सकती। अनायास अंगुलियों से कोहनी और फिर अंगिया के भीतर तक चली गयीं झुर्रियां···मैल की एक मोटी परत···बिवाइयां···और फूला की मां का मन हुआ रो दे। खूब जोर से ! उसे पता ही नहीं है कि कब वह रामकटोरी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से फूला की मां हुई और कब उसकी कलाइयों और सारे शरीर को इन झुर्रियों और बिबाइयों ने घेर लिया·· फूला की मां को पता ही नहीं पड़ा था, और आज वह उन्हें देख भले पहली बार न रही हो पर महसूस जरूर पहली बार कर रही है···इसका कुछ अर्थ होता है !

पहले यह अर्थ···? पहले तो कुछ था ही नहीं—सिर्फ फूला की मां थी। हथेलियां हलकी गुलाबी···सारा बदन जैसे मक्खन की परत चढ़ी हो···

हथेलियां···मक्खन की परत ।

प्चु—प्चु—प्चु—

हथेलियां···बाहें···और गरदन ! किसन उसके शरीर को करीब-करीब मींड़ता हुआ चूमे चला गया था, 'रामकटोरी !'···कभी दांत भींचता था और कभी उसकी हथेलियों को दोनों हाथों में थामे अपने गालों पर फेरता था।

दिल्ली ब्याहकर पहली बार आयी थी वह !···नया देश···रंग-बिरंगे मरद औरत ! हर बात में आंखें चौंधियातीं उसकी। दिल्ली है !·· हजार-हजार पॉवर के लट्टू···हंसते-मुस्कराते लोग···मरदों से चिपकी जातीं औरतें ! रामजी मेरे ! स्टेशन से रेगरपुरा तक आते-न-आते रामकटोरी बिलकुल सपनलोक में चली गयी थी। कहां ग्वालियर की छोटी बांहों वाला शहर और कहां दिल्ली उसकी ससुराल ! शुरू-शुरू में रामकटोरी की आंखें टंगी-टंगी रहती थीं। शहर और शहर की हर बात उसे अजीब-सी लगती। एक बार मायके वापस गयी तो चार जनियों के बीच बैठकर वह-वह बातें सुनायी थीं इस शहर के बारे में कि उनकी आंखें भी टंगी रह गयी थीं।···और दिल्ली में फिर कोई नयी बात नहीं रह गयी। रामकटोरी ने मन, दिमाग और शरीर में दिल्ली शहर बसा लिया था।

जब शहर किसी में डूब जाय तो वह शहर में डूब जाता है। रामकटोरी के साथ भी यही हुआ। दिल्ली को उसने खुद में डुबा लिया और दिल्ली ने उसे। सास के पास दस घरों का काम था—साल-दो साल में सब उसे विरासत में मिल गया। किसन में अब पहले जैसी बात नहीं रही थी, हालांकि बात सब वैसी ही थी, पर रामकटोरी, किसन और उसके घरवालों के लिए कुछ भी नहीं थी। पर बाहर सब वैसा ही था।

हथेलियां···मक्खन की परत···

काम करने जाती रामकटोरी और मोहल्ले भर की हवाओं में एक चुनौती घोलती जाती। रामकटोरी सब देखती, महसूस करती और मन-ही-मन खुश होती···सब तरफ मोटी-मोटी आंखों के जाले तने हैं···हर जवान बांह आसमान में ठीक उसके सामने तैरती हुई पुकार रही है—आ ! आ !···रामकटोरी !··· और रामकटोरी चली जा रही है। उठी एड़ी की चप्पल···वसन्ती चूनर···

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शलवार-कुरती में ढंका इनकलाबी शरीर ! ··लगता है, अभी सारा बदन कपड़े फाड़कर बाहर निकल जायेगा और देखने वालों की सांसें भीतर-बाहर, जहां की तहां थमी रह जायेंगी।

रामकटोरी को यह अच्छा लगता।

सबको यह अच्छा लगता।

किसन को इस सबसे क्या करना? वह बुरी संगत में पड़ गया था। दिन भर देशी शराब में डूबा रहता। उसे पता ही न पड़ता कि रामकटोरी घर पर बैठी होगी—गुलाबी हथेलियां लिये, जिस्म पर मक्खन ओढ़े···रामकटोरी को लगता, कदली के हरे झाड़ पर पीलापन छाता जा रहा है ! किसन को खबर ही नहीं है ! होगी भी नहीं शायद···क्यों हो ? रामकटोरी उसके लिए पुरानी पड़ गयी है। यों शायद सब जनम रामकटोरी यहां सोचती रहती और दर्द पी जाती। वैसे ही जैसे कदली का झाड़ अपना पीलापन पी जाता है, पर कुछ ही दिनों में उसे अखरने लगा था, अकारथ पी रही है ! दर्द ! और किसन है कि दर्द दिये ही जा रहा है···

इधर कुछ दिनों से काम छोड़कर बैठ गया था वह, पर 'देशी' तो छूटी नहीं थी। रामकटोरी से कहता, "पैसे ला !" कहां से लाती रामकटोरी ? पर उसे लाने होते।···कुछ ही महीनों में हर घर से कई दिनों के पैसे एडवांस ले बैठी थी वह ! रोटी पर ग्रहण लगने लगा था। वसंती चूनर पर अब मैल की परत दीखने लगी थी और हथेलियों के गुलाबी रंग पर धीरे-धीरे एक सांवलापन घिरने लगा था···और किसन अब भी फरमाइश करता, "ला पैसे !"

"कहां से लाऊं ?"

"कहीं से भी !"

"···"

"नहीं लायेगी ?"

"···?" वह खामोश रह जाती।

लातें, घूंसे और फिर इनका एक सिलसिला···रामकटोरी का जीना दूभर हो गया और फिर एक दिन किसन ऐसे ही घर पहुंचा तो पुकारता ही रह गया, "रामकटोरी···ई-ई···! रामकटोरी···ई-ई !"

रामकटोरी नहीं आयी। थी ही नहीं। वह पड़ोस वाले भरोसी के घर में थी। रामकटोरी नयी-नयी आयी थी तो कहता था, "भाभी, किसन 'देशी' में डूब गया तो कहने लगा था, रामकटोरी और आज जब किसन घर आया है, रामकटोरी से पैसे उगाहने, तो कह रहा है—"कटारी ! देख तेरा घरवाला···"

"अब मेरा-उसका कोई मेल नहीं है।"

किसन ने सुना। थके ऊंट की तरह गरदन लटकाये लौट गया। क्या करता ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भरोसी हाथ-पांव में दुगुना है। काम करता है। बिरादरी में मान है उसका! कुछ दिनों किसन बस्ती में आता रहा था, फिर वहां से भी चला गया था। सुना था रामकटोरी ने, शहर में ही कहीं है और फिर वह शहर से भी गायब हो गया था। कहां? पता नहीं। पर याद को नहीं हटा पायी रामकटोरी। वह फूला के रूप में उसके पास थी। जब-जब देखती, लगता किसन पास ही खड़ा है, उसी पहले दिन की तरह।

औरत देहरी बदल जाय तो पांव बेकाबू हो जाते हैं। रामकटोरी के पांव भी बेकाबू हो गये थे। उसकी नजर उचटती थी···भरी-पूरी बस्ती···भरे-पूरे शरीर और फिर हर तरफ रारकटोरी के लिए बिछी हुई बांहें···

रामकटोरी ने अगली जिन्दगी पर रखा पहाड़ नहीं देखा था तब!··· बिलकुल नशे में थी। नशे की उमर! कोई बरगद आसपास कहीं होता तो छांह मिलती। जहां छांह दिखी रामकटोरी चली गयी। साथ में फूला···

खरचे भी बढ़े हुए थे। मिलता है तो क्यों न खर्च करे? रामकटोरी खूब खर्च करती। सिनेमा, चाट-पकौड़े, करोलबाग, कनाट प्लेस! राजधानी बन गयी थी। दूर-दूर कोने-कातर के आदमी झुंड-कें-झुंड सरकारी नौकरियों में बंधे शहर में डूबते जा रहे थे। रामकटोरी के पास काम की कमी नहीं थी। मशहूर था, रामकटोरी बहुत महंगा काम करती है। एक बाबू के यहां सिर्फ झाड़-पोंछ के पन्द्रह रुपये।

पन्द्रह रुपये? सुनने वाले हैरान होते! ऐसा कैसा काम?···बतलाने वाले मुसकरा देते, "रामकटोरी का काम ऐसा ही है?"

"भरोसी नहीं रोकता उसे?" बात जिस तरह कही जाती, उसी तरह समझी जाती।

"कैसे रोक सकता है?"

"क्यों?...दूसरा सही, पर उसका घरवाला तो है ही?"

"रामकटोरी कमाकर देती है!"

आश्चर्य और घृणा में लिपटे हुए सवाल खामोश हो जाते।

रामकटोरी कमाकर देती थी। भरोसी उसे नहीं रोक सका था। कैसे रोकता? वह ब्याहता तो थी नहीं? तिस पर उसके पांव बेकाबू, भरोसी तो क्या, खुद रामकटोरी के काबू में नहीं थे उसके पांव! जवान थीं हथेलियां··· मक्खन की परत···हवा की तरह जिधर रुख हो गया, बहती चली गयी थी वह! भरोसी सोचता, बैठे-बिठाये खिला रही है, क्या घाटा? रामकटोरी सोचती, वक्त-जरूरत के लिए एक खोटा सिक्का अंगिया की तह में पड़ा है, क्या बुरा?

आस-पास सौ किस्म की बातें होतीं। तानेकशी होती···रामकटोरी सह जाती। उसे ऐसा कभी न लगता कि सचमुच कुछ बात हो रही है।

क्या गलत था?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रामकटोरी ने महंगे दामों पर कुंवारे बाबुओं के काम सहेज रखे थे। दसियों घर···हर घर का काम कुछ ही मिनटों में निबटाकर वह आगे बढ़ जाती थी। इतनी फुर्ती और जल्दबादी में कि कोई सुने तो हैरान रह जाय ?

एक दिन···एक रामकटोरी···नौ घर···! फिर भी ढेर-सा वक्त रामकटोरी के पास जमा। रामकटोरी दसवें काम के लिए भी तैयार रहती थी, उसी तरह जैसे सातवें के वक्त आठवां लिया था उसने, आठवें के वक्त नवां।

"रामकटोरी, एक और काम ले सकती है तू ?" जिस बाबू के यहां काम करने जाती थी उनमें से एक ने पूछा था।

दसवां घर। रामकटोरी चुपचाप खड़ी रही थी। जाहिर था करेगी।

बाबू के पास सवेरे-सवेरे एक और बाबू आ गया था। रामकटोरी को बताया जा रहा था, "ये साहब अब इसी मोहल्ले में आ गये हैं। अकेले हैं। सवेरे तो इनका ऑफिस होता है, तू शाम को सफाई कर जाया करना !···यहीं, इस घर से तीसरे घर में !"

रामकटोरी ने स्वीकारात्मक ढंग से सिर हिला दिया था।

वे दोनों एक-दूसरे की ओर शरारत से देख रहे थे। रामकटोरी को आश्चर्य नहीं हुआ। आश्चर्य की क्या बात ? हमेशा ऐसा ही होता है। जब आठवें घर के बाबू ने उसे इस घर तक पहुंचाया था, तब भी ऐसा ही हुआ।

वे दोनों उसकी ओर देख रहे थे। रामकटोरी समझ गयी थी, गरजदार हैं। मुसकराकर नीचे देखने लगी थी वह।

"तो, कल से पहुंचेगी ?"

"हां, साहब !" रामकटोरी ने जवाब दिया था, "मगर महंगाई के मारे बड़ी परेशानी है, बाबूजी। अब पुराने रेट में काम नहीं हो पाता। पहले की बात और है। नया काम मैं बीस से कम में नहीं करूंगी।"

उन दोनों ने एक-दूसरे की ओर देखा। नया काम···नये रेट···मंजूर है।

"तू काम पर तो पहुंच।" नवें घर के बाबू ने कहा, "बीस क्या, तुझे पच्चीस ही पड़ा करेंगे।"

मुसकरा दी रामकटोरी—मंजूर है।

दूसरे दिन से दसवें घर पहुंच गयी थी वह। पहले दिन···दूसरे दिन··· तीसरे दिन···

दसवें घर का बाबू उतावला हो उठा था। रामकटोरी कमरे में झाड़ू मारती तो वह भीतर बैठा-बैठा जबरदस्ती सवेरे का अखबार मुंह के आगे किये कटोरी की आंखें और चेहरा पढ़ा करता। जब गैलरी की सफाई करती वह तो टहलता हुआ बाहर आ जाता। एक बार बोला, "रामकटोरी···?"

"···?" रामकटोरी ने नजर उठाकर देखा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"···।" बाबू ने गले का थूक निगल लिया। रामकटोरी ने बड़ी मुश्किल से हंसी रोकी। होंठों के कोनों पर आकर इस तरह रुक गयी थी जैसे फुलझड़ी जलते-जलते रह गयी हो। रामकटोरी काम में लग गयी तो बाबू ने फिर दबे स्वर में कहा, "रामकटोरी···!"

"हूं।" मुसकरा दी रामकटोरी। दब्बू कहीं का! बच्चा है बिलकुल। फूला की तरह।

"कुछ नहीं।" वह फिर अखबार में घुस गया।

कई दिन इसी तरह बीत गये थे। दो महीने बाद वह बाबू रास्ता खोज पाया था, "तू···तू सिनेमा चलेगी?"

कोई जवाब नहीं दिया था रामकटोरी ने। वह बगैर हां-ना किये सिनेमा चली गयी थी उसके साथ। महंगा टिकट···महंगी रामकटोरी···कई महीने बाद रामकटोरी के बदन को घेर पाये थे उसके बाजू। हमेशा यही होता था, इसी जगह। हर जगह, हर घर में।

बाबू लोग शादी रचा लेते थे और रामकटोरी नये काम ढूंढ़ लेती थी। शुरू-शुरू में उसे कुछ अजीब-सा लगा था, फिर रोज की आदत की तरह यह सब होने लगा था। बहुत दिनों तक होता रहा था और रामकटोरी को कभी संकोच के बादलों ने नहीं घेरा था। पर उस दिन वह पहली बार स्वयं को घिरी-घिरी अनुभव करने लगी थी। फूला को नहाते रोज देखा था उसने, पर उस दिन कुछ और ही बोध हुआ था उसे।

फूला ने सिर से पानी उंड़ेलने के लिए बांह ऊंची की तो रामकटोरी की नजर उसकी बगलों पर चली गयी।···सुनहरी-से कुछ बाल निकल आये हैं वहां। ···छाती तक फिसल आती हैं उसकी नजरें। फूला की छातियां उभर आयी हैं, इस तरह जैसे आंच पर चढ़ी हुई कोई चीज़ उफनने लगी है।

रामकटोरी को पहली बार अपने अकेलेपन का अहसास हुआ था। उस दिन शायद पहली बार उसे लगा था जैसे कोई ऐसी चीज़ होती है जो छिपानी चाहिए··· रामकटोरी अपने आप में सिमटने लगी है···दसियों घरों में फैला हुआ उसका बदन सिमटकर इस गन्दी बस्ती के टापरे में समाया जा रहा है···

ईश्वर न करे, फूला का बदन दसियों घरों में फैल जाय। यह बदन···उमर की नयी कोंपल, और अब बढ़ता ही जायेगा। और फिर बढ़ते-बढ़ते एक दिन रामकटोरी की तरह फैल जायेगा और इस बदन की शाखाएं इस घर को लांघकर बाबुओं के खूबसूरत कमरों में पहुंच जायेंगी।···

रामकटोरी वह दिन नहीं आने देगी। फूला का बदन उसकी तरह नहीं फैल सकेगा।···एक गमला बना देगी वह। कोंपल उसमें जा लगेगी और फिर वह किसी घर की शोभा हो जायेगा। रामकटोरी ने स्वयं को संकोच की मोटी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चहारदीवारी में घिरा पाया था और उसे लगा था--एक मालिन है वह।··· एक गमले की रखवाली करनी है उसे।

उसने गमला सजा दिया था और उसे एक घर के सिपुर्द कर दिया था उसने··· शोर-शराबे और हंगामे के बीच। फूला ससुराल चली गयी थी। रामकटोरी की ज़िन्दगी उसी तरह दसों घरों में फैली हुई कटती रही थी···कटती रही थी··· और न जाने कब कलाई से कोहनी और कोहनी से अंगिया के भीतर तक चली गयीं ये झुर्रियां···मैल की मोटी परत···बिवाइयां···

दसियों घरों में फैल गया एक बरगद···एक बूढ़ा पेड़। बेकार लगा है यह बूढ़ा पेड़! सारे मोहल्ले के घरों की मजबूत दीवारों को चीरता हुआ यहां-वहां, दूर-दूर तक फैला हुआ बूढ़ा पेड़।···रामकटोरी के घर छूटने लगे···

एक, दो, तीन···और फिर अब यह सिलसिला।

पारो जवान भी थी, फुर्तीली भी। इसी बस्ती की लड़की फूला की हमउम्र लाजपतनगर में ब्याही थी। मर्द से पटी नहीं सो चली आयी मायके—रेगरपुरा में।

पारो की मां ने उस दिन फूला की मां को रो-रोकर पारो का दुख-दर्द सुनाया था। संग में थी पारो। गेहुंआ रंग, बदन नये खिलौने-जैसा···

"बड़ी अभागन है पारो, करम फूट गये इसके!" पारो की मां कह रही थी, "निठल्ले ने ज़िन्दगी खराब कर दी इसकी! देखो तो सही, फूल-सी लड़की को कैसी बेदरदी से मारा है मरे ने।"

पारो ने पीठ पर उभरे नीले-नीले निशान बताये थे। घरवाला कुछ कमाता-धमाता नहीं था। पारो से कहा-सुनी हुई तो मारने-पीटने लगा और एक दिन भागकर मायके आ गयी थी पारो। मां-बाप ने कहा, "अब मत जा! यहीं रह, काम कर और जो दो रूखी-सूखी मिले, सो खा।" जानते थे, जवान है। किसी की आंख चढ़ ही जायेगी। ज़िन्दगी काटने का बहाना चाहिए, सो ढूंढ़ लेगी।

और पारो जम गयी।

रामकटोरी ने भी उस दिन यही राय दी थी, "ठीक है, बाई, लड़की को यहीं रहने दो। उस हरामजादे की तरफ भेजने की कोई जरूरत नहीं।"

"हां, बाई, रहेगी पारो!"

"रहनी चाहिए!"

और रहने लगी पारो।

रामकटोरी को पछतावा हुआ—क्यों कह दिया था उसने? पर न कहती तो भी क्या पारो यहां नहीं रहती? वह जरूर रहती। उसके मां-बाप ने तय कर लिया था। किसी को मोहल्ले में रहने से तो रोक नहीं सकती है रामकटोरी!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

पारो सब मोहल्ले पर मकड़ी के जाले की तरह तन गयी थी। रामकटोरी

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जी मसोसकर देखे गयी, एक के बाद एक पारो ने उसके काम छीन लिये थे। महंगे दामों वाले काम। वे काम, जिन्हें कभी रामकटोरी ने बड़े नखरों और अदाओं के साथ सिर पर पल्लू की तरह ओढ़ लिया था। पर अब वे सारे उसके माथे से सरके जा रहे हैं···रेशमी साड़ी की तरह! और सरक-सरककर सब पारो के माथे चढ़े जा रहे हैं···

क्यों न चढ़ेंगे? रामकटोरी और पारो में फर्क भी तो कितना हो गया है? रेशमी साड़ी की उमर नहीं रह गयी है रामकटोरी की···उमर है पारो की।

रामकटोरी घर की ओर लौट रही थी। और अब तक यह तय नहीं कर सकी थी कि पारो से कैसे सुलझे? पारो उसके तन का कपड़ा खींच रही है··· उसका माथा खाली होता जा रहा है···यानी रामकटोरी का भाग।

कोई सुलझाव नहीं है।

रामकटोरी स्वयं को अशक्त अनुभव करती है। कैसे रोक पायेगी पारो को? पहले-जैसी बात तो रह नहीं गयी है। सिर में एक तनाव-सा पैदा हो गया है उसके और उलझाव है कि ज्यों का त्यों कायम है।

राह में पारो मिली थी। कतराकर रास्ता बदल गयी। रामकटोरी का मन हुआ था, दौड़ पड़े और बाल नोंच ले। "हरामजादी! कुतिया!···" ढेर-सी गालियां दे और चेहरे पर थूक दे उसके!

पर रामकटोरी सोचती ही रह गयी थी, कर कुछ भी न सकी। उलटे बेबसी की हालत में उसे खुद पर झल्लाहट आने लगी थी और उसी झल्लाहट में वह टापरे पर आ गयी थी।

"अरे, तू?" रामकटोरी चौंक गयी। दिमाग से सारा अगला-पिछला उछलकर बाहर हो गया—दूर।

फूला चबूतरे पर बैठी हुई थी। साथ में एक बक्स। ससुराल से आयी है। यकायक कैसे आ गयी? रामकटोरी को अचरज हुआ। जल्दी-जल्दी दरवाजा खोला और जब भीतर आ गयी फूला, तो पूछा, "कैसे आयी?"

जवाब में फूला रो दी।

रामकटोरी समझ गयी, कोई बात है। शायद कुछ वैसी-ही बात जैसी पारो के साथ हुई थी। सिर पर हाथ फिराया, दम-दिलासा दिया तो फूला ने हिचकियां ले-लेकर सब बता दिया, "वह मारता है। सास-ननद से पटती नहीं है।···सराबी है।"

रामकटोरी एक क्षण चुप रही, फिर विद्रोह का भाव पैदा हुआ उसके मन में। मारता है, सराबी है, बाकी घरवाले भी गत के नहीं!···उसने देखा, फूला का चेहरा कुम्हलाया हुआ है। और जैसे-जैसे उसने फूला की ओर देखा, वह उसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहले से ज्यादा कमजोर, पीली और टूटी हुई नजर आने लगी।

"मत जा अब ! रह यहीं !" उसने उसे दिलासा दिया, "कुत्ते कहीं के !" उसने फूला की ससुराल वालों के नाम एक गाली वसीयत की और देर तक फूला को समझाती रही, "दो रूखी-सूखी जो मैं खाती हूं, सो तू खा। रह आराम से ! ऐं ?..."

और जब फूला की रुलाई रुक गयी तो रामकटोरी ने उसे अपने हाथ से बनाकर ताजी रोटियां खिलायीं। फूला जल्दी ही सामान्य स्थिति पर आ गयी थी। बिलकुल बच्ची है— रामकटोरी ने सोचा, भूल गयी सब !...

और रामकटोरी के मन में चिन्ता फिर आ समायी। पारो...रेशमी साड़ी ...उघरता हुआ माथा...कैसे सुलझेगी उससे ? उसकी नजर फूला पर जा ठहरी।

फूला...बिलकुल रामकटोरी के बीते दिनों-जैसी ! बिलकुल वही ! हथेलियां मक्खन की परत...

सुलझाव मिल गया उसे। अब भुगत लेगी पारो से ! समझती क्या है वह ? फूला हर बात में दस गुनी है उससे। उसने पारो और फूला को दोनों आंखों में तौल डाला। फूला भारी है। हर तरह से भारी है। एक के बाद एक सारे काम लौटा लायेगी। कमबख्त पारो ! रामकटोरी के तन से कपड़ा उतार रही थी... मूरख !

रामकटोरी भीतर-ही-भीतर हंस पड़ी। उस सारे दिन उसी तरह खुशी रही। शाम को काम पर जाते समय भी वह खुश थी। मन हलका हो गया है। कोई उलझाव नहीं है। पारो से मुलाकात हुई थी उसकी। उसने खुले-खुले और हलके मन से उससे बातें की थीं। मगर पारो चिन्तित थी। उसे मालूम हो गया था, फूला ससुराल से झगड़कर वापस आ गयी है, और वह वापस आ गयी है तो यहीं रहेगी और यहां रही तो एक-एक कर उसके काम...

रामकटोरी ने पारो के चेहरे पर लिखी हर उलझन पढ़ ली थी और मन-ही-मन खुश हुई थी। हरामजादी, न जाने किस अप्सरा का औतार समझती थी खुद को !

रामकटोरी जब शाम को घर निबटाकर टापरे पर लौटी तो रात हो गयी थी और रास्तों पर सरकारी बत्तियां जल उठी थीं। देहरी पर पांव रखते ही वह हैरान हुई। फूला किससे बोल रही है ?...यह मरदानी आवाज...? वह जल्दी-जल्दी भीतर आ गयी। फूला ने उसे देखकर परदा कर लिया। घरवाला आया है उसका। रामकटोरी का दामाद !

रामकटोरी ने सीधे मुंह बात नहीं की। दामाद ने तरह-तरह से कसूर माना, पर रामकटोरी बार-बार कहती रही, "नहीं जायेगी फूला ! नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
जायेगी !" पर जब फूला ने ही फुसफुसाकर कह दिया, "इस बार और देख लेती हूं, मैया !" तो रामकटोरी चुप रह गयी। बोली, "ठीक है। मैं तो चाहती हूं, तुम दोनों खुश रहो। जनम-ज़िन्दगी के साथी हो। मेरा क्या, दो-चार साल और काटने हैं, सो काट लूंगी !" यह कहकर वह चबूतरे पर आ गयी थी। उसने वहीं बिस्तरा मंगवा लिया था और रात को देर तक हलके मन से नींद ली थी। सुबह एक बार फिर पारो के ख़याल ने उसे छेड़ा था, पर परवाह नहीं की उसने। फिलहाल वह खुश थी कि फूला और उसके घरवाले में समझौता हो गया है···और एक लम्बी ज़िन्दगी उन्हें काटनी है। इज्जत-आबरू से काट लेंगे···रामकटोरी का क्या है, दो-चार साल और···

और इन दो-चार सालों के लिए क्या उलझाव और क्या सुलझाव···!

१९६७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संच

बारह बजने में बीस मिनट और हैं।

रत्ना ने डरते-डरते चेहरे पर से चादरा हटाया। पास की चारपाई पर पड़े हुए मुकुन्दराव की ओर देखकर जब वह आश्वस्त हो ली कि वह सो गया है, तब उसने घड़ी देखी। टिक्···टिक्···टिक्···रात की खामोशी को चीरता हुआ, कमरे में बहा जा रहा यह एकमात्र स्वर रत्ना को कुछ अनहोना-सा लगा।

उसने संदेहपूर्वक मुकुन्दराव को दोबारा देखा, पहली बार के दृश्य से मिलान किया। वह शरीर को ठीक उसी तरह डाले हुए है न, जैसा कि रत्ना ने पहली बार में देखा था ?

सब कुछ ज्यों-का-त्यों था। तकिए और सिर के बीच दबा उसका बायां हाथ ···चादरे को दबाए हुए दोनों पैर···पुराने, कच्चे मकान में चूहे के बिल की तरह खुला मुंह···ऊंचे परदे की तरह पुतलियों पर पड़ी हुई अधखुली पलकें···मुकुन्दराव सो रहा था। रत्ना ने विश्वास कर लिया कि वह सो रहा है, फिर यह सोचकर वह जरा चिन्तित हो आयी कि पता नहीं, इसकी नींद पर्याप्त गहरी है या नहीं। गहरी नींद में यह खर्राटे भरता है और खर्राटे अभी शुरू नहीं हुए···

बीस मिनट बच रहते हैं। उसके बाद खर्राटे शुरू हो जाने चाहिए। तब रात की खामोशी टूटने लगेगी और घड़ी की नाजुक आवाज को दबाती हुई वह प्फी-ई-ई···प्फी···ई-ई कमरे में फैल जाएगी। गहरी नींद में मुकुन्दराव कैसा अहसास देता है, जैसे धड़ से ऊपर चेहरे की जगह एक अल्सेशियन कुत्ते का मुंह रखा हो··· हूं···हूं···हप्फ···हप्फ···!

सहसा रत्ना का मन हुआ था, उठे। धीमे से किवाड़ खोले और बाहर आंगन में रखी हुई कुल्हाड़ी लाकर इस कुत्ते वाले चेहरे को फाड़ डाले।

अगर बालाजी दस-पांच दिन और देर करता तो शायद रत्ना से यह हो जाता। इस कुत्ते वाले चेहरे को वह कुल्हाड़ी या किसी भारी पत्थर से कुचल ही डालती···गिच्च···गिच्च···! खून से सन जाता वह ! कुछ न बचता फिर। न वे जलती और घूरती हुई आंखें, न खुर्राहट के साथ भिचते हुए दांत···

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर अब क्या है ? बीस मिनट···और वह कुत्ते वाले चेहरे से दूर हो जाएगी !

रत्ना उठी। फिर से घड़ी देखी। बीस नहीं, अब सिर्फ दस मिनट हैं··· बेबसी और ऊब में लिपटी हुई एक गहरी सांस खींचकर वह फिर चारपाई पर जा लेटी। मुकुन्दराव को देखा। वह सो रहा है···और उसकी नींद अब गहरी भी हो गई है···फ्फी-ई-ई···फ्फी···ई-ई···उसके नथुने फूलने-फैलने लगे हैं। दस मिनट होते-न-होते, रत्ना के निकलते-न-निकलते, जरूर वह और भी गहरी नींद में डूब जाएगा···घुर्र···घुर्र-र···

कमरा बंद है चारों ओर से। क्रमवार पहली, दूसरी, तीसरी और चौथी दीवार···उसकी नजर दरवाजे पर ठहरी। इसे खोलते वक्त बहुत होशियारी बरतनी पड़ेगी। कभी-कभी यह चरमराने लगता है। सिटकनी के पास से कुछ ऊपर उठाकर खोलना होगा। उसने दिन में ही सब-कुछ सोच लिया था। दरवाजा खोलने का दो-तीन बार रिहर्सल भी कर लिया था। फिर वह तैयारी में लग गई थी। बालाजी ने आज ही रात का वक्त दिया था। घर के सभी लोगों की निगाह बचाकर उसने अपनी जरूरत के कपड़े बिस्तरे के नीचे दबा लिये थे। दो बनारसी साड़ियां···ब्लाउज···चोलियां···सब···

उसने बिछौने पर पैर रगड़कर उन्हें टटोला। हैं···ठीक से रखे हुए हैं। चारपाई के नीचे की ओर झुककर उसने चप्पलें देख लीं। नयी-निकोर···लालटेन की नीची की हुई बत्ती बहुत मद्धिम रोशनी दे रही है, लेकिन तो भी ये चप्पलें कैसी चमक रही हैं ! एक साल से ऊपर हो गया इन्हें। यदि अकसर इस्तेमाल की जातीं तो शायद फट चुकी होतीं, पर उनका कुछ नहीं बिगड़ा है। बिलकुल नयी हैं। एक साल···कुछ महीने ऊपर ! रत्ना ने गहरी सांस खींची। इतने वक्त में वह कहीं बाहर नहीं गई। एक-दो मौकों को छोड़कर इस घर से निकलती ही नहीं। ये चारों ओर खड़ी हुई ऊंची-ऊंची दीवारें—बिलकुल एक डिब्बे की तरह ! हरदम इस कमरे में और इसके इर्द-गिर्द एक कुत्ता घूमता रहा है। रत्ना कहां जाती ?

उसने फिर घड़ी पर निगाह डाली। बालाजी ने कहा था, "ठीक बारह बजे मैं बिस्वनाथ बाबा के मंदिर पर पहुंच जाऊंगा। तेरे कूं जरा भी वक्त बरबाद नेईं करने का ! समझी क्या ?"

"समझ गई !" रत्ना बोली थी, "ठीक बारह बजे !"

"हां !" और बालाजी 'पुड़िया' देकर चला गया था। देव के लिए फूलों की 'पुड़िया' लेकर वह रोज सुबह तड़के आया करता। इतनी सुबह कि तब तक घर में कोई जागा नहीं होता था। न सखूबाई, न मारोती और न मुकुन्दराव—अल्सेशियन कुत्ता···!

बालाजी मंदिर पहुंचने ही वाला होगा। रत्ना को चलना चाहिए। उठने से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहले उसने चौकन्नेपन से चारों ओर देखा। कुछ नहीं है···पसरा हुआ कुत्ता···घुर्र·· घुर्रर···बीच-बीच में टिकटिका उठती घड़ी···और डरी हुई उदास रोशनी। वह धीमे-धीमे चारपाई से उठी, बिस्तरा उलटकर साड़ियां-ब्लाउज निकाले, झुककर चप्पलें उठा लीं, फिर दबे पांव, जुगत से दरवाजा खोलकर, आंगन में आ गई।

सिर उठाकर देखा उसने। ऊपरवाले कमरे में मारोती और सखूबाई सो रहे होंगे—उसके देवर-देवरानी। आंगन पार करती हुई वह लौट-लौटकर पीछे देखती गई। दिल जोर से धड़कने लगा था। इतनी जोर से कि लगा, उछलकर सामने आ गिरेगा···और तभी वह कुत्ता-आदमी दरवाजा खोलकर बाहर निकलेगा। लार गिराता, हांफता हुआ···उसे झिंझोड़ डालेगा! हूं···हूं···हफ्फ···मेरे कूं मालूम था, ये होने का···एक-न-एक दिन जरूर होने का!···और गड़ाप से उस गिरे हुए दिल को खा जाएगा!

आंगन पार कर लिया उसने। बढ़ी हुई धड़कन कुछ कम हुई। पगडंडी आते-आते कुछ और तसल्ली मिली। हाथों से थमी हुई चप्पल नीचे गिराकर उसने पैर डाल दिए। चाल में तेजी बनाए रखी। बालाजी इन्तजार कर रहा होगा··· बिस्वनाथ बाबा का मंदिर, उधर—बिलकुल गांव-पार है!

वह कुछ-कुछ हांफने लगी थी। पगडंडी पर आड़ा-तिरछा कदम पड़ता और घास-फूस के सूखे छोर चुभ जाते। चौंककर रत्ना चारों ओर देख लेती। दूर तक अंधेरा फैला हुआ था—चुप्पी की तरह डरावना और काटता हुआ, फिर भी रत्ना को वह अच्छा लगा।

एक साल और कुछ महीने ऊपर हो गए, जब वह इस गांव में आयी थी। तब से आज तक पहली बार वह खुले आकाश के नीचे, यों अकेली कहीं जा रही है। कोई दीवार उसके आस-पास नहीं है···और वह गुर्राहट दूर, बहुत दूर, धीमे-धीमे डूब रही है···घुर्र···घुर्रर···रत्ना बढ़ी जा रही है। बाबा बिस्वनाथ का मंदिर पास आ रहा है···आदमी-कुत्ते का वह चेहरा गायब हो गया है, जैसे अंधेरा एक बाल्टी में भरा हुआ हो और मुकुन्दराव ने उसमें मुंह डुबो दिया हो···

सुबह उठेगा मुकुन्दराव। रत्ना नहीं होगी। सारे घर में तलाशी···अब क्या करने का?···मारोती और मुकुन्दराव दरवाजा बन्द कर सलाह करेंगे···गांव-खेड़े में खबर फैल जाएगी—रत्ना नहीं है। पटेल मुकुन्दराव दरवाजा बन्द कर फुस-फुस रो रहा है। वह, जो हर घर में—सारे खेड़े (गांव) में, भौं-भौं करता हुआ मुंह मारता फिरता था। वेड़ा (पागल) नेईं तो! रत्ना ने उसे कोसा और चलती गई···फिर पता लगेगा—आज देव की खातिर फूल की 'पुड़िया' भी नहीं आयी!

"क्यों, बालाजी कहां मर गया? ऐसा माली हमारे कूं नेईं होने का! पूजा-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाठ वाला घर है। 'पुड़िया' रोजीना मांगता !"

"वह गांव में नेईं है।"

"किदर गया ?"

"बस, नेईं है !"

"पण काल तो था। 'पुड़िया' दे के गया था।"

"काल तो रत्ना भी थी। बिस ने 'पुड़िया' ली थी।"

"आज से दोनों नेईं हैं ! भाग गए ! स्साला 'तमाशा' वाला औरत ! ऐसा औरत घरेलू नेईं होने का ! नेईं-नेईं ! ओ स्साला मुकुन्दराव मूरख !···उसका बोड़का में घास ! 'तमाशा' वाला औरत काए कूं लाया ?"

उस खामोश अंधेरे में रत्ना बरबस हंस पड़ी···

इन गांवों के आसमान में बहुत-सी तमाशा-पार्टियों के नाम घुले हुए थे। गुलाबाबाई की पार्टी, रुक्मिणीबाई की पार्टी, मेनकाबाई की पार्टी···पर इन सबसे अलग एक नाम था—कावेरीबाई की पार्टी !

कावेरीबाई की पार्टी का मतलब होता था एक जबर्दस्त भीड़···दूर-दूर, दसियों कोस के आदमियों की पंडाल में जुट आयी भीड़ ! सातारा तालुके से लेकर वर्धा तक मशहूर थी कावेरीबाई की पार्टी। पार्टी माने संच ! संच में दो हीरे—रत्ना और माला ! इन दोनों का मतलब होता था—सातारा से वर्धा तक फैला हुआ आहों का कोहरा···ठंडी सीत्कारें—मार दिया हंसनियों ने ! हंसनियां शेरों का कत्ल करती थीं। बगैर चाकू-छुरे ! सांझ ढलती, पंडाल के बाहर शादी का-सा शोर फैल जाता। 'दे भई रुपए का···रुपए का नहीं है ?···अच्छा-अच्छा, दो का दे···दो का भी नहीं है ?···खलास ! यार, पांच का दे ! दस कोस चलके आए हैं तो यों ही थोड़े लौट जाने का ?'

रात के आठ बजते-बजते पंडाल भीड़ से भर जाता। ढेरों फरमाइशें होने लगतीं। स्टेज चौड़े-चौड़े तख्तों को जोड़कर बना होता। गुलाबी चादरें परदों की जगह लटकी होतीं। ऊपर से खुला मंच—ठंड का मौसम हो तो भी खुला। देखने वाले लिहाफ तक साथ ले आते। कान भारी-भारी फैटों में बन्द, आंखें स्टेज पर गड़ी हुई—कील की तरह ! पांच-दस मिनट में ही दोनों हंसनियां स्टेज पर उतर आएंगी···छन्···न्न्···न्···!

ऊई रे···!···हुईश्श...शुईश्श—!

जादूगरनियां ! कावेरीबाई के संच की जादूगरनियां ! पतली, चुभती हुई, तलवार जैसी भौंहें···ठेठ ठर्रे का नशा देने वाली आंखें···हर कदम के साथ थिरकते उभार···जैसे सारे पंडाल को बुलौवा—देखते क्या हो ? आओ··· आओ···!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सातारा से वर्धा तक हर तालुका जानता था कि कावेरीबाई अब थकने लगी है, लेकिन तब भी उसके संच में भीड़ कभी कम नहीं हुई। दरोगा, तहसीलदार, पटेल और बड़े-बड़े अफसर पांच रुपए की लाइन में ऐसे खामोश बैठे रहते, जैसे पालतू, सफेद खरगोश···दुनिया कैसी रंगीली है! ये गुलाबी परदे···ये घुंघरू··· चुनौतियों पर चुनौतियां!

एक बार संच मुलताई गांव में गया था तो किसी ने कावेरीबाई से कहा, "तू गई काम से! वह बात नेईं अब!" और कावेरीबाई ने समझ लिया था कि संच का मंच अब उसे दूर फेंक रहा है। अब दर्शकों की सीटियां उसके शरीर के आन्दोलनों का स्वागत नहीं करेंगी।

और कावेरीबाई ने माला के पैरों में घुंघरू डाल दिए—उतर जा संच में! देखती हूं, कैसे मेरी बात गई?

माला—रत्ना की बड़ी बहन—उतर गई थी 'तमाशे' में। छुम···छन···छन् न्न्···

माझी फुलांची वेणी
पहा-पहा वाहिणी···
कसी छान-छान···
(मेरी फूलों की वेणी, देख भाभी, कैसी प्यारी···)

पंडाल में हाय उछल गई···जीयो कावेरीबाई···! माला हंसनी···ऊई रे··· हुईश्श···शुईश्श···! सीटियां और उनके बीच गुलाबी परदों के सामने तिरता हुआ माला का शरीर···फूलगुंथी वेणी···पलक गिराती, मुसकराती, गोली की तरह धांय से मार जाने वाली शरारतें···

एक ओर स्टेज के किनारे खड़ी रत्ना देखती रहती। सबके मुंह पर माला का नाम···आंखें सिर्फ माला पर! रत्ना भी एक दिन ऐसे ही स्टेज पर उतरेगी और ये सारी हायें उसकी होंगी—सिर्फ उसकी।

एक दिन 'तमाशा' खत्म होते ही वह माला के पास आ, पूछने लगी थी, "तेरे कूं डर नेईं लगता?"

"डर कसला?" वह मेकअप धो रही थी। तीखी भौंहों के किनारे···गालों पर गुलाबी रंग की चिकनी परतें।

"सारे पंडाल के लोक तेरे कूं देखते हैं। तेरे से करते हैं हुईश्श···शुईश्श··· कैसा लगता है तेरे कूं?"

"छान, भौत अच्छा।"

"समझ, कोई तेरे कूं पकड़ ले···तू आंख मारती है ना भीड़ में···आज मैंने देखा, बिस टोपीवाले कूं तूने भौत बार आंख मारी।"

माला खिलखिलाकर हंस पड़ी। बोली, "वेड़ी (पगली) है तू। आंख मारने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से अपना क्या जाता ? ओ टोपीवाले कूं देखा ना तूने, जैसा-जैसा मैं आंख मारी, बिस का दस-दस का नोट स्टेज पर आ गया ।"

रत्ना चुप रही। फिर भी मन में निश्चय कर लिया था उसने—वह जब भी 'तमाशे' में उतरेगी, ऐसा नहीं करेगी। यह तो जेब काटना है बिलकुल। एक आंख मारी और दस का नोट। छिः-छिः ! आरट सीधा होना। नाच के खुश करना हमारा काम। किसी का धन लूटना आरट नेईं।

सचमुच उसे माला और कावेरीबाई के तरीके पसन्द नहीं थे। यह भी पसंद नहीं था कि शरीर बहुत मटकाया जाए, फालतू मुसकराया जाए, इशारे किए जाएं—गंदे। आरट तो वह कि देखने वाले ठगे-से रह जाएं—कोई आवाज नेईं। कोई हुईश्श-हिइश्श नेईं। स्टेज पर वह उतरेगी जरूर, पर अपने ढंग से।

काफी दिनों तक वह इसी तरह सोचती रही थी। 'तमाशा'—संच माने आरट। नाचने-गाने का आरट। रोज रात को नौ-दस बजे से बारह बजे तक नाचते रहो। खुशी के पैसे हैं।

पर उस दिन मालूम हुआ था कि संच माने कुछ और भी होता है।

मेकअप उतारकर माला ने दूसरा मेकअप किया था। बहुत हल्का, जैसे पूना के किसी बाजार में घूमने जा रही हो। रत्ना उसके बिलकुल पास खड़ी देखती रही थी, हैरान। यह तो सोने का वक्त है। अभी-अभी स्टेज से उतरकर थकी-थकाई चली आ रही है यह। फिर मेकअप ?

वेणी दोबारा गूंथी गई। पहला गजरा मुरझा गया था। कावेरीबाई ने दूसरा लाकर दिया। माला ने मुसकराते हुए उसकी लट वेणी पर बिठाल दी। होंठों पर हल्की लिपस्टिक···आंखों की कोरों पर काजल की चुभती हुई पतली रेखा।

"किदर जाने का, माला ?" रत्ना ने पूछा।

"कैसी लगती हूं ?"

"छान (सुन्दर)। पण जाने का किदर ?"

माला उठ खड़ी हुई, जैसे रत्ना की आवाज सुनी ही नहीं उसने।

"मेरी बात का कोई जवाब नेईं ? इस कूं नखरे आ गए हैं।" रत्ना ने फिर कुछ नहीं पूछा।

कावेरीबाई भीतर आयी। निढाल सौंदर्य का कठोर चेहरा। बहुत जल्दी में थी शायद, "तेरे कूं कितनी देर और है ?"

"कुछ नेईं।"

"तो चल।"

कावेरीबाई चली। पीछे-पीछे माला। रत्ना उनके साथ हो ली। किधर जा रही हैं ये ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाहर आकर कावेरीबाई ने बगल वाले कमरे की ओर इशारा कर दिया। माला भीतर चली गई। रत्ना ने कुछ नहीं पूछा। किसी से नहीं पूछा। कुछ है और बहुत गलत है—उसने समझ लिया था।

देर तक नींद नहीं आ सकी थी उसे। कावेरीबाई, सारंगीवाला, पेटीवाला, तबलावाला—सब सो चुके थे। रोशनी नहीं थी। सन्नाटा कपड़े के लम्बे थान की तरह फैला हुआ था···और इसके बावजूद रत्ना को लगा, जैसे एक शोर उसके आसपास घिरा हुआ है। स्टेज पर माला की जगह स्वयं वह खड़ी हुई है। आवाजें और फब्तियां हाथ बनकर उठती हैं और उसके कपड़े नोंचने लगती हैं··· साड़ी·· ब्लाउज···सब चिथड़े होकर बिखर जाते हैं। स्टेज पांच-पांच और दस-दस के नोटों से भरा हुआ है···नोट उड़ते हुए रत्ना के जिस्म पर चिपकने लगते हैं···

आरट ऐसा नेईं होने का। रत्ना नहीं करेगी यह सब।

नेईं-नेईं···। एक मेकअप के बाद दूसरा···एक 'तमाशे' के बाद दूसरा···नेईं होने का।

ऐसा बहुत-कुछ था, जिसे रत्ना नहीं होने देना चाहती थी, पर कावेरीबाई उसकी मां थी और माला बहन। रत्ना को भी कुछ दिनों बाद ही स्टेज पर उतर जाना था।

वह उतरी।

और पहले ही दिन कावेरीबाई व माला ने सलाह दी, "तेरे कूं अपना बदन जरा और तोड़ना चाहिए।"

"कैसा ?"

"ऐसा !" माला ने कमर हिलाकर बताई। इस बेहयाई में रत्ना ने अपने लिए उपहास का भाव ही अनुभव किया, लेकिन वह देखती रह गई। इससे इनकार नहीं किया जा सकता था कि माला की कमर में लोच था। पंजों से गर्दन तक मानो एक डोर आवारगी के साथ हवा में झूल रही हो···

"मेरे कूं नेईं जमता !"

"जमेगा कैसे नेईं ? कोशिश होना, सब जमता है !"

रत्ना ने दूसरे दिन कोशिश की। तीसरे और चौथे दिन भी···फिर सब जम गया। कमर, उंगली, सीना, मुसकराहटें और पलकें—सब ! और शायद माला से पचास गुना ज्यादा ! कावेरीबाई के संच पर टिकट बढ़ गया। एक का डेढ़, डेढ़ का दो, पांच का दस !

जमा सब-कुछ पर रत्ना उखड़ गई। उसे ऐसी जिन्दगी नहीं चाहिए थी। वह थिरकते कदमों व मुसकराहटों के बीच पंडाल में ढूंढ़ने लगी—है कोई, जो उसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने घर में ले जाए ? यह हुईश्श-हुईश्श, यह सराहना, वाहवाही, छींटे—कुछ नहीं चाहिए था। चाहिए था एक आदेशपूर्ण स्वर ! "हाय, रत्ना !···ओय, रत्ना ! मार दिया रे, हंसिनी !" यह सब नहीं। एक सपना बुन बैठी थी वह। पंडाल का नहीं, घर का। पेटी-तबले की आवाजों का नहीं, बर्तनों का। कोई भी हो, भला मानस हो। पंडाल में बैठे इन हजार चेहरों में से कोई एक··सिर्फ एक···

देखने वालों को देखते-देखते थकने लगी वह। कोई नहीं आया। बहुत दिनों तक कोई नहीं आया। शायद कोई आएगा भी नहीं। 'तमाशा' में मुसकराहटें बेचने वाली के पास भला कोई भलामानस आएगा ? लोगों के लिए नाचती-नाचती थक जाती वह···अपने लिए कुछ खोजते-खोजते उससे भी कई गुना ज्यादा···

टूटने लगी रत्ना ! मुरझाने-सी लगी। तब एक दिन माला ने उसे कुरेदा था, "तेरे कूं काहे की फिकर लगी है ?"

"कुच्छ नेईं !"

"कुच्छ तो ?"

"अपन को संच में काम करना नेईं जमता !"

"संच में काम करना नेईं जमता ?" माला हंस पड़ी, "तो क्या तेरे कूं दड़बा होना ? लग्न होना ? उई-ई···!"

रत्ना जवाब न दे सकी। माला शादी को दड़वा समझती है ! समझती रहे ! रत्ना को तो इस संच में वेश्यापन ही नजर आता है···

"जरूर तेरे कूं लग्न होना ! पण तू वेड़ी है ! बिलकुल पग्गल ! 'तमाशा' वाला औरत घर का औरत नेईं होता !"

"औरत-औरत सब एक बरोब्बर !" रत्ना ने उत्तर दिया।

"नेईं ! घर का औरत अलग, 'तमाशा' वाला अलग ! पीने का पानी और नहाने का पानी एक बरोब्बर होता क्या ? नहाने का पानी सिरफ नहाने का खातिर ! आधा बाल्टी से इसने नहाने का, आधा से बिसने, आखीर में खलास हो जाने का। 'तमाशा' वाला औरत का ज़िन्दगी एई !" कहते-कहते माला की आवाज कांप गई। पल-दो पल वह चुप रही, फिर अचानक ठठाकर हंस पड़ी और बोली, "तेरे कूं ऐसा ख़याल छोड़ देने का !"

लगा था, ठीक कहती है माला, पर रत्ना अपने कल्पना-महल से बाहर न आ सकी। शायद इसलिए न आ सकी कि आना वह चाहती नहीं थी। झन्न्न्···मुसकराहट···घुंघरू···झपकती पलकें···खोज···इतने-इतने चेहरे नहीं—चाहिए बस एक।

माला ने कावेरीबाई को बतला भी दिया, "रत्ना कूं लग्न होना, ए संच वाली ज़िंदगी बिस के नेईं पुराणी !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"लग्न हर औरत कूं होना।" कावेरीबाई की झुर्रियां गहरा गई थीं, "तेरे कूं होना, रत्ना कूं भी होना। इसमें मेरे कूं क्या विरोध ?"

"पर रत्ना कूं अलग किसम का लग्न होना। संच वाला नेईं !"

"कैसा ?"

"बिस कूं अच्छा औरत का माफिक लग्न होना। कोई की घर रहने का। ऐसा देश-देश संच में नेईं घूमने का। ए डानस-वानस भी बंद !"

"आई-ग् ?" कावेरीबाई चौंककर हंसी, "संच का औरत इस माफिक सोचता है ? लग्न हम भी किया था, पण हम दड़बे में नेईं रहा। अपना पेशा किया। ए संच चला के तुम लोक कूं पाला। आदमी कूं ले के घर में बन्द हो जाने का लग्न अलग, संच के साथ आदमी कूं रखने का अलग ! रत्ना जरूर लग्न करेगी, पर संच वाला।"

"पर बिस कूं···" माला का स्वर शिकायत का नहीं, सिफारिश का था। कावेरीबाई ने डांट दिया, "पर-वर कुछ नेईं···"

साल हो गया। कुछ महीने ऊपर भी। रत्ना ऊहापोह में संच की ज़िंदगी जी रही थी कि तभी···

···कि तभी मुकुन्दराव पहली बार 'तमाशा' देखने आया—मुलताई में। कुछ दिनों के लिए किसी काम से आया था। कावेरीबाई की पार्टी की दूर-दूर तक तारीफ सुन रखी थी, पहुंच गया देखने। पहले दिन, दूसरे दिन और फिर तीसरे दिन भी। इतने दिन कोई लगातार पहुंचे तो 'तमाशा वाला औरत' को पहचान लेना पड़ता है। मुकुन्दराव पांच-पांच के नोट भी तो फेंकता था ! पहले ही दिन पहचान लिया गया।

चौथे दिन रत्ना ने स्टेज पर कदम रखते ही देखा, मुकुन्दराव ठीक सामने बैठा हुआ है। सफेद झकझक खादी की धोती, कुर्ता, टोपी—जैसे कोई बड़ा नेता। वह मुसकराया। रत्ना भी मुसकरा दी। अभी फेंकेगा पांच-पांच के नोट ! सारे पंडाल में एक वही चमक रहा था। रोज वह धुले कपड़े पहनता, दाढ़ी बनवाता और जब तक रत्ना स्टेज पर रहती, एकटक देखता रहता।

जब रत्ना का नाम लेकर नीलकंठ सारंगी वाले ने कावेरीबाई के हाथ में पांच-पांच के तीन नोट थमाए तो कावेरीबाई ने रत्ना को चेतावनी दी, "तेरे कूं बिस का खास ख़याल रखने का !"

"कोण का ?" घुंघरू खोलती हुई रत्ना ने सब-कुछ जानते हुए भी पूछा।

"ओई पांच वाला।"

"कोण ?"

"ओई सफेद टोपी वाला।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"भोत-सा लोक सफेद टोपी लगाता है, आई !" रत्ना ने घुंघरू खोलकर नीलकंठ की ओर फेंक दिए। नीलकंठ ने उछलकर उन्हें झेल लिया। बोला, "उसका नाम मुकुन्दराव···इदर से पांच मील दूर खेड़े (गांव) का पटेल ! मोटा मुर्गा है, रत्नाबाई ! बिस कूं सम्हालने का !"

"हां, बिलकुल सम्हालने का !" कावेरीबाई ने समझाते हुए कहा, "काल से बिस कूं खास तरह देखने का !"

"कैसा ?" रत्ना ने मुसकराकर पूछा, हालांकि वह जानती थी, 'सम्हालने' का अर्थ क्या है और 'खास तरह' कैसे देखा जाता है।

और उसने मुकुन्दराव को सम्हाल लिया—उस तरह नहीं, जिस तरह कावेरीबाई चाहती थी। उसने उसे अपने ढंग से सम्हाला। स्टेज पर उतरते ही वह लगातार मुकुन्दराव को देखे गई—पंडाल में उछलती आहों, फब्तियों और इशारों की परवाह किए बगैर।

फटा टोप लगाए कामेडियन चिमन ने चुटकुला पैदा करने की गरज से सीने पर हाथ ठोंककर उसके सामने लोटते हुए कहा; "रत्ना राणी ! तेरी खातिर हम सब घर-द्वार छोड़ के आया। सात घर वाली और नौ बच्चा लोक छोड़ा, तीन खेत, दो भाई छोड़ा, एक घर और दो बाप···नेईं-नेईं···मिस्टेक हो गया ! (माथा ठोंककर) एक बाप और दो घर छोड़ा···"

"क्या होना तेरे कूं ?" रत्ना ने इठलाकर पूछा।

"कुच्छ नेईं, बस, तेरे से लग्न करने का !"

"अरे, परे हट ! मेरे से लग्न ! बदन सम्हाल अपना ! कैसा ककड़ी के माफिक ! हम लग्न करेगा, पण किसी मरद पट्ठे से !"

"खी···खी···ही-ई-ई···!" चिमन झेंपता हुआ हंसता है। पंडाल में सीटियां बरसने लगती हैं। क्या ऊंचा मजाक ! बदन कैसा ? ककड़ी के माफिक ! वाह-वाह ! जीयो-जीयो रत्नाबाई, तुम्हारे कूं हमारा अक्खा लाईफ लग जाने का ! ···खूब चोट मारा साले कूं !···रत्ना···बिजली को कौंध ! सिहरती हवा में लिपटी हुई !

"हम एक मरद पसंद किया है !"

"कोण ?"

"ओ-ओ-ओ···" रत्ना ने दर्शकों में बैठे मुकुन्दराव की ओर इशारा कर दिया।

"कोण, ओ फेंटे वाला ?"

"नेईं-नेईं !"

"फिर कोण, ओ चश्मे वाला ?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"नेईं-नेईं !"

"फिर कोण, ओ टोपी वाला ?"

"नेईं-नेईं !"

"फिर कोण ?" दर्शकों की ओर मुंह लटकाए चिमन ने माथा ठोंककर सवाल किया।

"ओ-ओ-ओ···मुकुन्दराव पटेल !" रत्ना ने लजाकर कहा और सारे पंडाल में फिर हंगामा बरपा हो गया। कई टोपियां उछलकर इधर-उधर जा गिरीं। मुकुन्दराव तो जैसे मोम बनकर बह गया स्टेज के किनारे-किनारे···वाहवाहियों के बीच रत्ना स्टेज के एक सिरे से दूसरे सिरे तक थिरकती चली गई···छुम्···छन्-छन्-छन्···न् न्···

पंडाल में सीने पिट रहे थे···

रत्ना ने मुकुन्दराव के अलावा और लोगों का भी मन रख लिया—

यो यो रे पाहुणा
फेंटे वाला पाहुणा
चश्मे वाला पाहुणा
बरा दिसतो···

(ओ हो रे मेहमान, साफेवाले मेहमान, चश्मेवाले मेहमान, तू प्यारा दीखता···)

सब अपनी-अपनी टोपियां, फेंटे, चश्मे सम्हाल रहे हैं। किसे बुला रही है रत्ना हंसिनी ?···मोतियों की झालर ! एक मस्तानी, हजार बाजीराव !

वर्तुन मला खुणवितो-ओ-ओ···
यो यो रे पाहुणा
टोपी वाला पाहुणा
बरा दिसती—

(तू मुझे ऊपर से झांककर देखता है रे, मेहमान ? टोपीवाले मेहमान ? प्रिय मेहमान ?)

सारे पंडाल में घूमता नागपाश अब अकेले मुकुन्दराव को जकड़ रहा है—

'तमाशा' खत्म होते ही आ गया मुकुन्दराव पटेल। कावेरीबाई और माला उसे रत्ना के पास छोड़ गईं। अब चूकने का नेईं ! पटेल है—सरकार का बड़ा नेता है···! जमा लेने का ! कावेरीबाई ने जाते समय दायीं आंख की पलक दबाकर रत्ना से सब-कुछ कह दिया।

"बसा, बसा !" रत्ना ने उसे अपने नजदीक ही बैठने की जगह दी, लेकिन वह संकोच में था। बैठ तो गया, पर रत्ना को दबी नजर से ही देखता रहा। काफी समय बाद हिम्मत सहेजकर मुकुन्दराव ने कहा— "मोत अच्छा डानस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया !"

रत्ना मुसकरा दी। वह तरह-तरह से उसकी तारीफ करता रहा और रत्ना सिर्फ मुसकराती रही। फिर वह चला गया।

कावेरीबाई ने आकर पूछा, "कैसा क्या ?"

"जमेगा।"

"चांगला !" कावेरीबाई खुश हुई, "उस कूं काल भी आने का, पल्ला रोज भी···क्या समझी ? हाल कोई बात नईं बनती !"

मुकुन्दराव दूसरे दिन आया, तीसरे दिन और चौथे दिन भी। और रोज उसके जाने के बाद, कावेरीबाई आती रही।

"कैसा क्या ?"

"चांगला !"

पांचवें दिन कावेरीबाई ने कहा, "अब भौत ढील नेईं होना ! क्या बोलता है ?"

"बोलता है, लग्न करेंगा !"

"लग्न करेंगा ?" कावेरीबाई चौंकी, "कोण से करेंगा ? तेरे से ?"

"हां !"

"बोलो, नेईं, इदर लग्न-वग्न का बात नेईं ! खुश हो के नजराण देने का और छोड़-छुट्टी !"

रत्ना चुप रही। कावेरीबाई का माथा ठनका, "क्या बोला तूने ?"

"बोल दिया, करेंगा !"

"तेरे कूं अच्छा औरत का माफिक लग्न होना ? तेरा मस्तक तो ठीक है ?" कावेरीबाई चीख उठी। नीलकंठ, माला, पेटीवाला, तबलेवाला—पूरा संच घिर आया कमरे में। कावेरीबाई ने सिर ठोंक-ठोंककर कहा, "रत्ना कूं लग्न होना ! बोड़खा फिर गया इसका !"

संच के सभी लोगों ने उसे समझाया। वही जो माला ने कहा था— नहाने का पानी अलग, पीने का अलग—'तमाशा' वाला औरत का जिन्दगी एई···लेकिन रत्ना नहीं मानी। दूसरे दिन गांव-खेड़ों में खबर फैल गई, रत्ना—कावेरीबाई के संच की हंसिनी—पटेल मुकुन्दराव से लग्न कर रही है। दोनों ओर का खर्च मुकुन्दराव उठाएगा।

रत्ना मुकुन्दराव के साथ उसके गांव की ओर चली—परदेवाली गाड़ी में बैठकर ···तो घुंघरुओं की झनक, पेटी की आवाज और तबले की थापें उससे दूर, बहुत दूर खिसक रही थीं। गांव पहुंचते-पहुंचते बिलकुल डूब गईं वे···

मुकुन्दराव सहसा विश्वास ही न कर पाया। लांग वाली साड़ी का पल्लू माथे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तक आधा झूला हुआ, कुमकुम, गले में मंगलसूत्र, हाथ में चूड़ियां, उंगलियों में चांदी के छल्ले···पलकों पर कोई लकीर नहीं ! क्या सचमुच यह औरत एकदम घरू है, 'तमाशा' वाली नहीं ?

रत्ना भी चाहती थी, उसे कभी ऐसा महसूस न हो। वह उसका हाथ थामता, चूड़ियां बज उठतीं···झनकार ही कह देती कि वह अब घर की मालकिन है, 'तमाशा' की नटनी नहीं। लेकिन···

मुकुन्दराव चाहकर भी विश्वास नहीं कर सका था। अपनी ओर से बहुत कोशिश की थी रत्ना ने कि मुकुन्दराव भूल जाए उसका सब पुराना-पिछला, लेकिन वह नहीं भूल पाया था। समाज के एक-एक व्यक्ति की आंख उसकी ओर उठी हुई थी···रत्ना इसके घर में है। 'तमाशा' की औरत ! जंगली चिड़िया पाली है स्साले ने, जरा-सा पिंजड़ा खुला··· फुर्रर्रर्र···

रत्ना ने विश्वास दिलाने की कोशिश भी की थी—सुबह से शाम तक घर में पिसकर। काम वाली नेई होना···घर में दो औरतें हैं—एक मैं, एक मारोती के घर सखूबाई ! हम ही सारा काम कर सकती हैं। वक्त पर खाना, सारे घर की कपड़ा-धुलाई···खूब, लगातार मेहनत ! पर जैसे-जैसे उसने कोशिशें की थीं, मुकुन्दराव बिदकता गया था।

फिर एक दिन वह भी आया···

पड़ोस का व्यंकट भरी दोपहरी में अपनी छत पर गुनगुना रहा था, "यो यो रे पाहुणा···फेटे वाला पाहुणा···"

मुकुन्दराव बरस पड़ा रत्ना पर।

"मेरे कूं क्या मालूम ?"

"मालूम कैसा नेई ?"

"..."

"जरूर तूने पलक दबाया होगा। तभी तो चढ़ गया स्साला छत पर···!"

"ऐसी बातें नेई होना !" रत्ना बर्दाश्त नहीं कर सकी थी।

"अरे, जा-जा ! तुम स्साला 'तमाशा' वाला औरत का जात खराब !"

रत्ना ने मुंह में साड़ी का छोर भर लिया। मुकुन्दराव बड़बड़ाता हुआ चला गया। ऐसे कैसे चलेगा ? कब तक ? रत्ना देर तक सोचती रही।

फिर वह रोज सोचने लगी।

छन्न्न्न्···हुईश्श !

मन में दबा हुआ सब-कुछ उभर आया। वक्त ने धुआं छोड़ रखा था उसकी पिछली जिन्दगी पर। उसमें न तो रत्ना खुद को देख सकी थी, न अपने पास-दूर के लोगों को ही पहचान सकी थी। सब-कुछ धुंधला गया था। और अब ? अब सब-कुछ उभर आया है। [illegible] हुईश्श-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुईश्श।

बहुत दिनों तक खुद को दबाए रही थी रत्ना। वह धुआं नहीं था। उसने जान-बूझकर अपने इर्द-गिर्द एक परदा फैलाए रखा था—धीरज का। अभी नहीं तो शायद कुछ दिनों बाद मुकुन्दराव उसे समझ लेगा। घुंघरू डूब जाएंगे और उन्हीं के साथ कावेरीबाई, माला, पंडाल, सब-कुछ! पर मुकुन्दराव नहीं चाहता शायद। वह बार-बार सब उभार देता है।

उस दिन कोई खास बात नहीं थी। उसके पीछे कोई कारण भी नहीं था, लेकिन मुकुन्दराव ने एकदम कैसा रूप दे दिया था उसे। वह दरवाजे से टिककर खड़ा था और रत्ना साग काट रही थी। उसने एक पैर फैला रखा था, जिस पर कसाव में बंधी साड़ी उलटकर घुटने तक आ गई थी।

गरज पड़ा मुकुन्दराव, "तेरे कूं लाज नेईं वाटती?"

रत्ना ने हैरान होकर उसकी ओर देखा।

"अरे, समझती नेईं? बन्द कर साली कूं।" मुकुन्दराव और जोर से चिल्लाया, "टांग उघाड़ के सारे जमाने कूं बताती है।"

रत्ना ने सकपकाकर साड़ी पिंडली पर खींच दी।

"मैं तेरे कूं कूड़े से निकालकर महल में लाया। मेरी ही मिस्टेक हुई। हमारे यहां ऐसा नेईं चलेगा। हमारी गांव-खेड़े में इज्जत है। हमारे घर का औरत लोक कूं इज्जत से रहने को होना।"

रत्ना हतप्रभ ही रह गई। यह इतनी बड़ी बात तो थी नहीं कि इतना भनका जाए? मुकुन्दराव के देखने-सोचने में ही फर्क है, रत्ना क्या करे? वह कपड़ों में हो तो भी वह उसे बिन-कपड़ों में देखता है, रत्ना आखिर क्या करे? एक वर्ष से अधिक हो गया रत्ना को उसके घर में घरवाली की तरह आए, पर मुकुन्दराव ने उसे कभी घरवाली की तरह देखा ही नहीं। वह यही देखता है कि रत्ना 'तमाशा' के स्टेज पर नाच रही है और वह एक सामान्य दर्शक की तरह कपड़े फाड़कर उसका जिस्म आंखों से निगले जा रहा है। पिंडली ढांक ली थी रत्ना ने, फिर भी मुकुन्दराव भड़कता रहा था, "इस बार तेरे कूं छोड़े देता हूं। आंगू से अच्छी औरत का माफिक रहने का।" रत्ना सिमटी बैठी रही थी और मुकुन्दराव की जबान रुकी नहीं थी। बार-बार वह जो दोहरा रहा था, उसमें एक ही प्रतिध्वनि थी कि याद रख, रत्ना, अब तू एक इज्जतदार घर की औरत है—ऐसे घर की, जिसकी दूर-दूर तक जात-बिरादरी में पूछ है। मुकुन्दराव छोटा-मोटा आदमी नहीं। वह गांव का पटेल है और पटेल ऊंची सभा-सोसायटियों में आता-जाता है। उसने रत्ना पर उपकार किया है। उसे कूड़े के ढेर से निकालकर महल में लाया है वह···

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह आलू काट रही थी और सोच रही थी —वही, जो वह रोज सोचती रहती थी···ध्यान न रहा, वह चौंक गई—चाकू ने अंगूठे को चीर दिया था। एक रेखा की शक्ल में लहू की धार फूट पड़ी थी। उसने फुर्ती से चाकू नीचे रखा और घायल अंगूठे को चूसने लगी।

सखूबाई रसोई में आटा गूंथ रही थी। रत्ना का अंगूठा कट गया है, यह देख लिया, फिर भी उसने अनदेखा किए रखा। रत्ना सखूबाई की जेठानी है पर जाने क्यों सखूबाई का मन नहीं मानता। शायद इसलिए कि उसका घरवाला मारोती रत्ना से बहुत बोलता है।

रत्ना अंगूठे को चूसती रही। बीच में उसने मुंह से निकालकर उसे देखा कि खून बन्द हुआ या नहीं ? नहीं हुआ था। 'घाव काफी गहरा है।' सोचते हुए उसने अंगूठा दोबारा मुंह में डाल लिया।

मारोती घर में ही होगा। वह कम्पाउण्डर है और कामचलाऊ दवाएं अपने पास ही रखता है। रत्ना मुंह में खून का गाढ़ा स्वाद अनुभव करती हुई सोच रही थी कि शायद बगैर पट्टी के यह खून बन्द नहीं होगा। वह उठ खड़ी हुई। कमरे में जाने से पहले उसने अपने सारे कपड़े देख-भाल लिये, धोती की लांग सम्हाली, पल्ला सिर पर लिया।

बैठक के दरवाजे पर पहुंचकर वह एक क्षण ठिठकी। पूरे ध्यान से सुना, मुकुन्दराव किसी बाहर के आदमी से बातें तो नहीं कर रहा ? जब विश्वास हो गया कि मारोती और मुकुन्दराव के अलावा और कोई नहीं है, तो सकुचाती हुई वह भीतर चली गई। मारोती के सामने पहुंच उसने अंगूठा उसकी ओर बढ़ा दिया।

"काहे का लगा ?" मारोती चौंककर उठ खड़ा हुआ, "फार मोठा घाव झाला ?" वह फुर्ती से दवाई का डिब्बा ले आया और रत्ना को सामने बिठालकर पट्टी करने लगा, "काहे का लगा ?" उसने दोबारा पूछा।

"चाकू का।" कुछ असहज होती हुई रत्ना मुकुन्दराव की ओर देखती हुई बोली। मुकुन्दराव उन दोनों को अरुचि से देख रहा था।

"चाकू का कैसा लगा ?"

"ऐसे ही लग गया, भाजी काटने में।" रत्ना बार-बार मुकुन्दराव की ओर देख रही थी। अब तक सहानुभूति का एक शब्द भी नहीं बोला है मुकुन्दराव।

"काटने में होश्यारी बरतने का।" मारोती कह रहा था और आशंकित रत्ना के हाथ कांप रहे थे। मारोती की पट्टी-बांधती उंगलियां उसकी कलाई को भी छू जातीं। वह जानती है, मुकुन्दराव को रत्ना और मारोती के बीच होती बातचीत तो दूर, उनकी आमने-सामने मौजूदगी तक नापसन्द है। इस नापसन्दगी को उसने कहकर कभी व्यक्त नहीं किया, किन्तु उसकी आंखें सब कह देती हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रत्ना ने चाहा, मारोती जल्दी-से-जल्दी पट्टी बांध दे और वह हट जाए यहां से। मारोती ने पट्टी जल्दी ही बांध दी। मारोती को भी कहीं-न-कहीं मुकुन्दराव की शंकालु दृष्टि का अहसास है। यही नहीं, उसे यह भी लगता है, जैसे नजदीक ही कहीं सखूबाई भी खड़ी घूर रही है।

"मारोती से भौत बोलना मेरे कूं नेईं जमता।" बजाय अंगूठे के बारे में पूछने के मुकुन्दराव ने उस दिन बिस्तरे पर आते ही रत्ना को चेतावनी दी। रत्ना क्या कहती! मारोती—मुकुन्दराव का छोटा भाई। उसका देवर। पांच-छह घंटों की नौकरी के बाद वह सारा दिन घर में ही रहता है। कब-कब उससे न बोला जाएगा? छोटी-से-छोटी बात वह रत्ना से कहना चाहता है। रत्ना उसकी भाभी—वहिणी। जब इस घर में रत्ना आयी-आयी थी तो मारोती बोला था, "मेरे कूं बालपण से-ई मां नेईं मिली। बहुत छोटा छोड़ के मरी थी। अब तुम आ गई हो, वहिणी, तो जैसे मां आ गई है!"

रत्ना को मुकुन्दराव पर क्रोध आया। हमेशा कांटा पाले रहता है मन में! उसने उसकी बात सुनी-अनसुनी कर जाने में ही समझदारी देखी। कुछ कहती तो शायद झगड़ ही पड़ती।

उसके मौन ने मुकुन्दराव को बढ़ावा दिया हो, इस तरह वह बोला, "समझी क्या? तेरे कूं मारोती से ज्यादा चबड़-चबड़ नेईं होना! कोई छोटा नेईं है। बाहर वाला देखेंगा तो क्या सोचेंगा?"

"क्या सोचेंगा?" रत्ना ने आंखें तरेरीं। वह कतई नहीं चाहती कि ऐसा मौका आए, पर मुकुन्दराव बार-बार कुरेदता है तो आग दहकती ही है।

"खराब सोचेंगा!"

"कैसा खराब?"

"भौत खराब! मारोती छोटा नेईं है।"

"और घर में भाऊ-वहिणी नेईं है क्या।"

"है, पण···" मुकुन्दराव जरा हिचका, फिर उसने कह ही दिया, "···और घर में 'तमाशा' वाला औरत नेईं होता···"

सुलग गई रत्ना। उसने गुर्राकर कहा, "क्या हरदम 'तमाशा' वाला, 'तमाशा' वाला मचा रखा है! संच का औरत लोक क्या औरत नेईं होता?"

"होता है, पण लोक-लाज देखने का।" मुकुन्दराव उसे और-और झुलसाता गया, "लोक-समाज वाला जल्दी नेईं मानता कि 'तमाशा' का औरत लोक भरोसे का।"

"भरोसा नेईं तो लगन क्यों बनाया?"

मुकुन्दराव के पास कोई उत्तर नहीं था और जब उत्तर नहीं होता, वह मर्दों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के विशेषाधिकार का प्रयोग करता है। उसने डांट दिया, "ज्यादा चबड़-चबड़ नेईं होने का। तेरे कूं जैसा बोल दिया, वैसा करने का। समझी क्या?"

चुप हो गई रत्ना। सारी रात वह चुप रही और जागती रही। मन हुआ था, सन्देह में डूबी मुकुन्दराव की आंखें नोंच ले। इतनी आग रत्ना को कभी नहीं लगी। धुंधले विद्रोहों के एक सिलसिले के बाद आज वह बहुत स्पष्ट विद्रोह कर गई थी। उसके दिमाग में घुंघरू ठनक उठे थे, वेणी की खुशबू याद आ रही थी उसे···कावेरीबाई का चेहरा हर कठोरता के बावजूद गुलाब के फूल की तरह मुलायम, महकदार और चमकीला लग रहा था। सचमुच 'तमाशे' की जिन्दगी ही कुछ और थी। कितनी खुली-खुली, कितनी रसभरी, कितनी बहुरंगी! और यहां? यहां उसे घर से बाहर भी नहीं जाना है। जूड़े में फूल नहीं लगाने हैं। खिड़की से बाहर झांकना भी नहीं है। मारोती से बोलना नहीं है। आंगन में ज्यादा घूमना नहीं है। पड़ोस के घर की ओर देखना नहीं है ··कुछ नहीं करना है उसे, सिवा इसके कि हर रात मुकुन्दराव के बिस्तरे पर आ सोए। मुकुन्दराव उससे घिनौनी छिपकली की तरह आ चिपके, अल्सेशियन कुत्ते की तरह सूंघे··· घुर्र···घुर्र-र्र···हफ्फ···! अंधेरे के बावजूद दीवार पर दो आंखें टंगी हुई हैं। चमकती हुई···खूंख्वार। वे उसी की ओर देख रही हैं। खिड़की, दरवाजे, रत्ना और उसके इर्द-गिर्द ·· लाश की रखवाली करती आंखें···

घुर्र्र्र्र···इदर नेईं देखने का।

हफ्फ! हफ्फ! इदर भी नेईं।

रत्ना का मन हुआ, दौड़ती हुई कावेरीबाई की 'तमाशा' कम्पनी में जा पहुंचे, माला के सामने गिरकर रोए और चीखे, "तू ठीक कहती थी···पीने का पानी अलग, नहाने का अलग···हम लोक का जिन्दगी एईः···"

हर रात उसे 'तमाशा' याद आने लगा। संच का हर पहलू। एक बार झगड़ा हो गया था माला को लेकर। औरों के साथ दरोगा माला को भी पकड़कर ले गया था। कावेरीबाई उसे छुड़ाने गई थी। साथ में रत्ना। बड़ी मिन्नत-आरजुओं के बाद छूटी थी माला। रत्ना ने वहां देखा था, थाने की हर दीवार पर इसी तरह की आंखें चिपकी हुई थीं। माला हवालात में बन्द देखी थी उसने। मोटे-मोटे सींखचे थे उसके सामने। आस-पास दीवारें। थानेदार ने उसके जाते वक्त हवा में बेंत घुमाया था, "हरामजादी। आंगू से फिर कभी···"

रत्ना को लगा, मुकुन्दराव जाग गया है, "हरामजादी! आंगू से फिर कभी···"

माला छूट गई थी जेल से।

और रत्ना बन्द है। खुद आकर बन्द हुई है। पगल! मोटे-मोटे सींखचे, दीवारें, चौतरफा घूमती हुई चमकीली आंखें···

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इधर कुछ दिनों से न जाने क्या हो गया है। वह सचमुच इधर-उधर देखने लगी है···है कोई जो उसे ले जाए—संच में। आहों और फब्तियों के बीच ?

मन होता था, किसी के सामने फूट-फूटकर रोए, मुकुन्दराव की शिकायत करे, उसके नाम जी भरकर गालियां बके। वह सब कुछ जो लावे की तरह भीतर-ही-भीतर धधक रहा है, उगल डाले। पर किसके सामने ? एक प्रश्नचिह्न उभर आया उसके मन में। मारोती ? सखूबाई ? इनमें से कोई नहीं। लेकिन इनके अलावा तो इस घर में और कोई है भी नहीं।

कावेरीबाई ? माला ? उसने उत्तर खोज लिये, पर इन तक पहुंचा कैसे जाए ? इन दीवारों को वह अकेली नहीं फांद सकती। उसे सहारा चाहिए। संच तक पहुंचने के लिए उसे किसी-न-किसी का सहारा सचमुच चाहिए। कौन दे सकेगा ?

खट्···खट्···खट्···

रत्ना उठ खड़ी हुई। नींद से शरीर बोझिल था। स्वयं को खींचती हुई, दरवाजा खोलकर वह आंगन में आ गई।

भोर की भीगी हुई रोशनी आंगन में झरने लगी थी। आज की रात फिर कट गई है। रत्ना ने बेबसी की एक गहरी सांस खींची। अंधेरे में डुबोई हुई उम्र का कोई नन्हा-सा हिस्सा उसने काट लिया था। जब भी सुबह-सुबह यह खट-खट होती है, इसी तरह वह उम्र का एक हिस्सा काट लेती है। माली बालाजी दरवाजे की कुण्डी खटखटाता है। देव की पूजा के लिए फूल लाता है हर सुबह। यही एक आदमी है, जिसे रत्ना आजादी से देख पाती है···कभी-कभी उससे बातें भी कर लेती है। इस वक्त तक घर में कोई नहीं जागा होता।

खट्···खट्···

"येते···येते, थाम्बा···!" रत्ना ने कुंडी खोल दी।

बालाजी ने फूलों की 'पुड़िया' आगे बढ़ाई। रत्ना ने ले ली।

बालाजी उसी की ओर देख रहा था। रोज देखता है···रत्ना इस घर की बजाय संच में रही होती तो वह एक, दो, चार, पांच—जितने का मिलता—टिकट खरीदता और फिर देखता रहता···

रत्ना को उसका इस तरह देखना कभी पसन्द नहीं आया, पर आज उस सवाल का जवाब खोज लेना था उसे···सहारा ! एक ऐसा सहारा, जो उसे इस जेल से निकालकर संच के खुले आकाश के नीचे ले जाए। इस लिहाज से बालाजी उसे अच्छा लगा। प्रश्न का वह आंकड़ा, जो अब तक दिमाग में कुलबुला रहा था, धीरे-धीरे धुंधलाता जा रहा था और उसकी जगह एक आदमी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उभर रहा था···बालाजी···फूलों की 'पुड़िया' हाथ में लिये, सिर पर तौलिया बांधे···कंधों पर फूलों की झोली टंगी हुई···कोई और दिन रहा होता तो वह 'पुड़िया' लेकर झट दरवाजा बन्द कर लेती। बालाजी को बांधती हुई रत्ना की मुसकराहट···उसे दीवारें तोड़कर 'तमाशा' के खुले आकाश में पहुंचाने वाला व्यक्ति—सम्भावित व्यक्ति—सामने खड़ा है क्या ? रत्ना ने एक नजर लौटकर आंगन में देख लिया। कोई नहीं था।

"तेरा लग्न हुआ कि नेईं ?"

सिहर गया बालाजी, जैसे कि चोरी पकड़ी गई हो। कुछ न बोल सका। मीठी, झकझोरती हुई रत्ना की आवाज !

"बोल ना !"

"नेईं !"

रत्ना मुसकरा दी। फिर लौटकर देखा, कोई नहीं था। "क्यों नेईं हुआ ?"

बालाजी ने झेंप-भरी हंसी के बीच फुसफुसाकर क्या कहा, यह महत्त्वपूर्ण नहीं था। महत्त्वपूर्ण यह था कि दिनोंदिन वे मित्र होते गए।

"अरे, बोल ना ? करेंगा लग्न ?"

"हूं-ऊं !" स्वीकारात्मक ढंग से गरदन हिलाई बालाजी ने। फिर कांपते पैरों को पूरी ताकत लगाकर सम्हाला। बोला, "तुम्हारे सारखी बायको मिली तो करेंगा !"

रत्ना हंसी···दरवाजा बन्द कर लिया उसने।

फिर एक दिन रत्ना ने बात रख दी, "मेरे कूं संच में ले जाएगा ?"

गांव से काफी दूर निकल आयी होगी वह।

उसने पीछे लौटकर देखा। हर कदम के साथ उसे काफी सावधानी बरतनी पड़ रही थी। अंधेरा घना था, सौ हाथ गहरे कुएं से भी ज्यादा।

एक साल से कुछ महीने ऊपर। इस बीच वह दो बार इस रास्ते पर आयी थी—दिन के वक्त ! बिस्वनाथ मन्दिर में पूजा के लिए। आज तीसरी बार··· पूरी याद सहेजकर उसने पगडंडी पर पैर डाल दिए थे। यही रास्ता है बिस्वनाथ मन्दिर का।

कितनी देर हो गई है चलते-चलते ? मन में सन्देह जन्मा। कहीं रास्ता तो नहीं भूल गई वह ? हर गांव पगडंडियों में लिपटा रहता है—जैसे आदमी के शरीर में छोटी-बड़ी नसें। इस घुप्प अंधेरे में कोई गलत पगडंडी पकड़ लेना असम्भव तो नहीं ! मुमकिन है, वह बिस्वनाथ मन्दिर पार ही कर आयी हो··· अगर सचमुच वह रास्ता भूल गई है तो···और यह सोचते ही कुत्ते की डूबी हुई गुर्राहट फिर उभर आयी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रत्ना सिर से पैर तक झुरझुरा उठी। कई जगह वह गिरते-गिरते बची। धड़कन फिर तीव्र हो गई। अवश्य वह भटक गई है और गांव के इर्द-गिर्द ही किन्हीं पगडंडियों पर दौड़ रही है। धीरे-धीरे यह अंधेरा कायरों की तरह पास के किसी नाले में जा छिपेगा और रोशनी खिलने लगेगी। रत्ना पकड़ी जाएगी··· भागती हुई···'तमाशा' वाला औरत !

"कोण ?" एक दबी हुई आवाज।

बालाजी ही है, रत्ना ने पहचाना।

"मैं।" रत्ना का जवाब, जैसे किसी झाड़ी में छिपा कोई भयभीत पंछी उड़ा हो।

"बड़ी देर लगाई ?" रत्ना के नजदीक आ गया वह।

रत्ना की धड़कन बढ़ गई, "अंधेरा बहुत है न !"

"हां, है तो।"

"अब देर नेईं करने का।"

"हां, हां।"

बालाजी का अंधेरे में बढ़ा हुआ हाथ रत्ना के शरीर पर आ गया···

"क्या है ?" रत्ना ने थूक निगलते हुए पूछा। आवाज कांप रही थी।

"कुछ नईं ! हाथ होने का !"

रत्ना ने उसके हाथों में हाथ डाल दिया। झुरझुरी···नजदीक ही कुत्ते की आवाज···! दबी हुई धड़कन फिर उभर पड़ी···

अंधेरे में बालाजी ने उसके शरीर को जगह-जगह छूने का फिर प्रयास किया, लेकिन रत्ना ने उसका हाथ बुरी तरह झटक दिया। नहीं, अभी वह 'तमाशा' वाला औरत नहीं है। अभी तो वह घरू औरत है—किसी को यों छूट लेने नहीं दे सकती। जब तक वह संच के मंच पर आकर थिरक न उठे, वह अपना सम्मान नहीं खोएगी। कितनी मुसीबत उठाई थी उसने इस सम्मान को झेलने के लिए ! कितना कीमती है यह ! और अब इसके कुछ ही घंटे बच रहते हैं···

"अब बिलकुल देर नेईं करने का !" वह बुदबुदाई।

"बिलकुल नेईं !"

और वे अंधेरे को चीरते हुए चलते रहे। अधिकांशतः वे मौन रहे···बीच-बीच में जंगली रास्ते पर फैली हुई सियारों की आवाजें···ओं-ओं···हूं-अू-अू···

रत्ना का मन हुआ, हंसे। क्यों ? बस, हंसे। काफी देर हो चुकी है चलते-चलते। टखनों से पंजों तक दर्द उभर आया है, जैसे देर तक नशे में सोयी रहने के बाद उठी हो। बालाजी का पंजा उसकी मुलायम उंगलियों को कसे हुए है। देव की पूजा के लिए फूल चुनने वाला हाथ···

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"रत्नाबाई ?"

"हूं ।"

"ए डामर रोड पार करने का, फिर कोई डर नेईं !"

"कोण-सा डामर रोड···?" रत्ना ने पूछा । तभी अंधेरे में उसका पैर सख्त डामर रोड पर जा पड़ा । बालाजी ने रत्ना की उंगलियों पर कसे, पसीज आए पंजे को खोलकर फिर बांधा । रत्ना के दिमाग में भूला हुआ मुकुन्दराव फिर ताजा हो गया । जब-जब किसी मर्द का हाथ उसका शरीर छुएगा, उसे यही लगेगा कि मुकुन्दराव अभी जिन्दा है । मुकुन्दराव—उसका घरवाला ! उसका दरोगा !

"कितना निकल आए अपन लोक ?"

"पांच माइल !" डामर रोड पार कर वे फिर एक पगडंडी पर आ गए थे । बालाजी ने कहा, "अब बैतूल इदर से सिरफ एक माइल···"

एक माइल···! रत्ना की चाल तेज हो गई । बैतूल पहुंच गई तो वह मुकुन्दराव की पकड़ से बाहर हो जाएगी । बैतूल के पास एक गांव में कावेरी-बाई का संच आया हुआ है, यह रत्ना को मालूम हो गया था और उसी के अनुसार बालाजी ने कार्यक्रम बनाया था । वहां पहुंच गए तो फिर कुछ नहीं हो सकता । मुकुन्दराव लाख सिर पीटे, वह रत्ना को वापस नहीं पा सकेगा ।

कावेरीबाई और माला ने उसे बहुत रोका, "आज तेरे कूं आराम होना । थकी हुई है ।" पर रत्ना नहीं मानी । उसकी जिद थी कि आज ही मंच पर उतरेगी ।

रत्ना हंसिनी···हाय-हाय ! मार डाला ! तेरे कूं देखने आंखें तरस आयी थीं, रे !···

पंडाल में हुल्लड़ मच गया था ।

कितने उत्साह से आयी है रत्ना, लेकिन उसके पांव कांप रहे हैं । पहले तो ऐसा कभी नहीं होता था । 'तमाशा' वाला औरत को इन सब की आदत होनी चाहिए—होती है । फिर कंपकंपी कैसी ? स्टेज का परदा उठने ही वाला है···

हुईश्श···शुईश्श···

ओ पतली गरदन वाली···! सीटियां···

रत्ना मंच पर आयी । परदा उठा । रत्ना झुरझुरा उठी । बेशर्म भीड़ के सामने वह अपने को थिरका सकी ही नहीं । और उसने देखा, सब से अगली पंक्ति में बालाजी बैठा हुआ है । बालाजी···जिसके सामने हमेशा वह एक लिहाज रखकर आया करती थी···घरू औरत का लिहाज···कंधे ढंके हुए···चूड़ियों में कैद हाथ···कभी हिम्मत नहीं हुई थी बालाजी की कि इतनी देर तक यों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घूर सके। आज वह देखे जा रहा है···उसकी आंखों में मुसकराहट है···

बालाजी—अभी कुछ घंटे पहले ही जिसके हाथों को रत्ना ने बुरी तरह झटकार दिया था। अंधेरे में जिसे ज्यादा छूट लेने दी ही नहीं रत्ना ने···अब वही···

कावेरीबाई ने परदे के पीछे से फुसफुसाकर कहा, "नाच मरी, नेईं तो स्टेज छोड़ देने का !"

रत्ना के कांपते पैरों में थिरकन हुई। फिर एकाएक ही जैसे सांप की केंचुल उतर गई। छुम्···छन्न्न्···छुम्-छन्न्न् ! 'तमाशा' वाला औरत सिर्फ 'तमाशा' वाला औरत···

वर्तून भला खुणवितो-ओ-ओ
यो यो रे पाहुणा···
फेंटे वाला पाहुणा···
बरा दिसतो···!

शोर बरपा हो गया सारे पंडाल में ! जादू···जादू ··रत्ना का इन्द्रजाल ! अपने ही इन्द्रजाल में फंसी हुई रत्ना !···यन्त्र की तरह वह मंच के इस किनारे से उस किनारे तक नाचती रही !···घुंघरुओं की ध्वनि, सारंगी की रिरियाहट, तबले की घनगरज थापें, पंडाल का हल्ला, चूड़ियों की झनक···

वह हांफ गई। गीत अधूरा छोड़कर वह मंच की ओर से किनारा करने लगी। जाते-जाते उसने देखा, देव के फूल लाने वाला बालाजी दो का नोट उठाए हुए कह रहा था, "आ···आ···!"

मंच के पीछे जाकर रत्ना देर तक निढाल पड़ी रही। 'तमाशे' का बाकी वक्त माला ने सम्हाल लिया था।

"रत्ना···!"

रत्ना ने ध्यान दिया, सामने कावेरीबाई खड़ी थी।

"तेरे आरट पर एक मानुष बहुत खुश···! तेरे से मिलने की खातिर अब तलक रुका है !···कोई पर-गांव का रहने वाला !"

रत्ना उठ बैठी।

"बिस की तबीयत खुश करने का और नजराणा लेने का ! समझी क्या ?"

रत्ना कुछ नहीं कह सकी।

"मैं बिस कू भेजती हूं !" कावेरीबाई जाते-जाते हिदायत दे गई, "जरा वेणी सम्हालने का !"

रत्ना उठी। शीशे के सामने पहुंची। कावेरीबाई ने थोड़ी देर में ताजा फूलों की वेणी ला दी। उसने उसे जूड़े में लगाया, फिर नया मेकअप किया। हल्का।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होंठों पर लिपस्टिक, आंखों में काजल की बारीक लकीरें···गालों पर हल्की लाली···

बिलकुल वही···उसी तरह, जैसे एक दिन माला को करते देखा था उसने।

"मैं बिस कूं भेजती !" कावेरीबाई फिर चेतावनी दे गई।

रत्ना ने शीशे में आखिरी बार मुंह देखा और मुड़ी।

दरवाजे पर बालाजी खड़ा था—किसी विजेता की मुसकान लिये हुए ! हाथों में गजरा···चेहरा तपता हुआ···

और वह उसे इनकार नहीं कर सकती थी। न करना चाहती ही थी। अब इसमें कुछ गलत भी नहीं था। अब वह घरु औरत नहीं थी। उसने मुसकराकर उसका स्वागत किया। बालाजी की जगह यदि मुकुन्दराव या···या मारोती भी आ जाए तो भी उसे इसी तरह···अब वह संच में थी।

१९६७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चतुरिका

कितना कतराती रहती थी मीना, पर वे मानते ही न थे, "प्लीज, मीना बहन···"

"पर मैं ऐक्टिंग बिलकुल नहीं जानती। कॉन्फीडेंस भी नहीं है। कभी आडिएंस के सामने खड़ी भी नहीं हुई···ऐसे कैसे···नहीं-नहीं, मुझसे नहीं बनेगा !"

पर वे जिद पर अड़े रहे। मीना जानती थी कि वे शरारत कर रहे हैं। असल में वे चाहते हैं कि किसी तरह मीना अग्रवाल अपमानित हो। सार्वजनिक रूप से अपमानित हो। उसने कई बार की तरह पुनः स्पष्ट इनकार दोहरा दिया था, "इम्पॉसिबुल !···मुझसे नहीं होगा।"

उनमें से एक ने मीना का हाथ पकड़ लिया था। वैसे यह हिम्मत करना कठिन ही नहीं, किसी भी स्टूडेंट के लिए असंभव था, किंतु उस क्षण न जाने किस भावावेश में आ गया था वह लड़का। पता नहीं किस ईयर का था। मीना ने उसकी हथेली का स्पर्श अनुभव किया था। कोई ठंडी पट्टी उसकी हथेली पर आ लिपटी है···संकोच से मीना ने हथेली कंपायी थी और चौंककर लड़के ने हाथ हटा लिया था। आंखों में याचना भरकर बोला था, "आप मजाक मत समझिए, हम लोग बहुत सीरियसली आपके पास आए हैं।···बहुत लम्बा रोल नहीं है। यही कोई दस मिनट···।"

"प्लीज, मीनाजी···!" दूसरा बोला।

तीसरे ने भी जोर दिया, "मान जाइये। कॉन्फीडेंस तो अपने आप आ जाता है।···"

और मीना अपने निश्चय से डगमगाने लगी थी—यह जानते हुए भी कि वे सब उसे परेशान करना चाहते हैं···उसकी बदसूरती का सार्वजनिक मजाक उड़ाना चाहते हैं···उससे किसी मसखरे का मजा लेना चाहते हैं···वह कुछ कह नहीं पा रही थी। कम-से-कम इनकार करना अब उसके लिए कठिन हो गया था। कितनी इच्छा थी कि नाहीं कर दे। न सिर्फ नाहीं करे, उन्हें फटकार दे, पर कितनी अवश हो गयी थी मीना—जैसे वे सब अपने अनुनय में उसकी जबान सी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चुके हों। उसने कहा था, "मुझे सोचने दीजिए !"

"ठीक है !" उनमें से एक बोला, "शाम को कॉलेज ऑफ होते ही आपसे कांटेक्ट करेंगे।"

"हां, ठीक है।" हथेली पकड़ लेने वाला लड़का बोला।

मीना ने कुछ नहीं कहा।

और वे सब चले गए। थोड़ी देर वहीं रुकी रहकर मीना उन्हें देखती रही थी। क्या सचमुच वे सीरियस हैं?···शायद नहीं। विश्वास नहीं होता था। विश्वास होने जैसी बात भी नहीं थी। कॉलेज में ढेरों लड़कियां हैं—शरारती, चुलबुली, बहुत खूबसूरत और बहुत बोल्ड ! फिर क्या वजह है कि वे मीना से ही कह रहे हैं कि वह ड्रामे में रोल करे। बदमाश कहीं के !···उन्होंने प्लान किया होगा कि किसी तरह मीना की बदसूरती से मनोरंजन किया जाए !···अचानक मीना उदासी और चिन्ता से घिर गयी। और तभी उसकी नजरें उठीं। उसने देखा कि वे सब उसी को देख रहे थे। लड़के और लड़कियां। वह लगभग दौड़ती हुई ग्राउंड के एक किनारे की ओर चली।

चोर-नजरों से मीना ने यह देख लिया था कि वे अनुनय करने वाले लड़के एक झुंड की शक्ल में, दूसरे झुंड में जा मिले हैं। उनमें से कुछ उसकी ओर देख रहे थे। जरूर वे सब उसी के बारे में सोचने लगे होंगे। इस विचार के साथ ही मीना की चाल में एक लड़खड़ाहट पैदा हो गयी। बड़ी कठिनाई से उसने अपने आपको संयत किए रखा। जैसे-तैसे ग्राउंड के उस एकांत तक पहुंची और इस तरह थकी-सी बैठ गयी जैसे कई मील पार कर आयी हो।

चतुरिका !···संस्कृत काव्य-नाटक का एक महत्त्वतूर्ण चरित्र ! बदमाश कहीं के !···बता रहे थे कि बड़ी सीधी, सहज-सी लड़की चाहिए। सुंदर ! मधुर आवाज, लोचदार चाल और तीखी दृष्टि···आप में सब बातें हैं। बिलकुल फिट रहेंगी।···

मीना अग्रवाल क्रोध से भर उठी। कमबख्त आएं तो सही दोबारा। एकाध के चेहरे पर तमाचा जड़गी और कहेगी—कहो, कैसी लगी चतुरिका? मधुर आवाज···लोचदार चाल···जलील। हर क्षण मीना को अपमानित करते रहते हैं।"

दूर थोड़े-थोड़े फासले पर लड़के-लड़कियों के झुंड बिखरे हुए हैं। चुहल-बाजियां, गप्पें, षड्यंत्र और मस्ती ! बीच-बीच में किसी झुंड से कोहरे की तरह कोई खिलखिलाहट उठती और कॉलेज-ग्राउंड के आसमान पर फैल जाती।

मीना अग्रवाल ने सोचा, भूल हुई है उससे। उसी वक्त एकाध के चेहरे पर तमाचा जड़ देती तो इस सारे ग्राउंड की हवा खुश्क हो जाती। एकाएक उसे ख़याल आया। जिस लड़के ने बोलते-बोलते भावावेश में उसकी हथेली थाम ली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थी, वह एक बार पहले भी उससे मिल चुका था। कब?···शायद डिबेट में। कॉलेज के दो ग्रुप थे। एक ओर लड़कियां और दूसरी ओर लड़के। विषय था—'कुंठा असफलता का निश्चित चिह्न होती है'। मीना अग्रवाल समर्थन में बोली थी, यह लड़का विरोध में। इसने कहा था कि कुंठा एक तरह की चुनौती होती है। बजाय सहने के आदमी को उससे जूझ जाना चाहिए। ऐसे ही अजीब तर्क देता रहा था यह लड़का।···अब वह लड़का झुंड में दीख नहीं रहा था।

मीना अग्रवाल सूनी आंखों से सारे माहौल को देखती रही। बीच में उसने कलाई-घड़ी पर दृष्टि डाली, साढ़े ग्यारह बजे हैं। दो पीरियड फ्री हैं—उसने एक गहरी सांस ली और ऊब के समुंदर में डूब गयी। दो पीरियड खाली होने का मतलब है···एक घंटा बीस मिनट ऊबना। न सिर्फ ऊबना, बल्कि हीनता के गहरे अहसास में डूबे रहना। अचानक उसे लगा कि वह मूर्ख है। क्या यह हीनता सिर्फ ऐसे ही एकांत क्षणों में उसे घेरे रहती है?···

ऐसा नहीं था। मीना अग्रवाल हमेशा हीनताग्रस्त रहती थी। अब से नहीं, बरसों से। तब से, जब से उसने यह समझना शुरू किया था कि वह लड़की है। जवान और जवानी के उत्साह की जरूरतमंद। जैसे-जैसे उसने अपनी उम्र का चढ़ाव और जरूरतें महसूस की थीं, वैसे-वैसे यह हीनता उसके दिलोदिमाग पर छाने लगी थी और मीना अग्रवाल उदासियों की खाइयों में उतरती चली गयी थी। कितनी खाइयां नहीं थीं उसके सामने—उसका अपना संकोच, अपनी कमजोरियां, अपनी उम्र, दूसरों की उम्र, दूसरों का आकर्षण, दूसरों की उपेक्षा और उसकी अपनी अपेक्षाएं···

और हर खाई शूलों से भरी हुई। मीना अग्रवाल को हर क्षण लगता कि वह शूलों भरी खाइयों में लहूलुहान होती हुई गिरी जा रही है। भीड़, घर, परिवार, समारोह सब कुछ मीना के इर्द-गिर्द थे। इसके बावजूद लगता था कि वह नितांत अकेली है···सिर्फ मीना अग्रवाल! अपने को और दूसरों को छलती हुई एक कुरूप लड़की।···

क्या सचमुच कुरूप थी मीना अग्रवाल?···एक बार किसी को उसने अपनी मां से कहते सुना था—"रूप गुण से होता है, बहन! तुम्हारी मीना गुणी है इसलिए रूपवान है।"···और उस दिन मीना को लगा था, काश वह अवगुणी होती और खूबसूरत होती!

खूबसूरती के ऐसे किताबी मापदंडों से मीना अग्रवाल कभी सहमत नहीं हो सकी थी। कोई सहमत नहीं हो सका है। सहमत होता तो ऐसा होता?···हर नजर सिर्फ उसी को देखती हुई, और हंसती हुई—विचित्र होती है ऐसी दृष्टियों की हंसी। व्यंग्य और उपेक्षा बरसाती हुई। अब भी वे सब भूले-भटके उसी को देख लेते हैं···।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस वक्त भी देख रहे हैं···

मीना अग्रवाल ने खाइयों से नजर उठाकर अपने इर्द-गिर्द देखा। लगा कि वे सब ऊंची, बहुत ऊंची चोटियों पर बैठे हुए उसे देख रहे थे। इस तरह जैसे मीना दर्शनीय हो···दर्शनीय दोनों चीज़ें होती हैं। जयपुर से ताजा-ताजा बनकर आयी कोई संगमरमरी मूर्ति भी और पुरातत्व की सदियों पुरानी ऊबड़-खाबड़ मूर्ति भी···मूर्तियां दोनों ही होती हैं।

लड़कियां दोनों होती हैं।

अनायास मीना को याद आया, किसी लड़के ने उस दिन क्लासरूम में फुसफुसाहट की थी, "अजब तेरी दुनिया, अजब तेरे खेल···"

"क्यों, क्या हुआ ?" कोई दूसरा फुसफुसाया था।

मीना बिलकुल करीब बैठी हुई थी—सामने वाली टेबल पर। कुछ लड़कियां दाएं-बाएं। सब इस तरह उससे कटी हुई, जैसे मीना नहीं, उनके पास कोई बदसूरत चीज़ रखी हुई है। और मीना को लग रहा था कि वह उस सारी बैंच पर अकेली है·· सारी क्लास में अकेली है···और कुछ आवाजें बैकग्राउंड से उठ रही हैं···

'सामने वाली को देखो···इसे···" वह लड़का बता रहा था, "लड़की है··· पर लगता है, खुदाई में बरामद हुई है !···'

और एक दबी हंसी पिछली टेबल से पहाड़ी झरने की तरह बहकर मीना पर आ गिरी···झरना, पर कितना गर्म और उबाल देने वाला झरना ! मीना को लगा कि वह सादा नहीं, तेजाब का झरना है, और तेजाब उसका जिस्म भेदकर हड्डियों तक पहुंच गया है···सूराख कर दिए हैं और एक दावानल मीना के शरीर और आत्मा में फैल गया है···

अपने आपको बहुत संयत रखने वाली मीना उस दिन एकाएक ही असंयत होकर उठी थी और एक बिजली की कौंध की तरह उस लड़के पर बरस पड़ी थी। उसने क्लास के अनुशासन की बिलकुल परवाह नहीं की, "यू डैमिट !··· बास्टर्ड !···"

लड़के-लड़कियां चौंककर उसकी ओर देखने लगे थे, पर उस क्षण मीना के मन में तनिक भी संकोच नहीं था। वह गरजी थी, "कमीने !···तुम समझते क्या हो !···मैं चाहूं तो तुम्हारे चेहरे पर थूक सकती हूं !"

सन्नाटा फैल गया था क्लास में। लैक्चरर भी एकाएक कुछ कह नहीं सका था। एक क्षण की चुप्पी के बाद उसने सवाल किया था, "क्या हुआ, मिस अग्रवाल ?"

"जी ?···"

"क्या हुआ ?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"यह···यह···" वह उठी थी, उस लड़के की ओर संकेत करती हुई शिकायत करना चाहती थी, पर कहते-कहते रह गयी। लड़के-लड़कियां क्या समझेंगे···क्या वह संवाद कहा जाए, जो उस लड़के ने कहा था। क्या उसे दोहराकर मीना स्वयं ही अपमानित नहीं होगी ? उसने बात बदल दी थी, "यह लड़का बदतमीजी कर रहा है, सर !···"

"ऐ-ऐ-ऐ···मिस्टर !···" लेक्चरर की आवाज।

"यस सर···" वह लड़का उठ खड़ा हुआ। उसके चेहरे पर अब भी तमाचे जड़े जाने जैसी सफेदी थी।

"गेटआउट !···गेटआउट फ्रॉम हियर !"

"मगर सर···"

"मैं कुछ नहीं सुनना चाहता !···गेटआउट !"

लड़का सिर झुकाए हुए चुपचाप चला गया था और न जाने क्यों मीना अग्रवाल का जी हुआ था कि रो पड़े। काश !···वह बदसूरत नहीं होती !··· बदसूरत···काली और चेचक के दागों से भरे चेहरे वाली लड़की।

और वह दिन···लड़कों पर एक खास तरह का आतंक छा गया था। वे मीना अग्रवाल के सामने से इस तरह निकलते थे जैसे पुराने राजाओं के सामने से सेवक निकला करते थे। गरदन झुकी हुई, जिस्म सिकुड़ा हुआ और अनजान भय कनपटियों से लेकर तलवों तक समाया हुआ।

मीना अग्रवाल की इच्छा होती थी कि वे उसे देखें—शुरू-शुरू में कुछ दिन लगा था कि ठीक हुआ है, पर फिर खलने लगा था। न देखा जाना भी एक तरह का अपमान है।···उपेक्षा का एक तरीका। मीना महसूस करने लगी थी कि वह ज्यादा बदसूरत हो गई है। बहुत बदसूरत।

ऐसी स्थिति में कैसे हो सकता है कि वे मीना अग्रवाल को अपमानित करना चाहते हों ?···मीना का पूर्व-विश्वास डगमगाने लगा है। नहीं, नहीं ! वे मीना से डरते हैं। गरदन झुकाये हुए, सहमे हुए, भयातुर·· वे निरीह भेड़ें हैं मीना के सामने।···उनमें कहां है इतना साहस कि मीना के साथ मजाक करें !

मजाक ?

काश ! वे मीना से मजाक करते। यह भी एक तरह का सम्मान है। जीवन और आनंद।

कितना अच्छा हो कि वे मजाक करें। ··कितना अच्छा हो कि वे मजाक न करें।

चतुरिका। कौन है चतुरिका ?···सुनते हैं कि नाटक की बड़ी हसीन-सी मीठी आवाज वाली कोई नायिका है। उस नायिका भी हो सकती है। क्या मीना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अग्रवाल जैसी ही थी वह?···या मीना अग्रवाल उस-जैसी है? पर वह लड़की थी। मीना भी लड़की है। क्या अन्तर है, मीना और चतुरिका में?

झुंड क्रमशः सरकने लगे हैं। अभी-अभी 'बैल' हुई है। पीरियड खत्म हुआ। खाली पीरियड, खाली मीना।

मीना फिर वैसी ही टूटी हालत में उठी थी। पीरियड में जा बैठी थी और सिर्फ सोचती रही थी। न जाने कितनी बार रोने को मन हो आया था, न जाने कितनी बार हंस पड़ना चाहती थी, और न जाने कितनी बार आवेश में भर उठी थी···पर हर बार एक सन्नाटा उसके गिर्द फैला रहा था और हर क्षण वह अकेली रही थी। प्रोफेसर, सहेलियां, लड़कों की कतारें, टेबल, कुर्सियां, अनवरत चल रही आवाजें और उस सबके बावजूद एक सन्नाटा।

और यह सन्नाटा चलता रहा था। टूटा ही नहीं। टूटा तब, जब कॉलेज से बाहर आते ही मीना को उन्हीं लड़कों ने घेर लिया। वे चुप थे। मीना सवालों से घिर गयी थी। चुप सवालों से। लग रहा था कि वे सब एक साथ पूछ रहे हैं—"क्या सोचा आपने?···चतुरिका! नाटक की पात्रा।...प्लीज!"

मीना अग्रवाल लगभग कतराने लगी, "देखिए, मुझे माफ कर दीजिए।··· मुझे चौबीस तारीख की सुबह काम है। बहुत जरूरी काम! मैं चाहकर भी वक्त नहीं निकाल सकूंगी।"

"पर नाटक शाम को है, मिस अग्रवाल!···मान जाइए!" एक बोला था। कॉलेज यूनियन का अध्यक्ष था वह। बहुत शरारती लड़का। पर उस क्षण कितना शान्त और सभ्य लग रहा था? मीना चाहती है, क्रोधित हो जाए। बरस पड़े उन सब पर···मगर यह कैसे कर सकती है मीना? वे सब कितने सहज भाव से खड़े हैं सामने। आवाजों में स्तुति की ध्वनि, चेहरों पर सौम्यता और अनुनय, दृष्टियों में आशा।

मीना का पहला बचाव-प्रयत्न उसकी भूल से ही खत्म हो गया। जरा-सी भूल···काश, उसने सुबह के बजाय काम शाम को बताया होता।···पर मीना बहुत तेज है। बचाव कर सकती है। बोली, "देखिए, असल में मेरे गार्जियन्स··· आप तो जानते ही हैं, कुछ लोग स्टेज एक्टिविटीज बिलकुल पसन्द नहीं करते।··· वे यह सब पसन्द नहीं करेंगे।"

"उन्हें हम तैयार कर लेंगे, मिस मीना! आप एक बार स्वीकृति दे दीजिए···फिर उन्हें तैयार कर लेंगे।···प्लीज!"

"प्लीज···"

"प्लीज···"

"मान जाइए···"

"मीनाजी···

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और मीना चाहती है कि साफ-साफ कह दे—नहीं।···वह चाहती है, उन्हें डांट दे—तुम सब घटिया हो!···कुत्ते!···शरारती!···मीना कह देगी—मैं नहीं करूंगी काम।···चतुरिका?···कैसी चतुरिका?···

पर अजीब हुआ। बिलकुल अजीब! मीना ने कहा, "ठीक है। मैं कोशिश करूंगी कि काम करूं···पर आप जानते हैं कि मैं स्टेज पर कभी नहीं···"

"वह सब हो जाएगा।···बी श्योर।···थैंक्यू, मिस मीना!"

"थैंक्यू वैरी मच।"

और वे सब चले गए। मीना रोकना चाहती थी, पर ठीक उसी वक्त न जाने क्या हो गया था उसे। बोल ही नहीं सकी थी। लगा था कि भीतर कोई चीज़ बैठी हुई थी, जिसने मीना अग्रवाल के शब्दों को थाम लिया था···

क्या थी वह चीज़?···शायद मीना के भीतर बैठी हुई एक और मीना। असन्तुष्ट, अतृप्त और इच्छाओं से भरी मीना। वह चाहती थी कि एक बार महत्त्व ले। महत्त्व मिलना चाहिए। सब लोग उसे देखें। किसी तरह देखें कि कॉलेज में सैकड़ों लड़कियों की भीड़ में एक लड़की मीना अग्रवाल भी है।

और एक लड़की मीना अग्रवाल—चतुरिका। लम्बा-चौड़ा स्टेज, सैकड़ों विद्यार्थी। लड़के-लड़कियां। प्रोफेसरों की भीड़। रोशनी, अंधेरा। आवाजें और चुप्पी। स्टेज की दुनिया विचित्र होती है। सब उपस्थित और सब अनुपस्थित।

और इस सब के बीच—मीना अग्रवाल! चतुरिका। परदा उठेगा। मीना ऐन्ट्री लेगी···

कैसे लेगी ऐन्ट्री?···एक सिरहन मीना के शरीर में फैल गयी है। कैसी लगेगी?···अगर किसी ने सीटी बजा दी तब?···सीटी न सही, कोई टिप्पणी ही?···मीना बेहोश हो जाएगी। हो सकता है, वह ठीक वक्त पर संवाद भूल जाए।···उसे अस्वीकार कर देना चाहिए था। बिलकुल इनकार।···कम्पन का एक दौर हुआ। भवों को इन्द्रधनुषी रंग दे रही थी मेकअप करने वाली। हाथ भटक गया। बोली, "प्लीज, मिस मीना, बी केयरफुल।···"

"ओ···सॉरी!"

पर ऐसा कह देने से तो बात नहीं बनती। इस कम्पन को कैसे, कब तक थाम सकेगी मीना? यहीं नहीं, तो स्टेज पर क्या···

न जाने कितनी गुत्थियां, न जाने कितने कम्पन के दौर और मेकअप करने वाली की न जाने कितनी हिदायतें···

बीच-बीच में दौड़े हुए आयोजक लड़के, निर्देशक, संदेशवाहक।

"कितनी देर लगेगी?"

"भई, जल्दी करो ना!"

"प्लीज़!···"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"लड़के सीटियां बजा रहे हैं ! ···जल्दी कीजिए।"

इनकार कर दे मीना। कैसे कर सकती है ? क्या होगा नाटक का और क्या होगा मीना का ?

"मिस मीना···नाव यू कैन गो।" मेकअप गर्ल उठ खड़ी हुई। सामने आदमक़द शीशा है। मीना अग्रवाल ने अब तक शीशे से नजरें ही चुरायी हैं। न जाने कैसी लग रही होगी ?···वह देखना तक नहीं चाहती। मेकअप से मीना तो बदल नहीं सकती।

लड़के आ गए। वे कुछ बोलना चाहते थे, पर सामने खड़ी थी मीना। मीना यानी चतुरिका !

उन्होंने मीना को देखा और मीना ने उन्हें। और फिर वे चुप एक-दूसरे को देखते रहे। कैसी लग रही होगी मीना ?···

क्या सचमुच इतनी खूबसूरत है मीना ?···बेहद खूबसूरत !

कम्पन और उल्लास ! कितने विरोधाभास की प्रतिक्रियाएं हैं मीना और उन लड़कों में ? उन्हें लग रहा है कि वे धोखा खा रहे हैं···और मीना को लग रहा है कि वह धोखा खा रही है !

"चलिए।···एक बार अपने आपको देख तो लीजिए, मीनाजी !" मेकअप गर्ल ने सुझाया।

और मीना ने जैसे सुना ही नहीं। सुना तो अनसुना कर दिया। सच से सामना करने की ताब नहीं है उसमें। कैसे हो सकती है ! सच कितना भयानक और कठोर होता है। एक क्षण वह चुपचाप खड़ी रही थी, फिर सधे कदमों उन लड़कों के साथ चल पड़ी थी—स्टेज की ओर ! एक निश्चय ने उसे धकेला था—कुछ नहीं होगा। और अगर कुछ होगा तो अधिक नहीं होगा, जिसे मीना को सारे जीवन सहना है।

वह उसी तरह स्टेज पर चली आयी थी। मशीन की तरह बिना बुद्धि लगाए काम करती रही थी। सन्नाटा गहरा होता गया था—बहुत गहरा। स्टेज पर अंधेरा बढ़ आया था। लग रहा था, न कोई सामने है, न पास। सिर्फ मीना है—मीना अग्रवाल ! और शायद वह भी नहीं, सिर्फ चतुरिका ! चतुरिका। एक खिलौना। चाबीवाला खिलौना। प्रॉम्प्टर संवाद देता है, चतुरिका संवाद निगलती-उगलती है और सन्नाटा अधिक गहरा हो जाता है

सब इसी तरह हुआ था—होता रहा था और फिर रोल खत्म होते ही मीना स्टेज से मेकअप रूम की ओर लगभग भागती हुई चली आयी थी। एकाएक सन्नाटा टूट गया था। कुछ आवाजें ! तालियां, खिलखिलाहटें और अनवरत टिप्पणियां···

शायद वह, जिसका मीना सामना नहीं कर सकती थी, अब घट रहा था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मीना ने धड़ाम से दरवाजा भीतर से बन्द कर लिया। आदमक़द शीशे के सामने आ खड़ी हुई। लगता है बुखार हो गया है। उसने चेहरा हथेलियों से ढांप लिया था···और जब हथेलियां हटायी थीं तो इच्छा हुई थी कि शीशे को तोड़ डाले।···वह तोड़ ही डालती शायद, पर तभी दरवाजे पर दस्तकें पड़ने लगीं—कुछ शोर···मीना ने दरवाजा खोला। लड़कों का एक बड़ा झुंड, मीना के सामने था। सब मुसकराते हुए, मुग्ध भाव से उसे देखते हुए, सराहना से भरे हुए।

"बहुत अच्छा रोल किया, मिस मीना !···"

"कांग्रेच्युलेशन्स !···"

"सच ए नाइस···"

"कमाल है !···कितनी खूबसूरत !···विश्वास नहीं होता कि··· कांग्रेच्युलेशन्स, मिस मीना !"

और मीना चुप। रिक्त और भरी हुई। भरी हुई और रिक्त। जवाब देना चाहिए। पर शब्द···कोई और चीज़ भी है जो मीना के भीतर बैठी है। मीना हंस पड़ना चाहती है, जोर से हंस पड़ना चाहती है, पर···

अजीब हुआ। मीना रो पड़ी ! जोर से रो पड़ी···इतनी जोर से कि वे हक्के-बक्के रह गए ! चुप और परेशान। उनमें से कई घबराकर पूछने भी लगे थे, "क्या हुआ, मिस मीना ?···"पर मीना उन्हें क्या बताए ? इस रोने का स्पष्टीकरण क्या है, वह समझ नहीं पा रही है !

वे चले गये थे। निराश और परेशान। मीना फिर से आदमक़द शीशे के सामने जा खड़ी हुई थी। टकटकी बंध गयी थी—क्या सचमुच मीना इतनी खूबसूरत ?···इतनी ?···वह फिर रो पड़ना चाहती थी।

और तभी आ गयी थी— मेकअप गर्ल। पूछने लगी थी, "मेकअप नहीं उतारेंगी, मिस मीना ?"

"ऐं ?···"

"यह मेकअप ?···"

"हां, हां-हां।···" वह शीशे के सामने से हट जाना चाहती थी, पर हटी नहीं। जब मेकअप गर्ल ने दोबारा उससे कहा कि वह मेकअप उतार दे, तो वह अचानक ही उस पर झल्ला पड़ी, "क्यों, इतनी जल्दी क्या है ?···" वह शीशे की ओर देखती रही। फिर मुड़ी, अपने कपड़े उठाए और बाहर चली गयी। मीना ? ···नहीं ! चतुरिका।

मेकअप गर्ल उसे रोकना चाहती थी—"भई, मेकअप और ड्रेस तो उतारती जाओ।···" पर उसने नहीं कहा। अजीब लड़की है मीना !

१९६७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पांच हजार लेखनीवाले हाथ

हांफते अश्व, उदास अश्वारोही, टूटे रथ और निराश सैनिकों की दृष्टि का सीमा से पार तक फैला विशाल काफिला···

सिकन्दर वापस हो रहा था। भारत-विजय के संतोष की प्राप्ति में उसने कितना असंतोष मोल ले लिया था ! सैनिक और अधिकारी एक-स्वर से मांग कर रहे थे—'लौट चलो ! हमें लौट चलना चाहिए !···विश्व-विजय कैसे संभव है, जब भारत के एक-एक राज्य को जीतना कठिन हो गया है !'

असंतोष की एक गहरी अंधेरी खाई में सिकन्दरी सेनाएं डूब गयी थीं—निराशा, बेचैनी और खंडित आत्मविश्वास के दैत्यों ने हर सैनिक को दबोच लिया था—अब शायद वह कभी यूनान न लौट सकेगा !

···कभी नहीं···भारत के किसी एक और राज्य से मुकाबला होगा और वह यूनान जाने, अपने परिवार से भेंटने, बच्चों की तोतली बोली सुनने की इच्छा मन में दबाये इसी भूमि में कहीं खो जायेगा।

असंतोष एक चिनगारी बन गया ! भय, अविश्वास और अशुभ के हर क्षण उठते विचारों ने सैनिकों को बाध्य कर दिया कि वे अपने महान सम्राट के सामने स्पष्ट कह डालें—बस, अब आगे नहीं बढ़ा जायेगा !

यह बात है व्यास नदी के किनारे की। लगातार युद्ध और यात्रा से टूटे हुए सैनिकों का पड़ाव पड़ा। सिकन्दर ने इच्छा व्यक्त की, "अब अगला युद्ध···"

सैनिकों ने एक-स्वर से कहा, "नहीं ! अब युद्ध नहीं ! हम लोग अपने देश वापस जाना चाहते हैं !"

सिकन्दर ने सैनिकों को समझाया-बुझाया, धमकियां दीं, अनुशासन की दुहाई दी, किन्तु सब व्यर्थ। सैनिक अब युद्ध के लिए किसी भी शर्त पर तैयार न थे। लाचार सिकंदर ने यूनान लौटने का निर्णय किया और वापसी हुई थी उसी रास्ते जिस रास्ते उसने भारत में प्रवेश किया था।

झेलम पर आकर उसने हजारों नावों का एक विशाल बेड़ा बनाया और कई दिन की यात्रा के बाद रावी और चिनाब के संगम पर जा पहुंचा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रावी की निचली धारा और चिनाब के बीच विशाल मालव गणराज्य था जो सिकंदर के मार्ग में अनचाहे ही आ गया था। अनचाहे इसलिए कि कल्पना के विपरीत सिकंदर को मालव से चुनौती मिली—सिर्फ चुनौती ही नहीं, युद्ध भी!

मालव और सिकंदर के बीच युद्ध कुछ ऐसा ही था जैसे कि कोई पौधा तूफान के सामने झुकने से इनकार कर दे।

पौधा नहीं झुका। शाखें टूटीं, पत्ते झरे और एक भयावने वीराने ने संपूर्ण मालव गणराज्य को घेर लिया। हर ग्राम और नगर के मस्तक पर चीलें और गिद्ध मंडराते, पनघटों पर विधवा हवा भांय-भांय करती बदहवास-सी भटकती रहती और खेतों में खड़ी फसलें भाग्यरेखा को कोसतीं।

सिकंदर की सेनाओं ने मालव गणराज्य के हर कोने को रौंद डाला था और अब वे बढ़ रही थीं मालव-ब्राह्मणों के ग्राम की ओर!

मालव-ब्राह्मणों का ग्राम। सिर्फ ब्राह्मण थे वहां। पांच हजार ब्राह्मण। मालवराज्य की रीति-नीति के भाग्यविधाता। उनका काम था राज्य की सुख-शांति के लिए ईश्वराधना और धार्मिक कर्मकांड करना। वे राज्य, राजा और प्रजा के धर्म, संस्कृति और सामाजिकता के एकमात्र रक्षक थे। वे पुस्तकें लिखते थे; संविधान बनाते थे; सामाजिक/राजनीतिक समस्याओं पर परस्पर शास्त्रार्थ कर उचित हल खोजते थे। वे ज्ञान-विज्ञान की विविधता के भंडार थे। इस ग्राम में श्लोक गूंजते, हवन-यज्ञादि से वातावरण आनंदित रहता। राजा से इन ब्राह्मणों को उचित पारिश्रमिक और जीवन-निर्वाह की सामग्री मिलती थी। समाज और शासन में इन बुद्धिजीवियों को बहुविध मान्यता और सम्मान प्राप्त था। वे लेखनी के धनी थे और कलासाधना से धर्म और संस्कृति को उचित दिशा-दृष्टि देते थे। वे पांच हजार ब्राह्मण हिंसा से घृणा करने वाले, शांतिप्रेमी और अहिंसा के प्रचारक थे।

सिकंदरी-सेनाएं आ रही हैं। विध्वंस और अत्याचार का नग्न नृत्य करती हुई! ब्राह्मण-नगर में समाचार पहुंचा और इस समाचार के साथ ही दुख, निराशा और घबराहट का विद्युत-प्रभाव!

अब क्या होगा?···ब्राह्मण-नगर के प्रतिनिधि विशेष सभागार में तुरन्त एकत्र हुए।

कई सवाल थे, जिनके उत्तर तुरन्त खोज लेने थे और हर जवाब तुरन्त दे देना था। कई शंकाएं उठीं, कई समाधान हुए। कई प्रश्न उभरे और बैठ गये। क्या वह हम-जैसों पर भी हमला कर सकते हैं? क्यों नहीं कर सकते? क्या हमें आत्मसमर्पण कर देना चाहिए? क्या आत्मसमर्पण गौरवशाली देश के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नागरिकों के लिए उचित है ? क्या कोई देशभक्त इस तरह शत्रु को बर्दाश्त कर सकता है ?

किन्तु किया ही क्या जा सकता है ? पांच हजार लेखनीवाले हाथ सिकंदर के हजारों अनुशासन-बद्ध सशस्त्र सैनिकों के सामने क्या कर सकेंगे ? शस्त्र और लेखनी ··लेखनी और शस्त्र···

अभी वे निर्णय तक पहुंच ही न पाये थे कि सिकंदर का दूत आ पहुंचा। उसने नगर के ब्राह्मण मुखिया को संदेश दिया, "सिकंदर महान की शक्तिशाली सेनाएं नगर-द्वार पर खड़ी हैं। हमें मालूम हुआ कि यह ग्राम पुजारियों का है। सम्राट चाहते हैं कि इस ग्राम में शांति रहे। आपके प्रतिनिधियों से वे भेंट करना चाहते हैं।"

एक क्षण सन्नाटा रहा और फिर ब्राह्मणों के मुखिया ने उत्तर दिया, "अपने सम्राट से कहो कि वे हमसे आकर मिलें। हमारी परंपरा है कि विद्वानों से भेंट के लिए शासक उपस्थित होते हैं।"

दूत के माथे पर सलवटें पड़ गयीं, "क्या विश्व-विजयी सम्राट तुम्हारे पास आयेंगे ?"

"अभी तुम्हारा सम्राट विश्व-विजयी नहीं है। यह ब्राह्मण-नगर आज भी अविजित है। इस देश में ही ऐसे न जाने कितने नगर हैं, जहां तुम्हारे सम्राट की छाया तक नहीं पहुंची है। तुम्हारा सम्राट सिर्फ तुम्हारा सम्राट है।"

दूत कुछ कहना चाहता था कि ब्राह्मण मुखिया आगे बोल पड़ा, "तुम दूत हो, तुम्हारा कार्य सुझाव देना नहीं है। तुम्हें मात्र अपने सम्राट तक हमारा उत्तर पहुंचा देना चाहिए, बस।"

दूत लौट गया।

ब्राह्मण-नगर में कुछ देर खुसफुसाहटें फैली रहीं, फिर मुखिया ने नगरवासियों की एक सभा बुलाकर सभी को आदेश दिये कि वे मातृभूमि की रक्षार्थ कलम छोड़ें और हथियार उठा लें।

मुखिया के जोशीले भाषण ने उन हजारों भावुक हृदयों में वज्र-सी कठोरता पैदा की और ईश्वराधना में पुष्प चढ़ाने वाले हाथों को खड्ग उठाने की प्रेरणा दी।

हवन और मंत्रोच्चारों के बीच ब्राह्मण पुजारियों ने खड्ग संभाले और मातृभूमि के रक्षार्थ नगरकोट पार कर मैदान में आ गये।

दूर सिकंदर की सेनाएं घेरा डाले हुए थीं। उन्होंने कल्पना भी न की थी कि ये कलम वाले हाथ अस्त्र उठा लेंगे।

जय मालव ! जय आर्यावर्त ! गगनभेदी उद्घोष हुआ और पांच हजार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्राह्मण वायुवेग से सिकंदर की सेनाओं पर टूट पड़े।

शाम होने लगी थी। वीर ब्राह्मण जूझते रहे। वे कट रहे थे और सैकड़ों को काट रहे थे। रथ पर कुहनी टिकाए दूर खड़ा सिकन्दर देख रहा था। मन-ही-मन श्रद्धा से नतमस्तक हो गया था वह। कितना महान देश और कितने महान लोग! वह पहला समय था उसके युद्धकाल में जब उसने किसी देश के फूलों को आपत्तिकाल में आग बन जाते देखा था, जब उसने समझा था कि विश्वविजय तो दूर, भारत-विजय भी आसान नहीं है।

वे पांच हजार श्लोक धीरे-धीरे लहू की धारा बनकर मातृभूमि को सींच गये थे और सिकंदर खामोश खड़ा उस नगरकोट को देखता रहा था, जहां अब आरतियों के घंटे गूंजने की प्रतीक्षा में थे, जहां के हर पत्थर पर धर्म और देश-भक्ति के पांच हजार श्लोक लिखे रह गये थे—अनाम और अनजान श्लोक!

१९६८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने-अपने दर्द

कुलकर्णी ने पास की टेबुल की ओर देखा। गुप्ता अभी नहीं आया था। उसने तसल्ली अनुभव की। फाइलें लौटते-पलटते हुए वह चाहकर भी भूल नहीं पाया था कि गुप्ता के आते ही उस पर एक बोझ-सा सवार हो जाएगा।

ऐसा हमेशा होता है। कई महीनों से ऐसा ही हो रहा था। खासतौर से उस समय तो कुलकर्णी स्वयं को बेहद दबा-दबा महसूस करता था, जब गुप्ता उसके पास आ खड़ा होता था या बातचीत करने लगता।

ऐसा नहीं था कि कुलकर्णी को आदमी पसन्द नहीं थे या वह कोई ऊबने-उबाने वाला आदमी था। अपने मिलनसार और हंसोड़ मिजाज के लिए वह ऑफिस और ऑफिस के बाहर भी मशहूर था। फिर भी गुप्ता के सामने पड़ते ही उसका मुसकराता हुआ चेहरा बुझने-सा लगता और न जाने कैसे अपने-आप ही वह सामने वाले को उबाने लगता, खुद ऊब जाता।

ऐसा भी नहीं कि गुप्ता बोर आदमी हो। गुप्ता तो कुलकर्णी से भी कई गुना खुशमिजाज और हंसोड़ था। इसके बावजूद उनकी मुलाकात बड़ी थका देने वाली होती। गुप्ता न भी अनुभव करे, कुलकर्णी खूब अच्छी तरह करता था। आपस में साधारण-सी मुलाकात भी उनके गले पर जुए के बोझ की तरह लदी रहती। तमाम दिन वह अनुभव करता था, जैसे गुप्ता ऑफिस में आते ही उससे नमस्कार नहीं करता, बल्कि नमस्कार के बहाने पूछता है, "कुलकर्णी, मेरे पैसे कब वापस कर रहे हो?···और कुलकर्णी बुझ जाता। वह टूटती जुबान में झेंपकर जवाब देता, 'नमस्कार', जैसे कह दिया हो, "कोशिश कर रहा हूं, जल्द ही दे दूंगा।"

कुलकर्णी ने एक बार पुनः पास की टेबुल की ओर देखा। गुप्ता अब तक नहीं आया था। उसने शरीर में फुर्ती अनुभव की। सोचा, कितना अच्छा हो, गुप्ता आज ऑफिस ही नहीं आए। दूसरे ही क्षण उसे एक खीझ ने घेर लिया। कमबख्त गुप्ता को छुट्टी मनाने का बिलकुल शौक नहीं है। न जाने कैसा आदमी है! इस ऑफिस की जिन्दगी से वह ऊबता ही नहीं!

कुलकर्णी स्वयं के बारे में सोचता है। इतवार के अलावा भी हर हफ्ते उसकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इच्छा रहती है छुट्टी मनाने की। कभी-कभी तो साधारण-सी सरदी ही उसे 'छुट्टी' दिलवा देती है, वह घर पर ही रह जाता है। ऑफिस खबर तक नहीं भेजता। छुट्टी की दरखास्त दूसरे दिन देता है, पर गुप्ता···? कुलकर्णी को कुढ़न हुई। उसे याद आया, अभी पिछले माह गुप्ता को फ्लू हो गया था। फिर भी वह लगातार ऑफिस आता रहा—थैले में मिक्स्चर की शीशी और जेब में गोलियां लेकर। एक दिन का नागा तो दूर, वह ऑफिस में एक घंटा भी लेट नहीं आता था। दोस्तों ने उसे समझाया भी था, "एक-दो दिन रेस्ट ले लो।" और गुप्ता ने जवाब दिया था, "घर में पड़े-पड़े भी तो मन नहीं लगता, यार !···"

कुलकर्णी का मन हुआ, गुप्ता को गालियां दे। आदमी नहीं, बैल है !

फिर कुलकर्णी ने निश्चय किया, इस माह जैसे भी हो, गुप्ता के रुपये दे देने हैं। पचास रुपये के पीछे उसे हर क्षण स्वयं को दलदल में कैसा अनुभव करना होता है। गुप्ता ने कुलकर्णी को वक्त पड़े रुपए नहीं दिए, खूंटे से बांध लिया है। मरजी हो या न हो, उसे हर मामले में गुप्ता का समर्थन करना होता है। वह चार दोस्तों के बीच कोई असफल चुटकुला सुनाये तो पास खड़े कुलकर्णी को जबरन हंसकर उसे सफल बनाना होता है।

गुप्ता अब भी नहीं आया था। कुलकर्णी ने घड़ी देखी, कांटा बारह का आंकड़ा पार कर गया है। शायद गुप्ता आज नहीं आयेगा। जरूर कोई बड़ी बात हो गई है वरना वह इस तरह छुट्टी मनाने का आदी नहीं ! जो भी हो, गुप्ता आज नहीं आ सकता। फाइलें लौटाते-पलटाते कुलकर्णी एक सुख अनुभव करने लगा।

"हैलो, कुलकर्णी ?"

कुलकर्णी चौंक गया। एकाएक कोई जवाब न देकर वह हैरानी से देखने लगा। गुप्ता आ गया था और बगैर कुलकर्णी के जवाब की अपेक्षा किये, एकदम अपने काम में उलझ गया था। कुलकर्णी के दिमाग में जैसे एक क्षण के लिए कोई नुकीला कांटा चुभ गया। उसे विश्वास करना पड़ा—वह गुप्ता ही था और अपनी आदत के अनुसार माथे पर व्यर्थ की सिकुड़नें पैदा कर काम के प्रति अपनी गंभीरता बता रहा था।

कुलकर्णी का मन हुआ था, गुप्ता की 'हैलो' का जवाब दे लेकिन चाहकर भी वैसा नहीं कर पाया। वह जानता है, गुप्ता की हर बात का जवाब पचास रुपये है। कुलकर्णी ने पिछले माह यहां तक फैसला कर लिया था कि अगर घर में एक वक्त भी खाना मिलेगा, तो चलेगा, पर यह उधारी हर हालत में चुका देगा; किन्तु जैसे ही पगार वाला दिन आया, कुलकर्णी ने अपना फैसला बदल दिया। बदल क्या दिया, बदलना पड़ा। कैशियर ने जैसे ही उसके हाथ में तनख्वाह पकड़ायी, अनचाहे ही उसे जरूरतों का एक लम्बा सिलसिला याद हो आया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चुपचाप तनख्वाह के नोट जेब में रखकर वह फुर्ती से अपनी टेबुल पर आ बैठा। जरूरतें एक-एक कर याद आ रही थीं। हर जरूरत ऐसी थी जो उधारी चुकाने की जरूरत से बड़ी लगती थी।

उसे ख़याल आया, बड़े लड़के को पिछले तीन माह से स्कूल-यूनिफॉर्म की जरूरत थी। इस माह उसने अल्टीमेटम दे दिया था, क्लास टीचर ने साफ-साफ कह दिया है, "अगर इस बार यूनिफॉर्म नहीं बना तो नाम काट देंगे !"

कुलकर्णी ने जी थामकर सुना था और अब जब तनख्वाह हाथ में है, तो उसे किसी भी तरह उस लड़के की मांग पूरी कर देनी चाहिए।

फिर उसे पत्नी की चप्पलों का ख़याल आया। पिछले चार महीनों से वह नंगे पैर बाजार जाती है। पड़ोस की और भी तो औरतें हैं। सभी के पैरों में अगर ऊंची किस्म की नहीं तो रबड़ की सस्ती स्लीपरें जरूर हैं। और एक कुलकर्णी है कि अपनी घरवाली को दिल्ली की चटकती धूप में नंगे पैरों घुमा रहा है।

वह सोचता गया और हर जरूरत के नाम पर अपनी पगार के टुकड़े करता गया। बीस रुपये स्कूल यूनिफॉर्म के नाम, तीन रुपये सस्ती वाली स्लीपर, पांच रुपये की तम्बाकू···

उसे खीझ हुई। जिस घर में खाने को भी ढंग से मयस्सर नहीं, वहां तम्बाकू का खर्चा ? पर उसे यह खयाल घोंट लेना पड़ा। तम्बाकू बन्द कर देना उसके लिए कठिन है। उसने यह निर्णय किया, इस बार ये छिटपुट काम निबटाकर अगले माह गुप्ता का उधार आसानी से चुकाया जा सकता है। पचास रुपए तो हैं ही, कोई इसके डर से नौ साल की सर्विस नहीं छोड़ जायेगा। लिया है तो जरूर देगा। अगले माह तनख्वाह मिलते ही दस-दस के पांच नोट गुप्ता के चेहरे पर फेंक मारेगा। छोटे मन का आदमी !

और अब यह माह भी पूरा होने आ गया है। लगता है, इस बार भी पचास रुपये नहीं चुकाये जा सकेंगे। कुछ नयी जरूरतें पैदा हो गई हैं और हर जरूरत ऐसी है कि चाहो तो भी न टल सके।

कुलकर्णी एक गहरी सांस खींचकर उदास भाव से तम्बाकू मसलने लगा। इस माह रिश्तेदारी में एक शादी आ गई है। यों कुलकर्णी तो इन बातों को ज्यादा गंभीरतापूर्वक नहीं लेता, पर समाज की औपचारिकताएं निबाहनी ही पड़ती हैं। उसके अपने बच्चे भी हैं। कल उनके शादी-विवाह का भी सिलसिला लगना है। वह रिश्तेदारों से उदासीन हो जाय तो काम कैसे चलेगा ? पिछले दस दिनों से वह रह-रहकर इस मसले पर सोचता रहा है और हर बार इसी निर्णय पर पहुंचा है कि पचास रुपए खर्च करके भी प्रेम-सम्बन्ध जिन्दा रखने ही होंगे। जाति-समाज के समुन्दर में उतर ही गए हैं, तो ज्वार से क्या डरना ? दो दिन की छुट्टी के अलावा अगर बहक गरदन बचाकर लेन-देन किया तो भी पचास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रुपए से कम खर्च नहीं आयेगा।

कुलकर्णी ने पिछले सोमवार को ही दो दिन की छुट्टी की दरख्वास्त पेश कर दी थी। एक बार फिर उसने सोचा, 'क्या ऐसा नहीं हो सकता कि गुप्ता को उधार इस माह ही चुका दूं?' 'पर दूसरे ही क्षण मन के न जाने किस कोने से वही आवाज उठी, 'अगले माह जरूर दे दूंगा। शादियां रोज-रोज थोड़े ही आती हैं।'

"सुना है तुम दो दिनों की छुट्टी पर जा रहे हो?"

पासवाली टेबुल से गुप्ता ने कहा। कुलकर्णी तम्बाकू की फंकी मुंह तक ले जाते ले जाते रुका और बेमन बोला, "हां।"

"क्यों?" गुप्ता ने सहज तरीके से आगे पूछा, हालांकि वह बुरी तरह फाइलों में उलझा हुआ था।

कुलकर्णी को खटक गया। कुछ रुखाई से उत्तर दिया उसने, "मेरी सगी भानजी की शादी है।"

"हूं।" गुप्ता चुप हो गया।

कुलकर्णी का मन हुआ, पूछे, 'आज तुम लेट कैसे हो गये?' लेकिन वह कुछ कह नहीं सका। गुप्ता समझ गया, वह मक्खन लगा रहा है। कुलकर्णी ने चुपचाप तम्बाकू फांकी। फिर वह अपने काम में लग गया।

गुप्ता पूर्ववत् फाइलों में उलझा हुआ था। कुलकर्णी सोचता गया। बीच में उसने ऑफिस के आते-जाते साथियों से टूटी-टूटी बात कर औपचारिकता भी निबाही। पर हर बात के बाद वह यह भूल जाता था कि आखिर उसने किससे क्या बात कर ली है। उसे लगा, जैसे असली कुलकर्णी के अलावा भी कोई एक और नकली कुलकर्णी उसमें मौजूद है, जो घर की और गुप्ता की उधार की बातों के अलावा लोगों से बातचीत करता है, हंसता-बोलता है।

तम्बाकू की तीखी और कसैली राल उसके जबड़ों में भर गयी थी। उसे थूक देना चाहिए था, पर उसने सीट नहीं छोड़ी। उसने आंकड़े सोचे—नये महीने के आंकड़े—और पाया कि वे पगार के आंकड़ों से ऊंचे हो गये हैं। "गुप्ता का उधार चुकाना तो दूर रहा, ये घर में ही पूरे नहीं पड़ेंगे।" उसने सोचा।

और मन से एक सवाल उठा, क्या उसे फिर किसी से उधार लेना चाहिए?

नहीं-नहीं! हरगिज नहीं! वह एक बार जो गलती कर चुका है, उसे दोहरा नहीं सकता।

सारे दिन कुलकर्णी पशोपेश में पड़ा रहा। दूसरे दिन भी उसके दिमाग की नसें इसी सोच में तड़कती रहीं। घर से निकलते-निकलते उसने पत्नी और बूढ़ी मां के संदेशे सुन लिये थे। शादी में जरूर जाना होगा। और जब जाना ही है तो कुछ तो चाहिए—उसने सोचा—कम-से-कम पचास रुपये।

"हैलो, कुलकर्णी!"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुलकर्णी मशीनी ढंग से अपनी जगह पर जाकर बैठा ही था कि गुप्ता का चिर-परिचित स्वर कानों से आ टकराया। मन हुआ, गुप्ता को कॉलर पकड़कर जमीन पर गिरा दे और चेहरे पर मुक्के कसे, लेकिन नहीं, वह ऐसा नहीं कर सकता। वह जानता है, वह कितना कमजोर है। उसने सिर्फ एक शब्द में गुप्ता को उत्तर दिया, "हैलो !"

"कुलकर्णी ?"

उसने गरदन फिरायी। गुप्ता कुछ कुरेदती आंखों से पूछ रहा था, "तुम कुछ परेशान लगते हो, कल भी इसी तरह चुप्पी साधे रहे। क्या बात है ?"

"नहीं-नहीं। ऐसी तो कोई बात नहीं है···बस, यूं ही···" कुलकर्णी ने गरदन फिरा ली।

गुप्ता चुप हो गया। कुलकर्णी ने दो-चार फाइलें लौटीं-पलटीं, एक-दो रिमार्क पढ़े, एक-दो चिपकाये भी और फिर उन्हीं ख़यालों में डूब गया।

लंच टाइम में कुलकर्णी ऑफिस के उस क्लर्क के पास जा पहुंचा, जो लोगों को कर्ज दिया करता था। उसने इसी ऑफिस में हजारों रुपया रिश्वत से कमाया था और अब ब्याज पर रुपया देने का व्यवसाय करने लगा था। ऑफिस का हर जरूरतमंद आदमी उसी से उधार लेता और मंहगा ब्याज चुकाकर जैसे-तैसे मूल धन लौटाया करता। हर आदमी उसे नापसन्द करता था, पर जरूरत के दिनों में यह आदमी लोगों को बहुत पसन्द आता। कुलकर्णी को भी यह नापसन्द था, पर आज वह उसे अच्छा लगा। उसने इधर-उधर की दो-चार बातें कीं और फिर अपना स्वार्थ सामने ला रखा, "आहूजा बाबू, मुझे पचास रुपयों की जरूरत है।"

आहूजा के बूढ़े चेहरे पर झुर्रियां सिमट आयीं, "कब चाहिए ?'

"आज मिल जाये तो बहुत अच्छा। वैसे, परसों तक मिले तो भी चलेगा।"

"मैं आज ही दे देता", आहूजा ने उत्तर दिया, "पर अभी-अभी गुप्ता तीस रुपये लेकर गया है। उसका छोटा लड़का बीमार है। वह बहुत जरूरत में था।"

कुलकर्णी चौंका, "लड़का बीमार है गुप्ता का ?"

"हां।" आहूजा ने बताया, "कहता था, अगर आज रुपये न मिले तो लड़के की जान पर बन जायेगी···पर, पर तुम क्यों परेशान होते हो ? मैं तुम्हारे लिए भी कल तक जरूर इंतजाम कर दूंगा।"

पर कुलकर्णी जैसे सुनकर भी नहीं सुन पा रहा था। वह चुपचाप अपनी जगह आ बैठा। कितनी अजीब बात है ? गुप्ता चाहता तो कुलकर्णी से तकाजा कर सकता था, पर उसने बेहद महंगे ब्याज पर आहूजा से कर्जा लिया। ऑफिस में गुप्ता के आते ही कुलकर्णी उसके पास पहुंचा। "गुप्ता !" कुलकर्णी ने पूरा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहस जुटाकर बात शुरू की। लग रहा था, वह खुद बौना है।

"हूं ?" गुप्ता ने चेहरा उठाया।

कुलकर्णी को आश्चर्य हुआ। इसका लड़का बीमार है, पर आंखों में वही चमक कैसे कायम है ? एकाएक वह कुछ कह नहीं सका तो गुप्ता ने पूछा, "क्यों ? क्या बात है ?"

"कुछ खास नहीं।" कुलकर्णी बोलने लगा, वह जैसे एक मशीनी रोल अदा कर रहा था, "यार, मैं तुम्हारे पचास रुपये आज ही दे देता, पर बैग घर पर ही भूल आया। कल जरूर ले आऊंगा।" उसने झूठ कहा।

"अभी ऐसी क्या जरूरत है ?" गुप्ता ने मुसकराकर कहा, "तुम्हारी सगी भानजी की शादी है ना ? जरूरत पड़ेगी, अभी रहने दो।"

कुलकर्णी ने अनुभव किया जैसे गुप्ता भी अपने आप में दो हैं। एक वह, जो उससे मुसकराता हुआ बातें कर रहा है और दूसरा वह, जो आहूजा से ब्याज पर रुपया उठाता है। थोड़ी देर कुलकर्णी चुपचाप खड़ा रहा, जैसे कुछ सोच रहा हो, फिर बोला, "जरूरत हो या न हो, लेकिन इस बार मेरे पास पैसे काफी हो गये हैं, बेकार ही क्यों कर्ज लिये रहूं ? कल जरूर ले आऊंगा।"

और इससे पूर्व कि गुप्ता कुछ कहे, कुलकर्णी आहूजा के पास चला गया और उसके कान के पास मुंह ले जाकर फुसफुसाया, "यार, कल मेरा काम जरूर कर देना।"

१९६८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ

कौन-कौन आ गये हैं ?···वह पूछना चाहता था, पर एकाएक साहस नहीं हुआ। पास के पलंग पर पत्नी उनींदी-सी लेटी हुई थी। एक बार भूल से वह पत्नी के सामने स्वीकार चुका था कि सरना से उसका लगाव रहा है। पर उसने यह भी कहा था कि वह बहुत पुरानी बात थी···बिलकुल बचपने की···और अब खतम हो चुकी है। ऐसी स्थिति में भला कैसे पूछ सकता था कि कौन-कौन आ गये हैं।

वह पूछेगा और पत्नी समझेगी कि जरूर वह सरना के बारे में ही जानना चाहता है। यह समझते हुए वह अनिल की ओर कुछ इस तरह देखने लगेगी जैसे अनिल के भीतर कहीं सरना छिपी हुई है। और अनिल अपनी कमजोरी जानता है, वह पत्नी की तीखी दृष्टि झेल नहीं पायेगा···क्षण-भर में ही उसकी पत्नी अनिल के भीतर छिपी सरना को खोज निकालेगी ! नहीं, वह नहीं पूछ सकेगा···

उसने एक करवट ली और सिगरेट सुलगाने लगा। किस तरह पूछा जा सकता है ? उसने सोचा। फिर धुएं का एक कश खींचा और आसमान की ओर निरुद्देश्य देखने लगा। एकाएक उसे लगा कि आसमान बंटा हुआ है—दो टुकड़ों में बंटा हुआ है। एक ओर सपाट नीलाई थी और दूसरी ओर बादलों के टुकड़े।, परतें और परतों के बाद परतें। अनिल ने महसूस किया कि वह भी आसमान की ही तरह बंटा हुआ है। एक ओर परतों से भरा हुआ अनिल है, दूसरी ओर सपाट व्यक्तित्व वाला अनिल !

इतना सहज नहीं है पूछ लेना। पत्नी बहुत तेज है। जरा में पहचान जायेगी कि कुछ है।

अभी कुछ दिन पहले उसने सरना के भाई से पूछा था, 'शादी के मेहमान आने शुरू हो गये हैं या नहीं ?' और जवाब देकर वह अनिल की ओर से कुछ उदास-सा हो गया था। अनिल साफ-साफ पूछना चाहता था कि सरना कब आयेगी ?···पर नहीं पूछ सका था। न जाने सरना का भाई क्या सोच बैठे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जानता वह भी था कि सरना और अनिल के बीच कभी कुछ रह चुका है···

पर अब, जब सरना का विवाह हो चुका है, वह एक बच्चे की मां बन चुकी है···अनिल का भी विवाह हो चुका है, वह भी एक बच्चे का पिता बन चुका है, तब क्या यही नहीं समझा जा सकता है कि अब उन दोनों के बीच कुछ नहीं है। वह थोड़ी देर सोचता रहा था, फिर पूछ लिया था उसने, "सरना नहीं आयी ?"

"नहीं।"

"क्यों ?"

अनिल अनायास ही यह 'क्यों' कह गया। जब कहा तब बिलकुल सहज था, फिर उसे लगा कि वह भीतर-ही-भीतर खौलने लगा है।

सरना का भाई चुप रहा था। उसके माथे पर कुछ सिकुड़ाव पैदा हो गया था। क्यों, अनिल एकाएक समझ नहीं सका। बोला, "सरना को तो सबसे पहले आ जाना चाहिए था। तुम उसके इकलौते भाई हो, तुम्हारी शादी फिलहाल इस घर की आखिरी शादी है।"

सरना का भाई चुप था।

अनिल को लगा कि उसे इस तरह दिलचस्पी नहीं दिखानी थी। कम-से-कम सरना के मामले में उसे दिलचस्पी जाहिर नहीं करनी थी। भूल-सुधार के भाव से बोला, "मेरा मतलब है, बड़े-बूढ़ों पर उतनी मेहनत नहीं बन पाती। सरना आ जाती तो···"

"जीजी ने तो पत्र में लिखा था कि वह आ रही हैं, पर जीजाजी···आपको तो मालूम ही है कि वे हार्ट-पेशेन्ट हैं। उनके खाने-पीने में बहुत सावधानी रखनी पड़ती है। और फिर शादी में तो अभी काफी वक्त पड़ा है।"

"अब कितने दिन हैं ?" अनिल इस तरह बोला, जैसे उनके घर का कोई बुजुर्ग बोल रहा हो, "मैं समझता हूं, ज्यादा-से-ज्यादा पन्द्रह-बीस दिन होंगे।"

"नहीं-नहीं, लगभग एक महीना है। आज सोलह है और शादी है चौदह जुलाई की।"

और फिर अनिल कुछ नहीं बोला। बोलने के लिए जगह नहीं रही थी। उसे लगा कि जरूरत से ज्यादा बोलकर उसने अपने आपको खोल दिया है। "अच्छा, चलूं।" उसने कहा था और कतरा गया था।

काफी रास्ता पार करने के बाद उसे याद आया था कि वह अपनी बौखलाहट में सरना के भाई का नमस्कार भी निरुत्तरित कर आया था। एक बार फिर से वह अपने आप पर झल्ला उठा था। पर किया भी क्या जा सकता था। जी मसोसकर रह गया। उसने ठीक तरह से बातचीत नहीं की, वरना यह पता लगाना कठिन न होता कि सरना कब तक आ जायेगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर यह सब जान लेना भी बेवकूफी है। अगर सरना आ भी गयी तो अनिल को क्या मिल जायेगा ? अब तो वह बात रह नहीं गयी है। वही बात क्या, कुछ भी नहीं रह गया है। इत्तिफाकों ने सब कुछ बदल डाला है। इतना कि स्वयं अनिल को भी कभी-कभी लगने लगता है जैसे इससे पहले सरना और उनके बीच कुछ नहीं था और यदि था तो सिर्फ बचपना था !

बचपना ?

हां, बचपना ही रहा होगा !

पत्नी ने एक करवट ली। पूछा, "तुम अब तक जाग रहे हो ?"

"ऐं ?" वह चौंक गया, फिर संयत होकर बोला, "गरमी बहुत है आज···"

"शायद बारिश गिरेगी।"

"हां, शायद···"

वह चुप हो गयी। और अनिल के मन में फिर से विचार कौंधा, पूछ ले, "कौन-कौन आ गये हैं ?" पर फिर वही बात। वह पूछते-पूछते रह गया। वह जानता है कि गोविन्द श्रीवास्तव के घर से सम्बद्ध जो भी सवाल वह करेगा, उससे सरना को जुड़ा मान लिया जायेगा। पत्नी ही नहीं, सभी जानते हैं कि सरना और अनिल के बीच कभी कुछ था और सरना की शादी होते ही धुल गया था ! और अनिल कीशादी होते ही बिलकुल धुल गया था !···

क्या सचमुच बिलकुल धुल गया था ? उसने एक करवट ली, फिर से आसमान के बारे में सोचा। वह अब भी दो टुकड़ों में बंटा हुआ था। कब तक बंटा रहेगा ? सचमुच गरमी बहुत थी। पीठ और कंधों पर फुंसियां उठ आयी हैं। इनमें चुनचुनाहट होती रहती है। अनिल ने बनियाइन उतार दी। शायद इसी तरह कुछ राहत मिले।

सिगरेट खतम हो चुकी थी। उसने ठूंठ एक ओर फेंक दिया। तभी उसे ख़याल आया कि ठूंठ सुलग रहा है, उसे बुझा देना चाहिए। वह अलसाता हुआ उठा और उसने स्लीपर से उसे कुचल डाला। चमक गायब हो गयी। वह फिर से बिस्तरे पर जा लेटा।

क्या जरूरी है कि सरना के बारे में वह इतना उत्सुक हो उठे ? सरना के पास अनिल के लिए रहा क्या है और अनिल के ही पास सरना के लिए क्या रह गया है ?···या उन दोनों के बीच क्या रह गया है ! और उसे लगा कि सोना चाहिए। सब व्यर्थ है !

पर अजीब है यह व्यर्थता का बोध ! अनिल चाहकर भी उस व्यर्थ को हटा नहीं पा रहा है। हर बार लगता है कि सरना के बारे में जानकारी कर ले।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शायद सरना आ गयी होगी। अब तक कैसे रुकी रह सकती है ?

आ गयी होती तो क्या दीखती नहीं ? सरना का घर उसके घर के बिलकुल सामने है। उसके आते ही घर में चहल-पहल हो जाती। वह खुद ही सारे मोहल्ले में मिलती-जुलती। शायद नहीं आयी होगी।

क्या मालूम आ गयी हो, और घर में बुझी-सी बैठी रहती हो। अनिल अनचाहे ही उदास हो गया। सरना का पति हार्ट-अटेक का पेशेन्ट है। शादी के बाद मालूम हुआ था। सरना का सारा उत्साह और हंसी-खुशी यह मालूम होते ही खतम हो गयी होगी ! यों भी विवाह हो जाने के बाद लड़की में वह उत्साह या फुरती नहीं रह जाती। शरीर में अजीब-सा आलस समा जाता है और जिंदगी अनायास ही गंभीरता से भर उठती है। खुद अनिल का अपना अनुभव है। शादी से पहले वह एक फूल की सुगंध की तरह सारे मोहल्ले-मोहल्ले ही नहीं, दूर बाजारों की जवान लड़कियों के दिलोदिमाग में बसा हुआ था और बाद में एकाएक ही यह सुगंध गायब हो गयी थी।

पर सरना की बात सबसे अलग थी। अनिल की सुगंध उसके मन में हर कोने में रच-बस गयी थी। इतनी गहरी कि सारी जिन्दगी दूर नहीं हो सकती। और सरना की अपनी सुगंध ?···वह भी अनिल को गहरे तक डुबोये हुए है !···

अनिल ने पत्नी की ओर देखा। वह सो चुकी थी। दिन-भर काम में फंसी रहने के कारण बेतरह थक जाती है। एक बच्चा है, पर इतना रोने वाला और शैतान कि पांच बच्चों के बराबर हो जाता है। सरना के भी एक ही बच्चा है। अनिल ने देखा ही नहीं है। मालूम नहीं, वह अनिल के बच्चे की तरह शैतान है या नहीं ! ···और एक बार पुनः उसकी इच्छा हुई, पूछ ही डाले। घर में सौ तरह की बातें होती रहती हैं। हर बात आशंका का कारण नहीं हो सकती। पड़ोस के घर में शादी हो रही हो और उसके बारे में बात न निकले, यह कैसे संभव है।

मगर पत्नी तो सो चुकी है ! वह अपने आप पर झल्लाया। हमेशा इतना अनिश्चित आदमी रहा है कि किसी भी मामले पर समय रहते, कभी निर्णय नहीं ले सका। उसने हमेशा उस समय निर्णय किया है, जब बात से हाथ खाली हो चुका होता है···सरना के मामले में भी निर्णय लेते समय उसने ऐसी ही भूल की थी, वरना सरना तो इतनी हिम्मतवाली लड़की थी कि उस समय अनिल जैसा चाहता, करवा लेता।

बहुत हिम्मतवाली लड़की थी सरना।

और अनिल ?

बिलकुल निकम्मा ! जितना चंचल और तेज-तर्रार, भीतर से उतना ही दब्बू और अनिश्चित !

सरना के मामले में वह ऐसा ही साबित हुआ था। कहने भर के लिए उसने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऊंचे दरजे की पढ़ाई की थी। बातचीत में बड़ी-बड़ी बातें कर लेता था और सरना को भरोसा था कि वह उसके मामले में अपनी बातों की ही तरह बुलंद साबित होगा, पर···

एकाएक टूट गयी थी सरना। जब सरना के विवाह की बात उठी तो अनिल इस तरह चुप हो गया था जैसे सरना से उसका कुछ भी नहीं था। वायदे, शामें, चोरी-छिपे के आलिंगन-चुम्बन—सब गायब हो चुके थे! बात बिलकुल किनारे आने लगी थी और सरना इन्तजार करती रही कि अनिल अब कुछ कहेगा···शायद अब·· अब चुप नहीं रहेगा!

पर अनिल चुप था। चुप ही नहीं, चोरों की तरह मुंह चुराने लगा था। सरना उसके सामने से निकलती तो वह दाएं-बाएं देखने लगता। कभी-कभी वह रास्ता बदल जाता।

और संस्कारों के बोझ से दबी, कम पढ़ी-लिखी सरना एकाएक ही उबल पड़ी थी। एक दिन सीढ़ियों में सरना को मिल गया था वह। कतराकर निकल जाना चाहता था, पर सरना ने हाथ पकड़ लिया, "क्यों, बहुत जल्दी में हो?"

"ऐं?··नहीं-नहीं। ऐसी तो कोई बात नहीं।" वह घबरा गया था।

सरना ने इस बात की बिलकुल परवाह नहीं की थी कि वे सीढ़ियों के बीच हैं। किसी भी क्षण ऊपर या नीचे से कोई आ सकता है। वह सरना न रहकर सिर्फ एक सवाल रह गयी थी अनिल के लिए। सवाल, जो रास्ता रोके हुए था, "तुम्हें मालूम है कि मेरे रिश्ते की बात चल रही है?"

"हां?"

"और तुम यह भी जानते हो कि रिश्ता हो जायेगा।"

"..."

"और तुम चुप हो?"

वह चुप रहा।

"बात क्यों नहीं करते हो?"

"ऐं!" वह चौंका।

"तुम्हें मुझसे कोई शिकायत है?"

"नहीं।"

"मैं कम पढ़ी-लिखी हूं, यह बात है?'

"नहीं-नहीं।" वह सकपका गया था, "नहीं, ऐसी कोई बात नहीं है।"

"फिर?"

"असल में मुझे वक्त नहीं मिला। मैं···"

"और पहले तुम्हें मुझसे बातें करने का वक्त मिल जाता था, क्यों?" उसने पूछा नहीं, अनिल के मुंह पर एक थप्पड़ मार दिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"नहीं-नहीं। असल में···"

"तो तुम बात नहीं करना चाहते ?"

"···!"

"तुम एक बार बात करो तो सही।" वह बोली थी, "तुम्हारे कहने के बाद मैं भी···"

"अच्छा, मैं बात करूंगा।"

"कब ?"

"आज ही।"

"ठीक है।" वह चली गयी थी।

अनिल चेहरे का पसीना पोंछते हुए चुपचाप सीढ़ियां उतर गया था। वह जानता है कि वह बात नहीं करेगा। शायद सरना भी जानती है। पर दोनों एक-दूसरे को धोखा दे रहे हैं। अपने आपको भी दे रहे हैं। अनिल यही सोचता रहा था···

पर सरना बहुत गंभीर थी। वह विवाह तक अनिल को लेकर सोचती रही थी। शायद अब कहेगा, इस बार नहीं रुक सकेगा, शायद अब···

पर किसी बार कुछ नहीं हुआ। सरना का विवाह हुआ। अनिल खाने में शरीक हुआ। उसने बरातियों के स्वागत में हाथ बढ़ाया। मोहल्ले के तमाम लोगों की तरह सरना के दूल्हे के पैर छुए···लगता था कुछ है ही नहीं। वे लोग भी कम हैरान नहीं थे, जो जानते थे कि कुछ है और सरना के विवाह के समय उबलकर बाहर आयेगा, पर सब शांति से घट गया।

खुद अनिल भी कम हैरान नहीं था। कैसे घट गया इतना सब ? कितना चुप और ठंडा ! इस बीच कितनी ही बार उसने सोचा था कि वह सरना के पिता गोविन्द श्रीवास्तव से बात करे। कहे कि सरना को वह चाहता है। सरना भी उसे चाहती है। दबे-मुंदे सब जानते थे कि अनिल और सरना एक-दूसरे को चाहते हैं। अगर अनिल कहता तो शायद सरना के पिता गोविन्द श्रीवास्तव अस्वीकार भी न करते। अनिल ऊंची जाति का था—जायदाद वाला, पढ़ा-लिखा, स्वस्थ।

पर यह सब अनिल ने तब सोचा था, जब बात हाथ से फिसल चुकी थी। हर बार ऐसा ही हुआ है। स्वयं अनिल की शादी के वक्त भी ऐसा ही हुआ था। लोग जानते थे कि सरना से अनिल प्यार करता है। भले सरना का विवाह हो गया है, शायद वह अपनी शादी नहीं करेगा। पर ठीक वक्त पर उसने 'हां' कर दी थी। मन में 'ना' होते हुए 'हां' कह गया था। कहने के बाद वह खुद हैरान रहा था, कैसे कह गया। शादी होने तक हैरान रहा था।

जब-जब सरना का जिक्र आता, अनिल फट पड़ना चाहता था, पर हर बार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चुप रहता था, बात से कतरा जाता। कैसे होता था वह सब, अनिल नहीं जानता। जब बात खत्म हो जाती तो उसे लगता था कि इस तरह कहना चाहिए था···या इस तरह।

पर सब लेट ! सब बाद में याद आता। पछतावा होता कि क्यों नहीं कहा। हर बार पछतावा ही पास में रह जाता। शुरू से रहा था।

और इस पछतावे के साथ सरना रही थी। शुरू से थी। मालूम नहीं, सरना के साथ वह रह पाया है या नहीं। पर सरना उसके पास है। किसी भी रूप में है, मगर है।

और आज भी पछतावा रह गया है कि क्यों नहीं पूछा। पत्नी खर्राटे भर रही है। अगर पूछ लेता तो क्या बताती नहीं। असल में कमजोरी अनिल की ही है। हमेशा रही है।

आकाश उसी तरह बंटा हुआ है। सपाट और बदराया हुआ। फुंसियां चुन-चुना रही हैं। बेहद गरमी !···शायद बारिश होगी। बारिश होने से पहले ऐसा ही होता है। गरमी चरम सीमा पर पहुंच जाती है, बेचैनी बढ़ जाती है और फिर एकाएक ही पानी बरसने लगता है। सब ठंडा हो जाता है !

क्या पता सरना आ ही गयी हो ! उसके पति को हार्ट-अटेक की बीमारी है। एक दौरा हो चुका है।

सरना आ गयी होती, तो दिखती जरूर। वह शायद अनिल के यहां मिलने भी आती।

हवा बिलकुल थमी हुई है। बारिश आने से पहले इसी तरह थम जाती है।

सरना आ गयी थी। बिलकुल सुबह वह अनिल और उसकी पत्नी से मिलने चली आयी थी। अनिल ऑफिस के लिए तैयार हो रहा था कि वह आ गयी। बच्चा उसने सीने से चिपटा रखा था। अनिल के सामने आते ही उसने अपने बच्चे से कहा था, "नमस्ते कहो !"

"नमस्ते !"

"नमस्ते !" अनिल ने बच्चे को प्यार से देखा, आगे बढ़ा और उसे दुलराने लगा, "कैसे हो ?" एकाएक ही वह सरना की ओर देखने लगा। कुछ बेचैनी अनुभव करते हुए उसने पूछा, "तुम बहुत कमजोर हो गयी हो।"

"हां, तुम भी तो···" वह भी बेचैन हो गयी थी। क्यों, यह नहीं जानती।

"तुम्हारे पति तो ठीक हैं न, सरना !" अनिल ने कहना चाहा था—'मुझे क्षमा कर दो' पर अजीब बात थी—वह कहना कुछ चाहता है, कहता कुछ है। हमेशा ऐसा ही हुआ है।

"ठीक हैं।" सरना बोली, पर शायद वह अनिल को जवाब दे रही थी, "कोई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बात नहीं।"

"मैंने सुना है कि वह बहुत बीमार रहते हैं !"

("मैं तुम्हें अब भी प्यार करता हूं, सरना !")

"हां, पर क्या किया जा सकता है।"

("मैं भी तुम्हें बहुत चाहती हूं।")

"बहुत प्यारा बच्चा है। क्या नाम रखा है इसका ?"

("शायद कुछ नहीं था। हमारे बीच। कुछ भी नहीं।")

"विजय। तुम्हारा बच्चा कहां है ?"

("हां, शायद कुछ नहीं था।")

"शिरी !" अनिल ने बच्चे को आवाज दी। फिर कहा, "तुम आज भी बिलकुल वैसी ही हो, बिलकुल नहीं बदली।"

("सब खत्म हो चुका है। अब कुछ नहीं है। अगर कुछ रहा होगा, तो अब नहीं है")

("हां, शायद सब खतम हो चुका है।")

शिरी आ गया था। वह कुछ हैरान-सा सरना की ओर देख रहा था। अनिल ने कहा, "इन्हें नमस्ते करो।"

बच्चे ने वैसा ही किया। सरना ने विजय को गोद से उतारा और उसे गोद में समा लिया, भींच लिया। चुंबनों की बौछारें उसके गालों पर कर दीं।

और अनिल सुलगने लगा। उसने महसूस किया जैसे सरना उसका सिर बांहों में थामे हुए उसे गले से लगाए हुए है। भींच रही है। जाने कैसे उसने सरना के बच्चे को गोद में लेकर उसे भींच लिया।

वे उबलने लगे थे—सरना और अनिल। वे एक-दूसरे के बच्चे को सीने से लगाये हुए थे और एक-दूसरे की ओर देख रहे थे। कितने पास और कितने दूर और दूर रहकर भी कितने पास। बिलकुल वैसे ही जैसे सीढ़ियों पर मिले थे। डरपोक अनिल और बुलंद सरना !

"यह बिलकुल तुम-सा है !" सरना ने कहा।

"और यह बिलकुल तुम-सा है !" अनिल बोला।

उन दोनों की आवाजें भीग गयीं।

"तुम मुझसे नाराज नहीं हो ?" अनिल ने पूछा।

"नहीं।" वह बोली।

और वे ज्यादा भीग गये। और फिर वह शिरी को गोद में लिये हुए रसोई की ओर चली गयी। जाते समय उसने अपने बच्चे को सांत्वना दी—"अभी आती हूं, तब तक तुम मामा के पास···"

मामा !···अनिल को लगा कि गले में बर्फ का एक टुकड़ा रखा था, अब गल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गया है। उसने बच्चे को और जोर से भींचकर प्यार किया। ऊपर टंगा आकाश अब दो हिस्सों में नहीं बंटा है। सब ओर बादल हैं।

मामा !···अब भी बहुत कुछ है उनके बीच। कुछ भी नहीं टूटा। डरपोक अनिल और सरना के बीच अब भी कुछ है और बराबर कायम है।

बादल पूरी तरह छा गये हैं। बारिश जरूर होगी।

१९६९

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कांचघर

बन्तासिंह इन दिनों नाइट-ड्यूटी पर है। जब-जब उसकी नाइट-ड्यूटी होती है, वह सुबह बहुत देर तक सोता रहता है। नौ, दस और कभी-कभी दस के बाद तक—तब तक, जब तक कि सूरज की तीखी किरणें ओढ़ी हुई चादर पार कर उसके जिस्म में चुभने नहीं लगतीं, या बेटी कुलवन्त उसे जगा नहीं देती।

आज मौसम कुछ नम था। बादलों ने आसमान ढंक रखा था, जैसे एक छतरी खोलकर उलटी टांग दी गयी हो और तमाम माहौल में मीठे गीत की तरह शरमीली हवा घुली हुई थी, लिहाजा बन्तासिंह गहरी नींद में डूबा हुआ था।

कुलवन्त ने जब उसे झकझोरकर जगाया, तो वह कुछ चौंकता और झल्लाता हुआ जागा। उसे पलकें खोलने में कुछ कठिनाई हुई। आंखों की कोरों पर कीचड़ सूख गया था। बन्तासिंह ने उसे अंगुलियों से कुरेद-कुरेदकर निकाला और जब पलकें उठाकर सामने खड़ी कुलवन्त को देखा तो कुछ झेंप-सा गया। बच्चों की तरह कितना सोता रहता है वह ! एक वक्त था, जब कुलवन्त छोटी थी, तब वह उसे जगाया करता था, और अब···

"कितना वक्त हो गया होगा ?" उसने जबरदस्ती एक सवाल किया, हालांकि वह जान रहा था, वक्त ज्यादा हो चुका है।

"दस बज चुके हैं !"

"बदली की वजह से वक्त का पता ही नहीं चलता।" उसने अपनी निर्दोषता सिद्ध की।

कुलवन्त ने कोई जवाब नहीं दिया, तो बन्तासिंह चुप रह गया। उसने एक अंगड़ाई ली और आलस की एक परत शरीर से दूर कर दी।

कुलवन्त भीतर चली गयी थी।

बन्तासिंह ने एक और जम्हाई ली और बादलों की ओर सिर उठाकर देखा। उसकी दाढ़ी के कुछ बाल होंठों के नजदीक आ गये थे। उसने हथेली फिराकर उन्हें ठीक किया।

'दो पत्तर अनारां दे···अे···अे···' कुलवन्त की गुनगुनाहट आ रही थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बन्तासिंह ने उसके कमरे की ओर देखा—कुछ इस तरह, जैसे किसी चीज़ की ओर देख रहा हो, जिसे देखकर घृणा होती है। फिर एकाएक ही उसे कुछ याद हो आया। वह चारपाई के नीचे की ओर झुका। बासी पानी से भरा एक लोटा रखा हुआ था। बन्ता ने उसे निकाला और जल्दी से एक घूंट भरकर कुल्ला कर दिया, चारपाई के नजदीक।

"पापा, यह बहुत बुरी आदत है तुम्हारी!" कुलवन्त कमरे से निकल आयी थी। वह बात पूरी करे न करे, तब तक बन्तासिंह दूसरी घूंट भरकर थूक चुका था।

"तुम नाली पर नहीं जा सकते···यहीं आंगन में! छि: छि:!" कुलवन्त ने मुंह सिकोड़ा, "सारे घर को कचराघर बना रखा है!"

बन्तासिंह चाहता था, उसे डांट दे, पर न जाने कौन-सी चीज़ थी जिसने उसे रोक दिया। वह हक्का-बक्का कुछ इस तरह, जैसे प्राइमरी का लड़का मास्टर की ओर देखता है, उसे देखता रहा।

"बहुत गन्दे हैं हम लोग! हमें बिलकुल शऊर नहीं है।" कुलवन्त अब भी चिहुंक रही थी।

बन्तासिंह चुप रहा। पढ़ी-लिखी लड़की है, उसने सोचा। असल में भूल तो हुई ही है उससे। आंगन में थूककर अच्छा नहीं किया। नाली बहुत नजदीक है। वह चाहता तो आसानी से जा सकता था।

"इसीलिए इस कॉलोनी के लोग बीमार रहते हैं।" कुलवन्त बुदबुदाती हुई भीतर चली गयी।

बन्तासिंह ने गले का थूक निगल लिया। उसने गरदन दाएं-बाएं घुमाकर देखा, इस तरह जैसे चोरी कर रहा हो। जब उसने देखा कि किसी ने कुलवन्त से डांट खाते नहीं देखा है, तो खुश हो गया; जैसे भीड़ में से जेब काटकर बच निकला हो।

"साडे दिल नू के समझावां—आ-आ···"

कुलवन्त की गुनगुनाहट बन्ता के कानों से फिर आ टकरायी। मन हुआ था, उठे और जाकर कुलवन्त के गालों पर कई तमाचे छोड़े। बेशर्म···! इस तरह के गाने नहीं गा सकती तू। यह घर है या···पर बन्ता ने फिर खुद को रोक लिया। कुलवन्त कितनी बड़ी हो गयी—बिलकुल प्रभजोत के बराबर। उससे क्या कह सकेगा वह? कैसे रोकेगा?···फिर अब तो उसने गुनगुनाना भी बन्द कर दिया है। बन्तासिंह को तसल्ली हुई।

कुलवन्त इस बीच कमरे में इधर से उधर और उधर से इधर कई चक्कर काट चुकी थी। शायद वह ऑफिस की तैयारी कर रही है। बन्तासिंह ने लोटा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होंठों से लगाया और गले के नीचे उंड़ेल दिया। वक्त-बेवक्त की ड्यूटी ने उसका हाजमा बिगाड़ दिया है। हकीम ने सलाह दी है, हर सुबह एक लोटा बासी पानी पीने से उसे हाजत में सहूलियत हुआ करेगी।

बरसों हो गये हैं। बन्तासिंह हर सुबह चाहे-अनचाहे किसी मशीन की तरह यह काम निबटा देता है।

लोटा खाली कर चुपचाप चारपाई पर बैठा रहा। आलस की कई तहें अब भी बदन पर चढ़ी हुई थीं। वह निरुद्देश्य इधर-उधर देखता रहा। आंगन में फैला सामान। कुछ मटके जिनमें पीने का पानी रखा हुआ था और जिन पर काई की हलकी परत चढ़ आयी थी, एक ओर रखे हुए थे। कुछ बगैर मंजे बरतन आंगन में एक ओर पड़े हुए थे और उन पर मक्खियां भिनभिनाने लगी थीं। कल की बारिश में भींगे उसके जूते अब तक नहीं सूख पाये थे। उन पर पुरानापन और बढ़ गया था। एक ओर दो चारपाइयां बिछी हुई थीं, जिन पर बिस्तरे अब भी फैले हुए थे और चादरों पर सिकुड़नें पड़ी हुई थीं। बन्तासिंह को कुछ भी अजूबा नहीं लगा। वह यह सब देखने का आदी था। असल में प्रभजोत को वक्त नहीं मिलता कि वह जल्दी-जल्दी घर संवार दिया करे। और इस ख़याल के साथ ही बन्तासिंह का मन प्रभजोत के प्रति अनजानी-सी सहानुभूति से भर आया।

प्रभजोत उसकी बीवी है—कुलवन्त की मां। और चूंकि वह बन्तासिंह की बीवी है और कुलवन्त की मां है, इसलिए वक्त पर सिवा उन दोनों को खाना दे देने के और कुछ नहीं कर पाती। न घर में झाड़ू ठीक वक्त पर लगा पाती है, न बिस्तर उठा पाती है और न खुद खाना खा पाती है।

बन्तासिंह को याद आया। उस दिन प्रभजोत की एक सहेली आयी थी मोती नगर से। हर दिन की तरह यह घर इसी तरह बिखरा हुआ था। उसने काफी हैरानी से सारा घर देखा था। उसकी आंखों में कुछ घृणा और कुछ आश्चर्य था, जैसे किसी अजायबघर में आ पहुंची हो। बन्तासिंह ड्यूटी पर जाने के लिए कपड़े बदल रहा था। उसने साफ-साफ सुना था। वह कह रही थी, "प्रभजोत ! अब तो लड़की बड़ी हो गयी है, फिर भी घर की यह हालत !"

प्रभजोत हंसी थी, 'हां, लड़की बड़ी हो गयी है।'

'क्या सहारा नहीं देती ?'

'देती है।' प्रभजोत ने बहुत संक्षिप्त-सा जवाब दिया था।

क्या सहारा देती है ? खाक ! झल्लाकर उसकी सहेली ने कहा था, घर तो वैसा ही बना हुआ है जैसा पहले था।

प्रभजोत दुबारा हंसी—कितनी खोखली हंसी थी वह ! उसने कहा था, 'पूरे दिन तो वह काम पर जाती है। दो सौ रुपये महावार पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नौकर है। सहारा कैसा भी ले लो। चाहो तो घर में काम करवा लो, चाहो तो रुपये···"

बन्तासिंह को देर हो रही थी, इससे आगे की उनकी बात नहीं सुन पाया था वह। सारे रास्ते प्रभजोत के बारे में सोचता रहा था। मशीन हो गयी है बिलकुल। जब कुलवन्त छोटी थी, तो वह उसे सम्हालने में भी तमाम वक्त खर्च कर दिया करती थी, और अब जब वह बड़ी हो गयी है, तो प्रभजोत को उसकी नौकरी का उतना ही ख़याल रखना होता है जितना बन्तासिंह की नौकरी का रखती है।

बन्तासिंह चारपाई से उठ खड़ा हुआ। वह काफी अलसायी चाल में आंगन के कोने पर लगे नल पर आया। उसने दांत मांजने शुरू कर दिये। मुंह में अजीब-सा कसैलापन और कड़वाहट भरी हुई थी। यों वह नशे के नाम पर शराब के अतिरिक्त और कुछ नहीं लेता और शराब भी रोज नहीं, वक्त-वक्त जब चार रिश्तेदार या पहचान वाले मिल जाते है, तब पीता है। फिर भी हर सुबह मुंह से ढेर-सा मवाद निकलता है।

कुलवन्त बीच में नल पर आयी। वह तौलिये का एक हिस्सा गीला कर वहीं बन्तासिंह के ठीक सामने पैर की अंगुलियों के नाखून रगड़ने लगी।

जब-जब कुलवन्त इस तरह के काम करती है, बन्तासिंह परेशानी महसूस करता है। कभी-कभी वह कुलवन्त से डरने भी लगता है। वह बड़ी हो गयी है। जब कोई लड़की अपने चेहरे-मोहरे और फैशन के प्रति बहुत खबरदार रहने लगे, तो समझना चाहिए वह जवान हो गयी है, और खुली हुई जवानी डर की चीज़ होती है।

कुलवन्त की जवानी खुली हुई है। उसकी शादी नहीं हुई है अब तक। बीच में बन्ता का ध्यान प्रभजोत ने इस तरफ बंटाया भी था, पर बन्ता टाल गया। उसने उपेक्षा के साथ हंसकर कहा था, 'अभी क्या जल्दी है। कुलवन्त ने बीस में पैर रखा है। मेरे मालिक की बेटी है, पच्चीस पार कर गयी है, पर अभी शादी नहीं हुई। असल में पच्चीस साल तक लड़की शादी के लायक नहीं होती और तीस साल तक लड़का तैयार नहीं होता।"

प्रभजोत की इच्छा हुई थी, बन्तासिंह को जवाब दे दे, 'तुम तो बूढ़े हो गये हो बिलकुल। हाथ-पैरों से भी, दिमाग से भी! पच्चीस साल तक कुलवन्त को बिठाये रहोगे?···लड़की है, किसी दिन कपड़े फाड़कर बाहर निकल आयेगी।' पर उसने कुछ नहीं कहा था। उसके चेहरे पर चिन्ता की कुछ रेखाएं उभर आयी थीं और वह चुपचाप खड़ी रही थी।

"तू इतनी फिकर मत कर···वक्त आता है, तो सब बातें अपने आप बन जाती हैं···" यह कहकर उसने बात अधूरी ही छोड़ दी थी। प्रभजोत चली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गयी, तो उसे लगा था, वह कुछ ऐसा बोलता रहा है, जो शायद सही नहीं है। वह वक्त कब आने वाला है, जब सब बातें अपने-आप बन जायेंगी ?

बन्तासिंह को आज अनचाहे ही वह याद हो आयी है, तो लगता है, वह झूठ बोल गया था उस दिन।

अब भी शायद उसी झूठ को रबर की तरह ताने जा रहा है।

कुल्ला करते में उसका ध्यान कुलवन्त की ओर चला गया, तो उसने झेंप अनुभव की। कुलवन्त झुकी हुई थी और नाखून रगड़ रही थी। एक क्षण के लिए वह हैरान होकर उसकी ओर देखता ही रह गया— बिलकुल प्रभजोत !··· बन्ता को न सिर्फ याद है, वह अब तक उस शरीर की अनुभूति कर सकता है। उसने बिलकुल यही, इसी उम्र का शरीर अपनी बांहों में कसकर देखा है और वह कह सकता है कि यह उम्र खुले छोड़ देने की नहीं है, बिलकुल नहीं है। बन्तासिंह ने निर्णय कर लिया था, अब इसका कुछ-न-कुछ फैसला हो जाना चाहिए।

कुलवन्त सीधी हो गयी। बन्तासिंह मुंह धो चुका था। वह दिनचर्या को काफी उलटे ढंग से करता था। अब आधा घंटे बाद हाजत को जायेगा। लौटकर स्नान करेगा और फिर उसे खाना चाहिए।

कुलवन्त सैंडिल पहन रही थी। बन्ता का मन हुआ था, पूछे—कहां जा रही है ? आज तो रविवार है न ! पर उसने नहीं पूछा। उसे याद है, इसी तरह एक बार पूछ बैठा था और कुलवन्त झल्ला उठी थी, 'मैं कहीं जा रही होऊं, तो टोका मत करो। यह मुझे बिलकुल पसन्द नहीं है।'

बहुत क्रोध आया था बन्ता को। उसने यों ही सहज स्वभाव से पूछ लिया था उस दिन और वह हमेशा की तरह बदतहजीबी से बोली थी। अकसर इसी तरह बोलती है और बन्ता और प्रभजोत हर बार बहुत सहनशील साबित होते हैं।

कुलवन्त ने सैंडिल पहन लिये। बन्तासिंह उसकी ओर इस तरह देख रहा था जैसे नया-नया नौकरी पर आया हो। एक उम्मीद का भाव था उसके देखने में, जैसे अभी कुलवन्त कोई हुक्म छोड़ने वाली है और बन्ता को उसे बजाना है।

कुलवन्त बाहर गैलरी की ओर गयी तो बन्ता का मन हुआ, उसे रोक ले। न जाने क्यों, कुलवन्त जब कहीं बाहर जाने लगती है, तो बन्तासिंह को लगता है, उसे रोक लेना चाहिए।

वह गैलरी से चक्कर काटती वापस कमरे में लौट आयी। उसने कलाई पर बंधी घड़ी देखी और बेचैनी से इधर-उधर देखा। बीच में एक बार दोबारा गैलरी में गयी थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह किसी का इन्तजार कर रही है, बन्तासिंह ने समझ लिया। हर रविवार को वह किसी दोस्त को समय दे रखती है और फिर बन्ता और प्रभजोत की मौजूदगी में ही अपने साथी के साथ न जाने कहां घूमने-टहलने चली जाती है।

बन्तासिंह चारपाई पर आ बैठा। उसे ख़याल आता, जब-जब कुलवन्त इस तरह घर से कहीं जाती है, तो आस-पड़ोस के हर घर-दरवाजे से कुछ मरद-औरतों के चेहरे सड़क की ओर झांकने लगते हैं। अब तो एक ऐसी स्थिति आ गयी है, जब कुलवन्त का ऑफिस जाना, वहां से लौटना या घर से बाहर किसी ओर देखना-मुसकराना भी फुसफुसाहटों को जन्म देता है। और तो और, बन्ता या प्रभजोत भी देखने की चीज़ बन गये हैं। उन्होंने कुलवन्त को जन्मा है, और चूंकि उन्होंने कुलवन्त को जन्मा है इसलिए कुछ अनोखा किया है, ऐसा जिसे देखा जाना चाहिए।

जब-जब ऐसा होता है कि बन्ता को देखकर कोई हंसता, मुसकराता या पास वाले से कोई बात करता है, तो बन्तासिंह को लगता है, वह उसी के बारे में बात कर रहा है, उसी पर हंस रहा है। ऐसे हर मौके पर उसे कुलवन्त पर गुस्सा आने लगता है। सारे शरीर में खून की रफ्तार तेज हो जाती है और मन होता है कुछ कर डाले कुलवन्त का, उसकी हत्या या शादी !...

कुलवन्त अब भी बार-बार गैलरी की ओर देख रही थी और बेसब्री से चहलकदमी कर रही थी।

जरूर किसी को वक्त दे रखा है उसने। बन्तासिंह को हमेशा की तरह उस पर गुस्सा आ गया। उसने लोटा उठाया और संडास में चला गया। वह कतरा जाना अच्छा समझता है ऐसे मौकों पर। क्या फायदा, किसी दिन वह बर्दाश्त न कर सके।

बन्तासिंह लौटा तब भी कुलवन्त उसी तरह इन्तजार कर रही थी। काफी हड़बड़ी-जैसी हालत में उसने हाथ-मुंह साफ किये। बीच-बीच में वह कुलवन्त की बेसब्री देखता रहा और हर क्षण स्वयं में उत्तेजना अनुभव करता रहा।

हद दरजे की बेशर्मी है। कुलवन्त पड़ोस वाले घर में पैदा हुई होती तो बन्ता और प्रभाजोत भी उसके घर की ओर उसी तरह देखते-झांकते जैसे लोग उसके घर की तरफ देखते-झांकते हैं।

बन्तासिंह उठकर चारपाई पर आ बैठा। बिस्तरे अब भी फैले हुए थे और आंगन के आधे से ज्यादा हिस्से को सूरज की तीखी सुनहरी रोशनी ने लपेट लिया था जैसे प्रभजोत ने रिश्तेदारी की किसी शादी में जाने के लिए खास चमकीला दुपट्टा ओढ़ लिया हो। बीच में एक बार प्रभजोत रसोई के लिए सामान उठाने आंगन में आयी थी। बन्ता ने देखा, उसके चेहरे पर सलवटें पड़ी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुई हैं, जैसे किसी शरारती बच्चे ने किसी चिट्ठी को गुड़ी-मुड़ी कर डाला हो। बन्तासिंह का मन फिर किसी अनजान पीड़ा से भर आया। प्रभजोत—जैसे बगैर साफ किया गया नया मकान।

बन्तासिंह का ध्यान कमरे की ओर गया। कुलवन्त गैलरी में खड़ी हुई थी। वह वापस आयी, तो उसने देखा उसके चेहरे पर मुसकराहट थी। शायद वह आ गया जिसका उसे इन्तजार था।

गैलरी में एक युवक चेहरा प्रकट हुआ। करीने से सजे कपड़े। ताजा शेव और आंखों में शरारत। कुलवन्त स्वागत करते हुए उसे भीतर ले आयी। बीच में उस युवक ने सामने बैठे बन्तासिंह की ओर देखा था। कमरे में घुसते-घुसते कुछ सहम गया था। बन्तासिंह को यह पसन्द नहीं है। चोरों की तरह नजरें क्यों छिपाता है? उसे लगा, जैसे चोरी-जैसी कोई बात है। और इस ख़याल के साथ वह यन्त्रचालित-सा उठकर कमरे में चला गया।

कुलवन्त और वह युवक आमने-सामने बैठे हुए किसी बात पर मुसकरा रहे थे। बन्तासिंह की इस अगुवाई से युवक कुछ सकपका गया। कुलवन्त ने एक क्षण बात बन्द कर बन्ता को देखा। इस तरह जैसे पूछ रही हो, क्या है?'

बन्तासिंह को स्वयं ही अपना इस तरह पहुंचना विचित्र लगा। वह वापस आंगन में आ गया। शरीर में एक झुनझुनी थी। वह क्यों गया था वहां? उसे नहीं जाना चाहिए था।

वह पुनः चारपाई पर आ बैठा। कुलवन्त कमरे में से प्रभजोत को पुकार रही थी, "मां!"

प्रभजोत रसोई से निकलकर उसके बुलावे पर गयी।

बन्तासिंह ने देखा, प्रभजोत कमरे में कुलवन्त के बुलावे पर पहुंचकर इस तरह खड़ी हुई थी जैसे घर की मालकिन का बुलावा हो। कितनी खराब बात है! बन्ता का मन जैसे किसी ने कुरेद दिया हो। सब कुछ उलटा हो रहा है। होना यह चाहिए था कि प्रभजोत कुलवंत के नाम बुलावा भेजती और जो चाहती वह करवाती।

प्रभजोत कमरे से लौटकर पुनः रसोई में चली गयी।

जरूर कुलवन्त ने चाय के लिए कहा होगा। बन्तासिंह को यह सब नापसन्द है। कुलवन्त अपने दोस्तों को बुलाये और प्रभजोत उन्हें चाय बना-बनाकर पिलाया करे। मन हुआ था, रसोई में पहुंचे और प्रभजोत को डांट दे—कोई जरूरत नहीं है चाय-वाय बनाने की!

एक बार फिर इच्छा हुई बन्तासिंह की, कमरे में जाय और देखे, वे क्या बातें कर रहे हैं।

कमरे से उनकी हंसी के स्वर आ रहे थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बन्तासिंह को हर स्वर के साथ लगा, जैसे उसके सीने पर कुछ अंगारे रखे हुए हैं और उनकी कीमत दो सौ रुपये है।

हंसी का एक ठहाका और···

बन्तासिंह ने महसूस किया, जैसे सामने वाला कमरा कांच का है। उसके इर्द-गिर्द कांच की दीवारें खड़ी हुई हैं और वह उनके आर-पार देख रहा है।

कुलवन्त हंसती है ··उनके जिस्म पर कोई कपड़ा नहीं है। और वह युवक ···शायद वह भी···सब कुछ देख सकता है बन्तासिंह !

नहीं, वह उठा। अब बिलकुल नहीं सहेगा। वह सीने पर पड़ा हुआ हर अंगारा बुझा देगा···वह कुलवन्त के गालों पर तमाचे जड़ेगा और उस लड़के को गुड्डे की तरह घर से बाहर फेंक देगा···

बन्तासिंह चारपाई से उठ खड़ा हुआ। उसके हाथों में सनसनी मच रही थी और माथे पर पसीना उभर आया था।

यह कांचघर तोड़ डालेगा वह।···भूखा रह सकता है, पर इस कांचघर में रह पाना उसके लिए सम्भव नहीं है।

वह फुरती से कमरे की ओर बढ़ा पर एकाएक ठिककर रुक गया। उसके हाथ-पैर ढीले पड़ गये।

"आओ, आओजी !" वह चारपाई की ओर लौट आया। गैलरी के बाद कमरा पार कर एक व्यक्ति भीतर चला आ रहा था।

बन्तासिंह ने उसे नजदीक ही बैठाया। फिर प्रभजोत के नाम एक आदेश छोड़ा, "दो प्याले चाय बना दे जरा।" फिर वह फुसफुसाया, "मैं कल ही तुम्हारी तरफ आने वाला था, पर एक जरूरी काम लग गया। मेरी तनख्वाह तो हो गयी है, पर कुलवन्त की नहीं हुई। शायद कल हो जायेगी, तब आऊंगा।"

"कोई बात नहीं। कोई बात नहीं।" उस व्यक्ति ने कहा।

बन्तासिंह का ध्यान पुनः कमरे की ओर चला गया। हंसी के सम्मिलित स्वर अब भी आ रहे थे। पर उसे यह सोचकर तसल्ली हुई कि अच्छा हुआ उसने कुलवन्त से कुछ नहीं कहा। ऐसे मौकों पर समझदारी से काम लेना चाहिए और फिर उसे लगा, जैसे कमरे की दीवारें पक्की हैं और उनमें से कुछ नहीं देखा जा सकता है।

१९६९

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

झुग्गियों वाली बस्ती में

पिछले कई दिनों की तरह आज भी उसे लगा कि सोचा हुआ सब कुछ व्यर्थ हो गया है।

वह पक्के रास्ते से कच्चे पर उतर आया था। रोज की तरह यहां आते-आते धुंधलका सिर पर बरसने लगा था। थोड़ी ही देर में यह गहरा होकर रात बन जाएगा। फिर इस कच्चे रास्ते के चारों तरफ तेज चमकीली रोशनियों के सितारे उग आएंगे। उनके घेरों के बीचोंबीच यह कच्चा रास्ता और इससे थोड़े आगे बसी झुग्गियों वाली बस्ती अंधेरे का एक दाग बनकर रह जाएगी—निर्जीव और खामोश।

उसने एक बार पुनः धुंधलके के पार, बस्ती के इस छोर पर बने सुखलाल के मकान को देख लेना चाहा। क्या वहां कुछ चहल-पहल है? पर धुंधलका भेद कर उस पार तक दृष्टि पहुंच नहीं सकी। कुछ आगे पहुंचकर शायद देख सकेगा। उसने साइकिल के पैडल तेजी से घुमाए। वह एक अन्तर्द्वन्द्व में घिर गया था। हो सकता है कि वह हो ही गया हो, जिसे हरलाल चाहता है···पर दूसरे ही क्षण दिमाग में फिर से विरोधी विचार कौंध आया। शायद नहीं हुआ होगा। निराशा से वह थक-सा गया।

और फिर एकाएक गति असामान्य हो उठी। उसे लगा था कि वहां कुछ हो रहा है। शायद वहां कुछ लोग इकट्ठा हैं···इकट्ठा हो रहे हैं···

शायद नहीं। वहम है हरलाल का।

नहीं, शायद इकट्ठा हैं लोग। बहुत से लोग इकट्ठा हो जाते हैं। यह वक्त भी ऐसा है कि बस्ती में सारे लोग मौजूद होते हैं। मजदूर मजदूरी कर लौट चुके होते हैं। आवारा लौंड़े जुआ खेलने आ जाते हैं और हरलाल-जैसे चपरासी भी काम से लौट रहे होते हैं या लौट आते हैं। भीड़ इकट्ठा होते कितनी देर लगती है। खबर फैली होगी और ढेर-से लोग आ गए होंगे। हरलाल भी पहुंच जाता है। एकाएक वह खुश हो उठा। कितना अच्छा हो, अगर उसका सोचा सच

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो जाए। वह दो रुपए का प्रसाद बोले हुए है। मनौती कर रखी है कि जिस दिन भगवान उसका काम कर देगा, उस दिन वह प्रसाद बांटेगा।

अचानक ही उसे लगा कि वह बहुत कमीना आदमी है।

ऊंह ! इस तरह सोचना बेवकूफी है—उसने अपने आपसे कहा। कौन है जो दूध का धुला है ? पर यह सोचकर भी हरलाल अपने मन की इस कराह को निकाल नहीं सका कि वह बहुत गिर गया है, कमीनेपन की हद तक। सुखलाल के प्रति जो कुछ सोच रहा है, या सोचता रहा है, वह सब बहुत गिरा हुआ है। घटिया दरजे का विचार है !

सुखलाल ने ही उसके प्रति कौन-से अच्छे विचार मन में रखे थे ! जिस दिन काम दिलाकर लाया था, उसी दिन से डर भरने लगा था हरलाल के मन में। ऑफिस के बारे में सब गलत-सलत बताया था उसने। उसने कहा था—'साहब बहुत गरममिजाज है। स्टूल से एक मिनट को भी मत हटना। घंटी बजते ही उसके सामने पहुंचना चाहिए, वरना दो मिनट में काम से हटा देगा। बाबू लोग भी अजीब-से हैं। उनका हर नखरा सहना पड़ेगा, वरना ऐसी चुगलियां खाएंगे कि आदमी हवा में ही लटका रह जाए !···और काम भी पसीने निकाल लेने वाला है, दो मिनट की फुरसत नहीं मिलती।'

और भी न जाने क्या-क्या।

और सुखलाल के हर शब्द के साथ मन-ही-मन भय और चिन्ता के पचासों सवालों का बोझ सिर पर उठाए हुए हरलाल दूसरे दिन से ऑफिस पहुंचने लगा था···

बरबस ही एक मुसकराहट, उपेक्षाभरी मुसकराहट हरलाल के होंठों पर तिर आयी। लगा कि धुंधलका छंट गया है और एक सुबह सामने बिखरी हुई है।

रोशनी भरी सुबह ··

सचमुच उस ऑफिस में हरलाल के काम का पहला दिन रोशरी भरी सुबह-जैसा ही था। सुखलाल की हर चेतावनी उस पहले दिन ही झूठ साबित हो गई थी। सब झूठ था, सिर्फ हरलाल को डराने के लिए।

साहब बहुत भला था। बाबू लोग बड़े खुशमिजाज। काम ऐसा कि नहीं के बराबर। दिन-भर एक-दो बार चाय लानी पड़ती थी। दस-पांच फाइलें इस टेबुल से उस टेबुल तक पहुंचानी पड़ती थीं।

कमीना कहीं का ! उसने मन-ही-मन सुखलाल को गाली दी। कितना डराया था उसे जैसे हरलाल को चपरासी की नौकरी नहीं मिली है, मोरचे पर पहुंचा दिया है। 'यह मत करना, वह मत करना। यह होगा, वह होगा।' सब झूठ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह साइकिल से उतर पड़ा। पैदल चलेगा। अंधेरे में रास्ते डूबने लगे हैं। मालूम ही नहीं पड़ता कि आगे पत्थर है या गड्ढा ?

कितना अच्छा हो अगर सुखलाल···

छि:-छि: ! स्वार्थी कहीं का ! अपने सगे भाई के बारे में कितना अशुभ सोच रहा है वह। न सिर्फ सोच रहा है, बल्कि मनौतियां करता रहा है। सुखलाल ने क्या बुरा किया है उसके साथ···पर भला ही क्या किया है ?

यह नौकरी लगवाई है सुखलाल ने।

पर अपने स्वार्थ के लिए। सुखलाल जानता था कि छह महीने की लम्बी छुट्टी सिर्फ इसी शर्त पर मिल सकती है कि उसकी जगह ऑफिस को कोई ऐवजी दिया जाए। उसने हरलाल को काम पर लगा दिया था। वह जानता था कि ठीक होते ही हरलाल को घर बिठा देगा और खुद पुरानी जगह पहुंच जाएगा। अपना मतलब पूरा होते ही कौन किसको पूछता है।

असल में हरलाल पर किसी तरह का अहसान नहीं किया है सुखलाल ने। उस की गरज थी इसलिए हरलाल को काम दिला दिया था। बीमारी ने उसे इस तरह पकड़ लिया था कि वह बहुत दवा-दारू के बावजूद छूट नहीं पा रहा था··· छूटा भी नहीं है।···शायद छूट भी नहीं सकता। टी० बी० है उसे।

टी० बी० यानी मौत का परवाना। खांसी के हर ठसके पर लगता है— यह चले, वह चले।

चला ही जाए कमबख्त तो सारे घर की जान छूटे।

कितनी गन्दी बात है—वह अपने भाई के लिए यह सब सोच रहा है।

पर गलत भी तो नहीं सोच रहा है। सुखलाल की बीमारी ने उसे ही नहीं, सारे घर को तंग कर रखा है। कुल एक कमरा है। इस कमरे में सारा घर भरा रहता है—सुखलाल की बीवी, हरलाल की बीवी, हरलाल और हरलाल के दो बच्चे। सुखलाल के कोई बच्चा नहीं है। सुखलाल उन सबके बीचोंबीच अपना रुग्ण शरीर लिये फैला रहता है। फैला ही नहीं रहता, आदेश प्रसारित करता रहता है— यह लाओ, वह लाओ। यह करो, वह करो। दिन में कम-से-कम पच्चीस बार तो वह पानी मांगता है। खांसी जैसे रुकती ही नहीं है। एक ठसका लेकर हांफना बन्द हुआ नहीं कि दूसरा दौर शुरू···

उसे मर ही जाना चाहिए !···चलते-चलते किसी पत्थर से टकरा गया वह। कमबख्त कारपोरेशन वाले इतने पाजी हैं कि जिस बस्ती में अमीर होते हैं, उसी को बस्ती मानते हैं। इस इलाके के आदमी शायद गिने ही नहीं जाते। बदलनी चाहिए सरकार। यह भी कोई सरकार है···

सुखलाल मरते-मरते भी घर के किसी आदमी को मौत का यह टी० बी० वाला नोटिस दे जाएगा—भय की यह सुरसुरी हरलाल के जिस्म में फैल गई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सामने रोशनी के कुछ छींटे धरती पर पड़े हुए हैं। कॉलोनी की शुरुआत हो गई है। हरलाल कुछ निश्चिन्त हुआ। रोशनी के करीब पहुंच रहा है। दस कदम और···फिर ठोकर या गड्ढे का डर नहीं रहेगा।

मर ही जाए सुखलाल···कितना अच्छा हो, मर चुका हो। अपने और दूसरों के लिए बोझ बन गया है। कभी-कभी किसी का मरना कितना जरूरी और अच्छा होता है। सुखलाल का मरना भी ऐसा ही है—उसके अपने लिए, सबके लिए···

पर क्या सुखलाल मरना चाहता है? न जाने कौन बैठा है हरलाल के भीतर, जो सवाल करता रहता है। ऐसे सवाल, जिन्हें हरलाल कतई नहीं चाहता।

मगर इसमें सुखलाल के सोचने-न-सोचने का क्या सवाल है। जरूरतों पर आदमी की जिन्दगी और मौत निर्भर रहनी चाहिए। सुखलाल जिन्दगी-भर स्वार्थी रहा है। ऐसी हालत में उसका मर जाना ही ठीक था। पर न जाने किस भरोसे जीने की जिद पर अड़ा है। डॉक्टर जवाब देते-से लग रहे हैं। घरवाले तंग आ गए हैं। दवाएं बेअसर होने लगी हैं और वह कमबख्त है कि···हरलाल को उस पर गुस्सा आने लगा है। स्वार्थी कहीं का।

स्वार्थी कौन—सुखलाल या हर···?

जाने कैसे रोशनी के बावजूद हरलाल ठोकर खा गया। लगभग गिर ही पड़ा होता। लगा था किसी ने पीछे से धक्का दिया है। कौन था?···शायद हरलाल के भीतर बैठा सुखलाल का पक्षधर।

झुग्गियां शुरू हो गई हैं। कुछ कदम और चलने के बाद ही हरलाल अपने घर पहुंच जाएगा। घर कुछ मोड़ पर है, इसलिए यहां से दीखता नहीं है। कितना अच्छा हो, वहां लोग जुड़े हों···बांस रखे हों···औरतें रो रही हों···

रो रही होती तो आवाज यहां तक सुनाई पड़ती? शायद जिन्दा है सुखलाल···यह भी तो हो सकता है कि पास-पड़ोस के लोग अब तक ले ही गए हों। एक आदमी को मरघट पहुंचाने में समय ही कितना लगता है?···पर ऐसा होता तो क्या हरलाल को ऑफिस में खबर न दी जाती?···कौन पहुंचाता खबर? फोन करने के पैसे लगते हैं और बस्ती में हैं कितने लोग, जो फोन करना जानते हों?···और फोन करना ही क्या जरूरी है? जो गया वह लौटकर तो आता नहीं···

सुखलाल मोड़ पर आ गया है। रोशनी के टुकड़े अब बहुत बड़े हो गए हैं। सब साफ-साफ देखा जा सकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह खांस रहा है !···सुखलाल !···कमबख्त ?···

हरलाल कुढ़ गया। हर रोज ऑफिस से लौटकर इसी तरह कुढ़ जाता है। जी होता है कि साइकिल एक ओर फेंके, झपटकर भीतर पहुंचे और सुखलाल की गरदन दबोच दे !···

उसने साइकिल किनारे रखी, ताला लगाया और थके बैल की तरह गरदन नीचे डाले हुए घर में घुसा।

"आ गए !" हर रोज की तरह सुखलाल बोला।

हरलाल ने कुछ नहीं कहा। बस, एक कम्पन उसके शरीर में हो आया। लगा कि सुखलाल से दूर हो जाए। उसने उसकी ओर देखा भी नहीं। जाने क्यों, कुछ दिनों से इसी तरह के विचित्र-से परिवर्तन वह स्वयं में महसूस करने लगा है। हर क्षण लगता है कि वह चोर है और सुखलाल उसे किसी दिन रंगे हाथों पकड़ लेगा।

चोर ही तो है। वह सुखलाल की जगह चुराना चाहता है।

नहीं-नहीं ! वह चाहता है कि इस घर में शांति हो।

झूठ !···सच यह है कि वह अपनी चोरी का कारण बताकर सच करना चाहता है।

हरलाल ने कपड़े उतारे। इस बीच सुखलाल जोर-जोर से खांसने लगा था। वह बीच-बीच में पानी भी मांग रहा था। घर में कोई नहीं है इस वक्त। हरलाल सुन रहा है कि वह घुटती आवाज में पानी मांग रहा है···उसका जी होता है, पानी दे दे। पर उसने ऐसा किया नहीं। तौलिया कंधे पर डालकर वह फुर्ती से घर से बाहर निकल गया, इस तरह जैसे कोई चीज़ चुराकर भागा हो।···किसी दिन इसी तरह खांसते-खांसते मर जाएगा सुखलाल और फिर हरलाल की जिंदगी में एक तसल्ली आ जाएगी।

वह कारपोरेशन के नल पर आ गया। इस समय यहां भीड़ नहीं होती है। इक्का-दुक्का लोग होते हैं। कुछ मिनटों में ही नम्बर आ जाता है।

नम्बर आ जाने पर वह नहाया। कहते हैं नहाने से मन हल्का हो जाता है। हो जाता होगा, पर हरलाल को ऐसा अनुभव नहीं है। वह कारपोरेशन के नल से लौटते समय भी भारी-मन ही था।

कितना अच्छा हो, अगर इस बीच सुखलाल···पर लगा कि यह हो नहीं सकता···क्यों नहीं हो सकता ? मौत और लाटरी का भरोसा नहीं होता। किसी भी वक्त आदमी मर सकता है, किसी भी वक्त आदमी लखपति हो सकता है।

काश ! कोई लाटरी खुल सकती ! वह सुखलाल और उसकी बीवी को किसी पहाड़ पर भेज देता। क्या खर्च आता ? बहुत हुआ तो दस-पांच हजार···

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और अगर सुखलाल ठीक हो जाता तो यह नौकरी···

फिर इस नौकरी की जरूरत ही क्या थी ? कोई छोटा-मोटा धन्धा शुरू कर देता हरलाल । सब ठीक से हो जाता !···पर सब सोचा हुआ अगर सच हो जाया करे, तब तो बात ही क्या है !

हरलाल ने एक गहरी सांस ली । अतृप्ति से भरी सांस । घर में पहुंचा । सुखलाल करवट लिये पड़ा था—चुप । कहीं मर तो नहीं गया ? हरलाल की तबीयत हुई कि उसे हिलाकर देखे । पर क्या सोचेगा वह ?···सोचेगा तो तब, जब जिन्दा होगा । क्या मालूम जिन्दा ही हो ?

हरलाल थोड़ी देर उसे देखता रहा । वह बिस्तर पर गुड़ीमुड़ी हुआ पड़ा था । उसने नजर गड़ाकर उसका सीना और पेट देखा । वह उठ-बैठ रहा होगा तो···

पर ठीक तरह कुछ दीख नहीं रहा था । और हरलाल में इतना साहस है नहीं कि उसे हिलाकर देखे । उसने फिर एक सांस ली—खूब गहरी सांस और एक और पड़ी चटाई उठाकर बाहर निकल आया । एक टूटी-सी चारपाई पड़ी हुई है । सुखलाल ने उसे बिछाया और चटाई उस पर फैलाकर लमलेट हो गया । कितनी बार सोचा है कि यह चटाई बिछाना बन्द कर दे, एक दरी ले आए । पर किसी भी बार ऐसा कर नहीं पाता । गुंजाइश ही नहीं निकलती है । सुखलाल की दवाइयां करीब-करीब पौन तनख्वाह खा जाती हैं !···

अगर सुखलाल जिन्दा बच भी गया तो कौन-सा सुख भोग लेगा । उल्टे सारी जिन्दगी एक आग में जलता रहेगा । कोई बेटा-बेटी हैं नहीं, जिसके लिए ···उल्टे बोझ और बना रहेगा सारे घर का । हरलाल की जिन्दगी का तो एक अर्थ है । बच्चे हैं, उन्हें पालना है । जिम्मेदारी है—समाज-दुनिया की । उसे निबाहने के लिए जिन्दा रहना भी जरूरी है और नौकरी भी, पर सुखलाल के लिए···

बेहूदा बात है ! हरलाल बेईमान है । विचारों तक में बेईमान ! दूसरों की जिन्दगी के लिए निर्णय करने वाला वह कौन होता है ?

आज कोई औरत घर में नहीं दीख रही ? न हरलाल की बीवी, न सुखलाल की । कहां गई होंगी ? गई होंगी कहीं । असल में सारा घर सुखलाल से तंग आ चुका है । और तो और, सुखलाल की बीवी भी । मुंह से वह नहीं कह पाती है तो क्या हुआ, चाहती तो होगी···छुट्टी मिले इस रोज की परेशानी से !

जिन्दगी से इस तरह चिपककर रह गया है कि···बेशर्म कहीं का ! कल कह रहा था कि मेरी तबीयत कुछ सुधर रही है !···सुधर गई ! ऊंह, खुद को भी धोखा देता है, दूसरों को भी डराता है । पाजी कहीं का !

पड़ोस के घर से औरतों के गाने की आवाज आ रही है । शायद वे दोनों वहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गई होंगी। जानती हैं कि हरलाल देर से खाना खाता है। पर सुखलाल के लिए क्या उन्हें नहीं रुकना चाहिए था ?···कब तक रुकेंगी ? यह तो रोज की उलझन है। यह जब तक जिएगा, इसी तरह तंग करता रहेगा।

लोग कहते हैं कि सुखलाल ने हरलाल को एवजी पर रखवाकर बड़ा उपकार कर दिया है। बेकारी से हरलाल का बुरा हाल हो रहा था। क्या हो रहा था ? ···किसी को क्या मालूम कि हरलाल को नौकरी दिलाकर सुखलाल ने अपना स्वार्थ साधा है। इस तरह उसने अपनी जगह बनाए रखी है और अपने इलाज के लिए हरलाल को काम में जोत दिया है। सारी दुनिया स्वार्थी है। कोई किसी के लिए कुछ नहीं करता। भाई हो या बाप, मां हो या बेटी···

आज हरलाल सोते वक्त तकिए से कहकर सोएगा—टोटका करके—'हे भगवान, सुबह जगू तो सुखलाल···औरतें रो रही हों···'

अचानक कुंठित हो उठा वह। कितनी बार यह टोटके नहीं कर चुका है हरलाल, पर हर बार व्यर्थ। सब बेकार बात है। वह तो जिस दिन उसकी आ जाएगी, उस दिन···

जब-जब इस तरह सोचता है, बेचैन हो उठता है। कहीं, किसी काम में जी नहीं लगता। ऐसे मामले में किसी से कुछ कहा भी तो नहीं जा सकता। एक बार घरवाली ने पूछा था—"तुम हमेशा उदास-से क्यों रहते हो ?"

"नहीं तो। बस, यों ही···" न चाहकर भी वह कह गया था।

"क्या बात है ?"

"कुछ नहीं, बस···"

"कुछ तो ?"

"सोचता हूं, सुखलाल दादा अगर ठीक हो गया तो···यह नौकरी। इस जमाने में नौकरी मिलना बड़ी कठिन बात है। और फिर सुखलाल दादा मर भी गया तो क्या नुकसान हो···"

"अरे-रे···कैसी बातें करते हो ?" उसकी घरवाली ने अविश्वास और घृणा से मुंह सिकोड़कर उसे देखा था।

···और चुप रह गया था हरलाल। झेंप गया था। कुछ घबराहट-सी भी हुई थी। उसे ऐसा नहीं कहना चाहिए था।···उसे ऐसा सोचना भी नहीं चाहिए···

पर क्या करे वह ? हर बार लगता है कि यही एक रास्ता है। कितनी ही बार उसने ये बुरी बातें मन से उलीचकर दूर कर देनी चाही हैं, पर हर बार उमड़-घुमड़कर छा जाती हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कमरे से खांसी के कुछ कुल्ले बाहर आ गिरे। वह जिन्दा है! हरलाल का मन खराब हो गया "हरलाल!···अख्ख्···अह···अख्खा···हर···"

वह उसे पुकार भी रहा है।···मर जाए! हरलाल नहीं जाएगा। ऑफिस से थका-हारा लौटा नहीं कि यह परेशान करने लगता है।

क्या सचमुच यही कारण है न जाने का? या हरलाल की हिम्मत नहीं होती है कि उसके सामने पहुंचे। लगता है कि हरलाल को सामने देखते ही उससे पूछ बैठेगा—"क्यों भाई, तू क्या चाहता है कि मैं मर जाऊं?"

तब क्या कहेगा हरलाल?

वह पुकारे जा रहा था। हरलाल नहीं जाना चाहता था, पर न जाने कौन-सी शक्ति है, जिसने यंत्रवत् उसे उठा दिया। वह सुखलाल के सामने जा पहुंचा।

दीये की मंदी रोशनी में हरलाल ने देखा, सुखलाल जोर-जोर से हांफता हुआ खांस रहा था। उसका दम उखड़ने-सा लगा था। बीच-बीच में वह हरलाल की ओर अपनी कमजोर, बीमार दृष्टि से देख लेता—इस दृष्टि में एक प्रार्थना होती—'मुझे बचा लो!···मैं मरना नहीं चाहता!···अभी नहीं मरना चाहता!···'

हरलाल बोलना भी नहीं चाहता था, पर बोला—"क्या है, दादा?"

"पानी दे···" वह कठिनाई से कह सका।

हरलाल पानी ले आया। नहीं लाना चाहता था, पर ले आया। उसने गटा-गट पानी पी लिया। उसकी सांस अब सामान्य होने लगी थी। कराहते हुए बोला, "मैं बच जाऊंगा।···आज सवेरे तेरी भाभी डॉक्टर के यहां से दवा लायी, तब उसने कहा कि मैं बच जाऊंगा। वह कहता है कि मेरी तबीयत ठीक होने लगी है।···"

हरलाल ने घृणापूर्वक देखा कि वह मुसकराने की कोशिश कर रहा है।··· यह कोशिश कुछ इस तरह की थी, जैसे वह एक वजनी—बहुत वजनी पत्थर ढो रहा हो। मूर्ख कहीं का! हरलाल ने सोचा।

वह थोड़ी देर चुप रहा। और हरलाल भी चुप रहा। वह देख रहा था कि उसके थूक में से खून के कुछ कतरे निकल आए हैं। पहले नहीं निकलते थे।

"मैं बच जाऊंगा।" देर की कोशिश के बाद सुखलाल मुसकरा दिया।

हरलाल कुछ नहीं बोला। सिर्फ उसके थूक की ओर देखता रहा। रोशनी मंदी होने के कारण उसे ठीक तरह पहचानने में कठिनाई हो रही थी। क्या सच-मुच वे कतरे ही हैं?

"क्यों, मैं बच जाऊंगा ना?" वह पूछने लगा।

"ऐं?" हरलाल चौंका, पर उसने दृष्टि पूर्ववत् थूक पर लगाए रखी—हां,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वे खून के कतरे ही हैं। इसका मतलब है कि सुखलाल जल्दी ही···वह हंस पड़ना चाहता था। कितना अच्छा है!···

"क्यों, मैं बच···"

"ऐं?···हां-हां।" हरलाल ने दृष्टि उठा ली। बोला, "हां, तुम बच जाओगे, दादा!···तुम जरूर···" उसे लगा कि वह अब स्वयं को सम्हाल नहीं सकेगा। जोर से हंस पड़ेगा। वह उठ पड़ा। वह खुश था, वह दुखी था।

सुखलाल को फिर खांसी आ गई थी।

हरलाल पर वहां अधिक देर ठहरते नहीं बना। फुर्ती से बाहर निकल आया। खुली हवा में।···सुखलाल के थूक में खून के कतरे आने लगे हैं···उसने एक गहरी सांस ली। कितनी खुली हवा है!···पागल कहीं का! कहता है, बच जाऊंगा।···

हरलाल फिर से लेट गया। जाने क्यों उसे लगा कि मन हल्का हो गया है। कितनी देर पहले नहाया था, पर मन अब हल्का हुआ है···आज मौसम भी तो बहुत अच्छा है।···वह आसमान की ओर देखने लगा—अंधेरा था और उस अंधेरे में बल्बों के नकली सितारे चमक रहे थे।

१९७०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिशिष्ट

रामकुमार भ्रमर से कहानी एवं उसकी सृजन-प्रक्रिया पर एक बातचीत

डॉ० कमलकिशोर गोयनका

गोयनका : भ्रमर जी, आपको कहानी लिखने की प्रेरणा कैसे हुई ?

भ्रमर : मेरे पिता लिखने-पढ़ने के शौकीन थे। संस्कृत के विद्वान थे। घर में उनकी लाइब्रेरी थी। उसमें 'चांद', 'सरस्वती', 'हंस', 'बाल सखा' आदि पत्रिकाएं आती थीं। 'कल्याण' भी आता था। इन पत्रिकाओं को मैं पढ़ता था, जिससे साहित्य का संस्कार पैदा हुआ। मैं बराबर सोचता था कि प्रेमचन्द, चतुरसेन शास्त्री, रामकुमार वर्मा, महादेवी वर्मा आदि इतनी श्रेष्ठ रचनाएं कैसे लिखते हैं ? उस समय दूसरा विश्व-युद्ध छिड़ गया था और हमारे यहां जो अखबार आता था, उसमें अनेक रोमांचक एवं साहसी घटनाएं होती थीं। उन्हें पढ़कर मेरे मन में यह विचार आया कि क्या मैं भी ऐसा लिख सकता हूं ? इसी समय मुझे कहानी लिखने की प्रेरणा पैदा हुई।

गोयनका : क्या कोई ऐसा बीज तत्त्व था, जिसने पहली कहानी को आपसे लिखाया हो ?

भ्रमर : मेरे पिता जमींदार थे और उनमें पूरी सामंतीय प्रवृत्ति थी। मैं उनका इकलौता बेटा था, पर उनकी सामंतीय प्रवृत्ति का मैं भी शिकार था। मैं घर में अकेला अनुभव करता था, परन्तु स्कूल में नाई और बढ़ई परिवार के छात्र मेरे दोस्त थे। इनसे मेरा मन मिलता था और खुलापन प्रतीत होता था, परन्तु जब पिता को यह ज्ञात हुआ तो नाई और बढ़ई को बुलाकर फटकार लगायी कि कैसे हिम्मत हुई रामकुमार के साथ खेलने की। मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह सब क्या है? मेरे मन में घर के अकेलेपन तथा बाहर के खुलेपन में द्वंद्व हुआ और इसी से मुझे कहानी लिखने की प्रेरणा मिली। इस घटना से एक बात और हुई। मुझे घर की प्रत्येक बात बुरी लगने लगी और मैं विद्रोही हो गया और इन सामान्य पात्रों के खुलेपन में जीने लगा।

गोयनका : भ्रमर जी, अपनी पहली कहानी के बारे में कुछ बताएं।

भ्रमर : मेरी पहली कहानी थी 'असामी' जो 'दीदी' पत्रिका में छपी थी। यह अब अप्राप्य है। कहानी हमारे इलाके के किसानों के जीवन की है। यह वास्तविक घटना पर आधारित थी। पिता जमींदार थे, उनके कारिन्दे लगान वसूल करते थे और तरह-तरह के अत्याचार करते थे। जब वसूली शुरू होती तो अनेक किसान अपनी विवशता की कहानी कहते, जिससे वसूली को टाला जा सके, पर कारिन्दे पिता के सम्मुख सिद्ध करते कि ये असामी झूठ बोल रहे हैं, पर मैं तो इलाके में घूमता था और मुझे मालूम था कि वे सच कह रहे हैं। पिता हवेली में बंद रहते थे और उन्हें अपने कारिन्दों पर विश्वास करने के अतिरिक्त और कोई रास्ता नहीं था। मैं उस समय कारिंदों के दोहरे चरित्र तथा पिता की विवशता को देखता था। इसी समय दो भाइयों की घटना ने मुझे उद्वेलित कर दिया। इन दो भाइयों में इनकी पत्नियों के कारण जमीन का बंटवारा हो गया, पर झगड़ा इतना बढ़ा कि दोनों ने एक-दूसरे की फसल जला दी। पिता ने दोनों को बुलाया, कारिन्दे उन्हें पीटने लगे, पर दृश्य की मार्मिकता यह थी कि छोटा भाई अपने घायल बड़े भाई को सहारा दे रहा था। बाद में दोनों भाई एक हो गये और उन्होंने मिलकर खेती की और गांव में सबसे अच्छी फसल पैदा की। मुझे लगा कि वे जब अलग थे तो शोषित थे, पर जब वे संगठित हुए तो उनका उत्थान हुआ और सामंत भी कमजोर हुआ। यह मूल-मंत्र था, जिसने मुझे उद्वेलित किया और मैं 'असामी' कहानी लिखने बैठ गया। मुझे यह भी प्रतीत हुआ कि 'गोदान' का होरी इसलिए मरता है, क्योंकि वह अकेला है, पर मेरे पात्र यह जान गये थे कि वे साथ रहकर ही बच सकते हैं। मेरा विश्वास बना कि मेरा होरी नहीं मरेगा और वह सामंतीय व्यवस्था को खत्म करेगा।

गोयनका : पर भ्रमर जी, आपका होरी ऐसा कर पाया?

भ्रमर : नहीं, गोयनका जी! स्वतंत्रता के बाद एक नया होरी पैदा हुआ जिसे मरना नहीं था, परन्तु हमारी प्रजातांत्रिक व्यवस्था ने उसे तोड़

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिया। इस नये होरी को यह गलतफहमी हो गयी कि वह आजाद हो गया है, राजा हमारा है पर उसने पाया कि राजा तो उनका है, पर प्रशासनिक ढांचा, नौकरशाही फिरंगी की ही है। अंग्रेजों के ज़माने में एक जमींदार था, पर अब पंच, सरपंच, विधायक, सांसद, मंत्री न जाने कितने नये सामंत बन गये। स्थिति यह थीं कि अब होरी का भाई ही होरी का शोषण कर रहा था और दूसरी ओर यांत्रिकता ने सारी अर्थ-व्यवस्था ही बदल दी। नया होरी शहरोन्मुख हो गया और सुख-सुविधा के नये सपने शहर में जाकर धूमिल होने लगे। आज इस नये होरी को गांव में लौटाना कठिन है और शहर में रहते हुए वह नये सामंतों की सुख-सुविधा का अंग बन गया है।

गोयनका : भ्रमर जी, आपकी इस बात से लगता है कि आपकी कहानियों की पृष्ठभूमि प्रमुखतः गांव, किसान, शोषण से महानगर की त्रासदी तक रही है।

भ्रमर : शुरू में गांव में रहा, फिर शहर में आया। पहले छोटे शहर में आया, फिर बड़े शहर में — तो उसका भी प्रभाव पड़ा। मैं जबलपुर में 'युगधर्म' में काम करता था, फिर नागपुर में साहित्य-संपादक रहा। इसके बाद दिल्ली आया और 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' में उप-संपादक बना। दिल्ली आने तक मैं कहानीकार के रूप में पहचाना जाने लगा था, लेकिन दिल्ली आकर महानगर की त्रासदी देखी। धर्मेन्द्र गुप्त मेरे मित्र बन गये थे और मेरे घर के पास ही रहते थे। एक दिन शाम को धर्मेन्द्र ने मुझे घर बुलाया। मैं बस में जा रहा था कि तभी एक स्थान पर बस और साइकिल सवार की दुर्घटना देखी। भीड़ एकत्र हो गयी थी। एक सवार बस में फंसा था। मुझे लगा कि यह धर्मेन्द्र तो नहीं है, क्योंकि वह उस समय साइकिल पर ही चलता था। मैंने उतरकर देखा, पर वह धर्मेन्द्र नहीं था। मैंने सन्तोष की सांस ली और अपनी बस में आकर बैठ गया। इस प्रकार अनजाने महानगर मेरे मन को संवेदनहीन बना रहा था, मूल्यों से तोड़ रहा था। इसी बिन्दु से मेरी कहानियों पर महानगर का प्रभाव पड़ना शुरू हो गया।

गोयनका : क्या आप उन कहानियों की चर्चा करेंगे जो आपको आज भी हांट करती हैं?

भ्रमर : गोयनका जी, ऐसी कई कहानियां हैं जिनके पात्र मुझे आज भी हांट करते हैं। मेरी एक कहानी है 'मोहताज', जिसकी नायिका एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्रामीण स्त्री है जो अपने बेटे के पास कलकत्ता रहने जाती है, परन्तु उनके व्यवहार तथा वातावरण को प्रतिकूल पाकर वापस लौट आती है। इस स्त्री की संवेदना, द्वंद्व, स्नेह, सरलता आदि कई चीज़ों की याद बनी रहती है। मेरी एक अन्य कहानी है 'लौ पर रखी हथेली'। इसकी नायिका को मैं कभी नहीं भूल सकता। इसी प्रकार 'सब अपने : सब अजनबी', 'बूंद-बूंद सागर', 'एक खानदानी आदमी' आदि ऐसी कहानियां है जो मेरे जीवन से निकली हैं और स्वाभाविक है कि वे मेरी स्मृति में सदैव बनी रहेंगी।

गोयनका : आज की हिन्दी कहानी के सम्बन्ध में आपकी क्या राय है ?

भ्रमर : आरम्भ में, स्वतन्त्रता के बाद की कहानियां जो मैंने पढ़ीं थीं, उनसे मुझे बहुत आशा थी। कमलेश्वर की 'राजा निरबंसिया', अमरकान्त की 'दोपहर का भोजन', मनहर चौहान की 'घर घुसुरा' आदि कहानियों में सहजता एवं सरलता थी और मन को प्रभावित करती थीं, परन्तु इसके उपरान्त कहानीकार विदेशों की नकल पर नकली संत्रास से लड़ने लगा और अपनी धरती से टूट गया। इससे हिन्दी कहानी की मूल आत्मा, जो प्रेमचन्द ने उत्पन्न की थी, निर्मल वर्मा जैसे लेखकों ने उसे आसमान पर लटका दी। फिर शिकायत होने लगी कि हिन्दी का पाठक संवेदनाशून्य हो गया, बौद्धिक रूप से पिछड़ा है, परन्तु वास्तविकता यह थी, कि स्वयं कहानीकार ही पाठक से बहुत दूर भाग गया था और आज तक भागा हुआ है। कुछ लोग कहते हैं कि गुलशन नंदा जैसे लेखक ही पढ़े जाते हैं, पर ये लोग भूल रहे हैं कि प्रेमचन्द और शरद भी इतने ही लोकप्रिय रहे हैं और हर पीढ़ी उन्हें पढ़ना चाहती है। अतः हिन्दी कहानीकारों का पाठकों को दोष देना गलत है।

गोयनका : हिन्दी कहानी के भविष्य के सम्बन्ध में आप क्या सोचते हैं ?

भ्रमर : हिन्दी कहानी के बीच से वर्तमान का कुछ हिस्सा टूटा है जो फैशन के तौर पर, तकनीक की दृष्टि से तरक्की करे, पर बुनियादी तौर पर देश की परिस्थिति, राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक हलचलों को वह छू सकेगी, इसमें मुझे सन्देह है। हमारी पीढ़ी ने विदेशी साहित्य तो खूब पढ़ा, पर अपने देश के साहित्य से दूर ही रहे। हमारे जातीय ग्रन्थों—'रामायण', 'महाभारत' आदि का इन्होंने अध्ययन किया हो, मुझे सन्देह है। अतः समकालीन परिस्थितियों की सही पहचान सम्भव ही नहीं है, जब तक आप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी सांस्कृतिक जमीन को नहीं पहचानते। गोर्की और सार्त्र से परिचय करते हैं, परन्तु वाल्मीकि, वेदव्यास और तुलसी की उपेक्षा करते हैं। इस प्रकार हिन्दुस्तान में रहते हुए विदेशी आसमान में जीते हैं। स्वाभाविक है, हिन्दी कहानी भी इस प्रभाव से बच नहीं सकी है। □

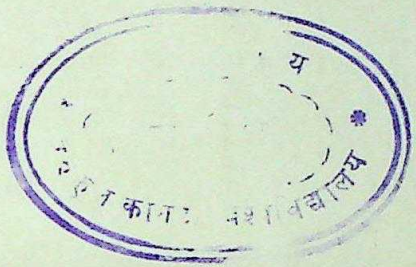

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

98581

GURUKUL KANGRI LIBRARY
Accessioned 27-12-91
Classified
Catalogued 4-4-92
Tag etc.
Checked
Any Other

Recommended By

Compiled
1999-2000

ARCHIVES DATA BASE
2011 - 12

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुमार भ्रमर का जन्म (ग्वालियर) मध्यप्रदेश में
क हिन्दी के उन गिने-चुने लेखकों में माने-जाने
, जिनकी प्रखर-दृष्टि में समाज और संस्कृति के
बाह्य सम्बन्धों, विविध पक्षों और आधुनिक मूल्यों
ाख्यायित करने की अपार क्षमता रही है। भ्रमर
संयोगवश अपनी जन्मभूमि से बाहर रहकर साहित्य-
ं अपना स्थान बनाया। संभवतः यही कारण है कि
र (महाराष्ट्र) के लोग उन्हें अपने नगर का मानते
ाहित्य की सभी विधाओं में श्री भ्रमर ने विपुल
ा किया है, किन्तु उपन्यासकार के नाते उनकी
धिक चर्चा हुई है। अब तक प्रकाशित उनकी साठ-
कृतियों में से लगभग ४७ उपन्यास हैं। श्री भ्रमर
के उन कृतिकारों में हैं, जिनकी कृतियां उनकी
स्था में ही विश्वविद्यालय के स्तर पर पढ़ायी जाती
हैं और जिन पर बहुत कम आयु में ही शोध-निबन्ध
े गये हैं व डॉक्टरेट की उपाधियां छात्रों ने प्राप्त की हैं।

भ्रमर ने महाभारत पर आधारित शोधपूर्ण उपन्यास
रह खंडों में) व श्रीकृष्ण के जीवन पर आधारित
यास (दस खंडों में) लिखकर अपार ख्याति प्राप्त
। लेखकीय-जीवनारंभ में उन्होंने पत्रकारिता की व
६९ से स्वतंत्र लेखक के नाते प्रतिष्ठित रहे। उन्होंने
नैतिक परिदृश्य पर भी अनेक लेख व पुस्तकें लिखी हैं।

नेक केन्द्रीय और राज्य पुरस्कारों से सम्मानित भ्रमरजी
दो बार 'अखिल भारतीय प्रेमचन्द पुरस्कार' मिल
का है। उनकी अनेक कृतियों के भारतीय तथा विदेशी
षाओं में अनुवाद हुए हैं। श्रीकृष्ण के जीवन पर लिखे
पे उनके उपन्यास पर आधारित बैले के रूस में सैकड़ों
दर्शन हो चुके हैं। उनकी अनके कहानियों-उपन्यासों पर
फिल्में बनी हैं।

हुमुखी प्रतिभा के धनी भ्रमर अपनी सादगी और विनम्रता
लिए सर्वत्र प्रसिद्ध हैं। कठोर जीवन-संघर्ष के बीच
पने विचारों और समाज-चिन्तन के प्रति समर्पित
मकुमार भ्रमर की सतत साहित्य-साधना उन कलाकारों
लिए एक सबक है, जो सुख-सुविधाओं और सत्ता-भोग
ी लिप्सा में अपना कलात्मक-अस्तित्व खो बैठते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रामकुमार भ्रमर रचनावली

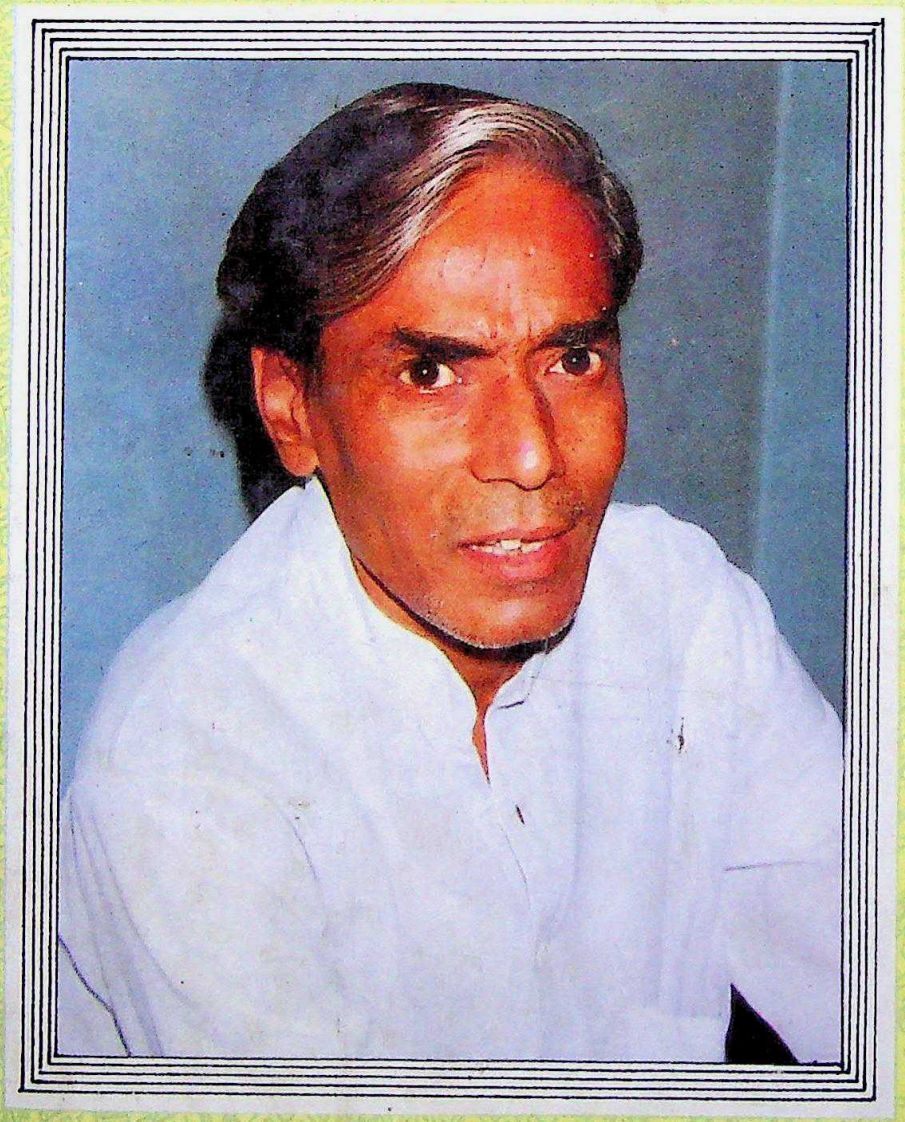

परा प्रकाशन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar